	11 . 0
I	11 . 15
II	11 . 55
III	12 . 35
Recess	1 . 15
IV	1 . 50
V	2 . 30
VI	3 . 10
VII	3 . 50
[illegible]	4 . 30

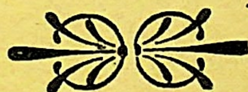
	11 . 0
I	11 . 15
II	11 . 55
III	12 . 35
Recess	1 . 15
IV	1 . 50
V	2 . 30
VI	3 . 10
VII	3 . 50
[illegible]	4 . 30



श्रीभास्कराचार्य-कृत,

सिद्धान्त-शिरोमणि ।

(गणिताध्याय)



अनुवादक—

पं० गिरिजाप्रसादद्विवेदी.



* श्रीः *

श्रीभास्कराचार्य-कृत,

सिद्धान्त-शिरोमणि ।

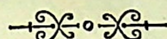
(गणिताध्याय)

प्रभा-भाषाभाष्य-उपपत्ति-प्रस्तावना-सहित.

अनुवादक,

ज्यौतिषाचार्य—

पंडित गिरिजाप्रसादद्विवेदी ।



प्रथम बार

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में छपकर प्रकाशित.

१९२६ ई० ।

THE SIDDHANT-SIROMANI

BY

BHASKARACHARYA

(GANITADHYAY)

Edited with the Prabha, Bhashabhashya, Upapatti and Critical Introduction

BY

Jyotishacharya—

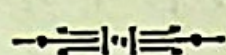
PANDIT GIRIJA PRASAD DVIVEDI.

LUCKNOW:

Printed and Published by the Newul Kishore Press.

1926.

प्रस्तावना-



जो विद्या किंवा जाति जितनी प्राचीन है, उसका आदिम इतिहास भी उतना ही अंधकारमय है। भारतीय आर्यों की प्राचीन सभ्यता, उनकी विद्या, बुद्धि, विवेक और धार्मिक संख्या की प्राचीनता अनेकानेक प्रमाणों से निर्विवाद सिद्ध होचुकी है और आज भी विविध प्रत्नतत्त्वों का विकाश जनता के समक्ष, परंपरागत गौरवास्पद का स्थान, एक स्वर से संमानित होता जाता है, तो भी प्राचीन विद्या, कला और कौशलों की प्राचीन स्थिति और उसकी क्रमिक उन्नति किंवा अवनति का वास्तविक परिज्ञान धारा-वाहिक रूप से अशक्य ही है। बहुत स्थलों में अनुमान से ही संतुष्ट होना पड़ता है। अन्यान्य शास्त्रों के अनुसार ज्योतिःशास्त्र के इतिहास का भी यही हाल है। क्योंकि असंख्य ग्रन्थ-रत्नों का पता ही नहीं लगता। बहुत से देशी किंवा विदेशी राजकीय-पुस्तकालयों में वर्तमान भी सर्वसाधारण के लिये अलभ्य हैं। बड़े-बड़े सूचीपत्रों के पारायण से नाम-मात्र का ज्ञान हो जाता है।

भारतीय आर्यों का सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है। वेद, संहिता और आरण्यकों में ज्योतिष की चर्चा सूत्र-रूप से प्रसंगानुसार उपलब्ध होती है। प्राचीन, नवीन भाष्यकारों ने उसका विवरण अनेक प्रकार से किया है और प्राचीन नवीन वैज्ञानिक विचारों की एकता आदि करने की चेष्टा भी मनमानी करने में कमी नहीं की। इसका मुख्य उद्देश्य यही था और है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि त्रिकालदर्शी थे;

उनके ज्ञान से बाहर कोई बात न थी। सो ठीक ही है। वेद के षडङ्गों का संबंध उसके अस्तित्व का मुख्य साधन ही है। परन्तु संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान वेदही से सिद्ध करना पूर्वाचार्यों को अभीष्ट न था, अन्यथा एक-एक विषयों पर असंख्य ग्रंथों की रचना का सूत्रपात न होता। वर्तमान समय में इसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

वेदों को छोड़कर ज्योतिष का स्वतन्त्र प्राचीन ग्रंथ 'वेदाङ्ग-ज्योतिष' नाम से प्रसिद्ध है। यज्ञादि कर्मों के निर्वाहार्थ इसमें तिथि, पर्व-काल आदि का निरूपण है। इस समय तीन प्रकार का वेदाङ्ग-ज्योतिष प्राप्त है† एक में ३६ श्लोक हैं; यह ऋग्वेद से संबंध रखता है; दूसरा सोमाकर की टीका-युक्त है उसके अन्त में लिखा है 'शेष-कृत यजुर्वेदाङ्ग-ज्योतिषम्' इसमें ४३ श्लोक हैं। इनमें ऋग्वेदीय-ज्योतिष के ३० श्लोक संमिलित हैं, बाकी १३ श्लोक नवीन हैं। ऋग्ज्योतिष के ३६ और यजु के १३ कुल ४९ श्लोक हैं। सोमाकर के लेखानुसार उनका सभाष्य ज्योतिष यजुर्वेदीय समझा जाता है। और वह शेष-कृत है। इसके आरंभ में लिखा है 'कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः' इससे ज्ञात होता है, लगध ने कोई ज्योतिष लिखा था उसी के मूल पर प्रस्तुत ज्योतिष लिखा गया है। ज्ञात होता है—जैसे प्राचीन वैदिक व्याकरण के आधार पर पाणिनि व्याकरण एवं वैदिक छन्द-शास्त्र के मूल पर पिङ्गल-नामक छन्दः-शास्त्र की सृष्टि हुई है वैसे ही प्राचीन वैदिक ज्योतिष की भित्ति पर लगध महात्मा का यह वेदाङ्ग-ज्योतिष रचा गया है। लगध किंवा

† अथर्व-ज्योतिष तीसरा है—इसमें काश्यप को पितामह ने उपदेश किया है। यह एक प्रकार से मुहूर्त-विषयक है। इसमें सात ग्रह, सात वार हैं। मेषादि द्वादश राशियों का नाम नहीं है। इसको मुहूर्त-विषय का आदि ग्रंथ जानना चाहिए।

उनके ज्ञान से बाहर कोई बात न थी। सो ठीक ही है। वेद के षडङ्गों का संबंध उसके अस्तित्व का मुख्य साधन ही है। परन्तु संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान वेदही से सिद्ध करना पूर्वाचार्यों को अभीष्ट न था, अन्यथा एक-एक विषयों पर असंख्य ग्रंथों की रचना का सूत्रपात न होता। वर्तमान समय में इसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

वेदों को छोड़कर ज्योतिष का स्वतन्त्र प्राचीन ग्रंथ 'वेदाङ्ग-ज्योतिष' नाम से प्रसिद्ध है। यज्ञादि कर्मों के निर्वाहार्थ इसमें तिथि, पर्व-काल आदि का निरूपण है। इस समय तीन प्रकार का वेदाङ्ग-ज्योतिष प्राप्त है † एक में ३६ श्लोक हैं; यह ऋग्वेद से संबंध रखता है; दूसरा सोमाकर की टीका-युक्त है उसके अन्त में लिखा है 'शेष-कृत यजुर्वेदाङ्ग-ज्योतिषम्' इसमें ४३ श्लोक हैं। इनमें ऋग्वेदीय-ज्योतिष के ३० श्लोक संमिलित हैं, बाकी १३ श्लोक नवीन हैं। ऋग्ज्योतिष के ३६ और यजु के १३ कुल ४९ श्लोक हैं। सोमाकर के लेखानुसार उनका सभाष्य ज्योतिष यजुर्वेदीय समझा जाता है। और वह शेष-कृत है। इसके आरंभ में लिखा है 'कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः' इससे ज्ञात होता है, लगध ने कोई ज्योतिष लिखा था उसी के मूल पर प्रस्तुत ज्योतिष लिखा गया है। ज्ञात होता है—जैसे प्राचीन वैदिक व्याकरण के आधार पर पाणिनि व्याकरण एवं वैदिक छन्द.शास्त्र के मूल पर पिङ्गल-नामक छन्दः-शास्त्र की सृष्टि हुई है वैसे ही प्राचीन वैदिक ज्योतिष की भित्ति पर लगध महात्मा का यह वेदाङ्ग-ज्योतिष रचा गया है। लगध किंवा

---

† अथर्व-ज्योतिष तीसरा है—इसमें काश्यप को पितामह ने उपदेश किया है। यह एक प्रकार से मुहूर्त-विषयक है। इसमें सात ग्रह, सात वार हैं। मेषादि द्वादश राशियों का नाम नहीं है। इसको मुहूर्त-विषय का आदि ग्रंथ जानना चाहिए।

शेष कौन थे ? इसका वास्तविक प्रमाण नहीं है । सोमाकर की टीका भी दो प्रकार की है—बड़ी के आदि में सोमाकर अंत में शेष का नाम है । छोटी में दोनों का नाम नहीं है । प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियाँ जितनी उपलब्ध हुई हैं, सब त्रुटि, अशुद्धि और पाठान्तरों से घोर मलिन दशा में हैं । मूल-टीका में अनेक विसंवादों से बहुत दिनों से इसके अर्थ लगाने में देशी विदेशी गणितज्ञ विद्वान् व्याकुल होते आये हैं †

वेदाङ्ग-ज्योतिष से ज्ञात होता है—श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र के आदि से सूर्य का उत्तरायण और आश्लेषा के अर्ध से दक्षिणायन

† पूना के स्वर्गीय श्रीयुत शंकर बालकृष्ण दीक्षितजी ने मराठी में ' भारतीय ज्योतिःशास्त्र ' नामक बड़ा महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा है । ऐसा ग्रंथ आज तक किसी भाषा में नहीं लिखा गया । वेदाङ्ग-ज्योतिष के कुछ श्लोकों का अर्थ—उपपत्ति इसमें प्रसंगवश दिखलाई है और बनारस के डाक्टर थीबो साहब ने भी कई श्लोकों की उपपत्ति निकाली है, परंतु पूरे ग्रंथ की संगति नहीं लगी—जिसको जहाँ तक सूझा, अर्थ सुलझाया—यह पिष्ट-पेषण की दुर्दशा वर्षों तक रही, अन्त में लोगों ने मौन साध लिया । सन् १९०७ में बार्हस्पत्यजी (लाला छोटेलालजी साहब एग्ज़ीक्युटिव इंजिनियर P. W. D. युक्त प्रदेश) ने पुराने विद्वानों के लेखों का और प्राचीन वेदाङ्ग की पुस्तकों का संग्रह करके शुद्ध पाठ निश्चित करके अपना सोपपत्तिक अंग्रेज़ी भाष्य प्रकाशित किया—इस कार्य में आप पूर्ण सफल हुए और संपूर्ण श्रेय आपको मिला । वह भाष्य प्रयाग के Hindustan Review में निकला और पुनर्मुद्रित (Reprint) भी हुआ इसकी खूब धूम मची । बड़े-बड़े विद्वानों ने स्तुति की । इसके प्रकाशित होते ही श्रीसुधाकर द्विवेदीजी ने भी अपने ' सुधाकर-भाष्य ' सहित ' वेदाङ्ग-ज्योतिष ' निकाला और प्राचीन टीकाकार, दीक्षित थीबो और बार्हस्पत्य के व्याख्यानों की आलोचना करते हुए स्वतंत्र भाष्यकार होगए, उस समय द्विवेदी जी और बार्हस्पत्य का वाद-विवाद भी हुआ—लेख निकले, बड़ी लीला फैली । ' सरस्वती ' में भी लेख प्रकाशित हुए थे ।

का आरंभ होता था। यह उत्तर और दक्षिणगति का समय माघ और श्रावण मास में होता था। उत्तरायण और दक्षिणायन में दिन की बढ़ती और घटती एक प्रस्थ जल के बराबर होती थी। उक्त दोनों अयनों में दिन-रात्रि के मान में ६ मुहूर्त का भेद पड़ता था। धनिष्ठा के आदि में वत्सरारंभ माना जाता था इत्यादि। इसके पूर्वकाल में कभी वासंत-विषुवद्दिन से कभी सूर्य के उत्तरायण के अंत से वर्षारंभ गिना जाता था। पहले चान्द्रमास पूर्णा से गिना जाता था परंतु वेदाङ्ग-ज्योतिष के समय से वह अमावास्या से माना जाने लगा। तैत्तिरीय-संहिता के समय में वर्षारंभ माघी पूर्णा से होता था परंतु वेदाङ्ग-ज्योतिष में माघी अमा से। इन बातों से स्पष्ट है कि संहिताकाल में जैसी गणना-प्रणाली प्रचलित थी, वह वेदाङ्ग ज्योतिष के समय परिवर्तित होगई। अनंतर वराहमिहिर के समय (शक की पाँचवीं शताब्दी) में पुनः परिवर्तन हुआ और उसी संस्कृत-रूप में अब पञ्चाङ्ग-का स्वरूप किसी प्रकार स्थित होरहा है। अस्तु। वास्तव में वेदाङ्ग-ज्योतिष की रचना ज्योतिषशिक्षा देने के अभिप्राय से नहीं हुई। किंतु वैदिक क्रियाओं के संपादनार्थ मात्र है, * उसी के प्रयोजनीय बातों का स्थूल निरूपण किया है। हमारे प्राचीन आर्यों के ज्योतिष-ज्ञान की चरम सीमा इतने में ही समझना भ्रममात्र है। आचार्य वराहमिहिर

---

* कई विदेशी विद्वानों ने 'वेदाङ्ग-ज्योतिष' को देखकर यह समझा है कि प्राचीन आर्यों को इसके सिवा और ज्योतिष का ज्ञान नहीं था परन्तु वेदाङ्ग-ज्योतिष का उद्देश्य क्या है—मेक्समूलर के शब्दो में सुनिए—

'Nor is it the object of the small tract to teach astronomy. It has a practical object, which is to convey such knowledge of the heavenly bodies as is necessary for fixing the days and hours of the Vedic sacrifices.'—History of Ancient Sanskrit Literature, 1859.

ने वेदाङ्ग-ज्योतिष को बहुत प्राचीन माना है इसी लिए अपनी बृहत्संहिता में अयनप्रवृत्ति लिखते हुए—

'आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनाक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥'

इस आर्या में ' पूर्वशास्त्रेषु ' से वेदाङ्ग ज्योतिष किंवा पराशरतंत्र का स्मरण किया है । ' भारतीय ज्योतिःशास्त्र ' में दीक्षितजी ने ऋक् और यजुर्वेदीय ज्योतिष का समय कई युक्ति और प्रमाणों से लिखा है । वह ईसा के पूर्व १४०० वर्ष में सिद्ध हुआ है । इसके कालनिर्णय में अनेक वितण्डावाद हैं † उक्त पराशरतंत्र सांप्रत में प्राप्त नहीं है, कहीं एक प्रकार का मिला भी है परन्तु वह नवीन संग्रह है क्योंकि उसमें अयनगति का निरूपण है जोकि इस देश में पाँचवीं शताब्दी में भी अज्ञात था । तब मूल पराशरतंत्र कैसे माना जाय ? पराशर कृष्णद्वैपायन-व्यास के पिता थे । निरुक्त के मत से वसिष्ठ के पुत्र महाभारत और विष्णु-पुराण के मत से वसिष्ठ के पौत्र और शक्ति के पुत्र थे । कोई इन्हीं पराशर को आदि सिद्धान्तकार मानते हैं, परन्तु प्रथम मुनि ब्रह्मकृत सिद्धान्त ही समग्र ज्योतिष का आदि है । ब्रह्मसिद्धान्त वैदिकसिद्धान्त का नामान्तर है । क्योंकि वेद ब्रह्मा की सृष्टि है । कुछ भी हो, पराशरसिद्धान्त का ही नाम पराशरतंत्र है । बृहत्संहिता के अनेक स्थलों में पराशर और गर्ग का मत भट्टोत्पल ने अपनी टीका में लिखा है । दोनों बहुत प्राचीन हैं । ज्योतिषिक गणना से ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी से चौदहवीं के बीच

---

† बार्हस्पत्यजी के ' वेदाङ्ग-ज्योतिष ' का ऐतिहासिक भाग देखने से अनेक विषयों का ज्ञान हो सकता है । अंग्रेज़ी में होने से, सबको लाभ नहीं पहुँचता । संपूर्ण ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद होना परमावश्यक है ।

में दोनों वर्तमान थे † ऐसा निश्चय किया गया है। विशेष निवेचन देखना हो तो मिस्टर सी० वी० वैद्य की 'महाभारत-मीमांसा' देखनी चाहिए। मूल ग्रंथ मराठी भाषा में था, उसका हिंदी अनुवाद उक्त नाम से पं० माधवराव सप्रे महाशय-कृत प्रसिद्ध है।

अब देखना चाहिए कि वेद, संहिता ब्राह्मण आरण्यक और वेदाङ्ग-ज्योतिष में सूत्ररूप से वर्णित ज्योतिषज्ञान, कालक्रम से ऋषियों, मुनियों के द्वारा कैसा विस्तृत हुआ है और भविष्य में आचार्यों के ज्ञान-विकाश में कैसा सहायक होकर कल्पवृक्ष के रूप को धारण किया है। कश्यप का वचन है:—

'सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पुलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशैवैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥'

---

† कई पश्चिमी ऐतिहासिक पराशर और गर्ग को ईसा के दो तीनसौ वर्ष पूर्व मानते हैं। कोई महापुरुष, उक्त दोनों नाम के कोई ऋषि ही नहीं मानते, पौराणिकी गाथा मान कर सब बातों को चुटकी बजाकर उड़ा देने को तैयार हैं। डाक्टर कर्न साहब ने बृहत्संहिता को, सन् १८६४ में, कलकत्ता की एसियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराया था। उसकी भूमिका में आपकी लीला देखिए—

"Many of the Rishis upon whose authority the doctrines of astronomy and astrology are held to be founded are pure myths. By myths here is meant not the personification of any natural phenomenon, or of any moral, historical, social fact; in many cases it is the embodiment of a rude philosophical theory in a poetical shape."—Kern's preface to Brihat Samhita.

कर्न साहब को एक अपूर्ण गर्गसंहिता मिली थी। महाभारत के गर्ग ही संहिता-लेखक हैं। इनके नाम से एक तीर्थ का भी लेख है। बड़े पुराने ज्योतिषी महात्मा थे।

इन दोनों श्लोकों में अठारह ज्योतिःशास्त्र के प्रचारक आचार्यों के नाम गिनाये हैं। इनमें कई संहिता और सिद्धान्त दोनों के कर्ता हैं, * कोई दोनों में केवल एक ही विषय के हैं। किसी के नाम का ग्रंथ दोनों विषयों पर भी नहीं उपलब्ध है। यदि हो भी तो कहीं अंधकार में लीन होगा। उक्त श्लोकों में जिन नामों का उल्लेख है वह क्रम से या, अक्रम से है—इसका ठीक निर्णय कठिन है। यहाँ दो चार प्राचीन और नवीन आचार्यों के श्लोक उद्धृत कर देना आवश्यक है और उनके वचन प्राचीन मतानुसार हैं या, उनके समय में प्रसिद्ध परंपरानुसार किंवा सिद्धान्तों की उपयोगिता अथवा, अनुपयोगिता के अनुसार—इसका विवेचन विज्ञ-विचारक स्वयं कर सकते हैं। क्योंकि 'नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्' का डंका चिरकाल से बजता आया है। इसी सिद्धान्त-शिरोमणि में भी लिखा है 'महतामभिप्रायं महान्त एव विदन्ति।'

आचार्य वराहमिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका † में लिखा है—

'दिनकरवसिष्ठपूर्वान्
विविधमुनीन्द्रान् प्रणम्य भक्त्यादौ।'

---

* इनमें कई ऋषियों के नाम से स्मृति भी प्रसिद्ध हैं, प्राचीन १८ स्मृतियों से ३६ हुई, इनसे ६० संख्या पहुँची, उसके बाद ७१ तक संख्या हो गई। देखो 'मनुस्मृति' की भूमिका (न० कि० प्रेस, लखनऊ)

† पञ्चसिद्धान्तिका की एक अशुद्ध प्रति बंबई के पुरातत्त्वज्ञ डा० जी० बूलर साहब को मिली थी। उसी को शुद्ध करके डाक्टर जी० थीबो और महामहोपाध्याय श्रीसुधाकर द्विवेदीजी ने उसका उत्तम संस्करण प्रकाशित किया तभी से इसकी विशेष ख्याति हुई। आदि में थीबो की अंग्रेज़ी में विशाल भूमिका है—उसमें अनेक ज्ञातव्य विषय हैं, फिर मूल और द्विवेदीजी की 'प्रकाशिका' उपपत्ति है, अंत में—थीबो साहब का अंग्रेज़ी अनुवाद है। उक्त पुस्तक बनारस के मेडिकल हाल प्रेस से, सन् १८८९ में प्रकाशित हुई है।

आगे लिखा है—

'पौलिशरोमकवाशिष्ठ-
सौरपैतामहास्तु सिद्धान्ताः ।
पञ्चभ्यो द्वावाद्यौ-
व्याख्यातौ लाटदेवेन ॥
पुलिशविहितः स्फुटोऽसौ-
तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः ।
स्पष्टतरः सावित्रः-
परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ ॥'

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी ने अपनी 'प्रकाशिका' टीका के आरंभ में सूर्यारुणसंवाद से कई श्लोक उद्धृत किए हैं। उन पाँचों सिद्धान्तों के संबंध में इस प्रकार वर्णन है—"आदि वेदाङ्गरूप ज्ञान पितामह—ब्रह्मा को प्राप्त हुआ, उन्होंने अपने पुत्र वसिष्ठ को दिया। विष्णु ने उस ज्ञान को हमको (सूर्य) दिया, वही सौर सिद्धान्त नाम से विख्यात हुआ। उस सिद्धान्त को मैंने मय को दिया। वसिष्ठ ने उस परमज्ञान को निज पुत्र पराशर को दिया—वही वसिष्ठ सिद्धान्त है। पुलिश ने निज निर्मित सिद्धान्त को गर्ग आदि मुनियों को बतलाया। मैंने (सूर्य) शापग्रस्त होकर यवन जाति में जन्म पाकर रोमक को रोमक सिद्धान्त बतलाया। रोमक ने अपने नगर में उसका प्रचार किया। ये पाँच प्रकार के पुराने गणित हैं"

इसकी टिप्पणी में द्विवेदीजी ने लिखा है—वेदाङ्ग-ज्योतिष की रचना के समीप काल में ही ब्रह्मसिद्धान्त बनाया गया है। वसिष्ठ ने इसको पितामह सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध किया। यों ज्ञात होता है कि ब्रह्मसिद्धान्त के निकट काल में ही वसिष्ठसिद्धान्त बना है। ब्रह्मसिद्धान्त स्थूल उसकी अपेक्षा वसिष्ठसिद्धान्त सूक्ष्म है। दोनों

ग्रंथों के पूर्वापर होने का प्रमाण गणनाक्रम से निःसंदेह सिद्ध होगा। इसके सिवाय द्विवेदीजी ने अपनी 'गणक-तरङ्गिणी' में पराशर के वचनों को देकर, दूसरा क्रम भी दिखलाया है।

भट्टोत्पल (शक ८८८) ने वराहमिहिर की बृहत्संहिता पर टीका लिखी है,※ उसमें नीचे लिखे श्लोक हैं—

'यद्दानवेन्द्राय मयाय सूर्यः,
शास्त्रं ददौ संप्रणताय पूर्वम्।
विष्णुर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो,
ज्ञानामृतं यत्परमाससाद॥
पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद्
गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत्।
प्रकाशयाञ्चक्रुरनुक्रमेण,
महर्षिसन्तो यवनेषु तत्ते॥'

सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकरभट्ट ने इस प्रकार क्रम निर्देश किया है—

'ब्रह्मा प्राह च नारदाय हिमगुर्यच्छौनकायामलं
माण्डव्याय वसिष्ठसंज्ञकमुनिः सूर्यो मयायाह यत्।'

श्रीबापूदेवशास्त्रीजी ने लिखा है कि 'शाम्भुहोराप्रकाश' में † निम्न-लिखित क्रम है—

※ स्वर्गीय श्रीसुधाकरद्विवेदी-संपादित और काशी मेडिकल हाल प्रेस द्वारा प्रकाशित। इसके दो खण्ड हैं। बृहत्संहिता का सटीक संस्करण इससे उत्तम दूसरा नहीं प्रकाशित हुआ।

† यह पुञ्जराज नामक किसी दाक्षिणी ज्योतिषी का जातक फल-ग्रंथ है। नंदीद्वार-नगराधीश शम्भुदास के प्रीत्यर्थ इसको बनाया है। शम्भुदास शक १५८४ में उत्पन्न हुए थे।

'आद्यः सिद्धान्तः सोमसंज्ञो,
यो वै दुर्गाशम्भुना सम्यगुक्तः।
अन्यो धात्रा निर्मितो ब्रह्मसंज्ञः,
सूर्येणोक्तः सौरसंज्ञस्तृतीयः॥'

इन सब प्रमाणों के देखने से सर्वापेक्षा ब्रह्मसिद्धान्त ही प्राचीन समझा गया है। वेदही संपूर्ण ज्योतिषशास्त्र का मूल है, वह ब्रह्मा से प्रादुर्भूत हुआ है। वही शिष्य, प्रशिष्य द्वारा विविध नामों से क्रमशः प्रचारित हुआ है। एकही सिद्धान्त का आश्रय करके ज्ञान-वृद्धि के साथ उसमें संस्कार, परिवर्तन करके, काल क्रम से, अनेक सिद्धान्तों की उत्पत्ति हुई है। इन पाँचों सिद्धान्तों के विषय में कुछ विशेष लिखकर, यह प्रस्ताव समाप्त किया जायगा।

(१) पैतामहसिद्धान्त — जो पैतामहसिद्धान्त वराहमिहिर ने पञ्चसिद्धान्तिका में संकलन किया है वह बहुत पुराना है। डाक्टर थीबो साहब उसको वेदाङ्ग-ज्योतिष, गर्गसंहिता, सूर्यप्रज्ञप्ति * प्रभृति के समान प्राचीन मानते हैं। वैदिक काल के वर्ष दिन ३६० के बदले इसमें सौर वर्ष ३६६ दिन माना है। धनिष्ठा नक्षत्र को नक्षत्र-चक्र की आदि एवं परम दिनमान १८ मुहूर्त वा, ३६ दण्ड लिखा है। किंतु प्राचीन मूल सिद्धान्त नहीं, दूसरे शक का पितामह सिद्धान्त वराहमिहिर को मिला है। उसकी ५ आर्या लिखी हैं और सूर्य, चंद्र को छोड़कर दूसरे ग्रहों का नाम नहीं है। पूर्व लेखानुसार आचार्य के समय में इसका गणित शिथिल होगया था, ज्ञात होता है इसी कारण

* यह जैनियों का प्राचीन ज्योतिष है जैसा कि वेदाङ्ग-ज्योतिष है। इसी में दो सूर्य, दो चन्द्र, दो राशिचक्र की कल्पना है जिसका भास्कराचार्य ने गोलाध्याय में खण्डन किया है। सूर्यप्रज्ञप्ति को डाक्टर थीबो साहब ने बङ्गाल की एसियाटिक-सोसायटी के जर्नल में, बहुत वर्ष बीते प्रसिद्ध किया था।

वंदना-मात्र कर लिया है। लेकिन पूरा ग्रहगणित अवश्य था, नहीं तो आर्यभट और ब्रह्मगुप्त अपने सिद्धान्तों का मूल क्यों मानते ? गणित की अशुद्धि तो प्रसिद्ध ही थी, इसीलिए ब्रह्मगुप्त ने स्पष्ट लिख दिया है—

'ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम्।
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन॥
संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेण।
तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ॥'

प्राचीनकाल से लेकर आज तक चार प्रकार का ब्रह्मसिद्धान्त ज्ञात हुआ है। (१) पञ्चसिद्धान्तिका के अन्तर्गत। (२) विष्णुधर्मोत्तर-पुराण के अन्तर्गत। (३) शाकल्यसंहिता के अन्तर्गत * (४) ब्रह्मगुप्त का ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त।

ब्रह्मसिद्धान्त के प्राचीन टीकाकार पृथूदक स्वामी ने लिखा है कि 'विष्णुधर्मोत्तर पुराणान्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त ही ब्रह्मगुप्त का मूल ग्रंथ है। इस पुराण का सिद्धान्त, संभवतः अति प्राचीन पैतामह सिद्धान्त की छाया है, देखना चाहिए एक पैतामह सिद्धान्त-जिसका ब्रह्मा ने वेद से उद्धार किया है वही आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और अंत में भास्कर के सिद्धान्त का मूल हुआ है। इस प्रकार वेदही ज्योतिष का मूल है।' सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार दादा भाई ने अपनी 'किरणावली' में लिखा है ब्रह्मगुप्त का सिद्धान्त पैतामह सिद्धान्त का बृहत्संस्करण-मात्र है

---

* बंगाल-एसियाटिक-सोसायटी के हस्त-लिखित संस्कृत पुस्तकों के सूचीपत्र में 'शाकल्यसंहिता' का नाम है। इस संहिता के दो चार श्लोक सूर्यसिद्धान्त की टीका में रङ्गनाथ दैवज्ञ ने लिखे हैं। ग्रहयुत्यधिकार श्लोक १४। इसमें ६ अध्याय और ७६४ श्लोक हैं। ब्रह्मा ने नारद को उपदेश किया है। सिद्धान्त-विषय के सिवा मुहूर्त-विषय भी है अतः संहिता नाम रक्खा गया। पञ्चसिद्धान्तिका के आधार पर बनी है। दीक्षितजी ७४२ शक के आसन्न इसका निर्माण-काल निर्धारित करते हैं।

एवं पृथूदक स्वामी-कृत टीका पैतामह भाष्य की टीका-मात्र है' कुछ भी हो ब्रह्मगुप्त ने अनेक विषयों का आयोजन, संशोधन करके प्राचीन पितामह सिद्धान्त को नवीनरूप दिया है यही सर्व संमत और प्रत्यक्ष है। अन्यथा, भास्कराचार्य ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त का आधार कभी न स्वीकृत करते।

(२) वासिष्ठसिद्धान्त।—पञ्चसिद्धान्तिका में संगृहीत पैतामह के समान यह भी पुराना है परन्तु कुछ उन्नत दशा में है, इसमें १२ आर्या हैं और सूर्य चन्द्र के सिवा दूसरे ग्रहों का गणित नहीं है। पितामह और वासिष्ठ को वराहमिहिर ने 'दूरविभ्रष्टौ' लिखा है। शकारंभ कालिक यह भी है। ब्रह्मगुप्त और दो एक टीकाकारों की उक्ति से ज्ञात होता है कि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त वासिष्ठ के कर्ता विष्णुचन्द्र थे। पूर्व लेख से ज्ञात होता है विष्णु ने वसिष्ठ को ज्योतिष शिक्षा दी थी। परंतु वे विष्णु और विष्णुचन्द्र एक व्यक्ति नहीं हो सकते। डाक्टर थीबो साहब के मत से विष्णुचन्द्र नामक कोई थे, जिन्होंने प्राचीन वासिष्ठसिद्धान्त का संशोधन किया था अतएव इसके निर्माता प्रसिद्ध होगए (See his introduction to Panch-Siddhantika) श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षितजी ने अपने 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' में सिद्ध किया है कि ब्रह्मगुप्त के समय में दो प्रकार का वासिष्ठ था। एक मूल, दूसरा विष्णुचन्द्र का। वराहमिहिर के अनंतर विष्णुचन्द्र ने श्रीषेण (श्रीसेन)-कृत रोमकसिद्धान्त का कतिपय विषय संयुक्त करके प्राचीन वासिष्ठ का नवीन संस्करण किया है।

सांप्रत में 'लघुवसिष्ठसिद्धान्त' काशी से प्रकाशित मिलता है*।

---

* कई वर्ष हुए काशी के महामहोपाध्याय श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'ज्योतिष-सिद्धान्त-संग्रह' निकालना आरंभ किया था। उसमें व्यास, वसिष्ठ, सोम आदि सिद्धान्त प्रकाशित हुए थे। अब नहीं मालूम कितने प्रकाशित हो चुके हैं।

इसमें करीब ९४ श्लोक हैं। यह प्राचीन वासिष्ठ का नवीन रूपान्तर है। बृहत्संहिता की टीका में भट्टोत्पल ने जो वासिष्ठ-सिद्धान्त के वचन उद्धृत किए हैं, वे इसमें नहीं प्राप्त होते।

(३) रोमकसिद्धान्त।—पञ्चसिद्धान्तिकोक्त रोमकसिद्धान्त के व्याख्याता लाटदेव हैं। ब्रह्मगुप्त ने भी लाटदेव का नाम लिया है—

'श्रीषेण-विष्णुचन्द्र-प्रद्युम्नार्यभट-लाल-सिंहानाम्।
ग्रहणादि-विसंवादात् प्रतिदिवसं सिद्धमज्ञत्वम्॥'

अर्थात्—इन सबों के ग्रहण–उदयास्त आदि के गणित में प्रत्यक्ष-विरुद्ध स्थिति दृष्टिगोचर होने से पठित समाज में–इनकी मूर्खता–प्रतिदिन प्रसिद्ध होरही है। इस सिद्धान्त की गणना-शैली से सिद्ध है कि किसी रोम किंवा ग्रीक सिद्धान्त के आधार पर इसकी रचना है। अहर्गण यवनपुर के मध्याह्न का साधन किया गया है। कोई अनुमान करते हैं अलक्ज़ेंड्रिया के (Alexandria) प्रसिद्ध ज्योतिषी टालमी के पुस्तकाधार पर, संस्कृत में रोमकसिद्धान्त लिखा गया है। ब्रह्मगुप्त कहते हैं–लाट, वसिष्ठ, विजयनंदी और आर्यभट इन चारों के ग्रंथाधार पर श्रीषेण ने रोमक सिद्धान्त को बनाया। आलबेरुनी † का भी यही मत है। डाक्टर थीबो साहब कहते हैं कि श्रीषेण प्राचीन रोमक की रचना न करके, उस समय के अनेक ग्रंथों

---

† शक ८९५ में यवनधर्मावलंबी आलबेरुनी का जन्म हुआ था। भारत में आकर पुराण, दर्शन और ज्योतिष की शिक्षा पंडितों से प्राप्त की थी। ज्योतिष में उसका अधिक अनुराग था। उसके लिखे भारत-विषयक ग्रंथ में उस समय के ज्योतिष-ज्ञान का विशेष वर्णन है। उसके अरबी ग्रंथ का समय शक ९५३ है। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद Alberuni's India नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम भाग का हिंदी अनुवाद भी प्रयाग के इण्डियन प्रेस ने प्रकाशित किया है।

के विषयों को रोमक में संमिलित किया है । और पहले लाटदेव ने, उसके बाद श्रीषेण ने रोमक का संस्कार किया है।

ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त में लिखा है—

'युगमन्वन्तरकल्पाः कालपरिच्छेदकाः स्मृताबुक्ताः।
यस्मान्न रोमकेऽतो स्मृतिबाह्यो रोमकस्तस्मात्॥'

मूल रोमक में युग-मन्वन्तर आदि का उल्लेख न होने से इसकी मान्यता न हुई। बृहत्संहिता की विवृति में भट्टोत्पल ने पौलिश आदि का प्रमाण दिया है, पर रोमक का कहीं नहीं दिया। परंतु श्रीषेण के संस्कृत रोमक में युगादि की चर्चा है—इससे दो प्रकार का रोमक ब्रह्मगुप्त के समय में सिद्ध होता है। दीक्षित महाशय ने 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' में लिखा है—रोमक की गणना से कलियुगारंभ में सूर्य-चन्द्र एकत्र न थे, और तो क्या चान्द्रमास भी पूर्ण न था। मूल रोमक बहुत अशुद्ध था। अस्तु; हिपार्कस † के बाद और टालमी के पूर्व अर्थात् ईसवी वर्ष के आरंभ में मूल रोमक की रचना हुई है।

पौलिशसिद्धान्त।—पौलिश का गणित भी सूक्ष्म नहीं है । इसमें सूर्य-चन्द्र ग्रहण का गणित अति स्थूल है । आलबेरुनी का मत है अलकजेंड्रिया वासी पोलस (Paulus Alexandrinus) के यूनानी सिद्धान्त के आधार पर, इसकी रचना हुई है। डाक्टर कर्न इस मत को ठीक न मान कर भी कोई यावनिक ग्रंथ मूल मानते हैं*

---

† ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस ईसाके १२० वर्ष पूर्व था, उसका ग्रंथ लुप्त होगया—उसी काल के आसन्न टालमी ने अपना ग्रंथ बनाया। परंतु इस ग्रंथ के साथ रोमक की एकता नहीं है।

* 'We have no right whatever to infer that (Paulus Alexandrinus) and Paulica are one and the same, for identity of name is too slender a ground, especially when the name happens to be a common one. '—Dr. Kern's Preface to his Brihat-Samhita.

इसमें यवनपुर वा, अलक्जेंड्रिया से उज्जयिनी और काशी का देशान्तर लिखा है। नाम सादृश्य से किंवा यवनपुर के लेख से, ऐसी कल्पना निराधार ही है। वराह के पौलिश में अवन्ती से काशी का देशान्तर भी तो है। हां, यह कह सकते हैं कि उस समय आर्यों को यवनपुर ज्ञात था। वराह का पौलिश इसी देश के सिद्धान्त-रचना के अनुसार है। पौलिश का नाम प्राचीन शास्त्रों में प्रसिद्ध है। पौलिश एक प्रकार का न था। भट्टोत्पल और ब्रह्मगुप्त के टीकाकार पृथूदक स्वामी ने उक्त सिद्धान्त के कई श्लोक उद्धृत किए हैं। उनका कुछ सादृश्य सौर और आर्यभट के मतों से होता है। थीबो साहब अनुमान करते हैं—वराह का पौलिश संशोधित और परवर्ती करके इस नाम का दूसरा सिद्धान्त भी बनाया गया है और उसी से परवर्ती टीकाकारों ने श्लोक लिखे हैं। (Introduction to Panch-Siddhantika) वास्तव में प्राचीन वा, आधुनिक कोई पौलिश सांप्रत में प्राप्त नहीं है। वराह और भट्टोत्पल का पौलिश एक नहीं है दीक्षित महाशय ने दिखलाया है कि उत्पल के समय में दो प्रकार का उक्त सिद्धान्त था इत्यादि (देखो, भारतीय ज्योतिःशास्त्र)।

सूर्य-सिद्धान्त।—भगवान् सूर्यदेव ने इसको स्वयं बनाया और मयासुर को उसकी कठिन तपस्या से सन्तुष्ट होकर उपदेश किया। यह उपाख्यान सूर्य-सिद्धान्त के आरंभ में प्रसिद्ध है और अन्तिम मानाध्याय के अन्त में—

× × ×

'दिवमाचक्रमेऽर्कांशः प्रविवेश स्वमण्डलम्।
मयोऽथ दिव्यं तज्ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद्विवस्वतः॥

जर्मन के प्रसिद्ध ऐतिहासिक वेबर साहब ने लिखा है—ग्रीक पोलस का जो ग्रंथ मिला है उसमें फलित है, गणित नहीं। उससे वराह के पौलिश की समता नहीं है।

कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ।
ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम् ॥
परिवव्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ।
स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत् ॥
अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्मसंमितम् ।'

सूर्यांश पुरुष अन्तर्द्धान हुए–मयासुर को ऋषियों ने आकर घेर लिया और अपने अपने हिस्से का ग्रहचरित जानकर चलते बने। प्राचीन सूर्यसिद्धान्त की उत्पत्ति यही है। त्रेतायुग के आरंभ की बातें हैं। वराहमिहिर ने जिस आधार पर सौर का संकलन किया है, वह मूल ग्रंथ था और पूर्व लिखे पाँचों सिद्धान्तों से व्यवस्थित था, इसी लिए 'स्पष्टतरः सावित्रः' लिखा है। परंतु जिस स्वरूप में आजकल सूर्यसिद्धान्त है, इसमें और पुराने में बहुत भेद है। भगणों में अन्तर–श्लोकों में न्यूनाधिकभाव–बीजोपनयनाध्याय–अयनांश का साधन आदि अनेक पूर्वापर विरुद्ध विषयों का समावेश है। इस बात को कई प्राचीन आचार्यों ने माना है। भट्टोत्पल ने बृहज्जातक की टीका के अंत में लिखा है—

'चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे ।
वस्वष्टाष्टमिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया ॥'

शक ८८८ में भट्टोत्पल थे और बृहत्संहिता की विवृति में सूर्य-सिद्धान्त के कई श्लोक लिखे हैं परन्तु अब नहीं मिलते। शक की एकादश-शताब्दी में भास्कराचार्य ने जो अयन चलन की गति का उल्लेख किया है उसका प्रचलित सूर्यसिद्धान्त से मेल नहीं होता।

शक १२२१ में तैलङ्ग कूचनाचार्य ने 'ग्रहचक्र' नामक सारणी लिखी थी। उसके दो भाग उड़िया अक्षरों में लिखे प्राप्त हुए हैं। पुस्तक अशुद्ध और अपूर्ण है। कई विद्वानों की राय है कि

सारिणी के प्रथम आविष्कर्ता कूचनाचार्य हैं। अस्तु। इन्होंने अपने ग्रंथ में सूर्यसिद्धान्त के कई श्लोक लिखे हैं, वे प्रचलित में मिलते हैं। शक १४२२ में लक्ष्मीदास ने भास्कर के शिरोमणि पर गणित-तत्त्वचिन्तामणि-टीका लिखी है उसमें वृहत्सूर्यसिद्धान्त के नाम से श्लोक भी दिये हैं उनका अब पता नहीं चलता (Colebrooke's Essays) शक १५६१ में सिद्धान्तराजकर्ता नित्यानंद लिखते हैं—

'तथा मयाऽभिच्छलतोऽपि केचित्,
स्वान्तर्मुदे किञ्चिददूरगार्थाम्।
आचिक्षिपुः स्वां कृतिमर्थदुष्टा-
माचार्यवर्यानुस्मृतिं दधानाः॥
कलेर्गताब्दैः खखतर्करामैः (३६००)
किं वा कियद्वर्षगणाधिकोनैः।
प्रकल्पिताजाननतारकाद्यं,
बभूव पूर्वं विषुवत्स्थलं हि॥'

नित्यानंद का मत है, प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त वास्तविक नहीं है। वास्तविक ३६०० कलि वर्ष बीतने पर बना था। सुधाकरजी ने भी पञ्चसिद्धान्तिका की टीका में अपना मत स्पष्ट प्रकाशित कर दिया है *। ऐतिहासिक अन्वेषणों के पर्यालोचन से ज्ञात होता है—ईसा के पूर्व तेरहवीं सदी से लेकर प्रायः एक हजार वर्ष के बीच में कोई ज्योतिष ग्रंथ नहीं उपलब्ध होते। परन्तु किसी रूप में ज्योतिष की उन्नति अवश्य हुई होगी। संभव है, उसी समय में ब्रह्म-वसिष्ठ-सूर्य आदि सिद्धान्त बने होंगे।

---

* इस विषय में पूरा विचार 'सूर्य-सिद्धान्त समीक्षा' में महामहोपाध्याय पूज्यपाद पं० श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदीजी ने किया है।

वराह का सूर्य-सिद्धान्त लाटदेव-कृत है, ऐसा आलबेरुनी का मत है। इसी प्रकार का भ्रांत-मत बेवर साहब का है, वे तो वेदाङ्ग-ज्योतिष, सूर्य-सिद्धान्त सबको एक कर्तृक—लाटदेव, लगध को एक व्यक्ति माने हैं। लाटाचार्य वराह के पूर्व थे और उनका कोई ग्रंथ अवश्य था इसी लिए उनका स्वतंत्र मत सूर्य-सिद्धान्त से भी अलग लिखा गया है। पञ्चसिद्धान्तिका में लेख है—

> 'युगणाद्दिनवारासि-
> र्युगणोऽपि हि देशकालसंबद्धः।
> लाटाचार्येणोक्तं,
> यवनपुरेऽर्धास्तगे सूर्ये॥'

यवनपुर के संबंध से ही लाट वैदेशिक समझे जाते हैं। प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त से उनका कोई संबंध न था। प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त प्राचीन का संस्कृतरूप है, भिन्न भिन्न समयों में इसके कई संस्कार किये गए हैं। यह लाट-कृत है इसका भी दृढ़ प्रमाण नहीं है। पूर्व लेखानुसार, शक की बारहवीं सदी में इसका वर्तमान रूप हुआ है—ऐसा अनुमान किया गया है *। दीक्षित महाशय ने भी लिखा है कि प्राचीन सूर्यसिद्धान्त अर्थात् वराह-कालिक, लाट-कृत नहीं है। और उसका समय प्रायः शक ८८ (१६६ ईसवी) अनुमान किया गया है।

कुछ भी हो, प्राचीन काल से आज तक सूर्य-सिद्धान्त की मान्यता होती आई है, इतनी प्रतिष्ठा अन्य प्राचीन सिद्धान्तों की नहीं हुई। प्राचीन आचार्यों ने बड़ी सावधानी से इसकी रक्षा की और उत्तरोत्तर व्यवस्थित विषयों का संकलन करके इसको लोकप्रिय बना दिया। प्रायः समस्त भारत में इसका प्रचार हुआ और इसके आधार पर

---

* डाक्टर कर्न ने बृहत्संहिता की भूमिका में कई बातें लिखी हैं। (See his Introduction to Brihat Samhita P. 44-46)

अनेक नवीन सिद्धान्त, करण, सारणी आदि बनते गए। अनेक टीका-ग्रंथ भी लिखे गए, जो अब तक प्रकाशित ही नहीं हुए—

प्राचीन करण ग्रंथों में शतानन्द का भास्वती, केशवी, मकरंद, रामविनोद आदि प्रसिद्ध हैं। शक १२२५ में रङ्गनाथ ने 'गूढ़ार्थ-प्रकाशिका' टीका; १५४२ में नृसिंह दैवज्ञ ने 'सौर-भाष्य' १५५० में विश्वनाथ सोदाहरण गहनार्थ-प्रकाशिका, १६४१ में दादाभाई की 'किरणावली' इत्यादि कई टीका-टिप्पण सूर्य-सिद्धान्त पर निर्मित हुए और अभीतक प्रवाह चल रहा है * सन् १८६० ईसवी में बर्जेस साहब (R. E. Burgess) कृत सूर्य-सिद्धान्त का अंग्रेजी अनुवाद उपपत्ति, नोट, क्षेत्र आदि से परिष्कृत 'अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी के जर्नल नं० ६ में प्रकाशित हुआ था। इस अनुवाद की बड़ी प्रतिष्ठा हुई। दीक्षित महाशय ने 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' में एवं अन्य ज्योतिर्वेत्ताओं ने भी चर्चा की है। इसी के बाद १८६१ ईसवी में श्रीबापूदेवशास्त्रीजी का अंग्रेजी अनुवाद सटिप्पण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। उसके सहायक विलकिसन साहब थे, जिन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय का अनुवाद उसी समय में प्रकाशित किया था। उक्त दोनों अनुवाद उपयोगी हुए थे।

---

* श्रीसुधाकरद्विवेदीजी की 'सुधावर्षिणी' टीका बङ्गाल की एसियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित हुई है। यह द्विवेदीजी की प्रायः अंतिम कृति है। उत्तम है, प्राचीन भाष्यकारों के मतों की आलोचना भी है। सांप्रत के नवीन गणित का भी प्रसंगवश दिग्दर्शन है।

हिंदी अनुवाद भी सांप्रत में कई छपे हैं। किसी में अनुवादमात्र है, किसी में अनुवाद और उपपत्ति दोनों हैं। आज कल प्रयाग की विज्ञान-परिषद् से सूर्यसिद्धान्त का सानुवाद 'विज्ञान-भाष्य' श्रीबाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी. एस. सी. एल. टी., विशारद-कृत प्रकाशित हो रहा है। यह बहुत विशिष्ट है और प्राचीन नवीन सिद्धान्तों से भूषित है।

प्रयाग के पाणिनि आफिस से, कुछ वर्ष हुए, विज्ञानानंद-कृत वङ्गानुवाद भी सूर्य-सिद्धान्त का प्रकाशित हुआ है। वह सोपपात्तिक है। मेरे देखने में नहीं आया। मेरा अनुमान है, वह बर्जेस के अनुवाद के ढंग का होगा।

यहाँ तक वेदाङ्ग ज्योतिष और वराहमिहिर के स्वीकृत पाँच सिद्धान्तों की परिस्थिति का संक्षेप में निरूपण किया गया है। पूर्व जो अठारह सिद्धान्त-प्रवर्तकों के नाम लिखे गए हैं, उनमें, सांप्रत में, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, व्यास, मनु, भृगु, * और यवन संहिताकारों में प्रसिद्ध हैं। बृहत्संहिता की विवृति में भट्टोत्पल ने संहितोपयुक्त विषयों में प्रमाण-स्वरूप इनके वचन उद्धृत किए हैं किंतु प्रकृत सिद्धान्तोपयुक्त विषयों में प्रमाण वचन नहीं हैं। ऐसे मौक़े पर, पुलिश, वसिष्ठ, सूर्य-सिद्धान्त, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त के वचन ही अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। देखो, बृहत्संहिता का 'सांवत्सरसूत्राध्याय,' उसमें आचार्य वराहमिहिर ने कैसी व्यवस्था की है। जब प्राचीन ग्रंथों का ही अभाव है, तो उनके विषयों और रचना-काल के संबंध में क्या निर्णय हो सकता है। कहीं दुर्बल प्रमाण प्राप्त होते हैं, कहीं पर केवल किंवदन्ती का आश्रय करना पड़ता है। ऐसी दशा में निर्मूल कल्पना-जाल के फैलाने से कोई लाभ नहीं है। ऋषियों और मुनियों के सिद्धान्तों की कथा समाप्त की जाती है। अब प्रधान सिद्धान्तकर्ता आचार्यों के बारे में कुछ लिखना आवश्यक है। विचारशील ज्योतिर्वेत्ता महाशयों को यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन काल से वर्तमान समय तक ज्योतिःशास्त्र में जितना परिवर्तन हुआ है, संस्कृत-साहित्य के दूसरे शास्त्रों में प्रायः उतना नहीं हुआ है। ज्योतिःशास्त्र

* भृगु-संहिता अनेक स्वरूपों में व्याप्त है, उसकी प्राचीनता या नवीनता ईश्वर ही जानें।

विज्ञानमूलक होने से ही प्राचीन किंवा नवीन आचार्यों को उसकी न्यूनता पूर्ण करने के लिए बाध्य होना पड़ा। विज्ञानमात्र उन्नतिशील पदार्थ है, चिरकाल तक उसका एकही स्वरूप किसी प्रकार नहीं रह सकता * इसमें किसी को दोषभागी ठहराना, किसी अंश में, न्याय-संगत नहीं ज्ञात होता।

आर्यभट—वास्तव में ये महानुभाव ज्योतिःशास्त्र के प्रतिष्ठाता और प्राचीन गुण-गौरव के संरक्षक हुए। इनसे पूर्वकाल का कोई मानुष-सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होता। इनके सिद्धान्त का नाम आर्यभटीय है। प्राचीन समय से आज तक इसकी मान्यता चली आती है। ब्रह्म-सिद्धान्त ही को मूल माना है। मङ्गलाचरण—

'प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परब्रह्म।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम्॥'

इस सिद्धान्त में दो खण्ड हैं, प्रथम—दशगीति, द्वितीय—आर्याष्टोत्तरशत। दशगीति में १० आर्या और गणित—कालक्रिया—गोल में १०८ आर्या हैं। आर्यभट ने १,२,३ आदि संख्या के द्योतक क, ख, ग वर्ण कल्पना किए हैं अर्थात्—अ, आ इत्यादि स्वरवर्ण और क, ख आदि व्यंजन वर्णों का एक, एक संख्या-वाचक अर्थ देकर बड़ी-बड़ी संख्याओं को प्रकाशित किया है। वर्णों को इस प्रकार संख्या-सूचक किसी प्राचीन आचार्य ने नहीं कल्पित किया है।

---

* डाक्टर कर्न भी लिखते हैं—

And in no branch of Sanskrit literature have changes been made so freely as in astronomical works. Not from unworthy motives; on the contrary, the Hindu astrenomers were the only class of learned men their country who had an idea of science being progressive, not stationary or retrogressive—Dr. Kerns preface to his Brihat Samhita.

यवनों में ऐसी प्रथा थी, इसीलिए द्विवेदीजी ने 'गणक-तरङ्गिणी' में संदेह किया है कि आर्यभट ने संभवतः किसी यवन से यह रीति और उनके ज्योतिष-ज्ञान को भी सीखा होगा * उक्त संख्या निर्देश में लेखन-क्रम वाम-गति से ही माना है । उस समय शकाब्द से गणना-क्रम प्रचलित न था इसीलिए कलिवर्ष का व्यवहार किया है, अनन्तर वराह-मिहिर ने शकाब्द को प्रचलित किया । कल्प के ग्रहभगणादि न लिखकर महायुग के लिखे हैं । अपना समय कालक्रियापाद में लिखा है—

'षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥'

अर्थात्—कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर आपकी अवस्था २३ वर्ष की थी । इसलिए ३५७७ कलिवर्ष में ३१७९ घटाने से—३७८ शक में अर्थात् ईसा की ५७६ ईसवी में अपना सिद्धान्त बनाया है । उक्त सिद्धान्त में 'कुसुमपुरेऽभ्यर्च्य तज्ज्ञानम्' लिखकर वर्तमान 'पटना' मण्डल में रहते हुए बनाना प्रकट किया है कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलिपुत्र नाम पटना के हैं । प्राचीन काल में भारत की राजधानी थी और वहाँ उज्जयिनी, धारा के समान विद्वानों का जमघट रहता था ।

आर्यभटीय के प्राचीन टीकाकार परमेश्वर और सूर्यदेव यज्वा हैं । दोनों के क्रम से नाम भट-दीपिका और भट-प्रकाशिका है । परमेश्वर ने अपनी टीका में सूर्यदेव का प्रसंग किया है इससे सूर्यदेव प्राचीन और परमेश्वर उनसे अर्वाचीन हैं । और भी 'भट-प्रकाशिका' के आधार पर भास्कराचार्य ने आर्यभट की कुछ त्रुटियाँ भी दिखलाई

---

* दीक्षितजी लिखते हैं—'तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य' में वर्णों से संख्या का निर्देश पाया जाता है ।

और परमेश्वर ने भास्कराचार्य के वाक्य अपनी टीका में लिखे हैं। अतः सिद्ध है, भास्कर के पूर्व सूर्यदेव और उनके बाद में परमेश्वर का समय है। उक्त भट-दीपिका के साथ आर्यभटीय को डाक्टर कर्न ने सबसे प्रथम प्रकाशित किया था * डाक्टर साहब ने अपनी बृहत्संहिता की भूमिका में आर्यभट के विषय में बहुत बातें लिखी हैं (See his Preface to Brihat Sambita P. 55-61).

आर्यभट ने भू-भ्रमण को लिखा है, यह बात प्रसिद्ध है। परन्तु उनके टीकाकार और लल्ल श्रीपति, ब्रह्मगुप्त आदि ने खण्डन करने में ही अपना पाण्डित्य दिखलाया है। यूरोप में शक की पंद्रहवीं सदी में कोपर्निकस (Copernicus) ने इस विषय का निश्चय किया। आज दिन वह अनेक प्रमाण और युक्तियों से दृढ़ होगया है और भू-भ्रमण की सत्यता स्कूलों के बालक तक जान गए हैं, यह विज्ञान की अचिंतित महिमा का विकाश है †

वराहमिहिर ने पञ्चसिद्धान्तिका में लिखा है—

'लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः ।
भूयः स एव चार्कोदयात्प्रवृत्त्याह लङ्कायाम् ॥'

अर्थात् आर्यभट ने लङ्का (भू-मध्यरेखा) में अर्धरात्रि से दिन का आरम्भ माना है और पुनः सूर्योदय से भी माना है। दोनों बातें कही हैं। कर्न-प्रकाशित आर्यभटीय में अर्धरात्रि से नहीं सूर्योदय से ही वार-प्रवृत्ति का विधान है। इस कारण लोगों का अनुमान है कि प्राचीन आर्यभटीय में भी कुछ गड़बड़ हो गया है।

द्वितीय आर्यभट—प्रथम आर्यभट और उनका सिद्धान्त वृद्ध आर्यभट

---

* Aryabhatiya. A manual of astronomy, edited by Dr. H. Kern, Leyden 1874.

† ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के टीकाकार पृथूदकस्वामी ने अपने वाक्यों में लिखा है—'भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ उदयास्तमयौ संपादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ।' यह आर्यभट का ही मत है।

और लघु आर्यभटीय के नाम से पीछे से प्रसिद्ध हुआ। कारण कि आर्यभटीय का दूसरा संस्करण किसी अज्ञात विद्वान् का किया भी है उसका नाम महाआर्यसिद्धान्त—आर्यभट-महासिद्धान्त और महासिद्धान्त नाम से भिन्न भिन्न लिखित प्रतियों में प्राप्त हुआ है। इसमें १८ अध्याय एवं ६२५ आर्या-उपगीति है—पाटीगणित, क्षेत्रव्यवहार और बीजगणित भी सम्मिलित है। लेखक ने अक्षरों से संख्या प्रकाश किया है, पर दक्षिण-गति से लिखा है, मैंने वृद्धार्यभट का अनुसरण करके उसमें संस्कार किया है। पराशर-सिद्धान्त से ग्रहभगण आदि लिए हैं, कलि में पराशर-मत ही प्रशस्त है। इत्यादि।

ब्रह्मगुप्त ने प्रथम आर्यभट को जो दोष दिखलाए हैं उनके मार्जन की चेष्टा इसमें है और आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल किसीने अयन-गति नहीं लिखी, परन्तु इस सिद्धान्त में है, इससे ब्रह्मगुप्त के वाद इसके कर्ता ठहरते हैं। भास्कराचार्य ने शिरोमणि के स्पष्टाधिकार में द्रेष्काणोदय आर्यभटीय का दिया है, वह इसको छोड़ किसीने नहीं कहा इसलिए भास्कर से प्राचीन हैं। भट्टोत्पल ने अनेक ग्रंथों के प्रमाण अपनी टीका में दिए हैं, पर इस महासिद्धान्त का कहीं नाम नहीं है और भी इस देश में अयन-गति का पूर्ण ज्ञान शक की आठवीं सदी में हो चुका था। इन कारणों से महासिद्धान्त की रचना शक की नवीं सदी में हुई है-ऐसा निश्चय किया गया है। इसको श्रीसुधाकरद्विवेदीजी ने अपनी टीका सहित 'बनारस-संस्कृत-सिरीज़' में प्रकाशित किया है। आर्यपक्षीय गणित का प्रचार इस समय दक्षिण के मालावार, तामील देशों में अधिक है। इधर वैष्णव संप्रदायियों में भी बहुत दिनों से, व्रत-उपवास आदि में आर्यपक्षीय गणित का ही प्राधान्य चला आता है। धर्म-व्यवस्थापकों ने अपनी राय देदी है—

‘विष्णोश्च जन्मदिवसानि हरेर्दिनं च
कार्याणि चार्यभटशास्त्रत एव सर्वैः।’ इत्यादि।

आर्यभट पटनानिवासी माने जाते हैं, परन्तु दूर देशों में उनके गणित का प्रचार तो है, पर विहार, बंगाल में प्रचलित नहीं है। इस कारण दीक्षितजी कहते हैं—आर्यभट का कुसुमपुर पटना नहीं है। ※

लल्ल।—आर्यभटीय, के आधार पर लल्लाचार्य ने ‘शिष्यधीवृद्धिद’ नामक सिद्धान्त वनाया है जैसा कि आदि में लिखते हैं——

‘आचार्यार्यभटोदितं सुविषमं व्योमौकसां कर्मय-
च्छिष्याणामभिधीयते तदधुना लल्लेन धीवृद्धिदम्।’

आगे चलकर पुनः कहते हैं—

‘विज्ञाय शास्त्रामलमार्यभटप्रणीतं
तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीय शिष्यैः।
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तैः
कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्ष्मम्॥’

आर्यभटीय को मूल मानकर उनके शिष्यों ने कई तंत्र लिखे परंतु गणना क्रम का निर्देश नहीं किया इसलिए मैं क्रम से सम्पूर्ण गणित का निरूपण करता हूं। किसी शिष्य का नाम नहीं लिया। किसी किसी का अनुमान है प्रद्युम्न, श्रीसेन किंवा लाटदेव आदि में कोई होगा। धीवृद्धिद के अन्त में लल्ल ने अपने कुल का वर्णन किया है,

---

※ आर्यभट के विषय में, मेरा लेख प्रयाग की प्रसिद्ध मासिकपत्रिका ‘सरस्वती’ में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। सन् का स्मरण नहीं। मद्रास के Indian Review मासिक पत्र में, एक दक्षिणी महाशय का लेख भी, उसी समय निकला था। वह अंक इस समय न होने से, दो, चार विशेष न लिख सका।

उसमें अपने को शाम्ब का पौत्र और त्रिविक्रमभट्ट का पुत्र लिखा है। करणाब्द ४२० शक दिया है इसीके आसन्न काल में इनकी स्थिति अनुमित होती है। लल्लाचार्य अपने समय के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और इनके 'धीवृद्धिद' * का पठन-पाठन में प्रचार भी खूब था।

कोई 'रत्नकोष' नामक संहिता ग्रंथ इनका था वह अब नहीं उपलब्ध है। श्रीपति ने अपनी 'रत्नमाला' इसीके आधार पर बनाई थी। रत्नमाला के टीकाकार महादेव ने नक्षत्रों की संख्या में लल्ल का मत लिखा है। भास्कराचार्य ने भूपृष्ठफल के साधन में लल्लका खण्डन किया है इससे इनका 'पाटीगणित' भी था। कुछ लोगों का कहना है कि लल्ल आर्यभट के शिष्य थे। इन्होंने आर्यभट के भूभ्रमण का खंडन भी किया है। उस समय खंडन की हवा बड़ी तेजी से चलती थी। लल्ल आर्यभट के भक्त थे यह उनके लेख से भी विदित है शिष्य होने या, न होने से कोई लाभ नहीं। ये आर्यपक्ष के प्रवर्तक थे इनके करण ग्रंथ को देखकर, १०१४ शक में ब्रह्मदेव ने करण-प्रकाश और १६६९ शक में दामोदर ने भटतुल्य की रचना की है। करणप्रकाश को श्रीसुधाकरजी द्विवेदी ने उपपत्ति के साथ बनारस से प्रसिद्ध किया है।

वराहमिहिर।—त्रिस्कन्ध ज्योतिःशास्त्र के रहस्यवेत्ता, विविध-विद्या-निधान, नैसर्गिक कविता-लता के प्रेमाश्रय, परमाचार्य श्रीवराहमिहिर, प्राचीन काल से आज तक अपनी कीर्त्ति-कौमुदी से संसार को भासित कर रहे हैं। आपने जिस ज्ञान-सम्पत्ति का विकाश किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय और आश्चर्यकारक है। वास्तव में आप महामति और सर्वमान्य हुए। इसीलिए विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से स्तुति की है—

---

* 'शिष्यधीवृद्धिद' का संस्करण श्रीसुधाकर द्विवेदीजी का प्रसिद्ध है।

'मिहिरमिव वराहमिहिरं,
वंदे संदेहभेदिनं जगताम् ।'

इत्यादि । वराहमिहिर ने पञ्चसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, योगयात्रा, बृहज्जातक, लघुजातक, विवाहपटल और समास-संहिता--इतने ग्रंथ निर्माण किए हैं। इनमें विवाहपटल और समास-संहिता इस समय अप्राप्य हैं । शेष में पञ्चसिद्धान्तिका को छोड़कर सब पर भट्टोत्पल की टीका है । योगयात्रा भी उत्तम ग्रंथ है, परन्तु आज तक किसी विद्वान् ने इसको प्रकाशित करने का उद्योग नहीं किया ।

वराहमिहिरने बृहज्जातक के अन्त में--

'आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः ।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यक्
होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥

कापित्थ नगर में सूर्यदेव से वर प्राप्त किया और अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिःशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की अनंतर उज्जयिनी में जाकर रहने लगे । उस समय उज्जयिनी वा, अवन्ती में विद्या का बड़ा आदर था । जनश्रुति है कि अवन्ती के राजा विक्रमादित्य सर्वदा पंडितमण्डलीद्वारा परिवेष्टित रहते थे, उनकी नवरत्न-सभा के एक रत्नों में वराहमिहिर भी थे * आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका में करणाब्द

---

* शक को द्वादश-शताब्दी में किसी कालिदास ज्योतिषी ने ज्योतिर्विदाभरण नामक मुहूर्त ग्रन्थ बनाया है । उसके २२ वें अध्याय में लिखा है — 'मालवेन्द्र श्रीविक्रमार्क के समय में कालिदास ने यह ग्रन्थ लिखा' यही नहीं, विक्रम की कीर्त्ति, नवरत्नसभा, शककाल-प्रवर्तन आदि अनेक कथाओं का चर्चा निःशंक होकर की है । वररुचि, शंकु, अमर, जिष्णु, बादरायण, त्रिलोचन, हरी आदि कई विद्वानों को सभासद बनाया है, और स्वयं रघुवंश आदि तीनों काव्यों के भी प्रणेता बनकर, वराहमिहिर को साथ लिए नवरत्न-सभा में विरा-

४२७ शक लिखा है, इससे शक की पांचवीं सदी में उनका अस्तित्व निर्विवाद है। डाक्टर भाऊदाजी ने लिखा है कि ब्रह्मगुप्तकृत 'खण्ड-खाद्य' नामक करण ग्रंथ के टीकाकार आमराज दैवज्ञ ने प्रकट किया है कि-'नवाधिकपञ्चशतसंख्यशके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।' ५०९ शक में आचार्य की मृत्यु हुई। अलबेरुनी आदि का यही मत है कि ४२७ शक पञ्चसिद्धान्तिका का करणाब्द है, आचार्य के जन्मकालिक वर्ष का मान नहीं है। १८ वर्ष से ऊपर २५ तक की अवस्था में आचार्य ने अपने करणग्रंथ का संकलन अवश्य किया है। उनके बनाये बड़े बड़े ग्रंथ हैं-इनके बनाने में, अधिक समय लगना असम्भव नहीं है, आचार्य की दीर्घायु होना सिद्ध होता है। प्रमाणाभाव से आमराज लिखित मृत्युशक अप्रामाणिक माना गया है।

आचार्य वराहमिहिर का बृहज्जातक और लघुजातक सर्वत्र पठन-पाठन में प्रचलित और फलित विषय का सर्वमान्य, गंभीर और मत-

---

जमान हुए हैं। ग्रन्थ-रचना का समय-'वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै ३०६८ र्याते कलेः संमिते', अर्थात् शक के १११ वर्ष पूर्व विक्रम की सभा में ज्योतिर्विदा-भरण आदि की रचना हुई है। ज्ञात होता है किसी ने इस अध्याय को पीछे से जोड़ दिया है अन्यथा, कालिदास की ही वंचना जाननी चाहिए इससे आत्म-श्लाघा के सिवा क्या है? स्वप्नसृष्टि है। शकारम्भ के १११ वर्ष पूर्व स्वयं थे ही तो भी उक्त ग्रन्थ के पहले अध्याय में शकाब्द से प्रभवादि वर्षों की गणना की है-अयनांश साधन का सूत्र देकर शक वर्ष में ४४५ घटाया है अर्थात् अब शक की पांचवीं सदी में भी आप वर्तमान थे। जिस अयनांश का निर्णय ब्रह्मगुप्त (शक की छठी सदी) ने न कर पाया। उसको आप शकारम्भ के पूर्व ही निश्चित कर चुके थे। इन्हीं सब पर-स्पर विरुद्ध बातों से ज्योतिर्विदाभरण और उसके कर्ता का कभी आदर नहीं हुआ। अस्तु! विक्रमादित्य कई हुए हैं सम्भव है हर्षविक्रम के समय में वराहमिहिर रहे हों। कालिदास कई हुए हैं-परन्तु इनके समान आदि कालि-दास कोई नहीं बना।

मतान्तरों के विचार से पूर्ण है। बृहज्जातक में मेषादि राशियों की यवनसंज्ञा, अनेक पारिभाषिक शब्द, एवं यवनाचार्य का भी उल्लेख है। मय, शक्ति, जीवशर्मा, मणित्थ, विष्णुगुप्त (चाणक्य) देवस्वामी, सिद्धसेन, सत्याचार्य और भगदत्त प्रभृति के नाम हैं। भट्टोत्पल की टीका में भी अनेक ज्योतिषियों का मत संकलित है। इससे स्पष्ट है प्राचीन समय में फलित ज्योतिष पर यवनों (ग्रीक) का प्रभाव बहुत प्रबल था और इस देश में अनेक-रूप में फलित का प्रचार हुआ क्योंकि प्राचीनों की श्रद्धा इधर बड़ी उत्कट थी। इसी कारण यवनों के संसर्ग से जातकस्कंध खूब पुष्ट हुआ। गर्ग के समय से देशान्तरीय ज्ञान का इस देश में सूत्रपात हुआ और प्रथम होराशास्त्र और अनंतर में अरब के संसर्ग से ताजिक की बड़ी धूम मची। वास्तव में होरा और ताजिक में ही यवनशब्दों की अधिकता है, गणितभाग में नहीं।

बृहज्जातक * पर महीधरकृत एक विवरण है। एक दाक्षिणी की दशाध्यायी टीका भी है। परंतु भट्टोत्पल की टीका बहुत उत्तम है। उत्पलजी काश्मीरनिवासी और चतुरस्र विद्वान् थे। वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशाकृत ' षट्पञ्चाशिका ' प्रश्नग्रन्थ और ब्रह्मगुप्त के ' खण्डखाद्य ' पर भी उत्पल की टीका है। सच तो यह है कि कालिदास के लिये मल्लिनाथ जैसे सिद्धहस्त टीकाकार उत्पन्न होगए थे वैसेही वराहमिहिर के लिये भट्टोत्पल—एक अद्वितीय प्रतिभाशाली टीकाकार होगए हैं। प्राचीन समय से आजतक ज्योतिष ग्रथों का मार्मिक टीकाकार—दूसरा नहीं हुआ। इनपर सबकी अटल श्रद्धा बनी हुई है †

* एक प्राचीन ' सारावली ' नामक बड़ा जातक ग्रंथ कल्याणवर्माकृत है। इसका निर्माण प्रायः शक ९०० में हुआ है। यवनों के होराशास्त्र का सार संकलन करने ही से ' सारावली ' नाम हुआ है। भट्टोत्पल ने इस ग्रंथ से अनेक वचन निज टीका में लिखे हैं। सांप्रत में बंबई के निर्णयसागर प्रेस से यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है।

† डाक्टरकर्न ने बृहत्संहिता की भूमिका में बड़ी प्रशंसा करते हुए लिखा है:—

ब्रह्मगुप्त।–इनका नाम सुप्रसिद्ध है। अपने समय में बड़ेही वेध-विद्या-निपुण, प्रतिष्ठित और असाधारण विद्वान् हुए। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त इनका प्रधान ग्रंथ है। पृथूदक स्वामी चतुर्वेदाचार्य की प्राचीन टीका के आधार पर श्रीसुधाकर द्विवेदीजी ने अपने नूतन-तिलक के साथ सांप्रत में इसको प्रकाशित किया है। उसमें लिखा है—

'श्रीचापवंशतिलके
श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपालात्।
पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः॥
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः—
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुत-ब्रह्मगुप्तेन।'

अर्थात् श्रीव्याघ्रमुखराजा के राज्यकाल शक ५५० में, तीस वर्ष की अवस्था में, ब्रह्मगुप्तने यह सिद्धान्त बनाया। और वृद्धावस्था में अर्थात् शक ५८७ में आर्यसिद्धान्तानुसार 'खण्डखाद्य' करण की रचना की है इसपर शक ९६२ में काश्मीरक वरुण ने टीका लिखी है। उसमें ब्रह्मगुप्त को 'भिल्लमालकाचार्य' लिखा है। दीक्षितजी ने अपने भारतीय ज्योतिःशास्त्र में लिखा है भिनमाल, भीलमाल और श्रीमाल एकही ग्राम के नाम हैं। जब हुएनसाँग चीनपर्यटक (६५० ईसवी) इस देश में थे, तब भिलमाल उत्तर गुर्जर-देश की राजधानी थी। माघ कवि भी वहीं रहते थे। गुजरात की उत्तर सीमापर–दक्षिण मारवाड़ के अन्तर्गत यह स्थान है। आलबेरुनी ने मुलतान के पास उक्त स्थान को माना है। गणकतरङ्गिणी में द्विवेदीजी रीवाँनरेश श्रीव्याघ्रमुख के आश्रित ब्रह्मगुप्त को लिखते हैं। परंतु दीक्षितजी का विचार ठीक जँचता है।

' We owe the knowledge of nearly all the particulars about the predecessors of Varāh-Mihir to Bhatta Utpala. This astronomer who as we have had occasion to notice, flourished in the middle of 10th century of our eras '..............P. 61.

ब्रह्मगुप्त ही ब्रह्मपक्ष के मूल हैं। इन्हीं के संस्कृत-ब्राह्मस्फुट के आधार पर, भास्कराचार्य से भी पहले ९६४ शक में भोजराज ने 'राजमृगाङ्क' करण बनाया था। गुणभद्र नामक जैनी ने 'उत्तरपुराण' नामक पुराण में ब्रह्मगुप्त के अनुसार ग्रह-स्थिति लिखी है जो ८२० शक में बना है। ९८० शक में वल्लभ-वंशज दशबल नामक राजा ने 'करण-कमल-मार्तण्ड' फिर भास्कर का करण कुतूहल, महादेवी सारणी और १५०० शक में खेट सिद्धि, चन्द्रार्की आदि करण सब ब्रह्मपक्ष के अनुसारी हैं। ब्रह्मगुप्त के पूर्व बीजगणित अवश्य था, परंतु इसके प्रधान प्रवर्तक इन्हीं को कह सकते हैं। यूरोप के बीजगणित का मूल अरब है और अरबवालों के हमारे ब्रह्मगुप्तजी हैं। अरबवालों ने ब्रह्मसिद्धान्त के अनुवाद का नाम 'सिंद हिंद' और खण्डखाद्य का 'अलकंद' रक्खा था। टालमी के ग्रंथों का प्रचार होने के पूर्व इसी देश के सिद्धान्त का प्रचार भिन्न भिन्न देशों में था।

आर्यभट और ब्रह्मगुप्त ने अयनगति के विषय में कुछ नहीं लिखा। उस समय वेध से उपलब्धि ठीक न हुई होगी और गति का ज्ञान न भया होगा। ५०। ६० वर्ष में जिसकी एक अंश गति होती है—ऐसे सूक्ष्म विषय का ज्ञान प्राचीन-काल के स्थूल यन्त्रों से, सहज में कैसे हो? कुछ भी हो, आचार्य ब्रह्मगुप्त सर्वथा अलौकिक प्रतिभावान् व्यक्ति और विज्ञान की दृष्टि से सत्समालोचकों के आदर्शभूत थे।

श्रीपति।—श्रीपति की जातकपद्धति और ज्योतिषरत्नमाला दोनों ज्योतिषियों के लिए कल्पवृक्ष हैं। रत्नमाला के एक टीकाकार महादेव ने लिखा है—श्रीपति काश्यपवंशीय केशव के पौत्र और नागदेव के पुत्र थे। द्विवेदीजी को श्रीपतिकृत-धीकोटि नामक चन्द्र-सूर्य साधन विषयक करण मिला था, उसमें ९६१ शक लिखा था। संभवतः इस शक के आसन्न काल में श्रीपति का जन्म हुआ होगा। अपने समय में

त्रिस्कन्ध–ज्योतिःशास्त्र के अपूर्व विद्वान् और संमानास्पद थे इसमें कोई संशय नहीं। आपकी कविता भी सरल, मधुर और उच्च कोटिकी होती थी। आपका बनाया 'सिद्धान्त-शेखर' नामक एक सिद्धान्त था, परंतु अब उसका कहीं पता नहीं–' कालो जगद्भक्षकः।'

भास्कराचार्य।–आपका नाम इस समय संसार में भलीभांति प्रसिद्ध है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त के बाद आप के समान प्रतिभाशाली-सर्वगुण समन्वित दूसरा ज्योतिर्विद् नहीं हुआ। आपने बड़े प्रारब्धी और विद्या-विनय-संपन्न ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। निम्नलिखित ग्रंथ आपके सर्वत्र प्रचलित हैं और बड़े आदर से पढ़े पढ़ाए जाते हैं– लीलावती, बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल और सर्वतोभद्र। सब ग्रंथों पर, कई प्राचीन, नवीन टीका-टिप्पणी यथासमय, विद्वानों ने लिखी हैं और सब सिद्धान्त-प्रेमियों को परिज्ञात हैं।

शिरोमणि के अन्त में अपना कुल वर्णन, देश, ग्राम आदिका निर्देश स्वयं कर दिया है। शक १०३६ में जन्म लेकर ३६ वर्ष की अवस्था में शिरोमणि को बनाया। इसका उत्तम संस्करण श्रीबापूदेव शास्त्रीजी का प्रसिद्ध है। शास्त्रीजी ने अपनी टिप्पणी भी श्लोकबद्ध लिखी हैं। परंतु उसकी उपपत्ति विना विशेष-विवरण के किसी के समझ में नहीं आसकती, प्रायः बहुत कम विद्वान् या, विद्यार्थी उससे लाभ उठा सकते हैं। शास्त्रीजी के जीवितकाल में, उनके प्रधान छात्रों में जिन्हों ने समझ-बूझ लिया होगा, वे तो जानते ही होंगे और अनंतर उन लोगोंने जिसको बतलाया होगा, वे उसकी कुंजी से अवश्य परिचित होंगे।

ब्रह्मगुप्त का ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त और पृथूदकस्वामी (चतुर्वेदाचार्य) का भाष्य मूल मानकर, भास्कराचार्य ने अपना शिरोमणि बनाया है और आर्यभट, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतों का स्थल-विशेष में आलो-

चन भी किया है। सबकी भूलें बड़े हर्ष से दिखलाई हैं। इसके सिवा कई विशेष बातें स्वतः उद्भावित करके लिखी हैं। स्वयं 'वासना-भाष्य' नामक टीका भी बनाई है। आपका गद्य और पद्य दोनों बहुत सरल और सरस होता था। अपने को कवि भी लिखा है और ग्रंथ भर में किसी न किसी बहाने से कविता का परिचय दिया है। लीलावती और बीजगणित में भी यही बात पाई जाती है। प्रायः आचार्य वराहमिहिर की कविता-शैली का अनुकरण किया है और वह आपको अच्छी भी लगती थी। इसी लिए शिरोमणि के आदि में—'जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः, बराहमिहिरादयः—' लिखा है। शिरोमणि में 'सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः' इत्यादि अनेक वाक्य हैं। गर्वोक्ति की भी कमी नहीं है। कविता का इनको बड़ा चसका था, ऋतुवर्णन भी इसका प्रमाण है। यमक, श्लेष सबकी बहार देखने को मिलती है। अस्तु।

भास्कराचार्य का पाटीगणित और बीजगणित दोनों अपूर्व हैं। इसमें कई एक गणित और प्रश्नोत्तर का विधान, दो-तीन सौ वर्ष पूर्व युरोप में अज्ञात था, आज भी धुरंधर गणितज्ञों को विस्मयकारक हो रहा है। भास्कराचार्य ने बीजगणित में लिखा है—

> 'ब्रह्माह्वय-श्रीधर-पद्मनाभ—
> बीजानि यस्मादतिविस्तृतानि।' इत्यादि।

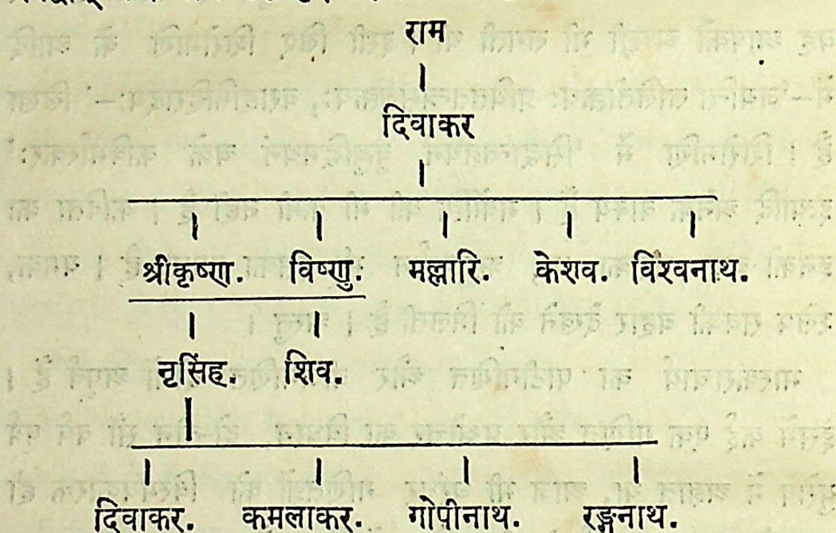
ब्रह्मगुप्त-श्रीधर-पद्मनाभ आदि के ग्रंथों को देखकर सारभूत अपना बीज बनाया है। श्रीधर की 'त्रिशतिका' प्रकाशित होचुकी है। पद्म-नाभ का बीज अप्राप्य है। इस प्रकार भास्कराचार्य ने अपने पूर्वज प्रा-माणिक ग्रंथकर्ताओं का आश्रय लेकर* अनेक नवीन विशेषों से परिष्कृत

---

* शिरोमणि में अयनांश ११ लिखा है। ब्रह्मगुप्त के मौनसाधन पर भास्कराचार्य ने तर्क भी किया है। अन्त में मुंजाल आचार्य के मत से अयन

करके, सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण किया है ।

कमलाकर भट्ट—दक्षिण देश में गोदावरी नदी के उत्तर-तट पर, गोलग्राम (निज़ाम राज्यका-गोलगाँव) में दिवाकर नामक भारद्वाज गोत्रीय महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे । इनके वंशज तीन-चार पीढ़ियों तक, उस समय प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए—और दिवाकर-वंश का नाम प्रचलित होगया । दिवाकर ग्रहलाघवकर्त्ता गणेशदैवज्ञ के शिष्य और नामाङ्कित विद्वान् थे । नीचे वंश-वृक्ष दिया जाता है:—



दिवाकर के पौत्र और श्रीकृष्ण के पुत्र नृसिंह का जन्म १५०८ शक में हुआ । इन्होंने सूर्यसिद्धान्त पर 'सौरभाष्य' और सिद्धान्त-शिरोमणि पर 'वासनावार्तिक' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी । इन्हीं नृसिंह के दूसरे पुत्र कमलाकर हैं । प्रचलित सूर्यसिद्धान्त के मतानुसार 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' नामक सिद्धान्त ग्रंथ १५८० शक में, काशी में इन्होंने बनाया । ग्रंथान्त में अपने कुल और निवास-स्थान का वर्णन भी किया है ।

गति का निरूपण किया है । गणकतरङ्गिणी में द्विवेदीजी ने मुंजाल का समय ८५४ शक लिखा है । उस समय के कोई मान्य गणितज्ञ होंगे ।

इस समय, इनका सिद्धान्त आचार्यश्रेणि के छात्र पढ़ते हैं । सौरपक्ष की श्रेष्ठता, परंपरागत मानकर, अन्य ब्रह्मपक्ष आदि को इन्हों ने नहीं माना—इसी कारण भास्कराचार्य के विरुद्ध होकर उनके ग्रंथ भर में, यावच्छक्य दोष-प्रदर्शन की चेष्टा की है। जिसके लिए भास्कराचार्य के भक्त इनको आज तक बदनाम करते आते हैं । सिद्धान्ततत्त्वविवेक में लिखा है:—

'प्रत्यक्षागमयुक्तिशालि तदिदं शास्त्रं विहायान्यथा ।
यत्कुर्वन्ति नराधमास्तु तदसत् वेदोक्तिशून्या भृशम् ॥'

अपनी अपनी रुचि और विचार का वैचित्र्य है । कमलाकर बड़े बुद्धिमान् थे और उन्होंने शिरोमणि के विरुद्ध जो बातें लिखी हैं, सभी व्यर्थ-प्रलाप और निर्मूल कहने योग्य नहीं हैं । इसके सिवा कमलाकर का गोल-पाण्डित्य, कई अंश में प्रशंसनीय है । भास्कराचार्य ने क्या लल्ल आदि की आलोचना छोड़ दी है ? फिर इनकी क्यों न की जाय ! ज्योतिषशास्त्र विज्ञान-मूलक है, आज जो बातें कई प्रमाणों से पुष्ट मानी जाती हैं, संभव है, कालान्तर में उनमें भी अशुद्धि, प्रमाद पाया जाय । इस दशा में कमलाकर से भी कई त्रुटि होगई हैं—उनको आजकल के गणितज्ञों ने समझ-बूझ ली हैं ।

'किं नस्तया चिन्तया ।'

नीलाम्बर झा—शक १७४५ में, प्रतिष्ठित और विद्वान् मैथिल-ब्राह्मण के कुल में आपका जन्म हुआ था । पटना के निवासी और अलवर राज्य के राजा श्रीशिवदाससिंह के आश्रित थे । टाड हंटर साहब की क्षेत्रमिति और त्रिकोणमिति—सरल और गोलीय—का हिंदी अनुवाद एवं दूसरे अंग्रेजी गणित ग्रंथों की टिप्पणियाँ इनको प्राप्त होगई थीं—उसीके आधार पर 'गोलप्रकाश' नामक ग्रंथ बनाया, जिसको श्रीबापूदेव शास्त्री ने शुद्ध करके काशी से शक १७९२ में

प्रकाशित कराया है। इस ग्रंथ में प्राचीन सिद्धान्तों के अनेक प्रकार, उपपत्ति और बहुत से प्रश्नों के उत्तर बड़ी उत्तमता और नवीन रीति से दिखलाया है। वास्तव में 'गोलप्रकाश' उत्तम निबन्ध है और नीलाम्बर झा का गोल-पाण्डित्य प्रकट करता है। इनका ग्रंथ, इस समय, संस्कृत विद्यालयों में पाठ्य पुस्तक निर्धारित है। मैथिली-ब्राह्मण ज्योतिषी आपको गुरुदृष्टि से देखते हैं।

सामंत चन्द्रशेखरसिंह—उड़ीसा प्रदेश में कटक से ३० कोस पश्चिम, एक 'खंडपाड़ा' नामक छोटा राज्य है। उसी राजवंश में १८६५ ईसवी में आपका जन्म हुआ था। संस्कृतभाषा और उड़िया अक्षरों के सिवा और कुछ नहीं जानते थे। १६।१७ वर्ष की अवस्था में ज्योतिष की ओर इनका अनुराग बढ़ा और निरंतर परिश्रम करके, प्राचीन सिद्धान्तों की गणना को दृक्‌सिद्ध करने के लिए वेध आदि से संस्कारों को निश्चित किया। अनंतर अपना 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रंथ बनाया। इसमें सिद्धान्त का सब विषय बड़ी उत्तम कविता में आपने बद्ध किया है। 'सिद्धान्तदर्पण' का उत्तम संस्करण श्रीयुत बाबू योगेशचन्द्रराय एम्. ए. प्रोफेसर-सायंस, कटक कालेज का किया हुआ प्रसिद्ध है। प्रोफेसर रायजी ने अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में, अनेक ज्ञातव्य-विषयों का समावेश किया है—उसको देखकर आपके ज्योतिषज्ञान और मार्मिक पाण्डित्य की, जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

उड़ीसा में जगदीश का पञ्चाङ्ग जो आजकल प्रचलित है उसको चन्द्रशेखर महोदय ने अपने दृक्‌सिद्ध-गणित के अनुसार चलाया है। आप बड़े संशोधक थे। सिद्धान्तदर्पण, विहार-प्रांत में पढ़ा-पढ़ाया भी जाता है।

श्रीबापूदेव शास्त्री—इस समय शास्त्रीजी का नाम देश, विदेश

सर्वत्र पठित समाज में विदित है। १८२१ ईसवी में आपका जन्म हुआ था। महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। भारतीय ज्योतिष और युरोपियन गणित दोनों में आपका अद्वितीय पाण्डित्य था। बड़े धार्मिक, साधु-वृत्त पुरुष थे। आजकल इस देश में जो नवीन गणित की जागृति फैली है—इसके मूल प्रवर्तक शास्त्रीजी हैं। आपकी त्रिकोणमिति आदि संस्कृत ग्रंथ और हिंदी में बीजगणित, व्यक्तगणित आदि सुप्रसिद्ध हैं। आपने काशी गवर्नमेंट कालेज में चिरकालतक अध्यापन कराया और सैकड़ों देश-देशान्तर के शिष्यों को विद्यादान देकर अपनी कीर्ति अजरामर कर गए। राजा और प्रजा दोनों के संमान-भाजन थे। आपको 'महामहोपाध्याय' और सी. आई. ई. की पदवी प्राप्त थी। कई सोसायटियों के आनरेरी मेंबर भी थे। १८९० ईसवी में आपका स्वर्गवास हुआ था।

सिद्धान्तशिरोमणि के संशोधन के बाद शास्त्रीजी का नाम 'संशोधक' प्रसिद्ध होगया था। वास्तव में आप थे भी सच्चे संशोधक। गणित विषय युरोप के उच्च सिद्धान्तों का आपने भारतीय सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य बहुत कुछ किया था। आपका पञ्चाङ्ग अब तक प्रकाशित होता है। यह अंग्रेजी पंचाग ' नाटिकल आलमनाक ' के आधार पर बनाया जाता है और सायन मत का पोषक होकर भी, धार्मिक बंधन के विचार से, निरयण-गणना के अनुसार है॥ कुछ भी हो, जिस पञ्चाङ्ग के भरोसे सारे धर्म-कर्म श्रौत-स्मार्त चल रहे हैं, उसकी दुर्दशा का कोई ठिकाना नहीं ' नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्।' सर्वांश में सत्य सिद्ध होरहा है *

---

* प्राचीन गणित-शोधक आचार्यों की, बातें जाने दीजिए, इधर धर्मरक्षा का भार भी दोनों दलों को दबा रहा है। जिस देश में प्रत्येक विषयों में विसंवाद चला आरहा है, वहां पञ्चाङ्ग की बारी आना क्या आश्चर्य है, जब पुराने स-

श्रीसुधाकर द्विवेदी-आपका जन्म १८६० ईसवी में, काशी में हुआ था। वहीं के खजुरी गाँव में आपका विशाल निवास-भवन शोभित होरहा है। आप सरयूपारी ब्राह्मण थे। ज्योतिःशास्त्र के सिवा दूसरे विषयों में भी आपकी गति थी। फ्रेंच, अंग्रेज़ी, मराठी भाषा के ज्ञाता और हिंदी के प्रेमी थे। संस्कृत और भाषा दोनों में कविता गद्य-पद्य सब कुछ लिखने की, आप में अलौकिक शक्ति और अपूर्व प्रतिभा विद्यमान थी। ज्योतिःशास्त्र के तो आप उद्धारक ही थे। इस समय प्राचीन-जटिल सिद्धान्त, गणित ग्रन्थों के भाष्य-उपपत्ति

मय से आर्य-ब्रह्म-और सौरपक्ष के करण ग्रंथों का झमेला है, वहां नाटिकल पक्ष भी सही। यह बड़ा असाध्य रोग फैला हुआ है। शास्त्रीजी के समय से पञ्चाङ्ग का नया विसंवाद उठा और आज तक सारे भारतवर्षमें बड़े बड़े गणितज्ञोंने उस का आंदोलन किया। दक्षिण में केरो लक्ष्मण छत्रे (शक १७४६—१८०६) ने अंग्रेज़ी से मराठी में 'ग्रहसारणी' लिखी और 'पटवर्धनी-पञ्चाङ्ग' निकाला। नासिक के रघुनाथ लेले (शक १७४१-१८१३) ने नाटिकल से सायन पञ्चाङ्ग चलाया। मद्रास वेधशाला के अधिकारी श्रीचिंतामणि रघुनाथ आचार्य (शक १७९०-१८०१) ने 'दृग्गणित-पञ्चाङ्ग' तैलंग-भाषा में प्रसिद्ध किया। इन संशोधकों का वृत्तांत 'भारतीय-ज्योतिःशास्त्र' में श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षितजी (शक १७७९) ने लिखा है। इस समय श्रीवेंकटेश बापूजी केतकर ने 'केतकी' और ज्योतिर्गणित, नामक दो उत्तम करण ग्रंथ भी बनाये हैं। उधर बंगदेश में सुप्रसिद्ध श्रीमहेशचन्द्र न्यायरत्नजीने पञ्चाङ्ग विषयक रिपोर्ट निकाल कर प्राचीन-नवीन रीति की बलाबल परीक्षा चलाई। श्रीसातकौड़ी सिद्धान्तभूषण ने 'वङ्ग पञ्जिका संस्कार' लिखा और भी कई पुस्तिकाएँ प्रसिद्ध कीं। माधवचन्द्रचट्टोपाध्याय ने नाटिकल के अनुसार 'विशुद्धसिद्धान्त-पञ्जिका' का प्रचार किया। परंतु कोई सर्वमान्य मत न निश्चित हुआ। बंबई में १९०४ ई० में समग्र भारतीय ज्योतिषियों की 'पञ्चाङ्गसभा' हुई, प्रश्न छपे, करण ग्रंथ बनाने का प्रस्ताव और उसके बनानेवाले महानुभाव को पुरस्कार की घोषणा की गई-अंत में फल कुछ न सिद्ध हुआ। इस समय, प्रथम दृष्टादृष्ट और दूसरा केवल दृष्ट-ये दो पक्ष आपस में वर्षों से टकरा रहे हैं।

आदि से परिष्कृत संस्करण आपही के किए दृष्टिगोचर होते हैं। आप काशी गवर्नमेंट कालेज में ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापक और 'महा-महोपाध्याय' पदवी से भूषित, देश-देशान्तर की पंडितमंडली से संमानित और आदरणीय माने जाते थे। इस समय द्विवेदीजी के शिष्य युक्त प्रदेश, विहार, वङ्ग सर्वत्र 'आचार्य-पदवी' धारण किए व्याप्त हैं। आपने अंग्रेजी गणित ग्रंथों से संस्कृत में कई छोटे, मोटे निबन्ध लिखे हैं। 'चलनकलन' दो भागों में हिंदी में लिखा। बृहत्संहिता का सटीक शोधन, पञ्चसिद्धान्तिका की टीका, सूर्यसिद्धान्त और ग्रहलाघव की उपपत्ति, ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का तिलक और गणकतरंगिणी ये ग्रंथ आपकी रचना भर में, अमूल्य वस्तु हैं। आप महामनस्वी, प्रभावशाली और संस्कारी पुरुष थे। प्रायः अनेक श्रेणी के मनुष्य आपसे मिलते-जुलते और अनेक कार्यों में संमति लिया करते थे। आपसे मिलकर अपार आनंद के साथ अनेक शिक्षा मिलती थी। काशी के भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के आप मित्रों में थे। प्रायः दस वर्ष हुए द्विवेदीजी का स्वर्गवास होगया। अस्तु, 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

श्री ६ दुर्गाप्रसाद द्विवेदी—आपका जन्म संवत् १९२० में हुआ है। आप सरयूपारी-ब्राह्मण हैं। अयोध्या के पश्चिम आठ कोस की दूरी पर 'पंडितपुरी' नामक गाँव निवास-भूमि है। काशी में आपने ज्योतिष, दर्शन, साहित्य आदिकी शिक्षा प्राप्त की है। पिता, पितामह के पूर्व से ही आपका कुल विद्या, विनय और सदाचार के लिये प्रसिद्ध होता आया है। इस समय आप जयपुर महाराज के आश्रित और वहाँ की 'संस्कृतपाठशाला' के अध्यक्ष हैं। अनेक विद्वत्समाज से संमानित एवं 'महामहोपाध्याय' पद को अपनी अगाध-पाण्डित्य से अलंकृत कर रहे हैं। आपके ग्रंथों में—

भास्कराचार्य की लीलावती और बीजगणित पर संस्कृत और भाषा-

टीका, सोपपत्तिक गणित आदि से परिष्कृत–प्रसिद्ध है । 'क्षेत्रमिति' भारतवर्ष के प्रधान विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक है । शिरोमणि का प्राचीन एवं नवीन विचारों से पूर्ण 'उपपत्तीन्दुशेखर' भाष्य चापीय त्रिकोणमिति और क्षेत्रमिति, सूर्यसिद्धान्त-समीक्षा, अधिमास–परीक्षा, पञ्चाङ्गतत्त्व आदि कई उपयोगी ग्रंथ आपने बनाए हैं । जैमिनि-पद्यामृत, नामक प्रसिद्ध जैमिनिसूत्र का पद्यानुवाद–अनेक सरस छन्दों में, उदाहरण सहित भी आपने निर्माण किया है । आज तक जैमिनिसूत्रों की बड़ी दुर्दशा थी–अब सब पूर्वापर विषयों का विचार सुव्यवस्थित होगया है ।

द्विवेदीजी का अमूल्य समय, सदा आध्यात्मिक विचार एवं ईश्वर चिंतन में, नियमितरूप से व्यतीत होता है । आपके अनेक शिष्य देशान्तरों में विविध-विद्याओं का प्रचार कर रहे हैं । भारतीय-साहित्यों के * असाधारण ज्ञाता, मार्मिक समालोचक और सुकवियों में आपकी गणना है ।

---

* ज्योतिष के सिवा दार्शनिक और धार्मिक निबंध भी आपके बनाए हैं । प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' का सटिप्पण संस्करण, वास्तव में अद्वितीय है । आप मेरे पूज्यपाद पिता हैं ।

उपसंहार—

यहांतक संक्षेप में ज्योतिःशास्त्र के प्राचीन और नवीन प्रधान विषय और उसके लेखक, संशोधक और संवर्धक महाशयों का परिचय लिख दिया है, जिससे सांप्रतिक ज्योतिष-प्रेमी और छात्रगण आवश्यक बातें जान लें। कोई ज्योतिःशास्त्र का पूरा इतिहास लिखने, मैं, नहीं बैठा हूं।

इस समय सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि और सिद्धान्ततत्त्वविवेक का विद्यालयों में पठन-पाठन का प्रचार है और इनको पढ़कर आचार्य की पदवी मिलती है। सन् १९११ में मेरा 'गोलाध्याय' का सोपपत्तिक अनुवाद, इसी प्रेस से, प्रकाशित होचुका है। उसको विद्वन्मण्डली ने सुदृष्टि से देखकर अपनाया—इसलिए गणिताध्याय का भी उसी रीति-नीति का अवलम्बन करके, यह अनुवाद किया गया है। जहां तक होसका है, मूलग्रन्थ का विषय सरल, सुबोध करने का प्रयत्न किया है। वर्त्तमान युरोपियन सिद्धान्तों का मत और उनकी उपपत्ति छोड़ दी है। कारण, विषय अधिक कठिन होजाता और प्रसङ्ग-वश दस-पांच बातों के लिखने से कोई लाभ भी न होता। क्योंकि भारतीय और पाश्चात्य गणित और ज्योतिष में आकाश-पाताल का अन्तर है। पाश्चात्य सिद्धान्तों का रहस्य विना आदि से उसके उपस्कर-भूत गणित विषयों को जाने कथमपि समझ में नहीं आसकता—यह बात विचारशील स्वयं जानते हैं। प्रायः आजकल के अनुवादक और भाष्यकारों में यह रीति प्रचलित है कि अपनी बहुज्ञता प्रकट होने के लिये इधर-उधर की चासनी चखा देते हैं। पर मेरे विचार से वह असार है। उसके लिये स्वतंत्र और विस्तृत ग्रन्थ की आवश्यकता है। अस्तु;

अंत में, विज्ञ-महानुभावों से सविनय प्रार्थना है कि परमात्मा की असीम करुणा से, अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार, इस गणिताध्याय के अनुवाद को आपलोगों के समक्ष उपस्थित करता हूं। आशा है दोषों के लिये क्षमा करेंगे।

* ॐ तत्सत् *

पंडितपुरी.
अयोध्या-पश्चिम प्रांत.
संवत् १९८२

विनीत—
गिरिजाप्रसाद द्विवेदी.

श्रीः

सिद्धान्तशिरोमणिः ।

(गणिताध्यायः)

प्रकरण-अनुक्रमणिका ।

* * *

॥ श्रीः ॥

अथ

सिद्धान्तशिरोमणिः

वासनाभाष्यसहितः

गणिताध्यायः ।

जयति जगति गूढानन्धकारे पदार्थान्
जनघनघृणयायं व्यञ्जयन्नात्मभाभिः ।
विमलितमनसां सद्वासनाभ्यासयोगै-
रपि च परमतत्त्वं योगिनां भानुरेकः ॥

जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । कः । अयं भानुः सूर्यः । किंविशिष्टः । एकः अद्वितीयः । किं कुर्वन् । व्यञ्जयन् प्रकाशयन् । कान् । पदार्थान् । काभिः आत्मभाभिः स्वदीप्तिभिः । क्व । जगति । किंविशिष्टान् पदार्थान् । गूढान् अदृश्यान् । कस्मिन् सति । अन्धकारे सति । कया हेतुभूतया । जनघनघृणया घना चासौ घृणा च घनघृणा जनानां घनघृणा जनघनघृणा तयेत्यर्थः । न केवलं घटपटादीन् पदार्थान् व्यञ्जयन् । अपि च परमतत्त्वं परं ब्रह्म । केषाम् । योगिनाम् । कथंभूतम् । कलुषितमनोभावादज्ञानरूपेण तमसा अतिगूढम् । किंविशिष्टानां योगिनाम् । विमलितमनसां निर्मलीकृतचेतसाम् । कैः । सद्वासनाभ्यासयोगैः । सतो ब्रह्मणो वासना सद्वासना तस्या अभ्यासयोगास्तैरमलीकृतचेतसां योगिनां परमतत्त्वं व्यञ्जयन्नेको रविरेव राजते ॥

अथ निजकृतशास्त्रे तत्प्रसादात्पदार्थान्
शिशुजनघृणयाहं व्यञ्जयाम्यत्र गूढान् ।
विमलितमनसां सद्वासनाभ्यासयोगै-
र्हृदि भवति यथैषां तत्त्वभूतार्थबोधः ॥
वासनावगतिर्गोलानभिज्ञस्य न जायते ।
व्याख्याताः प्रथमं तेन गोले या विषमोक्तयः ॥

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतां मनोवाक्कायैर्नमस्कृत्य तस्याः सकाशादभीष्टार्थस्याशंसनमाह—

यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनीबन्धौ समभ्युद्गते
ध्वान्तध्वंसविधौ विधौतविनिमग्निःशेषदोषोच्चये ।
वर्तन्ते क्रतवः शतक्रतुमुखा दीव्यन्ति देवा दिवि
द्राङ्नः सूक्तिमुचं व्यनक्तु स गिरं गीर्वाणवन्द्यो रविः॥१॥

व्यनक्तु प्रकाशयतु । कः सः । स कः । रविः । सूर्यः । काम् । गिरं वाचम् । केषाम् । नः अस्माकम् । किंविशिष्टां वाचम् । सूक्तिमुचं सूक्तिं मुञ्चतीति सूक्तिमुक् तां सूक्तिमुचम् । कथम् । द्राक् झटिति । किंविशिष्टो रविः । गीर्वाणवन्द्यः । गीर्वाणा देवास्तैर्वन्द्य इति गीर्वाणवन्द्यः । पुनः किंविशिष्टो रविः । यत्र यस्मिन् रवाविदं जगत् त्रातुं रक्षितुं निशि मृतपातितमिवोत्थापयितुं समभ्युद्गते ऽस्यां पृथिव्यां समभितः समन्तादुद्गते सति वर्तन्ते प्रवर्तन्ते । के क्रतवः । यज्ञाः पञ्चमहायज्ञा दर्शपौर्णमासयागज्योतिष्टोमादयः । यत्र यत्र यदा यदा स भगवानुदेति तत्र तत्र तदा तदा यज्ञाः प्रवर्तन्त इत्यर्थः । समभ्युद्गत इत्येवं वदताचार्येणोदितहोमिनामेव पक्षोऽङ्गीकृत इति नाशङ्कनीयम् । यतोऽनुदितहोमिनामप्युदयात्

प्रागासन्न एव यागकाल इति भावः । न केवलं यज्ञाः प्रवर्तन्ते । अत एव कारणाद्दीव्यन्ति च क्रीडावन्तो द्योतन्ते । क्व । दिवि स्वर्गे । के । देवाः । किंविशिष्टाः । शतक्रतुमुखा इन्द्रादयः । यतस्ते यज्ञांशभुजः । पुनः किंविशिष्टे रवौ । ध्वान्तध्वंसविधौ ध्वान्तमन्धकारस्तस्य ध्वंसं विदधातीति ध्वान्तध्वंसविधिस्तस्मिन् । पुनः किंविशिष्टे । विधौतविनिमन्निःशेषदोषोच्चये, विधौतः प्रक्षालितो विनमतां प्रणतानां निःशेषदोषोच्चयः सकलपापसमूहो येन असौ विधौतविनमन्निःशेषदोषोच्चयस्तस्मिन् । पुनः किंविशिष्टे । जलजिनीबन्धौ । कमलिनीबन्धौ । अत्र जलजिनीशब्देन कुमुदिन्यपि गृह्यते । यतस्तामपि चन्द्रबिम्बसंक्रान्तैः स्वरश्मिभिरेवोल्लासयतीति । एवं जलजस्थलजादीनां त्रैलोक्योदरवर्तिनामुपकारप्रकृतिः स गिरं दिशतु । अहो एवंविशिष्टादपि भगवतः सूर्यात् किं वाङ्मात्रस्याशंसनं कृतम् । सत्यं तदप्युच्यते । इह हि कवीनां काव्यरचनोद्यतानां सद्वाक्यप्रवृत्तिरेवाभीष्टमिति भावः ॥

ॐ नमः शिवाय ।

प्रभा ।

या प्रत्यग्रघनाभापि स्वान्तध्वान्तविनाशिनी ।
तां परेशीं परानन्दकन्दलीं समुपास्महे ॥ १ ॥
सारभूतार्थविन्यासविकासितकलेवरा ।
शिरोमणिप्रभा भातु विदुषां हृदये सदा ॥ २ ॥

अथाचार्यः प्रत्यूहव्यूहप्रशमनाय चिकीर्षितग्रन्थस्यादौ मङ्गलमाचरति । यत्र त्रातुमिति । वासनाभाष्ये स्फुटमेव । तत्र तत्र देशे सूर्योदयानुरुद्धमेवाग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठानं सांप्रदायिकैर्विधीयते । तथा च तदर्थबोधिका तैत्तिरीयश्रुतिः—'उदिते जुहोति; अनुदिते जुहोति; समयाध्युषिते जुहोति' इति ।

पञ्चमहायज्ञास्तु 'पञ्च एव महायज्ञाः । तान्येव महासत्राणि । भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ।' एवं शतपथब्राह्मणे (११ । ५ । ६) निरूपिताः सन्ति । मनुस्मृतेस्तृतीयाध्याये च 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः—' इत्यादिना पञ्चमहायज्ञाः समाम्नाताः ।

जलजिनी कमलिनी कुमुदिनी च । तस्या अपि चन्द्रबिम्बसङ्गतैः सूर्यरश्मिभिरेवोल्लासनम् । तथा चोक्तम्—

'तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः ।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः ॥'

एवमत्र विशेषणं विज्ञानदृशा साधु । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

ॐ नमः शिवाय ।

भाषाभाष्य ।

आदिशक्ति का करके ध्यान,
यह उपपत्ति समेत महान ।
भाषाभाष्य लिखा जाता है,
जिससे संशय मिट जाता है ॥

जिस कमलिनीबन्धु (सूर्य) के उदय होने पर संसार के रक्षार्थ

यज्ञारम्भ किये जाते हैं और यज्ञांश के अधिकारी इन्द्रादि देव आनन्द से स्वर्ग में क्रीडा करते हैं, जो विश्व के अन्धकार को दूर करता है और भक्तों के संपूर्ण पातकों को भली भांति धो डालता है, वह देवपूज्य सूर्य मेरी सुन्दर उक्तियों को प्रकट करनेवाली वाणी को शीघ्र प्रकाशित करे ॥ १ ॥

इदानीं पूर्वाचार्याणां प्रशंसनं सविनयमाह—

कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि-
र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः ।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः
कृती भवति मादृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः २

स्पष्टार्थमिदम् ।

प्रभा ।

जिष्णुजो ब्रह्मगुप्ताचार्यः कृती पण्डितो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । किंभूतः । गणकानां ज्योतिर्विदां यानि चक्राणि समूहास्तेषु चूडामणिः शिरोरत्नम् । ललिताः सुन्दर्य उक्तयो वचनानि येषां ते । प्रथितानि प्रसिद्धानि यानि तन्त्राणि शास्त्राणि तेषु सत्यः समीचीना युक्तयो येषां ते । वराहमिहिरादयो जयन्ति । येषां कृतीः ग्रन्थान् समवलोक्य मादृशो मत्सदृशोऽल्पधीरप्यतनुतन्त्रबन्धे, अतनु च तत्तन्त्रं च अतनुतन्त्रं महाशास्त्रं तस्य यो बन्धो निर्माणं तत्र कृती समर्थो भवतीत्यर्थः । अत्र प्राथम्येन ब्रह्मगुप्तस्तवनात्तत्स्वीकृतागममूलकोऽयं निबन्ध इति ध्वनितम् ।

भाषाभाष्य ।

ज्योतिषियों के शिरोमणि जिष्णुपुत्र ब्रह्मगुप्ताचार्य और शास्त्र-युक्तियों के प्रवर्तक सुकवि वराहमिहिर आदि आचार्य जगत् में प्रसिद्ध हैं । जिनकी रचनाओं को देखकर मेरे समान अल्पबुद्धि भी महाशास्त्र के बनाने में समर्थ होता है ॥ २ ॥

इदानीमात्मनः कर्तृत्वारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थमाह—

कृत्वा चेतसि भक्तितो निजगुरोः पादारविन्दं ततो
लब्ध्वा बोधलवं करोति सुमतिप्रज्ञासमुल्लासकम्।
सद्वृत्तं ललितोक्तियुक्तममलं लीलावबोधं स्फुटं
सत्सिद्धान्तशिरोमणिं सुगणकप्रीत्यै कृती भास्करः ३

इदमपि सुगमम्।

प्रभा।

निजगुरोः स्वपितुर्महेश्वराचार्यस्य। सुमतीनां प्रज्ञा बुद्धिस्तस्याः समुल्लासकं प्रकाशकम्। सन्ति समीचीनानि वृत्तानि छन्दांसि यस्मिन्।

भाषाभाष्य।

मैं भास्कराचार्य अपने गुरु (पिता) के चरणकमलों का चित्त में भक्तिपूर्वक ध्यान करके और उन्हीं से ज्ञानलव पाकर, बुद्धिमानों की बुद्धि का प्रकाशक, उत्तम छन्द और सुन्दर उक्तियों से युक्त, निर्दूषण, अनायास से जानने योग्य, स्फुट और सुन्दर सिद्धान्त-शिरोमणि को विज्ञ ज्योतिषियों की प्रसन्नता के लिए बनाता हूं॥ ३॥

इदानीं ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्धेनाभिधायोत्तरार्धेन सुजनगणकान् प्रार्थयन्नाह—

कृता यद्यप्याद्यैश्चतुरवचना ग्रन्थरचना
तथाप्यारब्धेयं तदुदितविशेषान्निगदितुम्।
मया मध्ये मध्ये त इह हि यथास्थानविहिता
विलोक्यातः कृत्स्ना सुजनगणकैर्मत्कृतिरपि ४

आद्यैराचार्यैर्यद्यपि चतुरवचना श्लक्ष्णा ग्रन्थरचना कृता तथापि मयारब्धा। इदमः प्रस्तुतनिर्देशादियमीदृशी चतुरवचना अचतुरवचना वा। यद्यचतुरवचना

तर्हि किमारम्भणीया तदर्थमाह । तदुदिताविशेषान् निगदितुमिति । यत्तैरुक्तं तत्तदुदितं तस्माद्ये विशेषास्ते तदुदितविशेषाः । ये तैर्नोक्ता इत्यर्थः । अथ सुजनान् प्रत्याह । सुजनाश्च ते गणकाश्च सुजनगणकास्तैरियं मत्कृतिरपि विलोक्या । अपिशब्दः समुच्चयार्थे । तेन हे सुजनगणकाः! भवद्भिर्ब्रह्मादीनां कृतयः किल विलोकिताः । इदानीं मत्कृतिरपि मदुपरोधेन विलोक्या । यदि विलोक्या तर्हि कृत्स्ना समग्रा । किमिति । हि यस्मात् कारणात् ते विशेषा इहास्मिन् ग्रन्थे मया मध्ये मध्ये यथास्थानं निहिता निक्षिप्ताः । कृत्स्नग्रन्थविलोकनेन विना सर्वे न ज्ञायन्त इत्यर्थः ॥

प्रभा ।

आद्यैः पूर्वाचार्यैः ब्रह्मगुप्तपृथूदकस्वाम्यादिभिः । शेषं भाष्ये स्फुटमेव । शिखरिणीछन्दः ।

भाषाभाष्य ।

यद्यपि पूर्वाचार्यों ने युक्तिपूर्ण ग्रन्थों को बनाया है । तो भी उनके प्रतिपाद्य विशेष विषयों को प्रकाश करने के लिए यह ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया है । मैंने उन सब विशेषों को बीच बीच में यथास्थान लिखे हैं, इसलिए सुजन गणितज्ञों को इस ग्रन्थ को भी संपूर्ण देखना चाहिये । क्योंकि विना संपूर्ण देखे विशेष नहीं ज्ञात होते ॥ ४ ॥

इदानीं सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनमाह—

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान् ।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ॥ ५ ॥

सुजना इति विशेषणं किम् । यतो दुर्जनाः स्वतस्तोषमेष्यन्ति । यदा दुर्जना मदुक्तान् विशेषान् द्रक्ष्यन्ति

तदा तानज्ञात्वा दौर्जन्येन संक्षमलयो विशेषार्थान् न बुध्यन्ति तेनाबोधेन मदुक्तिमेव विरुद्धां मन्यमानाः सहर्षाः किं तेन कविना विरुद्धमुक्तमिति मामेव हसन्तस्तोषमेष्यन्ति । नहिं तोषं विना हास्यमुत्पद्यत इति भावः ॥

भाषाभाष्य ।

सज्जन पुरुष मेरे प्रतिपादित विशेषों को जानकर सन्तुष्ट होवें । और दुर्जन मनुष्य तो अज्ञानवश विशेषों को न समझ कर, मेरी हँसी करके ही सन्तुष्ट होजावेंगे ॥ ५ ॥

अथानन्तरश्लोकेन सिद्धान्तग्रन्थलक्षणं श्लोकद्वयेन सिद्धान्तप्रशंसां चाह—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः ।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ६
जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिंचित्करः ।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः ७
गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताऽश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतचूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः ।
योषित्प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्न भात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाःसिद्धान्तहीनंजगुः ८

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

अत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे गण्यते संख्यायते यत्तद्गणितं तज्ज्योतिःशास्त्रमहावृक्षस्यैकदेशतया स्कन्ध इव गणितस्कन्धस्तस्य यः प्रबन्धस्तस्मिन् । त्रुटिरादिः प्रारम्भः प्रलयोऽन्तोवसानं यस्य सः प्रलयान्तः । त्रुट्यादिः प्रलयान्तो यः कालः तस्य कलना परामर्शः । मानानां सौरचान्द्रादीनां प्रकर्षेण भेदः क्षोदः सम्यग्विचारः । द्युसदां ग्रहाणां चारो गतिविषयप्रतिपादनम् । द्विधा व्यक्ताव्यक्तात्मकं गणितम् । तथा सोत्तरा उत्तरेण सह वर्तमानाः समाधानयुताः प्रश्नाः । भूश्च धिष्ण्यानि च ग्रहाश्च तेषां या संस्थितिस्तस्याः कथनं निरूपणम् । यन्त्रादि, कालज्ञानसाधनभूतं प्रसिद्धम् । आदि-पदाद्यत्किंचिदन्यत् । यत्रोच्यत इति प्रत्येकमन्वयः । स बुधैः सिद्धान्त उदाहृतः कथितः । अर्थाद्यत्रैते विषयाः सम्यगाख्याताः स सिद्धान्तपदवाच्यो निबन्ध इति ।

इत्थं च 'यत्र महीयसा गणितबन्धेन खेटगतयो विचार्यन्ते स सिद्धान्तः । इहैव तत्सहकारिणामुच्चावचानां भेदानामन्तर्भावः । एवं च महत्तरगणितसाध्यत्वे सति खेटगतिबोधकनिबन्धत्वमिति तल्लक्षणं पर्यवसन्नमिति' सूर्यसिद्धान्तसमीक्षायां मदीयतातचरणाः श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदाचार्याः प्राहुः ।

किंच 'सिद्धान्तोदीरितो ह्यर्थो निजयुक्त्यैव बध्यते । निखिलो यत्र तत्तन्त्रं निजोपकरणाश्रितम् ॥' इति श्लोकमूलकेन यत्र युगाद्यहर्गणेन ग्रहसाधनं तत्तन्त्रमिति वाक्येन एवं 'सिद्धान्तोक्तैकदेशास्तु केचिद्यत्र निरूपिताः । तदुक्तं करणं नाम्ना लघूपायविनिर्मितम् ॥' इति श्लोकमूलकेन यत्र शकाद्यहर्गणेन ग्रहसाधनं तत्करणमिति वाक्येन तन्त्रकरणलक्षणे ज्ञेये ।

गणितस्कन्धस्यैकदेशेन सह वर्तमानाः सगणितस्कन्धैकदेशाः जातकसंहिताः । जातकानि च संहिताश्च । प्राणिनां जन्मकालवशेन ग्रहजनितशुभाशुभफलनिरूपकं शास्त्रं जातकम् । एवं तत्तत्कालिकग्रहचारवशेन सुभिक्षदुर्भिक्षादिसार्वभौमफलप्रतिपादकं शास्त्रं संहिता । इति जानन् विद्वानपि यः ज्योतिषां ग्रहर्क्षादीनां प्रतिपादकं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रं तस्य विचाराणां ये साराः तद्वि-

षयीभूतार्थतात्पर्याणि तेषु चतुराणां ये प्रश्नास्तेष्वकिञ्चित्करोऽनधिकारी । अनन्ता नानाप्रकारा या युक्तयस्ताभिर्वितत विस्तृतं सिद्धान्तं न वेत्ति न जानाति स भित्तौ यथा चित्रमयो राजा अथवा काष्ठस्य कण्ठीरवः सिंहस्तथैवाकिंचित्करोऽप्रयोजको भवतीति तात्पर्यम् ।

यद्वत् नृपचमूः राजसेना अश्वादिकैरूर्जिता प्राखिलापि गर्जन्तश्चते कुञ्जरा हस्तिनश्च तैर्वर्जिता रहिता उच्चकैरतिशयेन न भाति न शोभते । च्युतो गतश्चूतवृक्षो यस्मात्तच्च्युतचूतवृक्षमुद्यानमारामः । पाथसा जलेन विहीनं सरः सरोवरम् । प्रोषितो देशान्तरं गतो नूतनस्तरुणः प्रियतमोऽतिशयेन प्रिय इति प्रियतमो यस्याः सा योषिद्युवती न भातीति प्रत्येकमन्वेति । तथैव विबुधा इदं ज्योतिःशास्त्रं सिद्धान्तहीनमुच्चकैर्न भातीति जगुरूचुः ।

भाषाभाष्य ।

ज्योतिःशास्त्र सिद्धान्त, संहिता और होरा नामक तीन स्कन्धों में विभक्त है । उन में जिस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर प्रलयान्तकाल की गणना, सौर, चान्द्र आदि मानों का प्रतिपादन, ग्रहगतियों का निरूपण, व्यक्त-अव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविध प्रश्नोत्तर विधि, भूमि-ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति और नानाप्रकार के यन्त्रों का सविस्तर वर्णन हो, उसको विद्वानों ने सिद्धान्तस्कन्ध (गणितस्कन्ध) कहा है ।

गणितस्कन्ध के एकदेश जातक और संहिता को जानकर भी ज्योतिषी, विज्ञ गणितज्ञों के प्रश्नों को नहीं समझ सकता, एवं अनन्त युक्तियों से विस्तृत सिद्धान्तविषय को नहीं जान सकता । ऐसा गणितज्ञ पुरुष, भित्ति में अङ्कित चित्ररूप राजा अथवा काष्ठनिर्मित सिंह के समान अप्रयोजक माना जाता है ।

जिस प्रकार, घोड़ा-ऊंट-रथों से परिपूर्ण भी राजसेना गर्जते हुए हाथियों के विना शोभित नहीं होती, किंवा आम्रवृक्षों के विना उद्यान, जल के विना सरोवर एवं प्रोषित-नवीन-पतिका युवती नहीं

शोभित होती, उसी प्रकार यह ज्योतिःशास्त्र सिद्धान्तस्कन्ध के बिना शोभित नहीं होता । इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने कहा है । अर्थात् सिद्धान्तज्ञान से शून्य ज्योतिषी आदरणीय नहीं होता ॥ ६–८ ॥

इदानीं ज्योतिःशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं निरूप्य वेदाङ्गत्वाद्वश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यैः शूद्रादिभिरित्येतत्प्रतिपादनार्थं श्लोकचतुष्टयमाह—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता
यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात्कालबोधो यतः स्या—
द्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात् ॥ ९ ॥
शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ॥ १० ॥
वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं
मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोपीतरैः कर्णनासादिभि—
श्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किंचित्करः ॥ ११ ॥
तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्
पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्
धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥ १२ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

वेदा ऋगादयः स्वनामप्रसिद्धाः यज्ञकर्मप्रवृत्ताः सन्ति । यज्ञाश्च

कालाश्रयेण प्रोक्ताः । 'वसन्ते ज्योतिषा यजेत ।' 'पौर्णमास्यां यजेत ।' इत्यादिविविधश्रुतिवाक्यादिना कालाधीनत्वं स्पष्टमेव। यतोऽस्माच्छास्त्रात्कालबोधो भवति तस्माज्ज्यौतिषस्य ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीन्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्यौतिषम् 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ।' इत्यण् । तस्य वेदाङ्गत्वमुक्तमभिहितम् । षडङ्गेषु ज्यौतिषस्याप्यन्यतरत्वात् । शालिनीछन्दः ।

आद्यैर्बुधैः पूर्वाचार्यैर्वेदपुरुषस्य शब्दशास्त्रमित्याद्यागममूलकत्वेन प्रतिपादितम् । अङ्गमध्येषु चक्षुषाङ्गेन हीनोऽप्रयोजको भवतीति ज्यौतिषस्य प्राधान्यत्वम् । तथा चोक्तं लागधतन्त्रे—

'यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥'

स्रग्विणीछन्दः ।

द्विजैरित्युक्तत्वात्त्रैवर्णिकानामेवाध्ययनाध्यापनाधिकारः शास्त्रसंमतः । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

वेद यज्ञकर्म के प्रवर्तक हैं । और काल के अधीन संपूर्ण यज्ञकर्म कथित हैं । इस शास्त्र से काल का ज्ञान होता है इसलिए ज्योतिष वेदाङ्ग कहा गया है ।

वेदपुरुष का शब्दशास्त्र मुख, ज्योतिषशास्त्र दोनों नेत्र, निरुक्त कान, कल्पसूत्र दोनों हाथ, शिक्षा नासिका और छन्दःशास्त्र दोनों पैर हैं । यह पूर्वाचार्यों ने कहा है । यह ज्योतिःशास्त्र वेदपुरुष का नेत्ररूप है इसलिए इसकी सब अङ्गों में श्रेष्ठता है । क्योंकि कान, नाक आदि अवयवों से युक्त भी मनुष्य नेत्र के विना किसी काम का नहीं रहता ।

इसलिए यह पुण्यमय, रहस्य और तत्त्वभूत शास्त्र द्विजों को पढ़ना चाहिए । जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र को जानता है वह धर्म, अर्थ, काम और यश का भागी होता है ॥ ९—१२ ॥

इदानीं ज्योतिःशास्त्रमूलभूतस्य सग्रहस्य भचक्रस्य चलनं श्लोकद्वयेनाह—

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन
ग्रहैः सहैतद्भगणादिसंस्थैः ।
शश्वद्भ्रमे विश्वसृजा नियुक्तं
तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे ॥ १३ ॥

ततोऽपराशाभिमुखं भपञ्जरे
सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि ।
तदल्पगत्यैन्द्रदिशं नभश्चरा—
श्चरन्ति नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु ॥ १४ ॥

यदेतद्भचक्रं ग्रहैः सह भ्रमद्दृश्यते तद्विश्वसृजा जगदुत्पादकेन कमलोद्भवेन ब्रह्मणा सृष्ट्यादौ सृष्ट्वा ततः शश्वद्भ्रमेऽनवरतभ्रमणे नियुक्तम् । एतदुक्तं भवति । भान्यश्विन्यादीन्यन्यानि विशिष्टानि ज्योतींषि तेषां समूहश्चक्रं ग्रहाश्च सूर्यादयस्तैः सह सृष्टम् । तानि भानि प्राक्संस्थया समन्तान्निवेशितानि । ग्रहास्तु भगणादावश्विनीमुखे निवेशितास्त उपर्युपरिसंस्थया । तत्रादौ तावदधश्चन्द्रः । तदुपरि बुधः । ततः शुक्रः । ततो रविः । तस्माद्भौमः । ततो गुरुः । ततः शनिः । सर्वेषामुपरि दूरे भचक्रम् । एषां कक्षाप्रमाणानि कक्षाध्याये प्रतिपादयिष्यन्ते । अहो यदूर्ध्वोर्ध्वस्था ग्रहास्तदुपरि दूरतो भगणस्तत् कथं भगणादिसंस्थैर्ग्रहैरित्युच्यते । सत्यम् । अत्र भूमध्ये सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं भचक्रेऽश्विनीमुखे किल निबद्धम् । तस्मिन् सूत्रे प्रोता मणय इव चन्द्रादयो ग्रहाः सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा निवेशिताः । भमण्डलं द्वादशधा

विभज्यैवं भूमध्यात् सूत्राणि प्रतिभागं नीत्वा किल बद्धानि तैः सूत्रैः सह ग्रहकक्षायां ये संपातास्ते तासु कक्षासु राश्यन्ताः। तद्वत्प्रकारा राशय इति संक्षिप्तमिहोक्तम्। कक्षाध्याये गोले च किञ्चिद्विस्तार्य वक्ष्यामः। एवंविधं भचक्रं सृष्ट्वा ब्रह्मणा गगने निवेशितम्। यत्र निवेशितं तत्र प्रवहो नाम वायुः। स च नित्यं प्रत्यग्गतिः। तेन समाहतं भचक्रं सखेचरं पश्चिमाभिमुखभ्रमे प्रवृत्तम्। यत्तस्य प्रत्यग्भ्रमणं तच्छीघ्रतरम्। यत् एकेनाह्ना भमण्डलस्य परिवर्त्तः। एवं तस्मिन् भपञ्जरे सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि खेचरा इन्द्रदिशं चरन्ति पूर्वाभिमुखं व्रजन्ति। नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु। अनन्तरकथितेषु स्वस्वमार्गेषु तेषां प्राग्भ्रमणम्। तत् तदल्पगत्या। प्रत्यग्गतेर्बहुलत्वात् प्रागल्पगत्या व्रजन्तो नोपलक्ष्यन्त इति भावः। तथा तस्य भपञ्जरस्य यौ दक्षिणोत्तरावन्तौ तत्र ये तारे ते ध्रुवत्वे नियुक्ते।

प्रभा।

विश्वसृजा कमलोद्भवेन ब्रह्मणा एतत् भानामश्विन्यादीनां चक्रं समूहो भचक्रं ग्रहैः सूर्यादिभिः भगणादिसंस्थैः भगणस्यादिः 'पौष्णान्ते भगणः स्मृतः।' इति सौरवचनाद्भगणादिः पौष्णान्तः अश्विन्यादिः तत्र संस्था येषां तैः। रेवतीयोगताराप्रदेशात्पूर्वानुक्रमेण यो वृत्ताकारः क्रान्तिवृत्तावच्छिन्नाकाशप्रदेशस्तस्मिन्निवेशिता इति भावः। सह सृष्ट्वा निर्माय शश्वदनवरतं भ्रमः पश्चिमभ्रमो यस्यासौ शश्वद्भ्रमः प्रवहवायुस्तस्मिन् नियुक्तं यथास्थाने निवेशितम्। तस्य भचक्राधिष्ठितगोलस्यान्तौ दक्षिणोत्तरनेमिसम्बन्धिनौ तयोर्ये तारे नक्षत्रे तथा ध्रुवत्वे नियुक्ते। ततो यतो निरन्तरपश्चिमभ्रमणे नियुक्तमस्मात्कारणात् तदल्पगत्या, तस्माद् भचक्रगतेर्नाक्षत्रषष्टिघटिकात्मिकायाः सकाशादल्पगतिः स्वगतिः पूर्वा गति-

रित्यर्थः तयेन्द्रदिशं पूर्वदिशं चरन्ति गच्छन्ति। अतिशयेन नीचोच्चाः नीचोच्चतरा एवंभूताः यानि आत्मनो वर्त्मानि ग्रहस्यमार्गास्तेषु। शेषं भाष्ये स्फुटमेव। उपजातिरुपेन्द्रवज्रा च वृत्तम्॥

भाषाभाष्य।

जगत् के उत्पादक कमलयोनि ब्रह्मा ने, भगणादि ग्रहों के सहित यह भचक्र बनाकर, सदा भ्रमणशील प्रवहवायु में नियुक्त किया है। और इसके दक्षिण और उत्तर प्रान्त के नक्षत्र की ध्रुव*संज्ञा की है। यह भचक्र प्रवह वायु में स्थापन करने से सदा ग्रहों के साथ बड़े वेग से पश्चिम दिशा की ओर भ्रमण करता है परन्तु ग्रह प्रवहवायु से न्यून निज पूर्वगति से, अपने नीचे ऊंचे कक्षामार्ग में, पूर्व दिशा को भी चला करते हैं। अर्थात् प्रवहवायु से यद्यपि ग्रह पश्चिम दिशा को जाते देखे जाते हैं, पर वे अपनी निज गति से पूर्व को भी चला करते हैं॥ १३–१४॥

इदानीमनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिमाह—

लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानो-
स्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।

---

* यहां अभिप्राय यह है कि दक्षिण और उत्तर ध्रुवों में पोया हुआ भचक्र, वा राशिचक्र प्रवहवायु द्वारा पश्चिम से पूर्व को चक्र की भांति फिरा करता है। इसीलिए सूर्यसिद्धान्त में लिखा है :—

'भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्॥'

भूगोलाध्याय, श्लोक ७४।

अर्थ–दोनों ध्रुवों में बंधा हुआ भचक्र प्रवहवायु द्वारा सदा भ्रमण करता है और उसमें क्रम से संयुक्त ग्रहकक्षाएं भी साथ ही घूमती हैं। इस प्रवहवायु की कल्पना न करके आर्यभट ने भूमि को पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करती हुई माना है। परन्तु प्राचीनों के मतानुसार प्रवहवायु को भी लोकदृष्टि से लिखा है। जैसा :—

'उदयास्तमयनिमित्तं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति॥'

मधोः सितादेर्दिनमासवर्ष-
युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥ १५ ॥

ननु पूर्वटिकायामनादिरनन्तश्च कालोऽभिहितः । अथ च सृष्ट्यादौ तस्य प्रवृत्तिः । प्रवृत्तिर्नाम आदिः । प्रलये तदन्तः । तथा च शास्त्रान्तरे ।

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना ।
कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत् ॥

इति तत् कथमनाद्यनन्तः काल उच्यते । सत्यं योऽयं भगवान् मूर्तो व्यापकश्च कालस्तस्य प्राक्तनप्राकृतिक-लयादनन्तरं व्यक्तिजनकानां सूर्यादीनामभावादव्यक्तस्या व्यक्ते यदवस्थानं स तस्य लय उच्यते । न त्वान्तिकः प्रलयः कालस्यास्तीति । यदुक्तम् । कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेदिति तत्तेनैवाव्यक्तावस्थानाभिप्रा-येण । अतो युक्तमनाद्यनन्तत्वं तस्योक्तम् । तस्याव्यक्तस्य कालस्य सृष्ट्यादौ व्यक्तिजनकानां भग्रहाणां प्रादुर्भावे सति कालस्य व्यक्तीनामपि दिनमासवर्षयुगादीनां युग-पदेकहेलया प्रवृत्तिर्बभूव । एतदुक्तं भवति । चन्द्रार्क-योर्मेषादिस्थयोश्चैत्रस्य शुक्लपक्षादिः प्रतिपत् । अतो मधोः सितादेर्दिनानां सौरादिमासानां वर्षाणां युगानां मन्वन्तराणां कल्पस्य च तदैव प्रवृत्तिः । अथोदयाच्च भानोः । स चोदयः कस्मिन् देशे । लङ्कानगर्याम् । तथा तस्यैव वारे । आदित्यवार इत्यर्थः ।

प्रभा ।

लङ्कानगर्यां लङ्कोपलक्षितभूगर्भक्षितिजे । भानोरुदयः क्षितिज-संलग्नताकालस्तस्मात् । भचक्रस्थापनानन्तरं ग्रहचारप्रवृत्ति-

कालिकप्रथमसूर्योदयमारभ्येत्यर्थः । मधोश्चैत्रस्य सितादेः शुक्लप्रतिपदमारभ्येत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

लङ्कानगरी में, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तिथि रविवार को सूर्योदयकाल में दिन, मास, वर्ष और युग की एक समय प्रवृत्ति हुई अर्थात् इन गणनाओं का आरम्भ उसी दिन से हुआ, वही दिन अवधिभूत माना गया है । बीच से किसी गणना की प्रवृत्ति नहीं हुई है ॥ १५ ॥

इदानीं कालमानानां विभागकल्पनां श्लोकत्रयेणाह—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः
स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता ।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा
तत्त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता ॥ १६ ॥
त्रिंशत्कलाक्षी घटिका क्षणः स्या-
न्नाडीद्वयं तैः खगुणैर्दिनं च ।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः
षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः ॥ १७ ॥
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामै-
र्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम् ।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः
स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः ॥ १८ ॥

योऽक्ष्णोर्लोचनयोः पक्ष्मपातः स निमेषः । स यावता कालेन निष्पद्यते तावान् कालोऽपि निमेषशब्देनोच्यते । उपचारात् । तस्य त्रिंशद्विभागस्तत्परसंज्ञः । तत्परस्य शतांशस्त्रुटिरिति । अथ च निमेषैरष्टादशभिः काष्ठा । क्वचिच्छास्त्रान्तरे तिथिभिरिति पाठः । काष्ठात्रिंशता

कलोक्ता । कलानां त्रिंशता घटिका । सा चार्क्षी । अमस्य षष्टिभाग इत्यर्थः । घटिकाद्वयेन क्षणो मुहूर्तः । क्षणानां त्रिंशता दिनम् । अथ प्रकारान्तरेण दिनमुच्यते । गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुरिति । एकमात्रो लघुः । द्विमात्रो गुरुः । तथा—

सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरस्तु यः ।

इति छन्दोलक्षणे प्रतिपादितम् । यदक्षरं सानुस्वारं विसर्गान्तं दीर्घं यस्याक्षरस्य परतः संयोगस्तल्लघ्वपि गुरुसंज्ञं ज्ञेयम् । गुर्वक्षरस्योच्चार्यमाणस्य यावान् कालस्तद्दशकेनैकोऽसुः प्राणः । प्रशस्तेन्द्रियपुरुषस्य श्वासोच्छ्वासान्तर्वर्त्ती काल इत्यर्थः । षड्भिः प्राणैरेकं पानीयपलम् । पलानां षष्ट्या घटी । घटीनां षष्ट्या दिनम् । त्रिंशद्दिनैरेको मासः । मासैर्द्वादशभिर्वर्षमिति कालस्य विभागो दर्शितः । अथैतत्प्रसङ्गेन क्षेत्रविभागोऽपि कथितः । क्षेत्रे समाद्येन समा विभागा इति क्षेत्रे कक्षायां समाद्येन वर्षाद्येन समास्तुल्याः क्षेत्रविभागा ज्ञेयाः । ते के । चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः । यथैकस्य वर्षस्य मासदिनादयो विभागा एवं भगणस्य राश्यंशादयः ।

भाषाभाष्य ।

आँखों की पलक (निमेष) गिरने में जो काल लगता है उसका तीसवां भाग तत्पर और तत्पर क शतांशकाल को त्रुटि कहते हैं । अठारह बार पलक गिरने में जितना काल लगता है उतने काल की काष्ठा संज्ञा है । और तीस काष्ठा की एक कला होती है । तीस कला की एक नाक्षत्रघड़ी और दो घड़ी का एक मुहूर्त एवं तीस मुहूर्त का एक दिन होता है । दश गुरुअक्षरों के उच्चारण में जितना काल

लगता है उसको प्राण कहते हैं। छः प्राण का एक पल और साठ पल की एक घड़ी होती है। साठ घड़ी का एक दिन, तीस दिन का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। इसीप्रकार ग्रहकक्षा में भगण, राशि, अंश, कला और विकला का भी क्रम से विभाग होता है।

इसप्रकार—

$\frac{\text{निमेषकाल}}{३०}$=तत्पर। $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$=त्रुटि।

१८×निमेष = काष्ठा = ३०×काष्ठा = कला।

३०×कला=नाक्षत्रघड़ी। २ घड़ी=मुहूर्त। ३० मुहूर्त=एक दिन।

१० गुरु अक्षर काल=असु=प्राण। ६ प्राण=पल। ६० पल=घड़ी।

६० घड़ी=एक दिन। ३० दिन=एक मास और १२ मास=वर्ष।

ग्रहकक्षा में वर्ष आदि के अनुसार संज्ञाविभाग इसप्रकार है—

वर्ष = भगण।
मास = राशि।
दिन = अंश।
घड़ी = कला।
पल = विकला।

अहोरात्रासुओं में नव लाख बहत्तर हज़ार निमेष होते हैं। और चक्रकला का मान इक्कीस हज़ार छः सौ होता है। इससे अनुपात किया—

$$२१६०० : ९७२००० :: १ \text{ असु} = \frac{९७२०००}{२१६००} = ४५.$$

इसप्रकार, एक असु में ४५ निमेष सिद्ध होते हैं॥ १६–१८॥

इदानीमनयैव कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानान्याह—

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं
द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव ।
रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या
विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम् ॥ १९ ॥
इनोदयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम् ।
तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रमः ॥ २० ॥

रविर्यावता कालेन पूर्वगत्या मेषादिभचक्रं भ्रमति तावत्प्रमाणं रविवर्षं प्रदिष्टम् । तस्य द्वादशभागो रविमासः । मासस्य त्रिंशदंशोऽर्कदिनम् । दिनषष्ट्यंशोऽर्कघटिका । तत्षष्ट्यंशोऽर्कविघटिकेति पूर्वपरिभाषया सर्वत्र वेदितव्यम् । इत्यर्कमानम् ।

अथ दैवमानम् । द्युरात्रं च देवासुराणां तदेवेति । यदर्कवर्षं तदेव देवानां दैत्यानां च द्युरात्रमहोरात्रम् । एकमेव तेषामहोरात्रम् । किन्तु यद्देवानां दिनं सा दैत्यानां रजनी । तथा च गोले वक्ष्यति । अस्मादहोरात्रान्मासवर्षादिकल्पना तथैव परिभाषया । एवं देवानां वर्षं रविवर्षशतत्रयेण षष्ट्यधिकेन भवति । इति दैवमानम् ।

अथ चान्द्रमानम् । रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास इति । रवीन्द्वोर्युतिरमावास्यान्ते भवति । तस्या युतेरन्ययुतिपर्यन्तं यावान् कालस्तावान् विधुमासः । एवं योऽत्रामावास्यान्तो मासः स विधुमास इत्युक्तं भवति । तस्मान्मासात् पूर्वपरिभाषया वर्षादिकल्पनेति चान्द्रमानम् ।

अथ पैत्रम्। एतच्च पैत्रं द्युरात्रमिति। यो विधुमासस्त-देव पितॄणामहोरात्रम्। अतः पूर्ववन्मासवर्षादिकल्पना। इति पैत्रम्।

अथ सावनम्। इनोदयद्वयान्तरमिति। अर्कोदययो-रन्तरे यत्तदर्कसावनं दिनम्। तदेव कुदिनसंज्ञं ज्ञेयम्। अतोऽपि पूर्ववन्मासवर्षादिकल्पना। अत्रार्कग्रहणमुप-लक्षणं तेनान्येषामपि ग्रहाणां तदुदयद्वयान्तरं तत्सा-वनमिति। इति सावनम्।

अथ नाक्षत्रमानम्। भवासरस्तु भभ्रम इति। भभ्रमो नक्षत्रसावनमित्यर्थः। इति नाक्षत्रम्।

प्रभा।

चक्रभोगः स्वगत्या क्रान्तिवृत्तस्थितद्वादशराशिभ्रमणमर्कवर्षं सौर-वर्षं प्रदिष्टम्। यद्यप्याचार्येण सायनो निरयणो वा चक्रभोग इति नोक्तं तथापि द्वयमपि कल्पनीयम्। द्युरात्रमहोरात्रम् सुरासुराणामन्योन्य-महोरात्रमिति सूर्यसिद्धान्तोक्तात्केवलं तयोर्दिनक्षये विपरीते। रवीन्द्वोः संयुतेः क्रान्तिवृत्तीयतच्चिह्नैक्यकालमारभ्येत्यर्थः। योगोऽत्र कक्षावृत्ते पूर्वापरान्तराभावः। युतिद्वयान्तरकालश्चा-न्द्रो मास इत्यर्थः। मासशब्दनिरुक्तिर्यथा 'मस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकलावृद्धिहानितः। मास एते स्मृता मासास्त्रिंशत्तिथिसम-न्विताः।' एतच्चान्द्रमासमानं पैत्रं पितॄणामहोरात्रं भवति।

सूर्यबिम्बाक्षितिजयोर्योग उदयः। सूर्योदयद्वयान्तरभवः कालः सौरसावनं दिनं तदेव भूदिनं कुदिनं वेत्युच्यते। कुदिनेन भूसम्बन्धि-सावनदिनस्य ग्रहणं भवति। तेनेयं संज्ञा कदाचिद्भूभ्रमणवशेन व्यवहारकोटौ प्रविष्टेत्यप्यनुमीयते। एवमत्र ग्रहर्क्षादीनामप्युदया-दपरोदयकालावधिस्वस्वसावनदिनं बोध्यम्। क्वापि चन्द्रस्य नक्षत्रभोगकालो नाक्षत्रं दिनमित्युच्यते। 'चन्द्रनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रं दिनमुच्यते।' इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात्। भुजङ्गप्रयात-प्रमाणिका छन्दसी।

भाषाभाष्य।

सूर्य का द्वादशराशि भोगकाल सौरवर्ष कहलाता है और वही देवासुरों का अहोरात्र मान होता है। सूर्य और चन्द्र के योग से (अमान्त में) दूसरे योग तक जो काल है उसको चान्द्र मास कहते हैं। यही पितरों का अहोरात्र है। दो सूर्योदयों के मध्य में जो काल होता है, वह सूर्य का सावनदिन कहलाता है। सावन दिन को कुदिन भी कहते हैं। नक्षत्रों का भचक्र-भ्रमणकाल नाक्षत्र दिन कहलाता है।

उपपत्ति।

जितने दिनों में सूर्य निज पूर्व गति से बारह राशियों का भोग करता है वह सौरवर्ष कहलाता है। यह सायन और निरयण दोनों प्रकार का व्यवहार में प्रचलित है। इसप्रकार एकराशिभोग-काल सौरमास और एकांशभोगकाल सौर दिन होता है। यहां कुछ सावन चान्द्र और नाक्षत्र घड़ियों का विचार किया जाता है। एक सावन दिन में गतिकला का भोग उत्पन्न होता है; इससे अनुपात किया—गतिकला में साठ सावन घटी तो एकांशकला में क्या ? यों सौर दिन में प्रतिक्षण भिन्न होनेपर भी मध्यम सावनघटिका सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार, चान्द्र दिन सावन घड़ियों में चान्द्र साठ घड़ी मिलती हैं तो सौर सावन घड़ियों में क्या ? यों सौर दिन में मध्यम चान्द्र घटिका और नाक्षत्र सावन घड़ियों में नाक्षत्र साठ घड़ी तो सौर सावन घड़ियों में क्या ? यों सौर दिन में मध्यम नाक्षत्र घटिका सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार, सौर सावन घड़ियों में साठ सौर घटिका मिलती हैं तो चान्द्र सावन घड़ियों में क्या ? फल चान्द्र दिन में मध्यम सौर घटिका होंगी। ऐसे ही सावन और नाक्षत्र घड़ियां भी चान्द्र दिन में सिद्ध होंगी। फिर अनुपात किया—सौर-चान्द्र-सावन घड़ियों में सौर चान्द्र साठ घड़ी मिलती हैं तो क्रम से नाक्षत्र

सावन में क्या ? यों नाक्षत्र दिन में सौर आदि घड़ियां सिद्ध होंगी।

	दि. घ. प.		दि. घ. प.
देवासुरों का अहोरात्र	३६५।१५।३०	पितरों का अहोरात्र	२९।३१।५०
,, मास	३० वर्ष का।	,, मास	३० चान्द्रमास।
,, वर्ष	३६० वर्ष का।	,, वर्ष	३६० चान्द्रमास।

इस प्रकार सब स्पष्ट है * १९-२० ॥

इदानीं ब्राह्ममानमाह—

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ॥ २१ ॥
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्चतद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः ॥ २२ ॥
मनुः क्ष्मानगैर्युगैर्युगेन्दुभिश्च तैर्भवेत्।
दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका ॥ २३ ॥
सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा
आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः
सोऽपि कल्पो द्युरात्रं तु कल्पद्वयम् ॥ २४ ॥
शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्ट-
स्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं
न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान् ॥ २५ ॥

खखाभ्रदन्तसागरैरिति। रविवर्षाणां लक्षचतुष्टयेन द्वात्रिंशत्सहस्राधिकेन चतुर्गुणेन कृतं नाम प्रथमो युगचरणः १७२८००० । त्रिगुणेन त्रेतासंज्ञो द्वितीयो युग-

---

* सावन दिनों की कुदिन संज्ञा सूर्य के चारों ओर भूमि के भ्रमण करने से हुई हो। अथवा सूर्य के ही भूमि के चारों ओर भ्रमण से हुई हो। क्योंकि भूभ्रमण का विषय प्राचीन आचार्यों को सूत्ररूप से अवश्य ज्ञात था॥

चरणः १२९६००० । त्रिगुणेन द्वापराख्यस्तृतीयः ८६४००० । एकगुणेन कलिश्चतुर्थः ४३२००० । किंविशिष्टा एते युगचरणाः । स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैर्युताश्च । युगचरणप्रमाणस्य यो द्वादशांशस्तत्प्रमाणा तस्य चरणस्य संध्या । सा चरणादौ भवति । तावांश्च सन्ध्यांशः । स चरणस्यान्ते । एवं स्वसन्ध्यासन्ध्यांशैः सह एते युगचरणाः कथिता इत्यर्थः । कृतादौ सन्ध्यावर्षाणि १४४००० । कृतान्ते सन्ध्यांशः १४४००० । त्रेतादौ सन्ध्या १०८००० । त्रेतान्ते सन्ध्यांशः १०८००० । द्वापरादौ सन्ध्या ७२००० । द्वापरान्ते सन्ध्यांशः ७२००० । कल्यादौ सन्ध्या ३६००० । कल्यन्ते सन्ध्यांशः ३६००० । तद्युतौ युगमिति । तेषां चतुर्णां चरणप्रमाणानां युतौ युगप्रमाणम् । तच्च रदाब्धयोऽयुताहताः ४३२०००० । मनुः क्ष्मानगैर्युगैरिति । तैर्युगैरेकसप्तत्यामितैरेको मनुः । तैर्मनुभिर्युगेन्दुभिश्चतुर्दशभिर्दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका । ब्रह्मणो दिनतुल्या रात्रिश्च भवति । प्रमाणिकाशब्देन छन्दोऽपि सूचितम् । अहो एकसप्ततियुगो मनुरुक्तः । ब्रह्मदिने चतुर्दशमनवः । एकसप्ततिर्यावच्चतुर्दशभिर्गुण्यते तावत् षड्रूनं सहस्रं भवति । स्मृतिपुराणादौ तु—

चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।

तत्कथमिदमुच्यत इत्याशङ्कां परिहरन्नाह । सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेष्विति । आदिश्च मध्यानि चावसानं च आदिमध्यावसानानि । एवं तानि पञ्चदश । तेष्वादिमध्यावसानेषु मनूनां

सन्धयः स्युः । ते च कृताब्दसमकालाः । कृताब्दा यावत् पञ्चदशभिर्गुण्यते तावद्युगषट्काब्दतुल्या भवन्ति । अतस्तैर्मिश्रितैर्युगसहस्रं ब्रह्मणो दिनमुच्यते । तत्कथमिदमुच्यत इत्यनुपपन्नमित्युपपद्यते । यद् ब्रह्मदिनं सोऽपि कल्पसंज्ञः । एवं निशा च तत्प्रमाणिकेति । द्युरात्रं तु कल्पद्वयमिति । अस्माद्दिनाद्यत् पूर्वपरिभाषया वर्षशतं तद्ब्रह्मण आयुः । यत्तस्यायुः स महाकल्प इत्युच्यते । ततोऽन्यो ब्रह्मा तदन्तेऽन्य इति पुराणादौ कथ्यते श्रूयते च । विष्णुपुराणे—

> निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।
> तत्पराख्यं तदर्धं तु परार्धमभिधीयते ॥

तत् कियन्तस्ते गता इत्याशङ्कायामाह । यतोऽनादिभानित्यादि । यतः कालोऽनादिमान् । अतो ये गतास्तान्न वेद्मि ।

प्रभा ।

खखाभ्रदन्तेत्यादि 'कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ।' इति सौरोक्तानुरूपम् । प्रवृत्तिकालात्कृताब्दमिते कलिगते मन्वारम्भस्तत्समाप्त्युत्तरकाले तथागते द्वितीयो मनुरिति क्रमेण चतुर्दशमनूनां पञ्चदश सन्धयो भवन्तीति स्फुटार्थः । शतानन्दो ब्रह्मा । एवं पूर्वोक्तकालपरिभाषया शतायुः । परमायुः शतं तस्येति सौरवचनात् । तदायुर्ब्रह्मायुर्महाकल्पो महाप्रलयः प्राकृतिकप्रलय इति वा । आद्यैर्मुनिभिः । यत्कारणादेष प्रसिद्धः काल अनादिमानुत्पत्त्यभाववान् ततस्तत्कारणादहं भास्कराचार्यः अत्र वर्तमानकाले ये यत्संख्याकाः पद्मोद्भवाः ब्रह्माणो गतास्तान्न वेद्मि । अनन्तागता इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

४३२००० संख्या को चार, तीन, दो और एक से क्रम से गुणने से फल सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग का सौर वर्ष मान होता है ।

प्रत्येक युग का बारहवां भाग आदि और अन्त में उसका संध्या और संध्यांश वर्ष होता है। अर्थात् युग के आरम्भ में युग का द्वादशांश काल युगसन्ध्या और अन्त में उतनाही युगसन्ध्यांश होता है। इस लिए संध्या और संध्यांशों को जोड़ने से पूरा युगप्रमाण होता है। यों महायुग का मान ४३२०००० होता है।

एकहत्तर महायुगों का एक मनु प्रमाण होता है। और चौदह मनुओं का एक ब्रह्मदिन और दिन के तुल्य ही रात्रि होती है। इन चौदह मनुओं के आदि, मध्य और अन्त में सत्ययुग के तुल्य मनुसन्धि अर्थात् चौदह मनुओं में पंद्रह सन्धि होती हैं। इनके सहित चौदह मनुओं का प्रमाण एक हज़ार युग हुआ। यही ब्रह्मा का दिनमान है, इसीको कल्प भी कहते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा का अहोरात्र दो कल्प का होता है।

ब्रह्मा की परमायु, उनकी कालपरिभाषा के अनुसार, एक सौ वर्ष की है। पूर्वाचार्यों ने इसी परमायु को महाकल्प कहा है। काल के अनादि और अनन्त होने के कारण, सांप्रत में, ब्रह्मा की आयु के कितने वर्ष बीते यह मैं नहीं जानता।

उपपत्ति।

कृत, त्रेता आदि युगों की व्यवस्था धर्मपाद के अनुसार पुराणों में लिखी है। अर्थात् कृत चार, त्रेता तीन, द्वापर दो और कलि एक पाद से स्थित है। इसलिए कृत आदि युगों का सौर वर्ष मान इस प्रकार है:—

४३२००० × ४ = १७२८००० = कृत.
" × ३ = १२९६००० = त्रेता.
" × २ = ८६४००० = द्वापर.
" × १ = ४३२००० = कलि.

सब धर्मचरणों के योग से महायुग होता है। धर्मपादों का योग दश होता है। इससे अनुपात किया—दश तुल्य धर्मचरणों के योग में

महायुग मिलता है तो प्रत्येक धर्मपादों में क्या ? इस प्रकार सब युगों का अलग अलग मान सिद्ध होता है इसीलिए सूर्यसिद्धान्त में लिखा है :—'युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः।' इत्यादि।

इन कृत, त्रेता आदि युगों का बारहवाँ भाग संध्या और संध्यांश होता है। उसका मान ऊपर वासनाभाष्य में लिखा है। ये चारों युग संध्या और संध्यांश के सहित गिने जाते हैं।

यही ब्राह्ममान मनुस्मृति में लिखा है—

'चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥
यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतत् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च॥
तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदोजनाः॥ १ अ.६९—७३श्लो.

अपने अपने संध्या के साथ कृत आदि युगचरणों के मान—

	संध्या.		केवल-युग.		संध्यांश.			
कृत	= ४००	+	४०००	+	४००	=	४८००	संध्या और संध्यांशों के सहित युग।
त्रेता	= ३००	+	३०००	+	३००	=	३६००	
द्वापर	= २००	+	२०००	+	२००	=	२४००	
कलि	= १००	+	१०००	+	१००	=	१२००	
							१२००० = महायुग।	

यहां केवल युगचरणों से संध्यासंध्यांशयुक्त युगचरण अपने अपने

दो दशमांशों से अधिक हैं इसलिए 'अथ स्वांशाधिकोने तु—' इसके अनुसार संध्यासंध्यांशयुक्त मानों का द्वादशांश संध्यासंध्यांश आचार्य ने लिखा है—'निजार्कभागसंमितैः' और दोनों संध्याओं को मिला कर सूर्यसिद्धान्त में लिखा है 'षष्ठांशः संध्ययोः स्वकः'

७१ × १२००० = ८५२००० = एक मनुमान।

१४ × ८५२००० = ११९२८००० = संध्यून कल्पमान।

१५ × ४८०० = ७२००० = संधिमान।

११९२८००० + ७२००० = १२०००,००० = ब्रह्मदिनमान।

ये संख्या दिव्यमान से हैं इसलिए ३६० गुणने से मानुषमान होगा।

अब काल की स्थिति कहते हैं—

४३२००००=युगमान।

४३२०००० × ७१ = ३०६७२००००=मनुवर्ष मान।

और, ३०६७२०००० × १४ = ४२९४०८०००० = ब्रह्मा का दिनमान। परन्तु चौदह मनुओं में पंद्रह सन्धि होती हैं और सन्धि का काल कृतवर्ष १७२८००० के तुल्य है यह युग ४३२०००० का $२ + \frac{१}{२} = \frac{५}{२}$ सार्धद्व्यांश है, इसलिए युग के सार्धद्व्यांश को पंद्रह से गुणा देने से $\frac{२ \times ४३२०००० \times १५}{५}$ = २५९२०००० यह षड्-गुण युगमान हुआ। इसको पहले सिद्ध हुए ब्रह्मा के दिन में जोड़ने से ठीक ब्रह्मा का दिन ४३२०००००० हुआ। दिनमान दूना करने से अहोरात्रमान, वह तीस से गुणने से मासमान और वह बारह से गुणने से वर्षमान ३११०४०००००००० हुआ इसको १०० गुणित करने से ब्रह्मा की आयु होती है॥ २१–२५॥

इदानीमन्यदाह—

तथा वर्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं
गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।

भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो
ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः ॥ २६ ॥

तथा वर्तमानस्य ब्रह्मण आयुःकालस्य किं गतमिति न वेद्मि । तत्र केचिदाचार्या आयुषोऽर्धं गतं केचित् सार्धवर्षाष्टकं गतमित्यूचुः । तत्रागमः प्रमाणम् । इहागमद्वैविध्ये कः प्रमाणमित्यत्रास्माकं नाग्रहः । यतोऽस्य गतैर्वर्षैर्मासैर्दिनैरपि प्रयोजनाभावः । ग्रहास्तु वर्तमानस्य दिवसस्य गतात् साध्याः ।

प्रभा ।

कस्य ब्रह्मणः । आयुषोऽर्धं पञ्चाशद्वर्षमितम् । आयुषोऽर्धमितं तस्येति सौरवचनात् । अस्य गतायुर्वर्षादिविचारस्योपयोगः प्रयोजनं नास्ति । अर्थात् ब्रह्मणो गतदिनमासवर्षाणामनुपयुक्तत्वेन प्रयोजनाभाव इति भावः । वर्तमानद्युयातात्, ब्रह्मणोवर्त्तमानदिनगतसौरवर्षसमूहात्साध्या इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार बहुतों का मत है कि ब्रह्मा की आयु के अर्ध अर्थात् पचास वर्ष वर्तमान समय में बीत चुके हैं। किसीके मत से साढ़े आठ वर्ष बीते हैं । परन्तु इन मतों का कोई प्रयोजन नहीं है । क्योंकि ब्रह्मा की आयु के गत वर्षों से कोई लाभ नहीं । ग्रहों का साधन वर्तमान दिन में, गत सौर वर्षोंसे करना चाहिए ।

तात्पर्य यह है कि काल के अनादि और अनन्त होने से उसकी कोई अवधि कल्पना नहीं होसकती, इसलिए ग्रहचार का निरूपण अशक्य होने से किसी प्रकार की अवधि आवश्यक हुई। वह पूर्वाचार्यों ने वेद और स्मृति के अनुसार ४३२०००००० इतने सौर वर्ष माने हैं और उससे ग्रहसाधन किए हैं। इतने वर्षों में ग्रह, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च,

पात आदि के भगण पूरे माने गये हैं । इसलिए निरवयव अवधि यही सिद्ध हुई है ॥ २६ ॥

इदानीं तत्कारणमाह—

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते
लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता ।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्ये
ऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु ॥ २७ ॥

यत एषां ग्रहाणां दिनादौ सृष्टिर्दिनान्ते लयः । यदि महाकल्पगताद्ग्रहाः साध्यन्ते तर्हि यावत्योऽस्य विभावर्यो गतास्तासु ग्रहाभाव एव । अतो विद्यमानेष्वेव ग्रहेषु तच्चारचिन्ता कर्तुं युज्यते । यत्तु कैश्चिदविद्यमानेष्वपि तेषु महाकल्पगताद्वर्तमानाः कृतास्तान् प्रतिवक्रोक्त्या सोपहासमाह । तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्त्विति ।

प्रभा ।

दिनादौ ब्रह्मदिनरूपकल्पप्रारम्भे । दिनान्ते कल्पसमाप्तिकाले । अत्र भगवदुक्तिः 'अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे । रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके' इति । तच्चारचिन्ता ग्रहगतिविचारः । एतदुक्तं भवति । ग्रहाणां कल्पावच्छिन्नकाले सत्त्वाद्वर्तमानद्युयातादेव तत्साधनं युक्तमिति ।

भाषाभाष्य ।

ब्रह्मा के दिनारम्भ में ग्रहों की सृष्टि और दिन के अन्त में उनका लय होता है, इस कारण ग्रहों की स्थितिकाल में उनका साधन करना चाहिए । अर्थात् वर्तमान ब्रह्मदिन के जो गत वर्ष हों उनके आधार पर ग्रहों का साधन उचित है । जिन्होंने ग्रहों के लय होजाने पर भी महाकल्प काल को गताब्द मानकर ग्रह साधन किया है उन महानुभावों को, मेरा प्रणाम है । तात्पर्य यह है कि—ब्रह्मा के दिनान्त में

ग्रहों का लय होजाने से रात्रिकाल में अभाव ही रहता है । उस स्थिति में रात्रिकाल का भी गत वर्षों में गणना करना व्यर्थ है । इसलिए महाकल्प से जो ग्रह साधन लिखते हैं उनकी बड़ी भूल है ॥ २७ ॥

इदानीं वर्तमानदिनगतमाह—

याताः षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः ।
१९७२९४७१७९
गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्त्रनगगोचन्द्राः शकाब्दान्विताः
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्तमाने गताः॥२८॥
स्वायम्भुवो मनुरभूत् प्रथमस्ततोऽमी
स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्याः ।
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां
वैवस्वतस्तदनु संप्रति सप्तमोऽयम् ॥ २९ ॥

श्लोकद्वयं स्पष्टार्थम् । इति ब्राह्ममानम् ।

प्रभा ।

शकांस्तदाख्यम्लेच्छान्नृन्पिबति मारयतीति शकनृपो विक्रमादित्यस्तस्यान्तेऽर्थाच्छालिवाहनशकप्रारम्भे । वर्तमानसौरवर्षादौ गताः कल्पगतसौरवर्षाणि ब्रह्मदिनारम्भाद्भवन्तीत्यर्थः ।

प्रथम आद्यः स्वायंभुवाख्यो ब्रह्मोत्पादितो मनुः ससंधितत्कालाधीशो ब्रह्मदिनारम्भात्प्रवृत्तोऽभूत् । ततस्तद्भोगकालानन्तरमग्रे क्रमेण स्वारोचिषादयः । सप्तमन्वतिरिक्ता मनवो यथा—

'सावर्णिर्दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः ।
धर्मसावर्णिको रुद्रपुत्रो रौच्यश्च भौत्यकः ॥ ' इति ।

वसन्ततिलका छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

शालिवाहन शक के आरम्भ में छः मनु, सत्ताइस महायुग और तीन युगचरण चौथे युग के ३१७९ व्यतीत हुए हैं । ये सब मिल कर १९७२९४७१७९ इतने वर्ष होते हैं । इनमें शकवर्षों को जोड़

देने से वर्तमान समय में ब्रह्मदिन के आरम्भ से गत सौरवर्ष की संख्या होती है।

स्वायम्भुव नामक प्रथम मनु प्रकट हुए थे। उनके बाद स्वारोचिष, उत्तमज, तामस, रैवत और छठें चाक्षुष नामक मनु हुए। इस समय पृथिवी में प्रसिद्ध वैवस्वत नामक सातवें मनु का काल प्रचलित है।

उपपत्ति।

एकहत्तर महायुगों का एक मनुमान होता है। इसकारण—

मनुमान=७१×४३२००००=३०६७२०००० ।

छगुना मनुमान=१८४०३२०००० ।

इसमें कृतवर्षों को सात से गुणाकर जोड़ने से वर्तमान काल में वास्तव मनुमान होगा। इसप्रकार—

कृतमान = १७२८००० × ७ = १२०९६००० ।

छः मनु = १८४०३२००००

+१२०९६०००

वास्तवमनु = १८५२४१६०००

२७ महायुग = ४३२०००० × २७ = ११६६४०००० ।

इस महायुग की संख्या को वास्तवमनु के मान में जोड़कर कृत आदि तीनों युगचरणों को जोड़ने से निम्न लिखित संख्या हुई—

१९६९०५६०००

+३८८८०००

१९७२९४४०००

इसमें शकारम्भ काल के गत कलिवर्ष ३१७९ जोड़ने से—

१९७२९४४०००

+३१७९

१९७२९४७१७९

इसप्रकार 'गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्क–' आदि संख्या उत्पन्न हुई । यह कल्पादि से शक वर्ष के आरम्भ तक गत-सौरवर्ष का मान सिद्ध हुआ ॥ २८–२९ ॥

इदानीं बार्हस्पत्यं मानुषमानं चाह—

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात्
संवत्सरं सांहितिका वदन्ति ।
ज्ञेयं विमिश्रं तु मनुष्यमानं
मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः ॥ ३० ॥
वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्
मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् ।
यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं
तत्सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात् ॥ ३१ ॥

पूर्वश्लोके पूर्वार्धं सुगमम् । मनुष्यमानं तु विमिश्रं ज्ञेयम् । कुतः । यतो लोके चतुर्भिरेव मानैर्व्यवहारः प्रवर्तते । वर्षायनर्तुयुगादिकं सौरमानात् प्रवर्तते लोके । मासास्तिथयश्च चान्द्रात् । व्रतोपवासचिकित्सितसूतकवासराद्यर्कसावनात् । घटिकादिकं नाक्षत्रादेव । एवं सौरचान्द्रसावननाक्षत्रमानैश्चतुर्भिरेभिर्मिश्रितैर्मनुष्यमानम् ।

प्रभा ।

मध्यममानेन यो राशिभोगकालस्तं संवत्सरं बार्हस्पत्याब्दं सांहितिकाः संहिताकर्तारो वसिष्ठप्रमुखा वदन्ति । अतएव वसिष्ठसिद्धान्ते 'मध्यगत्या भभोगेन गुरोर्गौरववत्सराः ।' गुरोर्भगणभोगकालादेव विजयादिषष्टिसंवत्सरा गण्यन्ते । तेषामानयनं सूर्यसिद्धान्ते यथा—

'द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः ।
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्या स्युर्विजयादयः ॥' इति

चतुर्भिर्मानैः सौरचान्द्रसावननाक्षत्रैर्विमिश्रं मिश्रितं संयुक्तं

यत्कालमानं तन्मनुष्यमानं ज्ञेयम् । चतुर्मानात्मकमेकं मनुष्यमान-मित्यर्थः । कृच्छ्रं चान्द्रायणव्रतम् । सूतकं जननमरणाशौचं धर्मशास्त्रोक्तम् । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

संहितास्कन्ध के ज्ञाता, बृहस्पति के मध्यम-मान से राशिभोग-काल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। लोक में व्यवहार के लिए सौर, चान्द्र, सावन और नाक्षत्र इन चार मानों को मिलाकर एक मानुष-मान की कल्पना जाननी चाहिए।

वर्ष, अयन, ऋतु और युग आदि सौरमान से और मास, तिथि की चान्द्रमान से गणना होती है । व्रत, संस्कारकर्म सावनमान से और चिकित्सा नाक्षत्रमान से जानना चाहिए ॥ ३०–३१ ॥

इदानीं मानोपसंहारश्लोकमाह—

* एवं पृथङ्मानवदैवजैव-
पैत्रार्क्षसौरैन्दवसावनानि ।
ब्राह्मं च काले नवमं प्रमाणं
ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात् ॥ ३२॥

एवं कालस्य नवमानानि+ । तत्र ग्रहानयनं मनुष्य-मानात् । यतस्ते मनुष्यैः साध्याः ।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणौ
कालमानाध्यायः ।

---

* विजय आदि साठ संवत्सर गुरु के राशिभोग से उत्पन्न होते हैं। उनका साधन सूर्यसिद्धान्त में 'द्वादशघ्ना:–' इत्यादि विधि से ऊपर प्रभा में लिखा है।

\+ सूर्यसिद्धान्त में भी—

'ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥'

इस प्रकार नव मान ही लिखे हैं। परन्तु श्रीपति ने दशवाँ आसुरमान भी लिखा है, वह आर्षविरुद्ध है।

प्रभा ।

अयमर्थः । यथा धान्यराशिर्द्रोणाढकादिमानैर्मीयते तथा महाकल्पावच्छिन्नः कालराशिर्नवमानैरेभिः पृथक् पृथक् मीयते । एवं कालपरिच्छेदार्थमृषिभिर्मानव्यवस्था कृतेत्यर्थः । स्वमानात् मनुष्यमानादित्यर्थः ।

इति प्रभायां कालमानाध्यायः ।

भाषाभाष्य ।

इसप्रकार अलग अलग मानव, दैव, बार्हस्पत्य, पैत्र्य, नाक्षत्र, सौर, चान्द्र, सावन और ब्राह्म ये नव प्रकार के मान कहे हैं । मनुष्यों को ग्रहसाधन मनुष्य-मान से करना चाहिए ॥ ३२ ॥

कालमानाध्याय समाप्त ।

अथेदानीं ग्रहाणां मन्दोच्चानां चलोच्चानां ग्रहपातानां च भगणान् श्लोकषट्केनाह—

अर्कशुक्रबुधपर्यया विधे-
रह्नि कोटिगुणिता रदाब्धयः ४३२००००००० ।
एत एव शनिजीवभूभुवां
कीर्त्तिताश्च गणकैश्चलोच्चजाः ॥ १ ॥

खाभ्रखाभ्रगगनामरेन्द्रिय-
क्ष्माधराद्रिविषया ५७७५३३००००० हिमद्युतेः ।
युग्मयुग्मशरनागलोचन-
व्यालषण्नवयमाश्विनोऽ२२९६८२८५२२स्सृजः ॥ २ ॥

सिन्धुसिन्धुरनवाष्टगोऽङ्कषट्-
त्र्यङ्कसप्तशशिनो १७३६६९८६८४ ज्ञशीघ्रजाः ।
पञ्चपञ्चयुगषट्कलोचन-
द्व्यब्धिषड्गुणमिता ३६४२२६४५५ गुरोर्मताः ॥ ३ ॥

द्विनन्दवेदाङ्कगजाग्निलोचन-
द्विशून्यशैलाः ७०२२३८९४९२ सितशीघ्रपर्ययाः ।
भुजङ्गनन्दद्विनगाङ्गबाणषट्
कृतेन्दवः १४६५६७२९८ सूर्यसुतस्य पर्ययाः ॥ ४ ॥

खाष्टाब्धयो ४८० ऽष्टाक्षगजेषुदिग्द्विप—
द्विपाब्धयो ४८८१०५८५८ द्व्यङ्कयमा २९२ रदाग्नयः ३३२ ।
शरेष्विभा ८५५ स्त्र्यक्षरसाः ६५३ कुसागराः ४१
स्युः पूर्वगत्या तरणेर्मृदूच्चजाः ॥ ५ ॥

गजाष्टिभर्गाग्निरदाश्विनः २३२३११६८ कुम्भ-
द्रसाश्विनः २६७ कुद्विशराः ५२१ क्रमस्त्वः ६३ ।

त्रिनन्दनागा ८९३ युगकुञ्जरेषवो ५८४
निशाकराद्ब्यस्तगपातपर्यया: ॥ ६ ॥

ग्रहाणां पूर्वगत्या गच्छतां कल्प एतावन्तो भगणा भवन्ति । तथा मन्दोच्चानां चलोच्चानां च प्राग्गत्या एतावन्तः पर्यया भवन्ति । तथा पातानां पश्चिमगत्या एतावन्तो भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिः । सा तु तत्तद्भाषाकुशलेन तत्तत्क्षेत्र-संस्थानज्ञेन श्रुतगोलेनैव श्रोतुं शक्यते नान्येन। ग्रहमन्द-शीघ्रोच्चपाताः स्वस्वमार्गेषु गच्छन्त एतावतः पर्ययान् कल्पे कुर्वन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम् । स चागमो महता कालेन लेखकाध्यापकाध्येतृदोषैर्बहुधा जातस्तदा कतमस्य प्रामाण्यम् । अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम् । उपपत्त्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः । तदपि न । यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषे-णोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते । न तया तेषां भगणानामि-यत्ता कर्तुं शक्यते । पुरुषायुषोऽल्पत्वात् । उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः । भगणान्तं यावत् । एवं शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्यते । मन्दो-च्चानां तु वर्षशतैरनेकैः । अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति । अत एवातिप्राज्ञा गणकाः सांप्रतिकोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढगणकस्वीकृतं कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथा-न्यैर्भ्रान्तिज्ञानेनान्यथोदितानर्थांश्च निराकर्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति । ग्रहगणित इति कर्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनीयं भवत्वागमो योऽपि कोऽप्ययमाशयस्ते-

षाम् । यथाऽत्र ग्रन्थे ब्रह्मगुप्तस्वीकृतागमोऽङ्गीकृत इति । तर्हि तिष्ठतु तावदुपपत्त्या भगणानामियत्तासाधनम् । अथ यद्युपपत्तिरुच्यते तर्हि इतरेतराश्रयदोषशङ्कया वक्तुमशक्या । तथापि संक्षिप्तामुपपत्तिं वक्ष्यामः । इतरेतराश्रयदोषोऽत्र दोषाभासः । उपपत्तिभेदानां यौगपद्येन वक्तुमशक्यत्वात् ।

अथोच्यते । अर्कशुक्रबुधपर्यया विधेरित्यादि । यावन्ति कल्पे वर्षाणि तावन्त एव सूर्यभगणा इत्युपपन्नम् । यतो भगणभोगकालो हि वर्षमुक्तम् । बुधशुक्रौ तु रवेरासन्नावेव कदाचिदग्रतः कदाचित्पृष्ठतस्तस्यानुचराविव सदा व्रजन्तौ दृश्येते । अतस्तयोरपि रविभगणतुल्या भगणा इत्युपपन्नम् । चलोच्चभगणोपपत्तिमग्रे वक्ष्यामः ।

अथ समायां भूमावभीष्टकर्कटकेन त्रिज्यामिताङ्कैरङ्कितेन वृत्तं दिगङ्कितं भगणांशैश्चाङ्कितं कृत्वा तत्र प्राचीचिह्नाद्दक्षिणतो नातिदूरे प्रदेश उत्तरेऽथवा वृत्तमध्यस्थितेन कीलेन रवेरुदयो वेध्यः । ततोऽनन्तरं वर्षमेकं रव्युदया गणनीयाः । ते च पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रय ३६५ तुल्या भवन्ति । तत्रान्तिमोदयः पूर्वोदयस्थानादासन्नो दक्षिणत एव भवति । तयोरन्तरं विगणय्य ग्राह्यम् । ततोऽन्यस्मिन् दिने पुनरुदयो वेध्यः । स तु पूर्वचिह्नादुत्तरत एव भवति । तदप्युत्तरमन्तरं ग्राह्यम् । ततोऽनुपातः । यद्यन्तरद्वितयकलाभिरेकीकृताभिः षष्टि ६० घटिका लभ्यन्ते तदा दक्षिणेनान्तरेण किमिति । अत्र लभ्यन्ते पञ्चदशघटिकास्त्रिंशत् पलानि सार्धानि द्वाविंशतिर्विपलानि १५ । ३० । २२ । ३० । आभिर्घटीभिः

सहितानि पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रयतुल्यानि सावनदिनान्येकस्मिन् रव्यब्दे भवन्ति ३६५।१५।३०।२२।३०। ततोऽनुपातः । यद्येकेन वर्षेणैतावन्ति कुदिनानि तदा कल्पवर्षैः किमिति । एवं ये लभ्यन्ते ते सावनदिवसा भवन्ति कल्पे । अथ तैरेव रवेर्वर्षान्तःपातिभिः कुदिनैश्चक्रकला लभ्यन्ते तदैकेन किमिति । फलं मध्यमा रविगतिरित्युपपन्नम् ।

अथ चन्द्रभगणोपपत्तिः । तत्रादौ तावद् ग्रहवेधार्थं गोलबन्धोक्तविधिना विपुलं गोलयन्त्रं कार्यम् । तत्र खगोलस्यान्तर्भगोल आधारवृत्तद्वयस्योपरि विषुवद्वृत्तम् । तत्र च यथोक्तं क्रान्तिवृत्तं भगणांशाङ्कितं च बद्ध्वा कदम्बद्वयकीलयोः प्रोतमन्यचलं ग्रहवेधवलयम् । तच्च भगणांशाङ्कितं कार्यम् । ततस्तद्गोलयन्त्रं सम्यग् ध्रुवाभिमुखयष्टिकं जलसमक्षितिजवलयं च यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलमध्यचिह्नगतया दृष्ट्या रेवतीतारां विलोक्य क्रान्तिवृत्ते यो मीनान्तस्तं रेवतीतारायां निवेश्य मध्यगतयैव दृष्ट्या चन्द्रं विलोक्य तद्वेधवलयं चन्द्रोपरि निवेश्यम् । एवंकृते सति वेधवृत्तस्य क्रान्तिवृत्तस्य च यः संपातस्तस्य मीनान्तस्य च यावदन्तरं तस्मिन् काले तावान् स्फुटचन्द्रो वेदितव्यः । क्रान्तिवृत्तस्य चन्द्रविम्बमध्यस्य च वेधवृत्ते यावदन्तरं तावांस्तस्य विक्षेपः । ततो यावतीषु रात्रिगतघटिकासु वेधः कृतस्तावतीष्वेव पुनर्द्वितीयदिने कर्तव्यः । एवं द्वितीयदिने स्फुटचन्द्रं ज्ञात्वा तयोर्यदन्तरं सा तद्दिने स्फुटा गतिः । अथ तौ चन्द्रौ स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्ये-

त्यादिना मध्यमौ कृत्वा तयोरन्तरं सा मध्यमा चन्द्रगतिः। तयाऽनुपातः। यद्येकेन दिनेनैतावती चन्द्रगतिस्तदा कुदिनैः किमित्येवं चन्द्रभगणा उत्पद्यन्ते। तथा चाह श्रीमान् ब्रह्मगुप्तः।

ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः।
त्रैराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम्॥

एवमन्येषामपि भगणोपपत्तिः।

अथ चन्द्रोच्चस्य। एवं प्रत्यहं चन्द्रवेधं कृत्वा स्फुटगतयो विलोक्याः। यस्मिन् दिने गतेः परमाल्पत्वं दृष्टं तत्र दिने मध्यम एव स्फुटचन्द्रो भवति। तदेवोच्चस्थानम्। यत उच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमाल्पत्वम्। ततश्च तस्माद्दिनादारभ्यान्यस्मिंश्चन्द्रपर्यये प्रत्यहं चन्द्रवेधात् तथैवोच्चस्थानं ज्ञेयम्। तच्च पूर्वस्थानादग्रत एव भवति। यत्तयोरन्तरं तज्ज्ञात्वानुपातः क्रियते। यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरिदमुच्चयोरन्तरं लभ्यते तदैकेन किमिति। फलं तुङ्गगतिः तयानुपातात् कल्पभगणाः।

अथ चन्द्रपातभगणोपपत्तिः। एवं प्रत्यहं चन्द्रवेधाद्दक्षिणविक्षेपे क्षीयमाणे यस्मिन् दिने विक्षेपाभावो दृष्टः क्रान्तिवृत्ते तत्स्थानं चिह्नयित्वा तत्र यावान् विधुः स भगणाच्छुद्धः पातः स्यादिति ज्ञेयम्। पुनरन्यस्मिन्नपि पर्यये दक्षिणविक्षेपाभावस्थानं ज्ञेयम्। क्रान्तिवृत्ते तत्स्थानं पूर्वस्थानात्पश्चिमत एव भवति। अतो ज्ञाता पातस्य विलोमा गतिः। सा चानुपातात्। यद्येतत्कालान्तरदिनैरेतावत् पातयोरन्तरं लभ्यते तदैकेन किमिति। फलं पातगतिः। तया प्राग्वत् कल्पभगणाः।

अथ रवितुङ्गोपपत्तिः । मिथुनस्थे रवौ कस्मिंश्चिद्दिने रेवतीतारकोदयाद्यावतीभिर्घटिकाभी रविरुदितस्तावतीभिर्मीनान्ताल्लग्नं साध्यम् । यल्लग्नं स तदा स्फुटो रविर्ज्ञेयः । एवमन्यस्मिन् दिनेऽपि । तयोः स्फुटार्कयोरन्तरं स्फुटा गतिः । एवं प्रत्यहं स्फुटगतयो ज्ञातव्याः । यस्मिन् दिने गतेः परमाल्पत्वं तद्दिने यावान् रविस्तावदेव रवेरुच्चं भवति । तस्योच्चस्य चलनं वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यते । किन्त्वाचार्यैश्चन्द्रमन्दोच्चवदनुमानात् कल्पिता गतिः । सा चैवम् । यैर्भगणैः सांप्रताहर्गणाद्वर्षगणाद्वा एतावदुच्चं भवति ते भगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिताः ।

अथान्येषां शीघ्रोच्चोपपत्तिः । तत्र एत एव शनिजीवभूसुवामित्यादि । उच्चो ह्याकर्षको भवति । तेन स्वकक्षामण्डले भ्रमन् ग्रहः स्वाभिमुखमाकृष्यते । तेनाकृष्टः सन् कक्षामण्डले मध्यग्रहादग्रतः पृष्ठतो वा यावतान्तरेण दृश्यते तावत् तस्य फलं मान्दं शैघ्र्यं वा । अहो उच्चो नाम प्रदेशविशेषस्तेन कथमाकृष्यत इति तदुच्यते । यथोक्तं सूर्यसिद्धान्ते ।

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः ।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥

इत्यादि । एवमत्रोच्चस्य देवताविशेषत्वेनाङ्गीकृतत्वाददोषः । एतदुक्तं भवति । शनेर्जीवात् कुजाद्वा यदा रविरग्रे वर्त्तते तदा मध्यग्रहात् स्फुटग्रहोऽग्रतो दृश्यते । यदा तु पृष्ठगतोऽर्कस्तदा मध्यात् स्फुटग्रहः पृष्ठतो दृश्यते ।

अतस्तेषां त्रयाणां रविसमं शीघ्रोच्चं धीरैः कल्पितम्।
अतो रविभगणतुल्याः शीघ्रोच्चभगणा इत्युपपन्नम्।

अथ मन्दोच्चोपपत्तिः। तत्र वेधेन स्फुटग्रहं ज्ञात्वा तं मन्दस्फुटं प्रकल्प्य ततः शीघ्रफलमानीय तत् तस्मिन् स्फुटे विलोमं कृत्वैवमसकृन्मन्दस्फुटो ज्ञेयः। एवं प्रत्यहं मन्दस्फुटमुपलक्ष्य स मन्दस्फुटो धनमन्दफले क्षीयमाणे यस्मिन् दिने मध्यमतुल्यो भवति तदा तत्तुल्यमेव मन्दोच्चं ज्ञेयम्। ततस्तस्माद्रविमन्दोच्चवद्भगणाः कल्प्याः। एवं सर्वेषाम्।

अथ बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चोपपत्तिः। तत्र रविशुक्रयोः पूर्वस्यां दिशि चक्रयन्त्रवेधेनान्तरभागा ज्ञेयाः। ते तयोः स्फुटयोरन्तरांशा जातास्तैः स्फुटार्काद्विशोधितैः स्फुटः शुक्रो भवति। ततः शुक्रस्य मन्दफलमानीय तत्स्फुटे शुक्रे धनर्णं व्यस्तं कार्यम्। रविश्च मध्यमः कार्यः। तयोर्यदन्तरं तच्छीघ्रफलमृणं धनं च ज्ञेयम्। एवं प्रतिदिनवेधेन तच्छीघ्रफलं परममृणं ज्ञातव्यम्। तत् तादृक् फलमर्कात् तिर्यक्स्थितेनोच्चेनाकृष्टस्य भवति। तच्च तिर्यक्स्थत्वं त्रिभान्तरितस्य स्यात्। अतस्तत्र त्रिभोनेन स्फुटशुक्रेण तुल्यं शीघ्रोच्चं ज्ञेयम्। एवं पुनरन्यस्मिन् पर्यये प्राच्यामेवान्यच्छीघ्रोच्चं ज्ञात्वानुपातः क्रियते। यद्येतत्कालान्तरदिनैस्तयोरुच्चयोरन्तरं लभ्यते तदैकेन किमिति। फलं तुङ्गगतिः। प्राग्वत् तया भगणाः। एवं बुधस्यापि।

अथ भौमादीनां वेधेन प्राग्वद्दक्षिणविक्षेपाभावस्थाने यावान् मन्दस्फुटो ग्रहश्चक्रशुद्धस्तावान् पातः। बुधशुक्रयोस्तु तदा मन्दफलव्यस्तसंस्कृतं यावच्छीघ्रोच्चं चक्रशुद्धं तावान् पातो ज्ञेयः। ततः प्राग्वद्भगणकल्पना।

प्रभा ।

विधेरह्नि कल्प इत्यर्थः । पुराणे त्रयस्त्रिंशत्कोटिमिता देवा उक्तास्तत्र प्राचीनैः कोटित्यागेन त्रयस्त्रिंशद्गृहीताः । सिन्धवः समुद्राः, सिन्धुरा गजाः । एवमग्रेऽपि । निशाकराच्चन्द्रमारभ्य चन्द्रादिषड्ग्रहाणां व्यस्तगपातपर्ययाः, व्यस्तं ग्रहगतिविपरीतं गच्छन्तीति व्यस्तगास्ते च ते पाताश्च तेषां भगणाः द्वादशराशि-भोगगणाः । पूर्वं पद्यत्रयं रथोद्धताख्यम् । चतुर्थं वंशस्थम् । पञ्चम मुपजातिः । षष्ठं वंशस्थम् ।

भाषाभाष्य ।

ब्रह्मदिन वा, कल्प में सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या इसप्रकार है:—

भगण ।	शीघ्रोच्च भगण ।
सूर्य = ४३२०००००००,	भौम = ४३२०००००००,
शुक्र = ,, ,, ,,	गुरु = ,, ,, ,,
बुध = ,, ,, ,,	शनि = ,, ,, ,,
चन्द्र = ५७७५३३००००००,	बुध =१७९३६९९८९८४,
भौम = २२९६८२८५२२,	शुक्र = ७०२२३८९४९२,
गुरु = ३६४२२९४५५,	
शनि = १४६५६७२९८,	

* * *

मन्दोच्च भगण ।	पातभगण ।
सूर्य = ४८०,	चन्द्र = २३२३११९६८,
चन्द्र = ४८८१०५८५८,	भौम = २६७,
भौम = २९२,	बुध = ५२१,
बुध = ३३२,	गुरु = ६३,
गुरु = ८५५,	शुक्र = ८९३,
शुक्र = ६५३,	शनि = ५८४,
शनि = ४१,	

(क) सूर्यादि ग्रहों का सावनदिनमान और दैनिक कलादिभोग का मान ।

(सूर्यसिद्धान्तानुसार)

सावन दिनादि ।		कलादिभोग ।	
सूर्य, बुध, शुक्र, भौमशीघ्रोच्च, गुरुशीघ्रोच्च, शनिशीघ्रोच्च	दि. घ. प. वि. = ३६५।१५।३१।३१	सूर्य, बुध, शुक्र, भौमशीघ्रोच्च, गुरुशीघ्रोच्च, शनिशीघ्रोच्च	क. वि. = ५९।८।१०।१०
बुधशीघ्रोच्च	=८७।५८।१०।५६,	बुधशीघ्रोच्च	=२४५।३२।२०।४२
शुक्रशीघ्रोच्च	=२२४।४१।५४।५१,	शुक्रशीघ्रोच्च	= ९६।७।४३।३७
भौम	= ६८६।५९।५०।५९,	भौम	= ३१।२६।२८।११
गुरु	= ४३३२।१९।१४।२१,	गुरु	= ४।५९।८।४९
शनि	= १०७६५।४६।२३।४,	शनि	= २।०।२२।५३
चन्द्र	= २७।१९।१८।२,	चन्द्र	= ७९०।३४।५२।४

उपपत्ति ।

कल्प में जितने सूर्य के वर्ष होते हैं उतनेही सूर्य के भगण होते हैं, क्योंकि सूर्य का भगण भोगकालही वर्षमान है । बुध और शुक्र, सूर्य के कभी आगे कभी पीछे सदा समीपही देखने में आया करते हैं इसलिये उनके भी भगण सूर्यभगण के समानही कल्पना किये हैं ।

समान भूतल में इष्टत्रिज्याभागाङ्कित कर्कटक (प्रकार) से वृत्त बनाकर उसे दिगङ्कित तथा ३६० अंशों से अङ्कित करना । और उस वृत्त के केन्द्रस्थान में एक दृढ़ कील का आरोपण करना । और जब सूर्य उत्तर अयन में वर्तमान हो तब पूर्वदिशा के समीप दक्षिण की

तरफ़ वृत्त केन्द्रगत कील से सूर्य का उदय वेधना (इस वेध की विशेष क्रिया पाताधिकार में लिखी है) । इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त प्रतिदिन सूर्य का वेध करते रहना। उन उदय वेधों को वृत्त की परिधि में अङ्कित करते जाना यों वे गिनने से ३६५ तीनसौ पैंसठ होते हैं । यहाँ अन्तिम तीनसौ पैंसठवाँ सूर्योदय का चिह्न पहले उदयचिह्न से हटकर कुछ दक्षिण की ओर होता है । इन उक्त दोनों चिह्नों का अन्तर गिनकर जानलेना चाहिये । फिर दूसरे दिन सूर्य का उदय वेध करना । यह उदय पहले उदयचिह्न से हटकर कुछ उत्तर की ओर होता है । इन चिह्नों का अन्तरभी गिनकर जानना । फिर अनुपात करना । यदि दोनों अन्तरों की कलाओं के योग में ६० साठ घटिका मिलती हैं तो दक्षिण अन्तर कलाओं में क्या ? यों १५।३०।२२।३० ये घटयादि अवयव प्राप्त होते हैं । इनको पूर्व प्राप्त ३६५ दिनों में जोड़ने से ३६५।१५।३०।२२।३० ये एक सौरवर्ष में सावयव सावन दिन होते हैं । फिर अनुपात—यदि एक वर्ष में ये उक्त सावन दिन प्राप्त होते हैं तो कल्पवर्षों में क्या ? यों कल्पसावन दिन ज्ञात होंगे । गति के लिये अनुपात । यदि सौरवर्षान्तर्गत सावन दिन में चक्रकला मिलती हैं तो एक सावन दिन में क्या ? इस प्रकार मध्यमगति आती है ॥

चन्द्रभगणवासना ।

ग्रहवेध करने के लिये गोलबन्धाधिकार में कहे प्रकार से एक बड़ा गोल यन्त्र बनाना और खगोलान्तरवर्ती भगोल बनाकर दो आधार-वृत्तों के सहारे विषुवद्वृत्त को बांधना और उसमें यथोक्त राशिवलय लगाना और राशिवलय के केन्द्र कदम्बस्थान में प्रोत (पोया) भगणांशों से चिह्नित वेधवलय लगाना । इस प्रकार यन्त्र का निर्माण करके उसे ठीक ध्रुवाभिमुख तथा जल समक्षितिज करके स्थिर कर देना । अनन्तर, रात्रि में गोलमध्यगत दृष्टि से रेवतीयोगतारा को

देखकर राशिवलय में जो मीनान्त बिन्दु है उसको रेवतीयोगतारा के सामने करना और गोलमध्यगत दृष्टि से चन्द्रको देखकर उसपर उक्त-वेधवलय को लेजाना। इस प्रकार, वेध करने से वेधवलय-राशिवलय के संपातबिन्दु से मीनान्तबिन्दु तक जो अन्तर होगा वही उस समय में स्पष्ट चन्द्र है। और राशिवलय-चन्द्रबिम्बकेन्द्र के बीच वेधवलयगत जो अन्तर होगा वही चन्द्र का शर है। जितने इष्टकाल पर यह वेध हुआ हो उतनेही इष्टपर दूसरे दिन वेध करना चाहिए। इस प्रकार, पहले दूसरे दिनके स्पष्टचन्द्रों का अन्तर चन्द्र की स्पष्टगति होगी। और 'स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्य–' इस स्पष्टाधिकारोक्त प्रकार से उन चन्द्रों को मध्यम बनाकर उनका अन्तर मध्यम चन्द्रगति होगी। फिर कल्पभगण के लिये अनुपात। यदि एक दिन में यह मध्यगति मिलती है तो कल्पकुदिनों में क्या? यों चन्द्रभगण सिद्ध होते हैं॥

चन्द्रोच्चवासना।

उक्तरीति से प्रतिदिन चन्द्रवेध करके उसकी स्पष्टगति देखनी चाहिए। जिस दिन चन्द्रगति परमन्यून उपलब्ध हो उस दिन मध्यम चन्द्रही स्पष्टचन्द्र होगा। और वही चन्द्र का उच्चस्थान है, क्योंकि जब ग्रह अपने उच्च के समान होता है तभी उसके फल का अभाव और गति की परमन्यूनता होती है। इस प्रकार प्रतिदिन चन्द्र का वेध करने से फिर उसके उच्चस्थान का ज्ञान करना। वह पहले उच्चस्थान से आगे होता है। उक्त दोनों स्थानों के अन्तर को जानकर अनुपात यदि वेधकालिक दिनसंख्या में यह उच्चों का अन्तर प्राप्त होता है तो एक दिन में क्या? इस प्रकार उच्चगति प्राप्त होती है उससे अनुपात-द्वारा कल्पभगण सिद्ध होंगे॥

चन्द्रपातवासना।

इस प्रकार प्रतिदिन चन्द्र का वेध करने से जब उसका दक्षिण शर

घटता मालूम हो और वह घटकर अभाव को प्राप्त हो तब राशिवलय में उस अभावस्थान को अङ्कित करके उस काल में जो राश्यादि चन्द्र होगा उसको द्वादशराशि में घटाने से शेष पात रहेगा । फिर दूसरे भगणभोग में इसीप्रकार दक्षिण शर का अभावस्थान जानना चाहिए । यह स्थान पहले स्थान से पश्चिम की ओर होता है इसीसे पात की पश्चिम अर्थात् विलोमगति ज्ञात होती है । फिर पूर्व के तुल्य अनुपात— यदि पहले दूसरे अभाव के मध्यगत दिनसंख्या में यह पातों का अन्तर प्राप्त होता है तो एक दिन में क्या ? यों पातगति, उससे कल्पभगण ॥

सूर्योच्चवासना ।

जब मिथुन का सूर्य हो उस समय किसी दिन रेवतीयोगतारा के उदय के अनन्तर जितने घट्यादिकाल में सूर्य का उदय हो उस काल से लग्नसाधन करना, वही स्पष्ट सूर्य होगा । इसी प्रकार दूसरे दिन भी स्पष्टसूर्य का ज्ञान करना । इन स्पष्टसूर्यों का अन्तर स्पष्टगति होगी । यों प्रतिदिन स्पष्टगति देखने से जिस दिन वह परमन्यून प्राप्त हो उस दिन जो राश्यादि सूर्य है वही उसका उच्च है । उच्च का चलन सैकड़ों वर्ष में मालूम होता है इसलिये आचार्यों ने उसकी गति जानने के लिये उपायान्तर किया है—जैसा १७८७ शक में कल्पगतवर्ष १९७२९४८९६६ अब सूर्यमन्दोच्चभगण का मान यावत्तावत् कल्पना करके अनुपात किया—

कल्पवर्षों में कल्पभगण तो गतवर्षों में क्या ?

यों लब्धि गत मन्दोच्च भगण होगी, उसका मान कालक

$$\frac{\text{या. गव १}}{\text{कव १}} = \text{का १}$$

हर और लब्धि के घात को भाज्य में घटाने से भगण शेष—

या. गव १ का. कव १

अंशादि फल के लिये इस शेष को ३६०ं गुणाकर ४३२०००००००० का भाग देकर जो लब्ध हुआ वह संप्रति ७८° सूर्यमन्दोच्च के समान है। इसलिये दो पक्ष—

या ७१०२६१६२७७६० का १५५५२ं००००००००
रू ३३६९६०००००००

७२० का अपवर्तन और समशोधन से

या ९८६४७४४८३ रू ४६८ं००००००
का २१६००००००

फिर स्वल्पान्तर से २२२६८०४ अपवर्तन देने से—

या ४४३ रू २१ं०
का ६७०

कुट्टक से वल्ली ०
२
५
३
१
१
१
२१०
०

इससे गुण और लब्धि ३१६/४८० यहां गुण ४८० यावत्तावत् का मान है ॥

शीघ्रोच्चवासना ।

उच्च में आकषणशक्ति है इस कारण वह अपने कक्षावृत्त में भ्रमण करते हुए ग्रहबिम्ब को अपनी तरफ़ खींचता है इसलिये वह कक्षावृत्त

में मध्यग्रह से जितनी दूर आगे पीछे दीखता है वही अन्तर मन्द-शीघ्र प्रतिवृत्त के अनुरोध से उसका मान्द तथा शीघ्रफल कहाता है । जिस समय कुज, गुरु और शनि से सूर्य आगे होता है तब मध्यग्रह से स्पष्टग्रह आगे दीखता है और इनसे सूर्य पीछे होता है तब मध्यग्रह से स्पष्टग्रह पीछे दीखता है इस कारण आचार्यों ने कुज गुरु शनि के सूर्यतुल्य शीघ्रोच्च कल्पना किये हैं ॥

मन्दोच्चवासना ।

वेध से स्पष्टग्रह जानकर उसको मन्दस्पष्ट कल्पना करके उससे शीघ्रफल लाकर उसको उस मन्दस्पष्ट में विलोमदान करना । यों असकृत्कर्मद्वारा वास्तव मन्दस्पष्ट का ज्ञान करना । वह मन्दस्पष्ट धन मन्दफल के घटते घटते जिससमय मध्यमग्रह के तुल्य उपलब्ध हो तब मध्यमग्रह ही मन्दोच्च होगा । बाद में सूर्य मन्दोच्च के तुल्य भगण की कल्पना करनी चाहिये ॥

बुध-शुक्र के शीघ्रोच्च की वासना ।

वक्ष्यमाण चक्र यन्त्र से पूर्वदिशा में सूर्य और शुक्र के अन्तरांश का ज्ञान करो, वे स्पष्ट सूर्य-शुक्र के अन्तरांश होंगे उनको स्पष्ट सूर्य में घटाने से स्पष्ट शुक्र होगा । अनन्तर, शुक्र का मन्दफल लाकर उसको स्पष्टशुक्र में विलोम धनर्ण करना, और सूर्य को मध्यम बनाना । इन दोनों का अन्तर धनर्ण शीघ्रफल होगा । इसप्रकार प्रतिदिन वेध करके ऋण परम शीघ्रफल का ज्ञान करना । वह फल सूर्य से त्रिभान्तरित उच्च से आकर्षण करने पर होता है इसलिये त्रिभोन स्पष्ट शुक्र के तुल्य शीघ्रोच्च हुआ । फिर इसीप्रकार दूसरे भगणभोग में पूर्वदिशा में शीघ्रोच्च का ज्ञान करना । अनुपात—यदि उक्तवेध कालान्तर दिनों में उन दोनों शीघ्रोच्चों का अन्तर प्राप्त होता है तो एक दिन में क्या ? यों उच्चगति मिलैगी और उससे कल्पभगण सिद्ध होंगे ॥

पात की वासना ।

कुज, गुरु और शनि का वेध करने से जब जिसका दक्षिण शराभाव स्थान निश्चित होगा तब जितना मन्दस्पष्ट चक्र शुद्ध उनमें से कोई होगा वही पात है । और बुध तथा शुक्र का विलोम मन्दफल दान करने से जितना चक्र शुद्ध शीघ्रोच्च होगा वही पात है । उसके कल्पभगण होंगे ॥ १–६ ॥

अथ भभ्रमानाह—

खखेषुवेदषड्गुणाकृतीभभूतभूमयः ।
शताहता १५८२२३६४५०००० भपश्चिमभ्रमाभवन्तिकाहनि ७

काहनि ब्रह्मदिने एतावन्तो भानां पश्चिमभ्रमा भवन्ति । अत्रोपपत्तिर्गोले समं भसूर्यात्रुदिताविल्यादिना कथिता व्याख्याता च ।

प्रभा ।

कस्य ब्रह्मणोऽहः काहस्तस्मिन् । समासान्तविधेरनित्यत्वेन राजाहःसखिभ्यष्टजित्यस्याप्राप्तिः । भपश्चिमभ्रमाः भशब्देन भचक्रावयवस्तस्य प्रत्येकं पश्चिमदिशानुक्रमेण वृत्ताकारगमनम् । प्रवहवायुकृतभचक्रपश्चिमपरिवर्त्ता इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

कल्प में नक्षत्रों के पश्चिम दिशा में भ्रमण १५८२२३६४५०००० इतने होते हैं ।

उपपत्ति ।

एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक जो काल है उसको सूर्य का सावन दिन कहते हैं । एक सूर्य सावन में सूर्यगति युक्त एक भभ्रम होता है इस प्रकार एक सौरवर्ष में सूर्य की सावनदिन संख्या और सूर्य का एक भगण, इनके योग तुल्य भभ्रम होंगे इस लिये कल्प के सूर्य सावन दिन और सूर्य के भगण का योग भभ्रम होता है ॥ ७ ॥

अथ सूर्याहांश्चान्द्राहांश्चाह—

विधिदिने दिनकृद्दिवसाः करे-

न्द्रियशरेषुभुवोऽर्बुदसंगुणाः १५५५२००००००० ।

नवनवाङ्ककराभ्ररसेन्दवः

प्रयुतसंगुणिता १६०२९९९०००००० विधुवासराः ८

अत्रोपपत्तिः । रविवर्षाणि दिनीकृतानीति सुगमम् । चन्द्रार्कयोर्यावन्तः कल्पे योगास्तावन्तः किल शशिमासाः। ते तु योगा भगणान्तरतुल्याः स्युः । उभयोरपि प्राग्गमनात् । अतो भगणान्तरतुल्याः शशिमासा भवन्ति । ते त्रिंशद्गुणाः शशिदिवसा भवन्तीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

एक ब्रह्मदिन वा कल्प में सूर्यदिन का मान १५५५२००००००० और चन्द्रदिन का मान १६०२९९९०००००० होता है ।

उपपत्ति ।

कल्प सौरवर्षों को ३६० से गुणाने से सौरदिन सिद्ध होते हैं । सूर्य और चन्द्र के भगणों के अन्तर से चान्द्रमास होता है । उस अन्तर को तीस से गुणाने से चान्द्रदिन का मान होता है ॥ ८ ॥

इदानीं कुदिनान्याह—

भूदिनानि शरवेदभूपगो-

सप्तसप्ततिथयोऽयुताहताः १५७७९१६४५०००० ।

भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता

यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा ॥ ९ ॥

एषामुपपत्तिः प्रागेवोक्ता । एकस्मिन् रविवर्षे यावन्तो भभ्रमाः स्युस्तावन्त एवैकोना रविसावनदिवसा भवन्ति। यतो रविः प्राग्गत्या एकं पर्ययं गतः। अतो भगण-

संख्ययोना भभ्रमाः कहा भवन्ति । एवमन्येषामपि ग्रहाणां कुदिनानि स्युरित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

एक कल्प में सावन दिन का प्रमाण १५७७९१६४५०००० होता है । जिस ग्रह के भगण भभ्रम संख्या में घटाये जाँय उसी के कुदिन वा, सावन दिन सिद्ध होते हैं ।

भभ्रम, भगण और सावन दिनों के योग के समान होता है । इस लिए भगणों को घटाने से सावन दिन सिद्ध होंगें । इस की उपपत्ति पहले भगणोपपत्ति में आचुकी है ॥ ९ ॥

अथाधिमासान् न्यूनाहांश्चाह—

लक्षाहता देवनवेषुचन्द्राः १५९३३००००००
कल्पेऽधिमासाः कथिताः सुधीभिः ।
दिनक्षयास्तत्र सहस्रनिघ्नाः
खबाणबाणाश्व्यहिखेषुदस्राः२५०८२५५००००॥१०॥

अत्रोपपत्तिः । अत्र प्रकृतास्तावद्रविमासास्तेभ्यश्चान्द्रमासा यावद्भिरधिकास्तेऽधिमासा उच्यन्ते । एवं प्रकृतानां सावनानां चान्द्राणां चान्तरमवमान्युच्यन्ते । सावनदिनेभ्यश्चान्द्राहा यावद्भिरधिकास्ते दिनक्षयाः । अतस्तेषामन्तरमेतावद्भवतीत्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

अधिको मास इत्यधिमास इत्यन्वर्थसंज्ञया मासानां चान्द्रत्वाच्चाधिकश्चान्द्रो मासोधिकमासपदवाच्यः ।

भाषाभाष्य ।

एक कल्प में अधिमास का मान १५९३३००००० होता है। और अवम का मान २५०८२५५०००० होता है। उपपत्ति स्पष्ट है ॥१०॥

इदानीमधिमासेन्दुदिनावमानि प्रकारान्तरेणाह—

रवेः कोटिनिघ्नाः कृताष्टेन्दुबाणाः ५१८४००००००

सुराग्न्यग्धिरामेषवो लक्षनिघ्नाः ५३४३३३००००० ।

शशाङ्कस्य मासाः पृथक् सूर्यमासै-

र्विहीनास्तु कल्पेऽथ वा तेऽधिमासाः ॥ ११ ॥

अधिदिनैर्दिनकृद्दिनसंचयः

सहित इन्दुदिनान्यथ तानि वा ।

विरहितानि च तानि दिनक्षयैः

क्षितिदिनान्यत उत्क्रमतोऽपरम् ॥ १२ ॥

एवमनया वासनया पठितार्कचन्द्रमासान्तरमधिमासाः । किं पाठेनेति वाशब्दार्थः । एवमधिमासदिनैः सहिताः सौराहाश्चान्द्राहा भवन्ति । किं तत्पाठेन वा । तेऽवमैरूनाः कहाः स्युर्वा ।

प्रभा ।

पूर्वश्लोकः स्फुटः । अधिदिनैस्त्रिंशद्गुणिताधिमासैरित्यर्थः । दिनकृद्दिनसंचयः सौरदिनसमूहः । तानि चन्द्रदिनानि सिध्यन्ति । अतोऽधिदिनानां सौरचान्द्रदिनान्तरत्वमुक्तम् । तानि चन्द्रदिनानि दिनक्षयैर्विरहितानि शेषं क्षितिदिनानि सौरसावनदिनानि । एतेन तदन्तरे दिनक्षया इति प्रतिपादितम् । उत्क्रमतोऽपरं साध्यम् । तद्यथा । चन्द्रदिनान्यधिदिनैरूनानि सौरदिनानि । सावनदिनानि दिनक्षयैर्युक्तानि चान्द्रदिनानि च भवन्ति । द्रुतविलम्बितं छन्दो नाम ।

भाषाभाष्य ।

अब प्रकारान्तर से अधिमास, चान्द्रदिन और अवम का साधन कहते हैं—रविमास के मान ५१८४०००००० में चान्द्रमास ५३४३३३००००० अलग घटाने से कल्प में अधिमास का मान सिद्ध होता है ।

अधिमास को तीस से गुणने पर अधिदिन होते हैं । अधिदिनों को रविदिन में जोड़ने से चान्द्रदिन होते हैं । चान्द्रदिन में अवम घटाने से कुदिन वा सावनदिन होते हैं । इसीप्रकार विलोमविधि से सौर और चान्द्रदिन सिद्ध होते हैं । अर्थात् चान्द्रदिनों में अधिदिन घटाने से सौर दिन और सावन दिनों में अवम जोड़ने से चान्द्रदिन होते हैं ॥ ११–१२ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण चान्द्रमासान् दिनक्षयांश्चाह—

अन्तरं तरणिचन्द्रचक्रजं
यद्भवेत् स विधुमाससंचयः ।
चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं
चन्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः ॥ १३ ॥

पूर्वार्धस्य वासना प्रागेवोक्ता । अथ चन्द्रचक्रदिनैक्ये चन्द्रमासभदिनैक्येन वर्जिते क्षयाहाः स्युः ।

अत्र वासना । चन्द्रभगणा रविभगणैरूनाश्चन्द्रमासाः स्युः । अतो विपर्ययाच्चन्द्रमासोनाश्चन्द्रभगणा रविभगणा भवन्ति । तैरूना भभ्रमाः सावनदिवसा भवन्ति । तैरूनाश्चान्द्राहाः क्षयाहा भवन्ति । एतद्व्यक्तस्थित्या लिख्यते । चंभा १ चंभ १ । एते किल रविभगणाः । एभिरूना भभ्रमाः संशोध्यमानमृणं धनं भवतीति जाताः सावनाः । चंभा १ भभ्रमाः १ चंभ १ एभिरूनाश्चान्द्राहा जाताः चभ १ चंदि १ चंभा १ भभ्र १ । एवं क्षयाहा भवन्तीत्युपपन्नम् । एतच्छिष्याणां धनर्णयोगवियोगकौशलार्थं दर्शितम् ।

भाषाभाष्य ।

सूर्यभगण और चन्द्रभगणों का अन्तर चान्द्रमास होता है ।

चन्द्रभगण और चान्द्रदिन के योग में चान्द्रमास और नाक्षत्रदिन के योग को घटा देने से शेष अवम रहता है ।

उपपत्ति ।

चन्द्रभगणों में रविभगणों को घटाने से चन्द्रमास होते हैं । चन्द्रमास=चंभ–रभ ।

∴ चंभ–चंमा=रविभगण । भभ्रम में रविभगण घटाने से सावनदिन होते हैं । भभ्र–रभ=सावनदिन । चान्द्रदिन में सावनदिन घटाने से अवम सिद्ध होते हैं ।

अवम=चंदि–भभ्र+चंभ–चंमा ।

∴ (चंभ+चंदि) – (चंमा+भभ्र) = अवम । 'चन्द्रचक्रदिवसैक्यम्–' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ ॥ १३ ॥

इदानीमन्यदाह–

इन्दुमण्डलगुणेन्दु १३ संगुण–
ब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासकाः ।
खेचरोच्चभगणान्तरोन्मिताः
सन्ति मन्दचलकेन्द्रपर्यया: ॥ १४ ॥

अत्रोपपत्तिः । चन्द्रभगणा रविभगणोनाश्चन्द्रमासा भवन्ति। तेऽधिमासज्ञानार्थं रविमासोनाः कार्याः । रविमासास्तु द्वादशगुणितै रविभगणैर्भवन्ति । पूर्वमेकगुणैरूना इदानीं द्वादशगुणैश्च । अतस्त्रयोदशगुणै रविभगणैरूनाश्चन्द्रभगणा अधिमासा भवन्तीत्युपपन्नम् । उत्तरार्धेन केन्द्रस्वरूपमुक्तम् ।

इति भगणाध्यायः ।

प्रभा ।

क्रान्तिवृत्ते द्वादशराशीनां सत्त्वान्मण्डलचक्रादिपदेन लक्षणया

भगणा गृह्यन्ते । ब्रध्नः सूर्यः । भास्कराहस्करब्रध्नेत्यभिधानात् । खेचरोच्चेति । ग्रहभगणोच्चभगणान्तरमिताः मन्दचलकेन्द्रपर्ययाः सन्ति । अयमर्थः । ग्रहमन्दोच्चभगणयोरन्तरे मन्दकेन्द्रभगणाः । ग्रहशीघ्रोच्चभगणयोरन्तरे शीघ्रकेन्द्रभगणाभवन्तीति।रथोद्धता छन्दः।

इति प्रभायां भगणाध्यायः ।

भाषाभाष्य ।

चन्द्रभगण और त्रयोदशगुणित रविभगणों के अन्तर में अधिमास होते हैं । ग्रहभगण और मन्द किंवा शीघ्रोच्च भगणों के अन्तर से, मन्दकेन्द्रभगण वा शीघ्रकेन्द्रभगण सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

चन्द्रभगणों में रविभगणों को घटाने से चन्द्रमास होते हैं । चन्द्रमास=चंभ−रभ । चन्द्रमास−रविमास =अधिमास । रविमास = १२×रविभगण । पूर्व एकगुणित रविभगण चन्द्रभगणों में घटाया था ।

∴ चन्द्रभगण−रविभगण−१२ रविभगण । रविभगणों का योग करने पर, अधिमास=चन्द्रभगण−१३ रविभगण । इसप्रकार 'इन्दुमण्डल—' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ १४ ॥

भाषाभाष्य में भगणाध्याय समाप्त ।

इदानीमहर्गणानयनमाह—

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
  रविगुणो गतमाससमन्वितः ।
खदहनै ३० र्गुणितास्तिथिसंयुतः
  पृथगतोऽधिकमास १५९३३००००० समाहतात् ॥१॥
रविदिना १५५५२०००००००० प्तगताधिकमासकैः
  कृतदिनैः सहितो द्युगणो विधोः ।
पृथगतः पठितावम २५०८२५५०००० संगुणा-
  द्विधुदिना १६०२९९९०००००० प्तगतावमवर्जितः॥२॥
भवति भास्करवासरपूर्वको
  दिनगणो रविमध्यमसावनः ।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो
  द्युघटिकादिकमत्र न गृह्यते ॥ ३ ॥

स्पष्टम् ।

अत्र वासना । कल्पगताब्दा द्वादशगुणिता रविमासा जातास्ते चैत्रादिगतचान्द्रतुल्यैः सौरैरेव युतास्त्रिंशद्गुणा इष्टमासप्रतिपदादिगततिथितुल्यैः सौरैरेव दिनैर्युताः । एवं ते सौरा जातास्तेभ्यः पृथक् स्थितेभ्योऽधिमासा-नयनं त्रैराशिकेन । यदि कल्पसौरदिनैः कल्पाधिमासा लभ्यन्ते तदैभिः किमिति । फलं गताधिमासाः । तैर्दिनी-कृतैः पृथक् स्थितः सौराहर्गणः सहितश्चान्द्रो भवति । यतः सौरचान्द्रान्तरमधिमासदिनान्येव । अथ चान्द्राद्-द्युगणादवमानयनं त्रैराशिकेन । यदि कल्पचान्द्राहैः कल्पावमानि लभ्यन्ते तदैभिः किमिति । फलं गताव-मानि । तैरूनश्चान्द्रोऽहर्गणोऽतः कर्तव्यः । यतः सावन-चान्द्रान्तरेऽवमान्येव । एवंकृते सति रवेर्मध्यमः साव-

नाहर्गणो भवति । न स्फुटः । मध्यमस्फुटाहर्गणयोर्भेदो गोले कथितः । स चाहर्गणोऽर्कादिः । यतः कल्पादौ रविवासरः । अत्राऽधिमासानयनेऽधिमासशेषमनष्टं स्थाप्यम् । न पुनस्तस्माद्दिनाद्यवयवा ग्राह्याः । एवमवमशेषमपि । न तस्माद् घटिकादिकं ग्राह्यम् । नन्वनुपातः सावयवो भवति कुतस्तदवयवा न ग्राह्याः । तत्कारणं गोले कथितं व्याख्यातञ्च ।

प्रभा ।

अथानन्तर्यं कथितकल्पगतः गोद्रीन्द्वद्रीत्यादिकल्पगतकालः । अर्कसमागणः सौरवर्षसमूहः । विधोर्द्युगणः कल्पादिमारभ्येष्टतिथ्यवधिश्चान्द्राहर्गणो भवति । ततश्चावमोनश्चान्द्राहर्गणः सावनाहर्गणो भवति । सूर्यवारादिगणनया गतवारो भवति । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

पूर्वसाधित कल्पगत सौर वर्षों की संख्या को बारह से गुणाकर उसमें गत चान्द्रमासों को जोड़ना । योगफल को तीस से गुणाकर गत तिथियों को जोड़ने से रविदिन होंगे । इन रविदिनों को अलग कल्पाधिमास से गुणाकर कल्प के रविदिन का भाग देने से, फल गत-अधिमास होंगे । शेष को छोड़ देना । इन अधिमासों को तीस से गुणाकर, फल को पूर्वसाधित रविदिनों में जोड़ने से इष्ट चान्द्रदिन होंगे । इन चान्द्रदिनों को अलग स्थापित करके कल्पावम से गुणाकर कल्पचान्द्रदिन का भाग देने से शेष को छोड़कर, फल अवम होंगे । इस अवम को पूर्वसाधित इष्ट चान्द्रदिनों में घटाने से शेष रविवारादि मध्यम सावनाहर्गण होता है ।

उपपत्ति ।

ग्रहचारप्रवृत्तिसमय अर्थात् कल्पादि से लेकर इष्टदिन तक रवि

सावनदिनों के समुदाय को यहाँ अहर्गण कहते हैं। ग्रहानयन में अहर्गण का प्रयोजन पड़ता है इसलिए उसका साधन दिखलाते हैं।

अनुपात—एक वर्ष में बारह मास होते हैं तो सौरवर्षों में क्या? यों कल्प के गत वर्षों को बारह से गुणा तो वे रविमास हुए। फिर चैत्रादि से लेकर इष्टदिन तक जितने मास गत हों उनको सौर मानकर जोड़ दिया और फल को तीस ३० से गुणाकर इष्ट मास की जितनी गत तिथियां हों उनको सौर मानकर जोड़ दिया। इसप्रकार, सौर दिनों का समुदाय सिद्ध हुआ। इससे अधिमास का आनयन किया—

$$\text{कल्पसौरदिन} : \text{कल्पाधिमास} :: \text{इष्टसौरदिन} : \frac{\text{कधि} \times \text{इसौ}}{\text{कसौ}} = \text{इष्टाधि-}$$

मास। फलगत-अधिमास आया, उसको दिन बनाकर, पूर्वसाधित सौराहर्गण में जोड़ने से चान्द्रअहर्गण हुआ। क्योंकि सौर और चान्द्र के बीच में अधिमास दिन रहते हैं। अब चान्द्राहर्गण से अवम का साधन किया।

$$\text{कल्पचान्द्रदिन} : \text{कल्पावम} :: \text{इष्टचान्द्रदिन} : \frac{\text{कव} \times \text{इचां}}{\text{कचां}} = \text{इष्टावम}$$ ।

लब्ध अवमों को चान्द्राहर्गण में घटा देने से मध्यम सावन-अहर्गण हुआ। कल्पादि में रविवार होने से रविवारादि अहर्गण होता है।

अनुपात के सावयव होने से यहां अधिशेष और अवमशेष को छोड़ना उपपत्तिविरुद्ध है। परन्तु इसका कारण गोलाध्याय में 'दर्शावधिश्चान्द्रमसोहिमासः—' इत्यादि श्लोक से जानना चाहिये॥ १-३॥

इदानीं ग्रहानयनमाह—

द्युचरचक्रहतो दिनसंचयः
कहहृतो भगणादि फलं ग्रहः।
दशशिरःपुरि मध्यमभास्करे
क्षितिजसंनिधिगे सति मध्यमः॥ ४॥

अहर्गणे भगणगुणे कहृते मध्यमो ग्रहो भवति । स च लङ्कायां मध्यमे रवौ क्षितिजासन्ने कदाचिदूर्ध्वस्थे कदाचिदधःस्थिते भवतीति ज्ञेयम् । तत्कारणं गोले कथितं व्याख्यातं च ।

प्रभा ।

युचरपदमुच्चपातबोधकमपि । कल्पे येषां भगणा उक्तास्तद्भगणैर्गुणितोहर्गणः कल्परविकुदिनभक्तः फलं भगणादिविकलान्तं ग्रहो भवति । दशशिरःपुरि लङ्काभूगर्भदेशे । क्षितिजसन्निधिगे मध्यमसूर्योदयप्रागपरकालतत्काले वा मध्यमा ग्रहा भवन्ति । अनेन वक्ष्यमाणोदयान्तरसंस्कारावश्यकत्वं सूचितम् ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहों के कल्पभगणों को अहर्गण से गुणाकर, कल्पकुदिनों का भाग देने से फल लङ्का के मध्यम-सूर्योदय काल में क्षितिज के आसन्न में भगणादि ग्रह होते हैं ।

अनुपात किया—यदि कल्पकुदिनों में कल्पभगण तो अहर्गण में क्या ?

$$\text{भगणादिग्रह} = \frac{\text{कभ} \times \text{अह}}{\text{ककु}} \text{ ।}$$

इसप्रकार साधित ग्रह लङ्का-गर्भक्षितिज के समीप प्रदेश में मध्यम होते हैं । वास्तविक गर्भक्षितिज के सिद्ध करने के लिये उदयान्तर-संस्कार का निरूपण आचार्य ने आगे किया है ॥ ४ ॥

इदानीं ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रमाह—

कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वै-१३१४९००००००

र्न्यूनाहशेषे विहृते लवाद्यम् ।

रविघ्नतिथ्याढ्यमनेन युक्तो

रविर्विधुः स्याद्विधुरूनितोऽर्कः ॥ ५ ॥

अस्योपपत्तिः । चन्द्रार्कयोरन्तरभागैर्द्वादशभिरेकैका तिथिर्भवति । अतस्तिथयो द्वादशगुणास्तयोरन्तरभागा भवन्ति । ते यदि रवौ क्षिप्यन्ते तदा शशी स्यात् । यदि शशिनः शोध्यन्ते तदार्कः स्यात् । इति युक्तमुक्तम् । किन्त्वेवं तिथ्यन्ते भवति । अथ चन्द्र औदयिकः साध्यः । तत्र तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषं वर्तते । तच्च सावनम् । तस्य सावनत्वं गोले प्रतिपादितम् । तच्चानुपातेन चान्द्रं कार्यम् । यदि कल्पकुदिनैः कल्पचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदावमशेषान्तःपातिभिः कुदिनैः किमिति । पूर्वमवमशेषस्य चान्द्रदिनानि भागहारः इदानीं तानि गुणकारः । तुल्यत्वात्तयोर्गुणकभाजकयोर्नाशे कृते कुदिनानि भागहारः । फलं चन्द्रदिनात्मकं भवति । तद्द्वादशगुणितमंशात्मकं भवति । अतो द्वादशभिः कुदिनानामपवर्ते कृते खाभ्रबाणगिरिरामख त्रिशक्रविश्वमितो भागहार उत्पन्नः । तत्र लाघवार्थमाद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहारः पठितः । यतस्तथाकृत एकापि विकला नान्तरं भवति । अतस्तैश्च भागैर्युतोऽर्कः शशी स्यादित्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

न्यूनाहशेषे अवमशेषे । अहर्गणानयने गतावमे प्राप्ते यच्छेषं तस्मिन्नित्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण के साधन में जो अवम शेष था उसमें १३१४६००००००० इसका भाग देकर अंशादि फल सिद्ध करना । फिर तिथियों को बारह से गुणा कर, इस साधित अंशादि में जोड़ना । योगफल को चन्द्रमा में घटाने से सूर्य और सूर्य में जोड़ने से चन्द्रमा सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

सूर्य और चन्द्र के द्वादश अन्तरांशों में एक तिथि होती है । इस कारण तिथियों को बारह से गुणाने से सूर्य और चन्द्र के अन्तरांश सिद्ध होते हैं । इन अन्तरांशों को सूर्य में जोड़ने से चन्द्र होता है और चन्द्र में घटाने से सूर्य होता है । परन्तु यह स्थिति तिथ्यन्त में होती है । उदय में करने के लिए चन्द्र को उदयकाल में सिद्ध करना आवश्यक है । तिथ्यन्त और उदयकाल के मध्य में अवम शेष रहता है वह सावन है । उसको चान्द्र करने के लिए अनुपात :—

$$\text{कल्पकु} : \text{कल्पचां} :: \text{अवशे} : = \frac{\text{कचां} \times \text{अवशे}}{\text{ककु}} ।$$

$$\text{परन्तु अहर्गण सावन में, अवमशेष} = \frac{\text{अवशे}}{\text{कचां}} ,$$

$$\therefore \frac{\text{अवशे}}{\text{कचां}} \times \frac{\text{कचां} \times १२}{\text{ककु} (१५७७९१६४०००)}$$

$$= \frac{\text{अवशे}}{१३१४९३०३७५००} = \frac{\text{अवशे}}{१३१४९००००००००}$$

यहां भाजक के स्थान में '१३१४९' इस संख्या को कोटिगुणित माना है । क्योंकि फल में कुछ अन्तर नहीं पड़ता । इसप्रकार जो अंशात्मक फल सिद्ध होगा उसको सूर्य में जोड़ने से चन्द्र और चन्द्र में घटाने से सूर्य सिद्ध होता है । शेष वासनाभाष्य में स्पष्ट है ॥ ५ ॥

इदानीमधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनमाह—

कोट्याहतैर्यद्भवभै २७११००००००० रवाप्तं
न्यूनाहशेषे विहृते कलाद्यम् ।
तत्स्याद्धनाख्यं तरणेर्विधोस्तत्
त्रिभूहतं स्वेषुगुणांशयुक् स्वम् ॥ ६ ॥

चैत्रादियातास्तिथयः पृथक्स्था
विश्वैर्हताः सूर्यविधू लवाद्यौ ।
तौ चाधिशेषाच्छशिमासलब्ध्या
हीनौ युतौ स्वस्वधनाह्वयाभ्याम् ॥ ७ ॥

अवमशेषाद्भवभैः कोटिगुणैर्भक्ताद्यल्लब्धं कलाद्यं तद्रवेर्धनसंज्ञं भवति । तदेव फलं त्रयोदशगुणं स्वकीयेन पञ्चत्रिंशदंशेन युतं विधोर्धनसंज्ञं भवति । अथ चैत्रादिगतास्तिथयो द्विः स्थाप्याः । द्वितीयस्थाने विश्व १३ गुणास्तावंशात्मकौ रविचन्द्रौ भवतः । परमधिमासशेषाच्छशिमासभक्ताद्यत्फलं तेन द्वावप्यूनीकृतौ । तथा स्वस्वफलेन धनाख्येन युक्तौ कृतौ ।

अथोपपत्तिः । रविवर्षान्ताद्यावन्तोऽर्कदिवसा गतास्तावन्तोऽर्कभागाः किल भवन्ति । ते कियन्त इति न ज्ञायन्ते । रविवर्षान्तोऽपि न ज्ञायते । अतश्चैत्रादेर्गतास्तिथयो यावन्तस्तावन्त एव सौराहाः कल्पिताः । यथाहर्गणानयने स एव भागात्मको रविः । असौ पृथक् विश्वगुणः कृतः । यतस्ताभिरेव द्वादशगुणाभिस्तिथिभिर्युक्तः कर्त्तव्यः । तिथौ तिथौ हि रविचन्द्रान्तरं द्वादश भागाः । अथ चैत्रादिगततिथितुल्याः सौराहाः कल्पितास्तेऽधिमासशेषसंभूतैश्चान्द्रदिनैरधिका जाताः । यतो मध्यममेषसंक्रान्तिकालो रव्यब्दान्तः । तस्य चैत्रादेश्चान्तरं तिथ्यात्मकमधिमासशेषम् । यथा गोले कथितम् ।

दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक्
सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम् ।

इति । तत्तावत्सौरचान्द्रान्तरमधिकं जातम् । यथा

कल्पितचन्द्रादिनसम्बन्धि यत् सौरचान्द्रान्तरं तदप्यधिकं जातम् । तदप्यधिमासशेषसंभूतम् । एतदुक्तं भवति । अधिमासशेषात् त्रिंशद्गुणात् स्वच्छेदेन हृताद्ये लभ्यन्ते ते चान्द्राहाः । तेषां चान्द्राणां सौरकरणायानुपातः । यदि कल्पचान्द्राहैः कल्पसौराहा लभ्यन्ते तदाधिमासशेषस्थैः किमिति । पूर्वमधिमासशेषस्य त्रिंशद्गुणस्य सौराहा भागहार इति स्थितम् । इदानीं गुणकारस्तुल्यत्वात्तयो-र्नाशे कृतेऽधिमासशेषस्य चान्द्राहा भागहारः । ततः पुनर्भाज्यभाजकयोस्त्रिंशत्तापवर्त्ते कृतेऽधिमासशेषस्य चान्द्रमासा भागहारः । फलं सौराहाः । त एव भागाः । तैरूनः कल्पितोऽर्को निरन्तरः स्यात् । परं तिथ्यन्ते । असावौदयिकः कार्यः। तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषम् । तच्च सावनम् । तेन चन्द्रार्कावौदयिकौ कार्यौ । तत्रानुपातः । यदि चान्द्राहतुल्येन परमावमशेषेण रविगतिर्लभ्यते तदे-ष्टेनानेव किमिति । एवमवमशेषं रविगत्या गुणनीयं चान्द्राहैर्भाज्यम् । अत्र गुणकभाजकयो रविगत्यापवर्ते कृते भागहारे किंचित् प्रक्षिप्य कोट्याहतभवभतुल्यः सुखार्थं भागहारः कृतः । स्वल्पान्तरत्वात् । तेन भाग-हारेणावमशेषे भक्ते याः कला लभ्यन्ते ताः कला रवौ क्षेप्या इति धनसंज्ञाः । अथ चन्द्रस्य परमेऽवमशेषे चन्द्रग-तितुल्याः कला भवन्ति । अतो रविगत्या चन्द्रगतौ हृतायां स्वपञ्चत्रिंशदंशाधिकास्त्रयोदश $१३\frac{१}{३}\frac{३}{५}$ लभ्यन्ते । अतो रवेर्धनफलं त्रयोदशगुणं स्वपञ्चत्रिंशदंशाधिकं चन्द्र-स्य धनं भवतीत्युपपन्नम् । एवं स्वस्वफलेनाधिकौ तिथ्यन्त-कालिकौ चन्द्रार्कावौदयिकौ भवत इति सर्वं निरवद्यम् ।

प्रभा ।

चैत्रादियाता इति । चैत्रशुक्लादिष्टमासतिथिप्रारम्भपर्यन्तं गतास्तिथयोऽहर्गणानयने गृहीता एव ग्राह्याः । शेषं स्फुटमेव ।

भाषाभाष्य ।

अहगण के साधन में जो अवमशेष रहा है उसमें २७११०००००० इसका भाग देने से रवि का कलादि धनफल होता है । उसको तेरह से गुण कर गुणनफल का पैंतीसवाँ भाग जोड़ देने से चन्द्रमा का कलादि धनफल होगा । चैत्र के आदि से गत तिथियों का मान ही अंशादि रवि है । उन तिथियों को तेरह से गुणने से अंशादि चन्द्र होता है । अहर्गण के साधन में जो अधिमास शेष है, उसमें कल्पचान्द्र मासों का भाग देने से अंशादिफल को अलग अलग सूर्य और चन्द्र के पूर्व साधित अंशों में घटाने से, दोनों स्थानों में जो शेष रहे उसमें क्रमसे उक्त रवि और चन्द्र की धनकला को जोड़ने से मध्यम सूर्य, चन्द्र सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

तिथ्यन्त-काल और सूर्योदयकाल के मध्य में अवमशेष रहता है । अहर्गण के साधन में जो अवमशेष कल्पारम्भ से हुआ है उसके साधन का अनुपात अहर्गण के प्रसङ्ग में आचुका है । क्योंकि अहर्गण को प्रातःकाल में सिद्ध करने के लिए उसका प्रयोजन पड़ता है । परन्तु यहां पर तिथ्यन्त-काल और दूसरे दिन के सूर्योदयकाल के अन्तर में रवि और चन्द्र की गति निर्णय करने में अवमशेष का प्रयोजन पड़ा है ।

गत चान्द्रदिनों को कल्पावम से गुण कर कल्पचान्द्रदिनों का भाग देने से अवम होता है । इसलिए भागशेष में कल्पचान्द्रदिनों का भाग देने से दिनशेष में अवम मिलता है । अर्थात् वही तिथ्यन्त और

उदयकाल के मध्य में एक दिन सम्बन्धी अवम होता है। इसी अवमशेष को रवि और चन्द्र की गतियों से अलग अलग गुणाने से क्रम से दोनों का धनफल सिद्ध होता है।

$$\text{रविधनफल कलादि} = \text{रविगति} \times \frac{\text{अवशे}}{\text{कचां}} = ५९'।८''$$

$$\times \frac{\text{अवशे}}{१६०२९९९०००००००}$$ । यहां पर गुणक और भाजक में रविगति का अपवर्तन देने से आसन्न में भागहार 'कोटयाहतैर्यद्भवभैः' मान लिया, $\frac{\text{अवशे}}{२७११००००००००}$ । भाग देने से जो कला मिले वह रवि का धनफल है।

चन्द्रगति दैनिक ७९०'।३८'' और सूर्यगति दैनिक ५९'।८'' है।

$\frac{७९०'।३८''}{५९'।८''}$ अर्थात् १३ $\frac{१३}{३५}$ गुणा अधिक चन्द्र की दैनिक गति है।

$\therefore$ चन्द्रधन कलादि = रविधन कलादि $\times$ १३ $\frac{१३}{३५}$ । इस प्रकार निज धनफलों से सहित तिथ्यन्तकालिक सूर्य-चन्द्र उदयकाल के होते हैं।

चन्द्र में सूर्य घटा देने से शेष अंशों में प्रति बारह अंशों की एक तिथिसंज्ञा है। इसलिए प्रतितिथियों में चन्द्र और सूर्य का अन्तर बारह अंश माना जाता है। तिथिमान को सौरदिन के समान मान लेने से प्रतितिथि में सूर्य का एक अंश और चन्द्र का तेरह अंश बढ़ता है। इसलिए गत तिथिसंख्यक रवि-अंश और गत तिथि त्रयोदशगुणित चन्द्र का अंश लिया गया है। इसीलिए 'विश्वैर्हताः सूर्यविधू लवाद्यौ।' लिखा है।

रवि का मेष-संक्रमणकाल ही उसका वर्षारम्भ है। उस दिन से

सौरदिन का ज्ञान आवश्यक है । किन्तु चान्द्रदिनमात्र ही ज्ञात है । उसी को सौरदिन मान लिया सौर और चान्द्रमासों के अन्तर को ही अधिमास कहते हैं । अधिशेष उसके छेद कल्पसौर दिनों का भाग देने से इष्टसौरसम्बन्धी अधिशेष सिद्ध होता है । उसको अनुपात से सौर करने में कल्पसौर से गुणन और कल्पचान्द्र का भाग देना होता है । उस स्थिति में कल्पसौर तुल्य गुणक और भाजक में अपवर्तन से—

सौराधिमास $= \frac{\text{अधिशे} \times ३०}{\text{कचांदि}}$ । बाद ३० का अपवर्तन देने से कल्पचान्द्रमास हर होता है ।

$\therefore$ अधिमास $= \frac{\text{अधिशे}}{\text{कचांमा}}$ ।

यहां 'तौ चाधिशेषात्—' इत्यादि उपपन्न होता है । फल को रवि और चन्द्र के अंशों में घटाने से तिथ्यन्तकाल में ग्रह सिद्ध होते हैं । औदयिक करना हो तो 'कोटयाहतैर्यद्भवभैः—' इत्यादि से सिद्ध संस्कार करना चाहिए । इसप्रकार सब विषय उपपन्न हुआ ॥६–७॥

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह—

अर्कसावनदिवागणो हतः
स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजैः ।
खाभ्रबाणगिरिरामखत्रिगो-
शक्रविश्व १३१४९३०३७५०० विहृदाप्तराशिभिः ॥ ८॥
विवर्जितो विकर्त्तनो गृहादिको गृहादिकाः ।
ग्रहा भवन्ति वा बुधैर्विचिन्त्यमन्यदप्यतः॥९॥

अहर्गणाद् ग्रहस्य कल्पसावनदिनैर्गुणितात् खाभ्रबाण-गिरिरामखत्रिगोशक्रविश्वैर्विहृताद्यत् फलं राश्यादि तेन

राश्यादिको रविरूनोऽभीष्टो ग्रहः स्यात् । अस्मदानयन-
प्रकाराद्बुधैरन्यदपि प्रकारान्तरं विचिन्त्यम् ।

अत्रोपपत्तिः । भगणैरूना भभ्रमा ग्रहसावनदिवसा भवन्ति । तैः सावनैरूनास्ते भभ्रमा ग्रहभगणा भवन्ति । अतोऽहर्गणाद्ग्रहवदनुपातेन गतभभ्रमान् ग्रहसावनदिवसांश्चानीय तैः सावनैस्ते भभ्रमा वर्जिता यदि क्रियन्ते तदा भगणादिको ग्रहो भवतीत्युपायो दृष्टः । अथ च यो भगणाद्यो रविरागतः सोऽहर्गणतुल्यैर्भगणैर्युतो यावत् क्रियते तावद्गतभभ्रमा भवन्ति । यतः कुदिनानां रविभगणानां च योगे भभ्रमाः । अत्र भगणानां प्रयोजनाभावाद्राश्यादिरेव रविर्भभ्रमावयवीभूतो गृहीतः । एवं ग्रहगतसावनानयनेऽपि । तत्र ग्रहकल्पसावनैरहर्गणे गुणिते कुदिनैर्हृते भगणादिकं किल फलं भवति । तद् द्वादशगुणितं राश्यादिकं स्यात् । अतः कुदिनानि द्वादशभि १२ रपवर्त्तितानि भागहारः कृतः । लब्धराशिषु द्वादशतष्टेषु ये भगणा लभ्यन्ते ते प्रयोजनाभावात्त्याज्याः । अत उक्तम् । आप्तराशिभिर्विवर्जितो विकर्त्तन इत्यादि जातं सर्वमुपपन्नम् ।

प्रभा ।

विकर्त्तनः सूर्यः । विकर्त्तनार्कमार्तण्डेत्यभिधानात् । विवर्जितो हीनः । गृहादिका राश्यादिका ग्रहा भवन्ति । बुधैर्गणिततत्त्वज्ञैरन्यदपि प्रकारान्तरं ग्रहानयनस्य विचिन्त्यम् । न हि सर्वे प्रकारा निर्देष्टुं शक्याः कल्पनानन्त्यादिति भावः ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य के सावन अहर्गण को ग्रहों के निज सावनदिनों से गुण कर फल में १३१४६३०३७५०० इसका भाग देने से जो राश्यादिफल

मिले उसको राश्यादि—सूर्य में घटाने से राश्यादि मध्यम-ग्रह सिद्ध होते हैं । इसके सिवा दूसरे भी ग्रहानयन के प्रकार, गणितज्ञों को विचारना चाहिए ।

उपपत्ति ।

'भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिताः —' इत्यादि के अनुसार—

भभ्र – ग्रभ = ग्रसा, ∴ भभ्र – ग्रसा = ग्रभ । भभ्रम का स्वरूपान्तर किया—

कसा + रभ—ग्रसा = ग्रभ । अनुपात स ग्रहभगणों को अलग अलग अहर्गण से गुणकर कल्पसावनदिनों का भाग देकर भगणादि ग्रह सिद्ध किया—

$$\frac{\text{रभ}\times\text{अ}}{\text{कसा}},\ \frac{\text{कसा}\times\text{अ}}{\text{कसा}},\ \frac{\text{ग्रसा}\times\text{अ}}{\text{कसा}}\ ।$$

इन तीनों खण्डों में प्रथम खण्ड भगणादि सूर्य है । दूसरा अहर्गण के तुल्य भगण हैं । तीसरा ग्रहगत सावनदिन हैं । अब भगणादि रवि को अहर्गण के समान भगणों में जोड़ने से गत भभ्रम होते हैं । वहां भगणों को छोड़कर राश्यादि ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहगत सावनदिनों का जो फल मिले उसको बारह से गुणने से वह राश्यादि होता है ।

$$\therefore \frac{१२\ \text{ग्रसा}\times\text{अ}}{१५७७९१६४५००००}$$ । यहां १२ का अपवर्तन देने से—

$$\text{मध्यरवि राश्यादि}-\!-\frac{\text{ग्रसा}\times\text{अ}}{१३१४९३०३७५००} = \text{मध्यमग्रह}\ ।$$

इस प्रकार 'अर्कसावनदिवागणो हतः—' इत्यादि उपपन्न हुआ ।।८–९।।

इदानीमानयनप्रकाराणामुपपत्तिमाह—

यथा यथाधिमासकाऽवमेन्दुमासपूर्वकाः ।

परस्परं युतोनिता भवन्ति खेटपर्यया: ॥ १० ॥
त एव सूर्यसावनद्युपिण्डतोऽनुपातजा: ।
तथा तथा युतोनिता भवन्ति तेऽथवा ग्रहा: ॥ ११ ॥

अत्राधिमासावमेन्दुमासपूर्वका इति पूर्वशब्दोपादानादन्येऽप्यभीष्टा राशयो यथा यथा परस्परं युतोनिता: सन्त इष्टग्रहभगणसमा भवन्तीति पूर्वं संप्रधार्य तानेव राशीन् भगणान् प्रकल्प्याहर्गणादनुपातेन फलानि साध्यानि । तेषां फलानां तथा तथा योगे वियोगे च कृते ग्रह: स्यादिति । तद्यथा ।

इन्दुमण्डलगुणेन्दुसंगुण—
ब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासका: ।

इति चन्द्रभगणानां त्रयोदशगुणार्कभगणानां चान्तरे यद्यधिमासा भवन्ति तदा त्रयोदशगुणार्कभगणाधिमासयोगे चन्द्रभगणा: स्युरित्यर्थाज्जातम् । अतोऽहर्गणादधिमासग्रहमानीय त्रयोदशगुणोऽर्कस्तेनाधिकश्चन्द्र: स्यादित्येवमादीनि प्रकारान्तरशतान्युत्पद्यन्ते ।

भाषाभाष्य ।

अधिमास, अवम, चान्द्रमास प्रभृति परस्पर जोड़ने या घटाने से जैसे ग्रहभगण सिद्ध हों वैसे सिद्ध करना । फिर उन भगणों से रवि के सावन अहर्गण द्वारा अनुपात से सिद्ध फल को उसीप्रकार आपस में जोड़ने वा घटाने से मध्यग्रह सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

'इन्दुमण्डलगुणेन्दुसंगुणाब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासका: ।'

इसके अनुसार—

१३ रविभगण—चन्द्रभगण= अधिमास ।

∴ १३ रविभगण + अधिमास = चन्द्रभगण ।

अनुपात क्रिया—कल्पकुदिनों में कल्पभगण तो अधिमास में क्या ? यों अधिमास—ग्रह सिद्ध करके उसमें '१३ रविभगण' जोड़ने से राश्यादि-चन्द्र सिद्ध हुआ ।

इसीप्रकार 'अन्तरं तरणिचन्द्रचक्रजम् ।' इससे विपरीत विधि से इष्टकाल में भगणादि चन्द्रमास सिद्ध करके, उसमें चन्द्र घटाने से सूर्य, और सूर्य जोड़ने से चन्द्र होता है । ऐसे ही 'चन्द्रचक्र-दिवसैक्यम् —' इत्यादि विधि से इष्टकाल में अहर्गण द्वारा भगणादि अवम, चन्द्रमास, चन्द्रदिन और भभ्रम सिद्ध करना ।

पुनः—

भभ्रम + अवम + चन्द्रमास—चन्द्रदिन=चन्द्रभ । इस विधि से जिस ग्रह के कल्पभगण जिस रीति से उत्पन्न होंगे, उसीप्रकार से इष्टकाल में वह ग्रह सिद्ध होगा ॥ १०—११ ॥

इदानीमस्योदाहरणभूतानि प्रकारान्तराणि दर्शयन्नाह—

द्विचक्रयोगजो ग्रहो वियोगजेन युग्वियुक् ।
दलीकृतौ च तौ क्रमादमन्दमन्दगामिनौ ॥ १२ ॥
द्विपर्ययान्तरोद्भवग्रहेण वर्जितो द्रुतः ।
स मन्दगोऽथ मन्दगो युतो भवेदमन्दगः ॥ १३ ॥
अत्राद्यानयनस्योपपत्तिः संक्रमगणितेन ।
द्वितीयस्यातिसुगमा ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट दो ग्रहभगणों के योग और उन्हीं के वियोग से मध्यग्रह का साधन करना । योग से उत्पन्न ग्रहभगण में वियोग के फल को एक स्थान में जोड़ना दूसरे स्थान में घटाना फिर दोनों का अर्ध करना । इसप्रकार एक शीघ्रगामी ग्रह और दूसरा मन्दगामी ग्रह होता है ।

दो ग्रहभगणों के अन्तर से उत्पन्न ग्रह को शीघ्रगामी ग्रह में घटाने से वह मन्दगामी होता है। और मन्दगामी जोड़ने से शीघ्रगामी होता है।

उपपत्ति।

बड़ी और छोटी राशियों के अन्तर को लघु राशि में जोड़ने से बड़ी और घटाने से छोटी राशि होती है। यह प्रसिद्ध है। इसलिए बड़ी और छोटी राशियों के योग और अन्तर को जानकर संक्रमण गणित से दोनों का ज्ञान सुगम है।

$$\text{मध्यग्रह} = \frac{\text{ग्रहभ} \times \text{अह}}{\text{कसा}}$$ । यहां, ग्रहभ = योगज = वियोगज।

(१) योगजग्र = शीघ्रगामी ग्रह + मन्दगामी ग्रह।

(२) वियोगजग्र= शीघ्रगामी ग्रह — मन्दगामी ग्रह।

(१) और (२) का योग और अन्तर किया तो हुआ—

२ शीघ्रगामी ग्रह = योगजग्र + वियोगजग्र।

२ मन्दगामी ग्रह = योगजग्र — वियोगजग्र।

प्रथम समीकरण का अर्ध करने से शीघ्रगामी ग्रह का ज्ञान होगा और दूसरे का अर्ध करने से मन्दगामी ग्रह का ज्ञान होगा।

इसीप्रकार,

वियोगज ग्रह=शीघ्रग्रह−मन्दग्रह। इसमें शीघ्र ग्रह में वियोगज ग्रह को घटाया तो मन्दग्रह सिद्ध हुआ—

शीघ्रग्रह—वियोगज ग्रह = मन्दग्रह। और उस वियोगज ग्रह को मन्दग्रह में जोड़ा तो शीघ्रग्रह हुआ—

मन्दग्रह + वियोगजग्र = शीघ्रग्रह। इसप्रकार सब उपपन्न हुआ ॥ १२-१३ ॥

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

केन्द्रोच्चयोश्चञ्चलयोर्वियोगे

योगेऽथवा स्यान्मृदुनोः प्रसाध्यः ।
साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो
भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्यः ॥ १४ ॥

अत्रोपपत्तिः। शीघ्रोच्चाद् ग्रहे शोधिते शीघ्रकेन्द्रं भवति। शीघ्रकेन्द्रे शोधिते ग्रहो भवतीति किमाश्चर्यम् । मन्दोच्चोनो ग्रहो मन्दकेन्द्रम् । तत्केन्द्रं मन्दोच्चेन युतं ग्रहो भवतीति किं चित्रम् । यदि सिद्धग्रहस्य युगभगणैः सिद्धग्रहो लभ्यते तदा साध्यभगणैः किमिति । फलं साध्यग्रहः स्यादित्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

प्रसाध्यो ज्ञेय इष्टग्रहः । प्रसिद्धो ज्ञात इष्टग्रहः ।

भाषाभाष्य ।

शीघ्रोच्च से शीघ्रकेन्द्र को घटाने से मध्यग्रह होता है । अथवा मन्दोच्च में मन्दकेन्द्र जोड़ने से मध्य-ग्रह होता है । सिद्ध मध्यम ग्रह को साध्य भगणों से गुणाकर, सिद्धभगण का भाग देने से, फल मध्यम साध्यग्रह होता है ।

उपपत्ति ।

$$\text{मध्यमग्रह} = \frac{\text{कल्पभ} \times \text{अह}}{\text{कसा}} ।$$

$$\therefore \text{सिद्धमध्य} = \frac{\text{सिद्धभ} \times \text{अह}}{\text{कसा}}; \quad (१)$$

$$\text{साध्यमध्य} = \frac{\text{साध्यभ} \times \text{अह}}{\text{कसा}}; \quad (२)$$

दोनों से हुआ—

$$\frac{\text{साध्यमध्य}}{\text{सिद्धमध्य}} = \frac{\text{साध्यभगण}}{\text{सिद्धभगण}} ।$$

$$\therefore \text{साध्यमध्य} = \frac{\text{साध्यभ} \times \text{सिद्धभ}}{\text{सिद्धभ}} \text{।}$$

यों—'साध्यस्य चक्रैर्गुणितः' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ १४ ॥

अहर्गणान्मध्यमग्रहमानीयेदानीं मध्यमग्रहादहर्गणमाह—

साग्रात् सचक्राच्च खगात् कहघ्नात्
तत्कल्पचक्राप्तमहर्गणः स्यात् ।
निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन
वक्ष्येऽग्रतोऽग्राच्च तथाग्रयोगात् ॥ १५ ॥

ग्रहस्य भगणराशिकलाविकला अन्ते विकलाशेषं च कुदिनैः संगुण्य स्वच्छेदेन विभज्योपर्युपरि निक्षिपेत् । तद्यथा । भगणादिग्रहे विकलाशेषावधि कल्पकुदिनगुणे विकलाशेषस्थाने कुदिनैर्विभज्य विकलास्थाने फलं प्रक्षिप्य तत्र षष्ट्या ६० विभज्य कलास्थाने निक्षिप्यैवं भगणान्तं यावत् । तत्र कल्पभगणैर्हृतोऽहर्गणः स्यात् । अत्रोपपत्तिर्विलोमगणितेन । तथा निरग्रचक्रादपि ग्रहात् तथा केवलादग्रादपि तथा शेषयोः शेषाणां वा योगादहर्गणानयनमग्रत इति प्रश्नाध्याये कुट्टकविधिना वक्ष्ये ।

प्रभा ।

साग्रात्, अग्रेण विकलाप्राप्तौ यद्भाज्यशेषं तेन सहितः साग्रस्तस्मात् । निर्गते अग्रचक्रे यस्मात् । तादृशग्रहाद्राश्यादिविकलान्तावयवात्मकात् । अग्रतः 'राश्यादेर्विकलाः—' इत्यादि प्रकारेण । अग्रात्केवलविकलाशेषात् 'कल्प्याथ शुद्धिर्विकलावशेषम्' इत्यादिना । अग्रयोगात् भगणशेषाद्यग्रयोगात् 'उद्दिष्टं कहतघ्नमम्बुधिहृतम्' इत्यादिना । अहर्गणं वक्ष्ये प्रश्नाध्याये प्रतिपादयिष्ये इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

विकला के अवयवों को अग्र कहते हैं । किसी ग्रह के भगणादि

प्रतिविकलान्त अवयवों को कल्प-कुदिनों से गुणाकर उसके कल्प-भगणों का भाग देने से, अहर्गण सिद्ध होता है । चक्र और अग्रहीन ग्रह, केवल अग्र अथवा दो वा अनेक अग्रों के योग से अहर्गण का साधन, आगे प्रश्नाध्याय में कुट्टक विधि से कहा जायगा ।

यहां अनुपात किया:—कल्पभगणों में कल्पकुदिन, तो भगणादि ग्रह में क्या ? इस विलोम विधि से मध्यम ग्रह से अहर्गण का साधन होता है ॥ १५ ॥

इदानीमहर्गणादपि कल्पगतमाह—

अभिमतद्युगणादवमैर्हतात्
क्षितिदिनाप्तगतावमसंयुतः ।
दिनगणः स भवेत्तिथिसंचयः
पृथगतोऽधिकमाससमाहतात् ॥ १६ ॥
विधुदिनाप्तगताधिकमासकैः
कृतदिनै रहितोऽर्कदिनोच्चयः ।
भवति मासगणः खगुणो ३० द्धृतो
रवि १२ हृतः स च कल्पगताः समाः ॥१७॥

स्पष्टार्थमिदम् । अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकाभ्याम् । अहर्गणानयनाद्विलोमप्रकारेण कल्पगतानयनं सुगमम् ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट अहर्गण को कल्पावम से गुणाकर, कल्पकुदिन का भाग देने से फलगत अवम होता है । गत अवम को अहर्गण में जोड़ देने से चान्द्र अहर्गण होता है । उसको कल्पाधिमास से गुणाकर कल्पचान्द्र-दिन का भाग देने से अधिमास होता है । अधिमास को तीस ३० से गुणाकर चान्द्र अहर्गण में घटाने से सावन अहर्गण होता है । सावन अहर्गण में तीस ३० का भाग देने से मासगण और उसमें

बारह १२ का भाग देने से कल्पगत वर्षों का प्रमाण होता है।

उपपत्ति।

यहा उपपत्ति अहर्गणसाधन के विपरीत प्रकार से होती है। इष्ट अहर्गण से अनुपात किया—कल्पसावनों में कल्प के अवम मिलते हैं तो इष्ट सावन में क्या ?

$$\frac{\text{कल्पाव} \times \text{इष्टसा}}{\text{कल्पसा.}} = \text{इष्ट अवम।}$$

इसको सावन अहर्गण में घटाने से चान्द्र अहर्गण हुआ। पुनः अनुपात किया—कल्पचान्द्रदिनों में कल्पाधिमास मिलते हैं, तो इष्ट-चान्द्र दिनों में क्या ?

$$\frac{\text{कल्पाधि} \times \text{इचान्द्र}}{\text{कल्पचा}} = \text{इष्टाधिमास} \times ३० = \text{अधिदिन।}$$

इनको चान्द्र अहर्गण में घटाने से सावन अहर्गण होता है। इसमें तीस ३० का भाग देने से मासगण और मासों में बारह १२ का भाग देने से कल्पगत वर्ष होते हैं। इस प्रकार 'अभिमतद्युगणात्–' इत्यादि प्रकार उपपन्न होता है॥ १६–१७॥

इदानीं कलिगतादप्यहर्गणादिकमाह—

कलिगतादथ वा दिनसंचयो
दिनपतिर्भृगुजप्रभृतिस्तदा।
कलिमुखध्रुवकेण समन्वितो
भवति तद्द्युगणोद्भवखेचरः॥१८॥

अत्र कलिगताहर्गणेऽयं विशेषः। शुक्राद्यो वारो गणनीयः। यतः कल्पगताहर्गणात् कलिमुखे शुक्रवारो भवति। तत्र च ये ग्रहास्ते ध्रुवसंज्ञाः कल्पिताः। तद्द्युगणभवखेचरश्च कलिमुखध्रुवकेण समन्वितःकार्य इत्यत्र वासनापि सुगमा।

भाषाभाष्य ।

अब गणित की सुगमता के लिए कलि के गत वर्षों से अहर्गण का साधन दिखलाते हैं—कलि के गत वर्षों से अहर्गणसाधन करने में वारगणना शुक्रवार से होती है और अहर्गण से सिद्ध ग्रहों में आगे कहे हुए ध्रुवकों को जोड़ देने से वे ग्रह इष्टकाल के होते हैं ।

उपपत्ति ।

कल्पादि से अहर्गण सिद्ध करके उससे 'द्युचरचक्र—' इस विधि से ग्रह सिद्ध करके उनमें कल्पादि ध्रुवकों को जोड़ने से इष्टकालिक मध्यम ग्रह सिद्ध होंगे ॥ १८ ॥

इदानीं कलिमुखग्रहानाह—

खाद्रिरामाग्नयः ३३७० कग्निरामाङ्कका ६३३१
वेदवेदाङ्कचन्द्रा १९४४ विलिप्ताः क्रमात् ।
षड्साङ्गाब्धयो ४६६६ ऽङ्गाभ्रवेदाब्धयो ४४०६
वेदषट्काभ्रभूपाभ्रभूसंमिताः १०१६०६४ ॥१९॥
वेदचन्द्रद्विवेदाब्धिनागाः ८४४२१४ कर-
द्व्यब्धिवेदाब्धिशैला ७४४४२२ भवेयुः कुजात् ।
द्वापरान्तध्रुवाश्चक्रशुद्धास्तथा
सूर्यतुङ्गेन्दुतुङ्गेन्दुपातोद्भवाः ॥२०॥

कुजादीनां सर्वेषां ध्रुवकाश्चक्रशुद्धाः पठिता लाघवार्थम् । स्पष्टार्थमिदम् ।

कल्पादौ ग्रहाः ।

मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रतुं.	चतुं.	चंपा.
११	११	११	११	११	२	४	५
२६	२७	२६	२८	२८	१७	५	३
३	२४	२७	४२	४६	४५	२६	१२
५०	२६	३६	१४	३४	३६	४६	५८

इति ग्रहानयनाध्यायः ।

प्रभा ।

द्वापरान्तः कलिप्रारम्भः तत्र ये ग्रहास्ते स्थिरत्वाद् ध्रुवसंज्ञया लाघवार्थं द्वादशशुद्धा विकलात्मकाः पठिता इति ।

भाषाभाष्य ।

कलि के आदि में, भौमादि ग्रह विकलात्मक ३३७० इत्यादि होते हैं। इनसे राश्यादि ऊपर लिखे हुए सिद्ध होते हैं ॥१९—२०॥

भाषाभाष्य में ग्रहानयनाध्याय समाप्त हुआ ।

इदानीं कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनं विवक्षुः खकक्षां तावदाह—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभू-
भूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६९२००००००००
ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः
कक्षामिमां योजनैः ।
तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे
केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं
पौराणिकाः सूरयः ॥१॥
करतलकलितामलकव-
दमलं सकलं विदन्ति ये गोलम् ।
दिनकरकरनिकरनिहत-
तमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥ २ ॥

एभिर्योजनैस्तुल्यां गणकाः खकक्षामाकाशपरिधिं वदन्ति । तत्र कथमनन्तस्याकाशस्येयत्ता वक्तुं शक्यत

इत्याशङ्क्याहर्पतिद्युतियुजो नभसः परिधेरिदं मानं वदन्ति। अतएव पौराणिका गणकास्ते ब्रह्माण्डपरिधिं वदन्ति। केचिल्लोकालोकं वदन्ति। यतस्तदन्तर्वर्त्तिन एवार्करश्मयः। एवमन्ये वदन्तीति नास्माकं मतमित्यर्थः। प्रमाणशून्यत्वात्। करतलकलितसकलब्रह्माण्डगोला एवं वक्तुं शक्नुवन्ति।

प्रभा।

ब्रह्माण्डमेव कटाहसंपुटम्। कटाहद्वितयस्यैव संपुटं गोलकाकृतिरिति सूर्यसिद्धान्तोक्तेः। तस्य तटे सन्धौ वेष्टनं परिधिं जगुरूचुः। गोलाकारब्रह्माण्डावच्छिन्नाकाशपरिधिमाहुःस्मेत्यर्थः। अदृश्यदृश्यकगिरिं पूर्वापरदिक्स्थितलोकालोकपर्वतयोर्दक्षिणोत्तरदिशि मिलनात्तदवच्छिन्नाकाशपरिधिर्लोकालोकपदवाच्यः। तथा च लोकालोकेन वेष्टितमिति सौरोक्तिः।

गणकैः स मध्ये कोटिघ्नेत्याद्यङ्कमितो नभस आकाशस्य परिधिरुक्तः। करतले हस्ते कलितो गृहीतो य आमलकं धात्रीफलं तद्वदमलं निर्दूषणं गोलं ब्रह्माण्डगोलं सकलं समग्रं ये विदन्ति तैरित्यर्थः। सर्वमेतद्गोलाध्याये व्याख्यातमस्माभिः।

भाषाभाष्य।

ज्योतिःशास्त्रविशारदों ने आकाश कक्षा का मान १८७१२०६९ २०००००००० इतने योजन माना है। इसीको कोई ब्रह्माण्ड के अर्धभाग का परिधि कहते हैं। कोई पौराणिक ज्योतिषी इसीको लोकालोक पर्वत का मान कहते हैं। जो गोलतत्त्व को हस्तगत आमलों के समान संपूर्णरूप से जानते हैं, वे कहते हैं कि आकाश में जहां तक सूर्यकिरणों का फैलाव होता है उसके परिधि का यह प्रमाण है*॥ १—२॥

---

* सूर्यसिद्धान्त में भी लिखाहै—'ब्रह्माण्डसंपुटपरिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः।'

श्रीपतिः—'रविगभस्तिनिरस्ततमोनभःपरिधियोजनमानमिदं भवेत्।'

लल्लः—'ब्रह्माण्डकुण्डमध्यगमिदमखिलं यत्प्रकीर्तितं क्रमशः।
तस्य परिधिः खकक्षा लोकालोकोऽपि च स उक्तः॥'

इदानीं स्वमतमाह—

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा
कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि ।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं
प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥३॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

यह ब्रह्माण्ड का मान जो कहा गया है, वह हो या न हो । हमारा मत यह है कि—कल्पकाल में, निज पूर्वगति से ग्रह जितने योजन भ्रमण करता है खकक्षा अर्थात् आकाशकक्षा का वही प्रमाण है ॥ ३ ॥

इदानीं ग्रहकक्षा आह—

ग्रहस्य चक्रैर्विहृता खकक्षा
भवेत् स्वकक्षा निजकक्षिकायाम् ।
ग्रहः खकक्षामितयोजनानि
भ्रमत्यजस्रं परिवर्त्तमानः ॥४॥

सा खकक्षा यस्य यस्य भगणैर्ह्रियते तस्य तस्य ग्रहस्य कक्षामितिर्लभ्यते । अस्योपपत्तिरूपं श्लोकस्योत्तरार्धमिति । यतः स्वकक्षायां ग्रहो भ्रमन्नजस्रं परिवर्त्तमानः खकक्षामितानि योजनानि पूरयति । अतो ग्रहभगणैर्भक्तायाः खकक्षाया यल्लभ्यते सा ग्रहकक्षामितिरित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

उक्त खकक्षा में, ग्रह के कल्पभगण का भाग देने से, निज कक्षा का मान होता है । ग्रह निज कक्षा में घूमता हुआ कल्प में खकक्षा के समान योजन पूरा करता है ।

अनुपात इस प्रकार है:-यदि कल्पभगणों में खकक्षा के तुल्य योजन मिलते हैं तो एक भगणभोग में क्या? यों जिस ग्रह के कल्पभगण का भाग दियाजाय उसी की कक्षा सिद्ध होती है। क्योंकि, ग्रहकक्षा × कल्पभगण = खकक्षा। इसलिए खकक्षा में भगणों का भाग देने से ग्रहकक्षा सिद्ध हुई॥ ४॥

इदानीमेवंसिद्धे रवीन्दुकक्षे भकक्षां चाह-

सार्धाङ्घ्रिगोमनुसुराब्धिमितार्ककक्षा ४३३१४९७½

चान्द्री सहस्रगुणिता जिनरामसंख्या ३२४००० ।

अम्बेष्विभाङ्कगजकुञ्जरगोक्षपक्षाः २५९८९८८५०

कक्षां गृणन्ति गणका भगणस्य चेमाम्॥ ५॥

रवेः कक्षा ४३३१४९७½ । चन्द्रकक्षा ३२४००० । भकक्षा २५९८९८८५०। अत्रार्ककक्षातो भकक्षा षष्टि ६० गुणा । अर्को भषष्ट्यंश इत्यागमप्रामाण्येनाङ्गीकृता । एवमन्येषामपि ग्रहाणां कार्याः ।

भाषाभाष्य।

पूर्वरीति से सूर्यकक्षा का मान ४३३१४९७½ चन्द्रकक्षा का मान ३२४००० और नक्षत्रकक्षा का मान २५९८९८८५० योजनात्मक विद्वानों ने निश्चित किया है।

उपपत्ति।

यहां आचार्य ने सूर्यकक्षा का मान नक्षत्र-कक्षा के मान का साठवां भाग आगमप्रमाण से माना है। मुनीश्वर दैवज्ञ ने मरीची में इसकी उपपत्ति यों लिखी है:-चक्र, तुरीय वा अन्य किसी यन्त्र से, नक्षत्र की योगतारा का उन्नतांश वेध करना वह भूपृष्ठ से सिद्ध होगा। फिर ध्रुवक और शरों के ज्ञान से त्रिप्रश्नाधिकार में कही विधि से ग्रहों की भांति उन्नतांश सिद्ध करना। वे भूगर्भ-क्षितिज से होंगे। इन दोनों उन्नतांशों

का अन्तर .क्षितिजों के अन्तर में दृग्वृत्त गत, उक्त सूर्यकक्षा मान के साठवें भाग के तुल्य उपलब्ध होता है । इससे अनुपात किया— इन अन्तरांशकलाओं में सूर्व्यासार्धयोजन मिलते हैं तो चक्रकला में क्या ? फल सूर्यकक्षा को साठ से गुणाने पर नक्षत्रकक्षा होती है। इस प्रकार नक्षत्रकक्षा का साठवां भाग सूर्यकक्षा स्वतःसिद्ध हुई । सूर्यसिद्धान्त में भी लिखा है 'भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टिताडितम् ।'

यहां आचार्य ने ग्रहण आदि में सूर्य-चन्द्र की कक्षाओं का उपयोग होने से लिखा है। यही कक्षा बुध-शुक्र की भी है । अन्य ग्रहों का कक्षामान विशेष प्रयोजनीय न होने से नहीं लिखा गया है ॥ ५ ॥

इदानीं ग्रहगतियोजनान्याह-

कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा
भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्य ।
पादोनगोक्षधृतिभूमितयोजनानि ११८५८।४५
खेटा व्रजन्त्यनुदिनं निजवर्त्मनीसे ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्तिः । यदि कुदिनैः खकक्षामितयोजनानि गच्छन्ति तदैकेन किमिति । फलं दिनगतियोजनानि । तानि च स्थूलत्वेन तावत् पादोनगोक्षधृतिभूमितानि स्युः।

भाषाभाष्य ।

आकाशकक्षा में कल्पकुदिनों का भाग देने से, ग्रहों की दैनिक योजनात्मक-गति सिद्ध होती है। निज निज कक्षाओं में ग्रह ११८५८। ४५ इतने योजन प्रमाण से नित्य भ्रमण करते हैं।

उपपत्ति ।

यह योजनात्मक-गति एक सूर्य सावनदिन में होती है । अनुपात किया—कुदिन में खकक्षातुल्य योजन, तो एक दिन में क्या ?

$$\text{योजनगति} = \frac{\text{ख क}}{\text{क कु}} = \frac{१८७१२०६९२'००००००००\times१}{१५७७९१६४५००००}\ ।$$

यहां भाज्य और हार के नियत होने से फल नियत ही होता है। अर्थात् सब ग्रहों की योजनरूप गति समान सिद्ध होती है ॥ ६ ॥

इदानीं ग्रहानयनमाह—

अहर्गणात् कक्षिनवाङ्क ९९२१ निघ्नान्
नवेन्दुवेदेषुहुताश ३५४१९ लब्ध्या ।
अहर्गणो गोऽक्षधृतीन्दु ११८५९ निघ्नो
विवर्जितः स्युर्गतयोजनानि ॥ ७ ॥
स्वया स्वया तानि पृथक् च कक्षया
हृतानि वा स्युर्भगणादिका ग्रहाः ।

अहर्गणे भूनेत्रनवनन्द ९९२१ गुणे नवशशिश्रुतिबाणाग्निभि ३५४१९ र्भक्ते यल्लब्धं तेन विवर्जितः कार्यः। कः। नन्देन्द्रियधृतीन्दु ११८५९ गुणोऽहर्गणः। एवं गतयोजनानि स्युः। तेभ्यः पृथक् पृथक् स्वया स्वया कक्षया भाजितेभ्यो भगणाद्या ग्रहा लभ्यन्ते।

अत्रोपपत्तिः। दिनगतियोजनैरहर्गणे गुणिते गतयोजनानि भवन्तीति सुगमम्। अत्र सुखार्थं गोऽक्षधृतीन्दुभिः ११८५९ संपूर्णैरहर्गणो गुणितः। सोऽधिको जातः। यदधिकं तच्छोध्यम्। तस्याधिकस्य ज्ञानार्थमुपायः। परमोऽहर्गणः कुदिनतुल्यः। तेन गुणकेन गुण्यः। एवं गोऽक्षधृतीन्दुनिघ्नः सन् खकक्षातोऽधिको भवति। तस्मात् खकक्षां विशोध्य शेषेणानुपातः। यदि कुदिनतुल्येनाहर्गणेनैतावदधिकं भवति तदेष्टेनाहर्गणेन किमिति। अत्र कुदिनानां तस्य शेषस्य च पञ्चपञ्चयुग-

वेदैरयुतगुणितै ४४५५०००० रपवर्त्ते कृते सति शेषस्थाने कक्षिनवाङ्का उत्पन्नाः। कुदिनस्थाने नन्देन्दुवेदेषुहुताशाः। एवं त्रैराशिकेन यल्लभ्यते तेन स्थूलगतिगुणितेऽहर्गणे वर्जिते गतयोजनानि भवन्ति। सर्वेषां ग्रहाणां तान्येव। गतेस्तुल्यत्वात्। अथ ग्रहार्थमनुपातः। यदि कक्षातुल्यैर्गतयोजनैरेको भगणस्तदैभिः किमिति। फलं गतभगणाद्याः सर्वे ग्रहा भवन्तीत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

अहर्गण को ९९२१ से गुणाकर ३५४१९ भाग देना, फल को ११८५९ से गुणित अहर्गण में घटाने से शेष कल्पादि से लेकर गतयोजनसंख्या होगी। उस योजनसंख्या में अपनी अपनी कक्षाओं का भाग देने से, भगणादि मध्यमग्रह होंगे।

उपपत्ति।

कल्प में, वास्तव गतियोजन खकक्षा के तुल्य होते हैं। और रवि के सावन दिन के समान अहर्गण होता है अर्थात् परम अहर्गण कुदिन के तुल्य होता है। अब अनुपात किया—एक दिन में ११८५८।४५ इतने योजन मिलते हैं तो कुदिन में क्या? लाघव से ११८५९ से कुदिन १५७७९१९४५०००० को गुणाने से फल खकक्षा से अधिक होगया। इसलिए गुणनफल में खकक्षा को घटाया तो शेष रहा ४४१९८०५५०००० । इस शेष से अनुपात किया—परम अहर्गण में इतना शेष तो इष्ट अहर्गण में क्या?

$$\frac{४४१९८०५५००००\times इ अ}{१५७७९१९४५००००}$$

गुणक और हर में ४४५५०००० इसका अपवर्तन देनेसे हुआ—

$$\frac{९९२१\times इ अ}{३५४१९}।$$

यों 'अहर्गणात्–' इत्यादि प्रकार उपपन्न होता है। इसप्रकार जो फल मिले उसको, स्थूल योजनात्मक गति से गुणित अहर्गण में घटाने से ग्रहों के गतयोजन होते हैं। वे योजनात्मक गति को समान मानने से सब ग्रहों के एकही होते हैं। इस रीति से गतयोजन सिद्ध करके ग्रह के लिए अनुपात किया—कक्षा के तुल्य गतयोजनों में एक भगण, तो इन साधित योजनों में क्या ? फल भगणादि ग्रह सिद्ध होते हैं॥ ७॥

इदानीं विशेषमाह—

ग्रहस्य कक्षैव हि तुङ्गपातयोः
पृथक् च कल्प्यात्र तदीयसिद्धये॥ ८॥
अर्कस्य कक्षैव सितज्ञयोः सा
ज्ञेया तयोरानयनार्थमेव।
उक्ते तयोर्ये चलतुङ्गकक्षे
तत्रैव तौ च भ्रमतोऽर्कगत्या॥ ९॥

अत्रोच्चस्य पातस्य च या कक्षागच्छति सा तयोरानयनार्थमेव कल्प्या। अन्यथा या ग्रहस्य कक्षा सैव तयोरपि। यतो ग्रहकक्षाया उच्चप्रदेशस्योच्चपदव्यपदेशः। यत्र च विमण्डलेन सह संपातस्तस्य प्रदेशस्य पातसंज्ञेति गोले सम्यक् प्रतिपादितमस्ति। तथा बुधशुक्रयोरत्र ये अर्ककक्षातुल्ये कक्षे आगच्छतस्ते तयोरानयनार्थमेव। किन्तु तयोर्ये चलकक्षे तत्रैव तौ च भ्रमतः। परमर्कगत्या। एतदुक्तं भवति। भूमध्यादर्कं प्रति नीतं सूत्रं यत्र ज्ञचलकक्षायां लगति तत्र बुधो यत्र शुक्रचलकक्षायां लगति तत्र शुक्रो भ्रमतीत्यर्थः।

इति कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः।

प्रभा ।

हि यतो ग्रहस्य कक्षेव । एवकारो गणितागतपृथक्कक्षाऽव्यवच्छेदार्थः । तुङ्गपातयोः कक्षा ज्ञेया । तत्सिद्धये उच्चपातानयनाय पृथक् स्वाधिष्ठितकक्षातो भिन्ना कक्षा कल्पनीया । ग्रहस्य चक्रैर्विहृतेत्यादिप्रकारेण साध्येत्यर्थः । शेषं स्फुटमेव ।

इति प्रभायां कक्षाध्यायः ।

भाषाभाष्य ।

जो ग्रहकक्षा होती है वही उच्च और पात की भी होती है क्योंकि वहीं उच्च और पातभी भ्रमण करता है । केवल उच्च और पात के साधन के लिए उनकी अलग अलग कक्षा कल्पना करनी चाहिए । सूर्य की कक्षाही बुध और शुक्र की, उनके साधन के लिए माननी चाहिए । वास्तव में जिस कक्षा में बुध और शुक्र के उच्च और पात भ्रमण करते हैं उसीमें बुध, शुक्रभी सूर्यगति से भ्रमण करते हैं॥८—६॥

भाषाभाष्य में कक्षाध्याय पूर्ण हुआ ।

इदानीं प्रत्यब्दशुद्धिः । तत्रादौ सावनदिनाद्यमाह—

अधोऽधस्त्रिधा कल्पयातान्दवृन्दात्
कराभ्यां कृतैः पावकैः ${}^{2}_{4}{}_{3}$ संगुणाच्च ।
भुजङ्गैरवाप्तं फलं स्याद्दिनाद्यं
तदब्दान्वितं भास्करादब्दपः स्यात् ॥ १ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । एकस्मिन् रविवर्षे सावनाहाः प्राक् प्रतिपादिताः । तेभ्यः पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रयं ३६५ प्रोह्य शेषं दिनस्थाने पूर्णं पञ्चदश नाड्यस्त्रिंशत्पलानि तथा सार्धानि द्वाविंशतिर्विपलानि ० । १५ । ३० । २२ । ३० एतदष्टभिः सवर्णितं जातम् ${}^{2}_{4}{}_{3}$ । अतोऽनुपातः । यद्यष्टभिर्वर्षैरेतावद्दिनाद्यं तदा कल्पगतैः किमिति । फलं दि-

नाद्यम् । तदनष्ट संस्थाप्यम् । ततो गताब्दैर्युतं सदब्दपतिः स्यादिति यदुक्तं तदतः । यतः पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रये सप्तभिर्भक्त एकोऽवशिष्यते । अत एकगुणाब्दसंख्या तस्मिन् दिनाद्ये निक्षिप्ता । तस्मिन् सप्ततष्टेऽर्काद्योऽब्दपतिः । यतो यस्मिन् वारेऽब्दादिः सोऽब्दपतिः स्यादित्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

अथ प्र यब्दशुद्धिरारभ्यते । अब्दं अब्दं प्रतीति प्रत्यब्दं वर्षं वर्षं शुद्धिरित्यर्थः । त्रिधाधोऽधस्थापितकल्पगतवर्षसमूहात् क्रमेण द्वाभ्यां चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणितादष्टभिर्भक्ताद्वाप्तं लब्धं फलं दिनाद्यं दिनघटीपलात्मकादि यत्तत्कल्पगतवर्षयुक्तं सप्ततष्टं भास्करात् सूर्यादितः क्रमेण वारगणनया वर्षपः सावयवः स्यात् । भुजङ्गैरितिपदेन भुजङ्गप्रयातछन्दोपि सूचितम् ।

भाषाभाष्य ।

कल्प के गत वर्षों को तीन स्थानों में रखकर क्रम से दो, चार और तीन से गुणाकर आठ का भाग देना, फल दिनादि प्राप्त होगा। उसको गत वर्षगण में जोड़ कर रविवार से गणना करने पर वर्षाधिपति सिद्ध होता है।

उपपत्ति ।

एक वर्ष में दिनादि = ३६५ । १५ । ३० । २२ । ३० इसको इष्टवर्ष में सिद्ध करने के लिए पहले लाघवार्थ आठ वर्ष में लाते हैं। तीनसौ पैंसठ को अलग करके शेष से अनुपात— १ : ० । १५ । ३० । २२ । ३० : : ८

मध्यराशि की प्रत्येक संख्या को आठ से गुणाकर साठ से ऊपर के अवयवों में चढ़ाने से आठ वर्ष में फल हुआ २ । ४ । ३ फिर अनुपात—

८ : २ । ४ । ३ : : इष्टवर्ष = $\frac{(२ । ४ । ३) \times \text{इष्टवर्ष}}{८}$

= दिनादि ।

इस दिनादि के फल में ३६५ संबन्धी फल जोड़ना चाहिए। तीनसौ पैंसठ को सात से तष्टित करने से एक शेष रहता है इसलिए १ गुणा इष्टवर्ष पूर्वसिद्ध दिनादि में जोड़ देने से जो संख्या हो उस को भी सात से तष्टित करने से जो शेष रहे वही सूर्यवारादि अब्द-पति होता है ॥ १ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

निजाशीति ८० भागेन युक्तं समार्धं
खषट् ६० भक्तमब्दाङ्घ्रियुग्वा दिनाद्यम् ।

अत्र वर्षाणामर्धं निजेनाशीतिभागेन युक्तं षष्ट्या हृतं वर्षचतुर्थांशेन युक्तं सद्दिनाद्यं वा ।

अत्रोपपत्तिः । पूर्वस्मिन् दिनाद्ये पञ्चदश घटिकाः स एकस्य दिनस्य चतुर्थांशः । यानि त्रिंशत् पलानि तत् घटिकाया अर्धम् $\begin{matrix}०\\३०\end{matrix}$ । एतदनष्टमर्धघटिकाया अधस्तने-नावयवेन $\begin{matrix}०\\०\\२२\\३०\end{matrix}$ सवर्णितेन यावच्छ्रियते तावदशीतिर्लभ्यते । अतो वर्षार्धं निजाशीतिभागेन युक्तं घटिका भवन्ति । तत्षष्ट्यंशो दिनानि । तानि पूर्वकथितवर्षचतुर्थांशेन युतानि दिनानि भवन्तीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अथवा वर्षार्ध में उसका असीवाँ भाग जोड़कर साठ का भाग देना और उसमें वर्ष का चतुर्थांश जोड़ देना फल प्रकारान्तर से दिनादि सिद्ध होगा ।

उपपत्ति ।

पूर्व लेख के अनुसार सौरवर्ष मान में घड़ी १५, पल ३०, विपल २२ । ३० होते हैं ।

घ १५ = $\frac{१}{४}$ दिन चतुर्थांश ।

पल ३० = $\frac{१}{२}$ और विपल ० । ० । २२ । ३० इसका सवर्णन करके पल में भाग देने से ८० मिलते हैं । अर्थात् २२ । ३० = $\frac{१}{८०}$ ।

$$\therefore \frac{व}{४} + \frac{\left(\frac{व}{२} + \frac{च}{८०}\right)}{६०} = \text{दिनादि ।}$$

यहां दिन स्थान में फल जोड़ने के लिए साठ ६० का भाग दिया गया है ।

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

गताब्दा विभक्ताः समुद्रैः ४ खसूर्यैः १२०
खखाङ्गाङ्कैः ९६०० र्वा फलैक्यं दिनाद्यम् ॥२॥

अत्रोपपत्तिः । एकं दिनं पञ्चदशघटिकाभिर्यावद्धि्रयते तावच्चत्वारो लभ्यन्ते । यावदर्धघटिकया तावत् खसूर्याः १२० । यावदधस्तनेनावयवेन ० । ० । ० । २२ । ३० तावत् खखाङ्गाङ्काः ९६०० । एवं प्रत्यब्दम् । अतो गताब्दा एभिर्विभक्ताः फलैक्यं दिनाद्यं स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

गतवर्षों में क्रम से ४, १२० और ९६०० का भाग देकर फलों का योग करने से दिनादि सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

एक दिन ६० घड़ी का होता है ।

$\therefore$ घ १५ = $\frac{१}{४}$; ३० पल = $\frac{१}{२}$ = $\frac{१}{१२०}$; विपल २२ । ३० = $\frac{१}{९६००}$ । यह सवर्णन करके भाग देने से सिद्ध होता है ।

$\therefore$ १५।३०।२२।३० = $\left(\frac{\text{व}}{\text{४}} + \frac{\text{व}}{\text{१२०}} + \frac{\text{व}}{\text{९६००}}\right)$ =
दिनादि। इस प्रकार उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २ ॥

इदानीं क्षयाहानाह—

स्वषष्ट्यंशयुक्तानि वर्षाणि वर्षैः
खरामाहतैः संयुतान्यभ्रभूपैः १६०।
विभक्तानि तान्यत्र लब्धं विशुद्धं
समाभ्यो गताभ्यो भवन्ति क्षयाहाः ॥ ३ ॥

अत्रोपपत्तिः। यदि कल्पवर्षैः कल्पक्षयाहा लभ्यन्ते तदैकेन किमिति। फलमेकस्मिन् वर्षे क्षयाहाद्यम् ५। ४८।२२।७।३० अस्मात् पञ्च विशोध्य शेषेणाब्दा गुणिता अवमाद्यं भवति। तत्र लाघवार्थं शेषं रूपाद्वि-शोध्योर्वरितमभ्रभूपैः १६० सवर्णितं जातम् ३१।१ ततो-ऽनुपातः। यद्यभ्रभूपैर्वर्षैरेकत्रिंशद्दिनानि घटिकयाधिकानि लभ्यन्ते तदा गताब्दैः किमिति। अत्र स्वषष्ट्यंशयुक्तानि वर्षाणि खरामाहतवर्षयुतानि एकत्रिंशता नाड्यधिकया गुणितानि भवन्ति। अत्राभ्रभूपैः १६० लब्धिफलेन ग-ताब्दा अतो वर्जिताः कृताः। यतः प्रत्यब्दं षष्ठेऽवमे यन्न पूर्यते तद्गृहीत्वा कर्म कृतमिति सर्वमुपपन्नम्।

प्रभा।

वर्षपदेन कल्पगतवर्षसंख्या ग्राह्येति। अत्रार्थादब्दपकाले म-ध्यमसौरवर्षादावित्यर्थः। क्षयाहाः कल्पादिष्टकालपर्यन्तं दिनावम-संख्याखण्डकं भवतीत्यर्थः। शेषं स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

गतवर्षों में उसका साठवाँ भाग जोड़कर, फिर उसको तीस से गुणित गत वर्षों में जोड़ देना। योगफल में १२० का भाग देकर लब्धि को वर्षसंख्या में घटाने से, अवम वा क्षयाह सिद्ध होता है।

उपपत्ति।

यहां प्रथम अनुपात किया—कल्पवर्षों में कल्पावम, तो एक वर्ष में क्या ? इस प्रकार एक वर्ष में अवम, दिन ५, घटी ४८, पल २२, विपल ७। ३० सिद्ध हुआ। अत्र अहर्गण साधन के लिए ४८ घड़ी आदि को ही अवम कल्पना कर लिया और दिन ५ को अलग कर दिया। फिर शेष ४८। २२। ७। ३० को रूप १ में लाघवार्थ घटा दिया तो हुआ ११। ३७। ५२। ३० इतने घट्यादि अधिक हों तो ६ अवम की पूर्ति होजाय। अनुपात किया—

एक वर्ष में ११। ३७। ५२। ३० अन्तर मिलता है, तो १६० वर्ष में क्या ? यों १६० से सवर्णन करने से दिनादि ३१। १ सिद्ध होते हैं। एकसौ साठ वर्ष में ३१। १ यह मिलता है तो इष्टवर्ष में क्या ? ३१ के ३० + १ खण्ड मानने से $\frac{३०व + (व + \frac{व}{६०})}{१६०}$ यों हुआ, इस प्रकार लब्धफल को गत वर्षों में घटा दिया है क्योंकि अड़तालीस आदि शेष को रूप में घटाकर यह क्रिया की गई है ॥३॥

इदानीं प्रकारान्तरेण क्षयाहानाह—

दिनाद्यं त्रिनिघ्नं समाभ्राभ्रवेदां-४००

शकोनं समात्रिंशदंशेन युग्वा।

यत् प्रागानीतं दिनाद्यं तत् त्रिगुणं वर्षचतुःशतांशोनं वर्षत्रिंशदंशेन युतं वा क्षयाहा भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः। अत्रैकवर्षे दिनाद्यम् ०। १५। ३०। २२। ३० तथावमाद्यम् ०। ४८। २२। ७। ३०। दिनाद्ये त्रिगुणितेऽवमाद्याद् विशोधिते जातं शेषम् ०। १। ५१। इदं त्रिगुणे दिनाद्ये यदि क्षिप्यते तदावमाद्यं भवति। इदं शेषं खखार्कैः १२०० गुणितं जातं सप्तत्रिंशत् ३७।

अब्दाः सप्तत्रिंशता गुण्याः खखार्कैर्भक्तास्त्रिगुणे दिनाद्ये यदि क्षिप्यन्ते तदा गतावमानि भवन्ति । अत्र गुणके रूपत्रयं प्रक्षिप्य सुखार्थं चत्वारिंशद्गुणकः कृतः । रूपत्रयमृणं गुणकश्च ४० । ३० । आभ्यामब्दा गुण्याः । खखार्कैर्भाज्याः । तत्र प्रथमगुणकश्चत्वारिंशतापवर्तितो जातः १ । हरश्च ३० । द्वितीयो गुणकस्त्रिभिरपवर्तितः १ । तत्र हरश्चतुःशती ४०० । अतो गताब्दाः पृथक् त्रिंशता चतुःशत्या च हृताः प्रथमफलं त्रिगुणे दिनाद्ये धनं द्वितीयमृणमेवमवमाद्यं भवतीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

दिनादि को तीन से गुणाकर वर्ष के तीसवें भाग को उसमें जोड़ना फिर उसी में वर्ष का ४०० भाग घटा देने से क्षयाह होता है ।

उपपत्ति ।

वर्ष में दिनादि = ० । १५ । ३८ । २२ । ३०

अवमादि = ० । ४८ । २२ । ७ । ३०

$\therefore$ अवमादि ३ × दिनादि = ० । १ । ५१ । इस शेष को ३ × दिनादि इसमें जोड़ने से अवमादि होगा । इस शेष को १२०० से गुणा तो ३७ हुआ । यों सिद्ध होता है कि $\frac{\text{गताब्द} \times ३७}{१२००} + ३$ दिनादि = गतावम ।

गुणक ३७ में ३ जोड़कर सुखार्थ ४० और − ३ गुणक कल्पना किया ।

अब गुणकों का स्थापन करने से स्वरूप हुआ—

$$\frac{४० \times \text{गताब्द}}{१२००}, \frac{- ३ \times \text{गताब्द}}{१२००};$$

दोनों स्थानों में गुणकों का अपवर्तन देने से हर स्थान में ३० और ४०० हुए।

$$\therefore \text{अवम} = ३ \times \text{दिनादि} + \left(\frac{\text{गताब्द}}{३०}\right) - \frac{\text{गताब्द}}{४००}\text{।}$$

यों 'दिनाद्यं त्रिनिघ्नं—' इत्यादि उपपन्न हुआ।

इदानीं प्रकारान्तरेणावमान्याह—

स्वषष्ट्यंशहीनाब्दखाङ्गेन्दु १६० भागः
स्वपञ्चांशहीनाब्दयुग्वा क्षयाहाः ॥ ४ ॥

अत्रोपपत्तिः। एकस्मिन् रविवर्षेऽवमशेषमष्टाचत्वारिंशद् घटिकाः। तत् पञ्चांशोनं दिनम्। अतः पञ्चांशोना अब्दाः कृताः। अथ तदधस्तना अवयवाः ०। ०। २२। ७। ३० एते खाङ्गेन्दुभि १६० र्गुणिता जाताः ०। ५६। एतत् षष्ट्यंशोनं रूपमतः स्वषष्ट्यंशोनाब्दाः खाङ्गेन्दुभिर्भक्ताः पञ्चांशोनाब्दयुता अवमाद्यं भवतीत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

वर्षसंख्या में उसका पञ्चमांश घटाकर उसमें निज साठवें भाग से हीन वर्ष का १६० वाँ भाग जोड़ देने से, प्रकारान्तर से क्षयाह होता है।

उपपत्ति।

दिन का पञ्चमांश ०। १२ इसको रविवर्ष संख्या में घटाने से शेष ०। ४८ घड़ी रहती है। यही अवमशेष की घटिका होती है। अवमशेष के शेष अवयव २२। ७। ३० को १६० से गुणा किया तो हुए ०। ५६ यह निज ६० वें भाग से हीन रूप के तुल्य है। इसलिए वर्ष को निज ६० वें भाग से हीन किया।

$$\therefore \text{अवम} = \text{वर्षगण} - \frac{\text{वर्षगण}}{५} + \left(\text{वर्षगण} - \frac{\text{वर्षगण}}{६०} \right) \frac{१}{१६०} ।$$

यों उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

अथ गताधिमासांश्चलुद्धिं चाह—

दिनादिक्षयाहादिदिग्घ्नाब्दयोगः
खरामै ३० र्हृतः स्युः प्रयाताधिमासाः ।
भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्रावशिष्टं
तदूनं सदूनाहनाड्यादिकेन ॥ ५ ॥

अनन्तरानीते ये दिनादिक्षयाहाद्ये तयोर्योगो दशघ्नै-र्गताब्दैर्युतस्त्रिंशता हृतः फलं गताधिमासा भवन्ति । यदत्रावशिष्टं तच्छुद्धिसंज्ञम् । परं क्षयाहानां नाड्यादि-केन वर्जितं सत् ।

अत्रोपपत्तिः । अत्रैकवर्षसावनाना ३६५ । १५ । ३० । २२ । ३० मवमानां च ५ । ४८ । २२ । ७ । ३० योग-तुल्या वर्षे चान्द्राहा भवन्ति ३७१ । ३ । ५२ । ३० । तथा वर्षे षष्ट्यधिकशतत्रयं ३६० सौराहाः । एभिरूनाश्चा-न्द्राहाः प्रत्यब्दमधिमाससम्बन्धिन एकादश भवन्ति घटीत्रयं च सार्धानि द्विपञ्चाशत् पलानि ११ । ३ । ५२ । ३० एवमेकस्मिन् वर्षे दिनादिक्षयाहादियोगो दशाधिको-ऽधिदिनानि भवन्ति । अधिदिनैस्त्रिंशद्भिरधिमासो भव-तीत्युपपन्नमधिमासानयनम् । अथाधिशेषदिनान्यहर्गणा-नयने शोध्यत्वाच्छुद्धिसंज्ञानि । अत्राधिमासशेषतिथिभ्यो यदवमघटिकाः शोधितास्तत्कारणमग्रे कथयिष्यामः ।

प्रभा ।

पूर्वानीताब्दपोपयुक्तदिनादि । प्रागानीतक्षयाहादि । दशगुणित-

कल्पगतवर्षाणि एषां योगः त्रिंशता भक्तः फलं गताधिमासाः । यच्छेषं सावयवं तदूनाहस्य क्षयाहस्य पूर्वानीतस्याधोवयवेन घटीपलाद्यात्मकेन यथास्थानं ऊनं न्यूनीकृतं सदत्राब्दपकाले मध्यममेषसंक्रान्तिकाल इत्यर्थः । शुद्धिसंज्ञं वक्ष्यमाणलघ्वहर्गणार्थमेतच्छोध्यत इति शुद्धिसंज्ञं भवेदित्याशयः ।

भाषाभाष्य ।

दिनादि और अवम का योग करके दशगुणित वर्षगण में जोड़ कर तीस ३० का भाग देने से फल अधिमास संख्या होती है । शेष को अवमशेष की घटिकाओं में घटाने से शुद्धि नाम होता है ।

उपपत्ति ।

सावन दिन और चान्द्र दिन का अन्तर अवम होता है । इसलिए सावन दिन और अवम के योग से चान्द्र दिन स्वत:सिद्ध हुआ ।

सावन दिन = ३६५ । १५ । ३० । २२ । ३०
अवम दिन = ५ । ४८ । २२ । ७ । ३०

चान्द्र दिन = ३७१ । ३ । ५२ । ३०
वर्ष में सौर दिन = ३६०

∴ ११ । ३ । ५२ । ३० = वार्षिक अधिशेष वा शुद्धि । क्योंकि सौर-चान्द्र दिनों के अन्तर में अधिमास होता है । अथवा, यह अन्तर, कल्पवर्षों में कल्पाधिमास दिन, तो एक वर्ष में क्या ? इस अनुपात से भी सिद्ध होता है । चान्द्र वर्ष के बाद इतने चान्द्र दिनों में सौरवर्ष शुद्ध होता है, इसलिए शुद्धि नाम पड़ा है ।

सावन दिन घटी आदि = ० । १५ । ३० । २२ । ३०
अवम दिन घटी आदि = ० । ४८ । २२ । ७ । ३०

अधिशेष = १ । ३ । ५२ । ३० = दिनादि + क्षयाहादि अथवा, अनुपात किया—१ वर्ष में, शुद्धि ११ ।

३ । ५२ । ३० तो गत वर्षों में क्या ? यहां गुणक के दो खण्ड किए । एक १०, दूसरा पूर्व साधित १ । ३ । ५२ । ३० इस प्रकार दिनादि और अवमादि के योग में दशगुणित वर्षसंख्या जोड़ने से अधिदिन सिद्ध हुआ । उसमें ३० का भाग देने से अधिमास होता है ।

$$\therefore \text{अधिमास} = \frac{\text{दिनादि} + \text{क्षयाहादि} + १० \times \text{वर्षगण}}{३०} ।$$

यों उक्त प्रकार उपपन्न होता है ॥ ५ ॥

अथ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनमाह—

द्विधाब्दाद्द्विरामैः ३२ खरामै ३० श्च भक्ताः
फलैक्यं शिवघ्नाब्दयुक्तं विभक्तम् ।
खरामैस्तु ते वाधिमासाश्च शेषं
भवेच्छुद्धिरूनाहनाडीविहीनम् ॥ ६ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । प्रत्यब्दं यान्यधिमासशेषसम्बन्धिदिनानि ११ । ३ । ५२ । ३० एभिः किलाब्दा गुण्यास्त्रिंशता ३० हृता अधिमासा भवन्ति । तत्र लाघवार्थमेभ्य एकादश विशोध्य शेषम् ० । ३ । ५२ । ३० खाष्टवेदै- ४८० र्गुणितं जातमेकत्रिंशत् ३१ । अनेनाब्दा गुण्याः किल खाष्टवेदै ४८० र्भाज्याः । तत्राचार्येण रूपविभागाद्गुणकस्य खण्डद्वयं कृतम् । तत्राद्यं पञ्चदश द्वितीयं षोडश । उभयत्र हरः स एव । ततः खण्डाभ्यां हरे पृथगपवर्तिते जात आद्यो हरो द्वात्रिंशत् ३२ अन्यस्त्रिंशत् ३० । अतो द्वात्रिंशता त्रिंशता च पृथग्गताब्दा भक्ताः फलैक्यमेकादशगुणाब्दयुतं त्रिंशद्भक्तं फलमधिमासाः । शेषं प्राग्वच्छुद्धिरित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

गत वर्षों को दो स्थानों में रखकर उनमें बत्तीस ३२ और तीस ३० का भाग देकर फलों के योग को एकादश से गुणे वर्षों में जोड़ कर तीस ३० का भाग देना, फल प्रकारान्तर से अधिमास होता है। शेष को अवम घटिकाओं में घटाने से शुद्धिसंज्ञा होती है।

उपपत्ति ।

एक वर्ष में शुद्धि ११ । ३ । ५१ । ३० होती है। इससे अनुपात किया—एक वर्ष में यह तो गत वर्षों में क्या ? यहां गुणक का दो खण्ड किया। प्रथम ११, द्वितीय ० । ३ । ५१ । ३० इसको ४८० से गुणा किया तो ३१ हुए। यों सिद्ध हुआ कि गताब्द को ३१ से गुणकर ४८० का भाग देना।

यहां आचार्य ने रूप विभाग के अनुसार गुणक ३१ के दो भाग किए। प्रथम १५, द्वितीय १६। इस प्रकार :—

$\frac{\text{गताब्द} \times १५}{४८०}$, $\frac{\text{गताब्द} \times १६}{४८०}$ । दोनों स्थानों में गुणक का अपवर्तन देने से हर ३२ और ३० हुए।

$$\therefore \text{अधिदिन} = ११ \times \text{गताब्द} + \frac{\text{गताब्द}}{३२} + \frac{\text{गताब्द}}{३०} ।$$

अधिदिन में तीस ३० का भाग देने से अधिमास होता है। इस प्रकार 'द्विधाब्दा द्विरामैः—' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ६ ॥

इदानीं दिनाद्येन विनाप्यब्दाधिपानयनमाह—

गताब्दाधिमासान्तरं छिन्नमाढ्यं
क्षयाहैर्गतैः सप्तभक्तावशिष्टम् ।
विशुद्धं च शुद्धेः स वर्षाधिपो वा
भवेत्सप्तभक्तावशिष्टोऽर्कपूर्वः ॥ ७ ॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः । रव्यब्दान्ते योऽहर्गणस्तत्र यो वारः सोऽब्दाधिपः । प्रत्यब्दं सौरदिनसंख्या षष्ट्यधिकं शतत्रयम् । तस्मिन् सप्ततष्टे त्रयोऽवशिष्यन्ते मासदिनेषु सप्ततष्टेषु द्वयमवशिष्यते । अतो गताब्दास्त्रिगुणा गताधिमासा द्विगुणास्तदैक्यं सप्ततष्टं यावद्भवति तावदेव चैत्रादेः प्रागतीते तिथिगणे सप्ततष्टेऽवशेषं स्यात् । तत् किल शुद्धितिथिषु योज्यम् । ततः पूर्वलब्धाः क्षयाहाः शोध्याः । तथा प्रत्यब्दं पञ्चपञ्च । अतोऽब्दाः पञ्चगुणाः शोध्याः । पूर्वं त्रिगुणाः क्षेप्याः । अतो द्विगुणाः शोध्या एव । द्विगुणाः किलाधिमासाश्च योज्याः । अतो लाघवार्थमधिमासोना अब्दा द्विगुणास्तैर्लब्धावमैश्च सप्ततष्टैः शुद्धिरूना सप्ततष्टा रव्यब्दान्ते वारो भवति । स एवाब्दप इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

गताब्द और अधिमास के अन्तर को दो से गुणकर और उसमें गत अवमसंख्या को जोड़कर सात का भाग देना । शेष को शुद्धि में घटाकर सात का भाग देना फिर जो शेष रहे उसको रविवार से गिनकर वर्षपति जानना ।

उपपत्ति ।

सौरवर्षान्त के अहर्गण से जो वार आता है वही वर्षपति है । सौरदिनों ३६० को सात से तष्टित करने से तीन, और मासदिनों ३० को सात से तष्टित करने से दो शेष बचते हैं । इसलिए तिगुने गतवर्ष और दूने गतमासों का योग सात से तष्टित कियाहुआ जितना होगा उतनाही चैत्रादि के पहले गतचान्द्रगण सात से तष्टित होगा ।

उसको चैत्रादि से लेकर सौरवर्षान्त तक जो तिथिशुद्धि है उसमें जोड़ना चाहिए। इसप्रकार वर्षान्त का चान्द्रगण होगा $\frac{३ गव + २ ग मा + शु}{७}$

अब सावन करने के लिए इसमें क्षयाह घटाना चाहिए जो प्रतिवर्ष पांच पांच होते हैं। इस दशा में पञ्चगुण गतवर्ष शोध्य होते हैं और पहले त्रिगुण गतवर्ष योज्य थे अर्थात् अब द्विगुण गतवर्ष शोध्य हुए, और पहले द्विगुण गतमासभी योज्य हैं तो लाघवार्थ गतवर्ष गताधिमासों का अन्तर दूना हुआ। इसके और क्षयाह के योग को सात से तष्टित करके शुद्धि में घटाने से जो संख्या होगी वहभी सात से तष्टित, सौरवर्षान्त में रविवार के क्रम से वार है और वही वर्षपति कहाजाता है ॥ ७ ॥

इदानीमवमैर्दिनाद्यवमशेषघटिका आह—

यत् त्वधिमासकशेषकनाडी-
पूर्वमिदं रहितं विहितं सत् ।
आद्यदिनाद्यघटीभिरथैवं
स्युः क्षयशेषभवा घटिका वा ॥ ८ ॥

यदधिमासशेषं तिथ्यात्मकं तस्याधो या घटिकास्ता आद्यदिनाद्यस्य घटीभिरूनाः सत्यः क्षयघटिका भवन्ति। अत्र द्विधाब्दाद्विरामैः खरामैश्च भक्ता इत्यादिना ये दिनाद्ये फले उत्पद्येते तन्निराकरणार्थमाद्यग्रहणम् ।

अत्रोपपत्तिः सुगमा । यतो दिनावमघटिकैक्येनाधिमासशेषस्य घटिकास्ता दिनघटिकोना अवमघटिकाः । यदावमघटिकोनास्तदा दिनघटिकाः स्युरिति भावः ।

प्रभा ।

शुद्ध्यानयनेऽधिमासप्राप्तौ यच्छेषं दिनादिकं तदधोवयवभूतं

घट्यादि यत्स्थितम्। आनीतक्षयाहानामधोवयवरूपं घट्याद्यवमशे-
षोत्पन्नमिति तच्छेषसंज्ञं स्यात्। दोषमन्यूहितमिदम्।

आषाभाष्य।

अधिमास-शेष की घड़ी को आदि-दिनादि की घटिकाओं में घटा
देने से अवमशेष की घटिका होती हैं।

यहां उपपत्ति स्पष्ट है—अधिमास शेष घटिका दिनादि और अव-
मादि के योग के समान है। इसलिए अधिमास की घड़ी में दिनादि
की घटिका घटा देनेसे अवमघटिका ज्ञात होती हैं। और अवमघटिका
घटाने से दिनघटिका सिद्ध होती हैं॥ ८॥

इदानीं रव्यब्दान्तग्रहानयनमाह—

कल्पजचक्रहतास्तु गताब्दाः
कल्पसमा विहृता भगणाद्याः।
स्युर्ध्रुवका दिनकृद्भगणान्ते
पातमृदूच्चचलोच्चखगानाम्॥ ९॥

स्पष्टार्थमिदम्।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन। यदि कल्पवर्षैः कल्पभगणा
लभ्यन्ते तदा गतैः किमिति फलं रविमण्डलान्तिका
ग्रहा भवन्ति। ये तत्र ग्रहास्ते ध्रुवकाः कल्पिताः। यदत्र
पातमृदूच्चग्रहणं तत् तेषामतिमन्दगतित्वाद्वर्षगणेनैवा-
नयनमुचितमिति सूचितम्।

प्रभा।

दिनकृद्भगणान्ते, सूर्यस्य मेषादिमीनान्तात्मकभगणभोगकाले रवे-
श्चक्रभोगोऽर्कवर्षमित्युक्तेर्मध्यमसौरवर्षादावित्यर्थः। ग्रहसाधने
एतत्फलस्योपयोगेन स्थिरत्वात् ध्रुवक इति संज्ञा युक्तैव। शेषं
स्फुटमेव।

भाषाभाष्य ।

गताब्दों को ग्रह के कल्पभगणों से गुणाकर कल्पवर्ष का भाग देने से फल, रविभगणान्तकाल में पात, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और ग्रहों के ध्रुवक सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति स्पष्ट है—वर्ष में सूर्य का एक भगण होताहै इसलिए वर्षान्त ही सूर्य का भगणान्त है । अनुपात किया—कल्पवर्ष में कल्पभगण तो गताब्दों में कितने भगण ? फल राश्यादि ग्रहध्रुवक होते हैं । पात आदिकी गति सूक्ष्म है, इसलिए उसके वार्षिक साधन में कोई दोष नहीं है ॥ ९ ॥

इदानीं चन्द्रध्रुवकं प्रकारान्तरेणाह—

यत् तु दिनाद्यधिशेषमिनघ्नं १२
स्याद् ध्रुवकस्त्वथवा स लवाद्यः ।
कैरविणीवनिताजनभर्तुः
पीतचकोरमरीचिचयस्य ॥ १० ॥

यदधिमासशेषं तिथ्यात्मकं तद्द्विगुणं भागात्मको विधुर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः सुगमा । यतो द्वादशगुणास्तिथयो रवीन्द्वोरन्तरभागाः स्युः । तत्र रविः पूर्णम् । अतस्तादृगेव शशीत्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

'समे कुमुदकैरवे' इत्यभिधानात्कैरविणी कुमुदिनी सैव वनिता स्त्री तज्जनानां तज्जातीयानां भर्त्ता स्वामी तस्य । कुमुदिनीनां विकासकाले चन्द्रोदयसद्भावाच्चन्द्रस्येत्यर्थः । पीता आस्वादिताः चकोरैः स्वनामप्रसिद्धपक्षिभिः मरीचिचयाः किरणसमूहाः यस्य । चन्द्रस्येत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

दिनादि अधिशेष को बारह १२ से गुणने पर, प्रकारान्तर से, चन्द्रमा का अंशादि ध्रुवक होता है ।

यहां उपपत्ति इसप्रकार है—सौरदिन और चान्द्रदिन का तिथ्यात्मक अन्तर ही अधिमासशेष है । उसको बारह १२ से गुणने पर सूर्य-चन्द्र के अन्तरांश होते हैं । वर्षादि में रवि का मान शून्य होता है । इसलिए द्वादशगुणित तिथिमान ही अंशादि चन्द्रध्रुवक है ॥१०॥

इदानीं कलिगतादाह—

कलेर्गताब्दैरथ वा दिनाद्यं
पूर्वं यदुक्तं खलु तत् प्रसाध्यम् ।
अब्दाधिपस्तत्र सितादिकः स्याद्
ध्रुवाश्च युक्ताः कलिवक्त्रखेटैः ॥ ११ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

अथवा प्रकारान्तरेण यद्दिनादि पूर्वं पूर्वपदादब्दपशुद्धिक्षयाहग्रहध्रुवकाणां संग्रहः । कलेर्गताब्दैः कलिसम्बन्धिगतवर्षैः पूर्वोक्तविधिना प्रसाध्यम् । कल्पगतस्थाने कलिगतग्रहणेन यथोक्तं कार्यमित्यर्थः । कलिगतसाधितध्रुवाः कल्पादिस्थग्रहध्रुवैः प्रागभिहितैः संयुक्ताः सन्तो राश्यादिध्रुवाः पूर्वागतसमा भवन्तीत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

पूर्वोक्त विधि से कलिगतवर्षों से दिनादि प्रभृति साधन करना । वहां शुक्रवार के आरम्भ से अब्दाधिप की गणना होती है । कलिगत से साधित ध्रुवकों को कल्पादि के ग्रह ध्रुवों में युक्त करने से राश्यादि ध्रुवक सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

कलि के आदि में शुक्रवार होने से उसीके आरम्भ से गणना

की गई है । पूर्वसाधित ध्रुवों में कलि प्रारम्भ के ग्रहध्रुवकों को जोड़ देने से ग्रह पूर्वसाधित ग्रह के समान सिद्ध होते हैं ॥ ११ ॥

इदानीमहर्गणार्थं क्षेपदिनान्याह—

स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः
क्षेपदिनानि दिवागणसिद्ध्यै ।

पूर्वमानीता ये क्षयाहास्तेषामधो यन्नाडिकाद्यं तत् स्वीयविंशांशयुतं सदिनाद्यं कल्प्यम् । या घटिकास्तानि दिनानि या विघटिकास्ता घटिकास्तासामप्यधो ये षष्ट्यंशास्तानि पानीयपलानि कल्प्यानीति । किमर्थम् । दिवागणसिद्ध्यै । अहर्गणसिद्ध्यर्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । वक्ष्यमाणेऽहर्गणानयने यदवमानयनं तत्र चतुःषष्टिर्भागहारः कृतः । यतश्चान्द्राहाणां चतुःषष्ट्यैकमवमं पतति । अतो रव्यब्दान्ते यदवमशेषं तच्छुद्ध्यूनासु तिथिषु स्वीयकराभ्रतुरङ्ग ७०२ लवयुतासु सदृशच्छेदं कृत्वा क्षेप्यम् । ततश्चतुःषष्ट्या भागे गृहीते लब्धमवमानीत्युचितम् । तत्र रव्यब्दान्ते यदवमशेषं घटिकात्मकं पूर्वं गृहीतमस्ति तत्तु षष्टिच्छेदं तच्चतुः षष्टिच्छेदं कार्यम् । अतस्ता घटिकाश्चतुःषष्ट्या किल गुण्याः षष्ट्या भाज्याः । एवं चतुःषष्टिच्छेदमवमशेषं भवति । अथ चतुःषष्टिस्थाने त्रिषष्टिरेव कृता । किमिति । तत्रोच्यते पूर्वं या अधिमासशेषतिथय आगतास्ता एव शुद्धित्वेन ग्रहीतुं युज्यन्ते । यतस्ताभिरूनाश्चैत्राद्यास्तिथयोऽब्दान्तादग्रतो गृहीता भवन्ति । अथच शुद्धितिथयः कार्यान्तरवशादवमघटीभिरूनाः शुद्धित्वेन परिकल्पिताः। अवमघटिकोनया शुद्ध्या यावच्चैत्राद्यास्तिथय ऊनीकृता-

स्तावच्छेषतिथिष्ववमशेषघटिका अधिका जाताः। यतः शोध्यमानमृणं धनं स्यादिति। यत एकगुणा युक्ताः। अतस्त्रिषष्टिगुणा योज्याः। तत्रावमघटिकानां त्रिषष्टि-र्गुणकारः। षष्टिर्भागहारः। तत्र गुणकभागहारौ त्रिभि-रपवर्त्तितौ। गुणकस्थान एकविंशति२१र्भागहारस्थाने विंशतिः २०। फलं दिनानि। अत्र हराद्गुणको विंशांशाधिकोऽतः स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः क्षेपदिनानी-त्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

अवम घटिकाओं को अपने बीसवें भाग से युक्त करने पर लघु अहर्गण के साधनोपयुक्त सावयव क्षेपदिन सिद्ध होते हैं।

उपपत्ति।

आगे लघ्वहर्गण के साधन में जो अवमानयन किया है वहां ६४ छेद हैं। इसलिए अपने ७०२ वें भाग से युक्त-शुद्धिहीन तिथियों में सौरवर्षान्त के अवमशेष को ६४ चतुःषष्टि छेद करके जोड़ना चाहिये। वर्षान्त कालिक अवमशेष में ६० का छेद है और अगिले अवमसाधन में संचार से ६४ का छेद सिद्ध किया है, तो समच्छेद विधि के अनुसार अवमशेष को ६४ से गुणना प्राप्त हुआ। परन्तु पहले 'भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्रावशिष्टं तदूनं सदूनाहनाड्यादिकेन' इस श्लोक में लघ्वहर्गण के लिये शुद्धि में अवमशेष को घटाकर शेष की शुद्धिसंज्ञा की है। और यह शुद्धि आगे 'चैत्रसितादिगतस्तिथिसंघः शोधितशुद्धिः' इस स्थान में घटाई गई है तो वहां 'सशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति व्यस्तं क्षयः' इस वीज क्रिया के अनुसार अवमशेष जुड़ जाता है। इसलिए उक्त क्रियाकौशल से एकगुण अवमशेष के जुड़

जाने से फिर उसको ६३ से ही गुणाना चाहिये अर्थात् ६४ चौंसठ-गुनी अवमशेष घटिका युक्त होगईं । इसप्रकार, $\frac{\text{अशेघ}\times ६३}{६०} = \frac{\text{अशेघ}\times २१}{२०} = \text{अशेघ} + \frac{\text{अशेघ}}{२०} = \text{क्षेपदिन}$ ।

अपवर्तन और भागानुबन्ध का रूप देने से लघु अहर्गण के क्षेपदिन की उपपत्ति स्पष्ट है ॥

इदानीमहर्गणानयनमाह—

चैत्रसितादिगतस्तिथिसङ्घः
शोधितशुद्धिरधस्तु समेतः ॥ १२ ॥
स्वीयकराब्धतुरङ्गलवेन
क्षेपयुतः कृतषट्कविभक्तः ।
लब्धदिनक्षयवर्जितशेषो
रव्युदये द्युगणोऽब्दपतेः स्यात् ॥ १३ ॥

चैत्रादेर्गततिथिसंचयः शुद्धिरहितस्त्रिष्ठः कार्यः । अन्तिमो द्विखतुरङ्गै ७०२ र्भाज्यः । फलं मध्यस्थे क्षेप्यम् । ततोऽन्तरानीतानि क्षेपदिनानि तत्र क्षिप्त्वा स राशिश्चतुःषष्ट्या भाज्यः । फलमवमानि । शेषमवमशेषम् । चन्द्रानयनार्थं तत्पृथगनष्टं स्थाप्यम् । अवमैरूनः प्रथमो राशिरहर्गणः स्यात् । स चाब्दपत्यादिः । यस्मिन् वारे यावतीषु घटिकासु रव्यब्दान्तो जातस्तस्मात् कालात् तदन्तरार्कोदयं यावत्यो घटिकास्ता एवाहर्गणावयवीभूताः । यतस्तासु गतास्वब्दान्तो जातोऽभूत् । तदग्रतो दिनतुल्या वारा इति बुद्धिमता गणनीयम् ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र चैत्रादिगततिथयः शुद्ध्यूना अतः

कृताः । यतोऽधिमासशेषतिथिभिः सावयवाभिरूनी-कृताः सत्यो रव्यब्दान्तादग्रतो गृहीता भवन्ति । रव्य-ब्दान्तादूर्ध्वमिष्टदिनोदयं यावद् द्युगणः साध्यः । अतोऽब्दान्तानन्तरार्कोदयान्तरघटीतुल्येनाहर्गणाधोऽव-यवेन भवितव्यम् । अब्दान्तस्तु दिनाद्यस्य घटिकान्ते । अतः शुद्धितिथिषु सावयवास्ववमघटिका विशोध्य दिन-घटिका एव शेषीकृतास्ताभिस्तिथिभ्यः शोधिताभिरह-र्गणावयवघटिका यथोक्ता भवन्ति । एवं कृतेऽवमानयनं किंचित् सान्तरं स्यात् । तत् क्षेपदिनालयनेन निरन्तरी-कृतम् । अवमानयनेऽनुपातः । यदि कल्पतिथिभिः कल्पावमानि लभ्यन्ते तदाभिः किमिति । एवमवमानि गुणश्चन्द्रदिनानि हारः । ततः संचारः । यदि चन्द्रदिन-हारेणावमानि गुणस्तदा चतुःषष्ट्या किमिति । चतुः-षष्ट्या गुणितानामवमानां चन्द्रदिनहृतानां लब्धं रूपम् । शेषेण शेषमपवर्त्तितं जातं रूपम् । हारश्चापवर्त्तितो जातो छिद्रशैलमितः १/७०२ । अयं गततिथीनां गुणश्चतुः-षष्टिर्हरोऽतः समेतः स्वीयकराभ्रतुरङ्गलवेनेति सर्वं निरवद्यम् ।

भाषाभाष्य ।

चैत्रशुक्लादि से गत तिथिसंख्या में शुद्धि को घटाकर और उसमें निज ७०२ भाग और क्षेपदिनादि जोड़कर चौंसठ ६४ का भाग देने से लब्धि दिनक्षय का प्रमाण होता है । उसको चैत्रादि गत तिथि संख्या में घटा देने से शेष वर्षाधिपति के आरम्भ से अहर्गण होता है।

उपपत्ति ।

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से लेकर सौरवर्ष के अन्त तक शुद्धिनामक साव-

यत्र तिथि रहती हैं । सौरवर्ष का अन्त पूर्वसाधित दिनाद्य के अन्त म होता है । चैत्रशुक्लादि से लेकर इष्टदिनपर्यन्त जो तिथिगण होगा उसमें शुद्धि घटा देने से सौरवर्षान्त से आगे इष्टदिन तक सावयव काल शेष रहता है । अर्थात् दिनाद्य के घटिकान्त में होनेवाला जो सौरवर्षान्त उसके आगे सूर्योदय के बीच में जो घट्यादिकाल वह लब्धहर्गण का अवयव होगा और आगे सूर्योदय से इष्टसूर्योदय पर्यन्त पूरी वारसंख्या होगी । सावन करने के लिये अवमानयन करते हैं—कल्पकी तिथियों में कल्पावम मिलते हैं तो इष्टतिथियों में क्या ?

$$\frac{\text{कअव, इति}}{\text{कति}} = \text{इष्टावम ।}$$

अव 'रुद्रांशकोनाब्धिरसैः क्षयाहः' इसके अनुसार स्वल्पान्तर से ६४ छेदसंबन्धी गुणक लाते हैं—कल्पतिथि छेद में कल्पावमगुणक, तो ६४ छेद में क्या गुणक ?

$$\frac{६४\times२५०८२५५}{१६०२९९९००} = १ + \frac{१}{७०२} = \text{गुणक । छेद} = ६४$$

इसप्रकार संचार से कल्पावम, कल्पतिथि के स्थान में ये गुणक छेद हुए । इष्टतिथियों को $\frac{७०३}{७०२}$ । ६४ इनसे गुणाने भागने से जो अवम आवेगा उसको तिथिगण में घटाने से सावन लघु अहर्गण होगा ।

$$\text{चैगति शु}-\frac{\left(\text{चैगति}-\text{शु}+\frac{\text{चैगति}-\text{शु}}{७०२}\right)+\text{क्षे}}{६४}$$

यहां शुद्धितिथियों में अवमाद्य घटिका घटाकर दिनाद्यघटिका शेष रखा है इसलिये अवमानयन में जो अन्तर पड़ा उसकी पूर्ति क्षेपदिनों से की है । इससे उक्तप्रकार उपपन्न हुआ ॥ १२–१३ ॥

इदानीं विशेषमाह—

यावत् तिथिभ्योऽभ्यधिकात्र शुद्धिः

प्राक्चैत्रतस्तावदहर्गणः स्यात् ।
प्राक्शुद्धिपूर्वेण तथैव खेटाः
प्राग्वर्षजातैर्ध्रुवकैः समेताः ॥ १४ ॥

अत्र यावच्चैत्रादितिथिभ्यः शुद्धिर्न शुध्यति तावत् पाश्चात्यचैत्रादेरारभ्य तिथीर्गणयित्वा पूर्ववर्षभवैः शुद्ध्यब्दपक्षेपदिनैरहर्गणः साध्यः । तस्मादागता ग्रहाः पूर्ववर्षध्रुवकैश्च युताः कार्याः । यतो रव्यब्दादेरहर्गणस्यान्यरव्यब्दान्तं यावदुपचय इयमेवात्र वासना ।

भाषाभाष्य ।

चैत्रादिगत तिथियों की अपेक्षा यदि शुद्धि अधिक हो तो पूर्व चैत्र मास से तिथियों की गणना करके पूर्व वर्ष के शुद्धि अब्दप क्षेपदिन ग्रहण करके, अहर्गण का साधन करना । और ग्रहों में पूर्ववर्षसम्बन्धि ध्रुवक युक्त करना ॥ १४ ॥

इदानीं रव्यानयनमाह—

दिनगणो निजषष्टिलवोनितो
भवति तिग्मरुचिः स लवादिकः ।
गुणगुणाद् द्युगणादथ भाजिताद्
यमयमैः २२ कलिकादिफलान्वितः ॥ १५ ॥

अत्रोपपत्तिः । अत्र बालावबोधार्थं रूपमहर्गणं कृत्वा ग्रहाणां दिनगतयः साधिताः ।

र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	उ.	पा.
०	१३	०	४	०	१	०	०	०
५९	१०	३१	५	४	३६	२	६	३
८	३४	२६	३२	५९	७	०	४०	१०
१०	५३	२८	१८	९	४४	२२	५३	४८
२१	०	०	२८	९	३५	५१	५६	२०

दिनगणः स्वषष्ट्यंशोनो भागा इति प्रत्यहमेकोनषष्टिः कला गृहीताः । शेषावयवेन सत्रिभागैः सप्तभिर्दिनैरेका कला भवति । अतो गुणगुणाद् द्युगणाद्यमयमैर्भाजितादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण में उसका साठवाँ ६० भाग घटा देने से जो शेष रहे उसमें, अहर्गण को तीन ३ से गुणाकर बाईस २२ का भाग देने पर जो फल मिले उसको जोड़ देने से; मध्यम सूर्य होता है ।

उपपत्ति ।

ग्रहों की दैनिक गति रूप अहर्गण में सिद्धकरके लिखी हैं । सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′ कला कल्पना की गई है । शेष अवयव ०।८।१०।२१ रहते हैं । ये बढ़कर ७$\frac{1}{3}$ इतने दिनों में एक कला के समान होते हैं । इसलिए अनुपात किया—

यदि १ दिन में ०।८।१०।२१ इतना शेष मिलता है तो ७+$\frac{1}{3}$ दिनों में क्या ? इस अनुपात में, प्रमाण १ और इच्छा ७+$\frac{1}{3}$ है । दोनों को साठ ६० से सवर्णित किया तो हुए ६०। ४४० इच्छा से मध्यम राशि को गुणा किया, ०।३५२०।४४००। ९२४० साठ का भाग देने पर प्रथम स्थान में लब्धि ५९ हुई, पर स्वल्पान्तर से ६० का ग्रहण करलिया । इसमें प्रमाण ६० का भाग देने पर लब्धि १ कला हुई ।

फिर अनुपात किया—यदि ७+$\frac{1}{3}$=$\frac{22}{3}$ दिनों में एक कला मिलती है तो अहर्गण में क्या ?

$$\therefore \text{दिनगण} - \frac{\text{अहर्गण}}{६०} + \frac{३ \times \text{अहर्गण}}{२२}$$ इसप्रकार, उक्त प्रकार उपपन्न होता है ॥ १५ ॥

अथ चन्द्रानयनमाह—

रविगुणैस्तिथिभिः पृथगुष्णगु-
लवगतः सहितः स हिमद्युतिः ।
स्वनगभागयुतेन दशाहत-
क्षयदिनोर्वरितेन कलान्वितः ॥ १६ ॥

स रविः पृथग् रविगुणतिथितुल्यैर्भागैः सहितो हिमद्युतिर्भवतीति प्रसिद्धा वासना । परमेवं तिथ्यन्ते । अथ चौदयिकः कार्यः । तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषम् । तत् सावनम् । तस्य चान्द्रीकरणायानुपातः । यदि त्रिषष्ट्या सावनैश्चतुःषष्टितिथयस्तदावमशेषान्तःपातिभिः सावनावयवैः किमिति । पूर्वमवमशेषस्य चतुःषष्टिच्छेदः । इदानीं गुणस्तुल्यत्वात् तयोर्नाशे कृते त्रिषष्टिरेव हरः । फलं तिथ्यात्मकम् । तद्द्वादशगुणं किल भागाः । पुनः षष्टिगुणं कलाः । एवं द्विसप्ततिर्दशगुणाऽवमशेषस्य गुणस्त्रिषष्टिर्हरः । हरगुणौ नवभिरपवर्तितौ । हरस्थाने जाताः सप्त ७ गुणस्थानेऽष्टौ दशगुणाः ८० । यो राशिरष्टभिर्गुणितः सप्तभिर्ह्रियते स स्वसप्तमांशेनाधिकः कृतो भवति । अत उक्तं स्वनगभागयुतेन दशाहतक्षयदिनोर्वरितेन कलान्वित इति । एवं ताभिः कलाभिश्च युत औदयिकः शशी स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

गत तिथि संख्या को बारह १२ से गुणकर अंशादि स्पष्ट रवि में जोड़ देना । फिर उसमें निज सप्तमांश सहित और दशगुणित कलादि अवम शेष को जोड़ देने से स्पष्ट चन्द्र सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

सूर्य और चन्द्र के द्वादश अन्तरांशों में एक तिथि होती है । इस लिए तिथि को बारह से गुणा करने पर सूर्य और चन्द्र के अन्तरांश सिद्ध होते हैं । तिथ्यन्त और उदय के मध्य में अवमादि होता है वह सावन है । उसको चान्द्र करने के लिए अनुपात—

६३ सावनों में ६४ अवम मिलते हैं तो $\frac{\text{अव}}{६४}$ सावयवों में क्या ?

$\frac{\text{अव}\ ६४}{६३\times६४} = \frac{\text{अव}}{६३}$ = चान्द्रतिथि । १२° अंशों की कला = ७२० ।

अब फल को कलात्मक किया $\frac{\text{अव}\times ७२०}{६३} = \frac{८०}{७}$, यहां $\frac{८}{७}$ इसको अलग किया, यह $१\frac{१}{७}$ के समान है;

$$\therefore \text{चन्द्रमा} = (\overset{\circ}{\text{र}} + १२\text{ति}) + (१० \text{अव}' + \frac{\text{अव}'}{७})$$

यों उक्तप्रकार उपपन्न हुआ ॥ १६ ॥

इदानीं भौमानयनमाह—

> दिनगणार्धमधो गुणसंगुणं
> द्युगणसप्तदशांशविवर्जितम् ।
> लवकलादिफलद्वयसंयुतः
> क्षितिसुतध्रुवकः क्षितिजो भवेत् ॥ १७ ॥

स्पष्टार्थमिदम् ।

अत्रोपपत्तिः । दिनगणार्धं भागा इति प्रत्यहं त्रिंशत् कला गृहीताः $\begin{smallmatrix}०\\३\end{smallmatrix}\,०$ । तत् पृथक् त्रिगुणं जातम् $\begin{smallmatrix}१\\३\end{smallmatrix}\,०$ । एताः कलाः पूर्वकलामिश्रीकृता जाताः $\begin{smallmatrix}३\\३\end{smallmatrix}\,\begin{smallmatrix}१\\०\end{smallmatrix}$ । एतत् कुजगतेरधिकमतोऽतः कुजगतिं विशोध्य शेषम् ० । ३ ।

३१ । ५३ । अनेन सप्तदशगुणेनैका कला भवति । अत उक्तं द्युगणसप्तदशांशविवर्जितमिति । पूर्वफलेन भागादिनानेन च कलादिना भौमध्रुवको युक्तः कुजो भवति । यतोऽयमहर्गणोऽर्काब्दान्तादूर्ध्वमतस्तदुत्थं फलं रविमण्डलान्तिके योज्यमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण का अर्ध करने से वह अंश होगा । उसको दूसरे स्थान में तीन से गुणाकर उसमें अहर्गण का सत्तरहवाँ भाग घटाकर अंशादि और कलादिफल को मङ्गल के ध्रुवक में जोड़ देने से मध्यम मङ्गल होता है ।

उपपत्ति ।

दिन गति के अनुसार दिनगण का आधा अंश होते हैं इसलिए तीस कला को अलग किया $\begin{matrix}०\\३०\end{matrix}$, इसको अलग तीन से गुणाने से सावयव कला हुई $\begin{matrix}१\\३०\end{matrix}$, इनमें पहिली कला जोड़ने से $\begin{matrix}३१\\३०\end{matrix}$, भौम गति ३१ । २६ । २८ । ७ से अधिक होते हैं इसलिये $\begin{matrix}३१\\३०\end{matrix}$ में भौम गति घटाने से ० । ३ । ३१ । ५३ शेष रहा । इससे अनुपातद्वारा सत्तरह दिन में १ कला प्राप्त होती है । इसलिए दिनगण में सत्तरह का भाग देने से जो कलादि अधिक फल प्राप्त हो उसको अलग स्थापित किया दिनगणार्ध में घटाने को कहा है । इसप्रकार पहला अंशादि और यह कलादि जो फल सिद्ध हुए उनको भौम ध्रुव में जोड़ने से वास्तव भौम होता है ॥ १७ ॥

इदानीं बुधचलानयनमाह—

दिनगणः कृतसंगुणितः पृथग्
गुणगुणः खगुणेन्दुभिरुद्धृतः ।

फलयुतः खलु तेन लवादिना
बुधचलं भवति ध्रुवकोऽन्वितः ॥ १८ ॥

अत्रोपपत्तिः । अहर्गणश्चतुर्गुणो भागा भवन्तीति प्रसिद्धम् । अथ ज्ञचलस्य कल्पभगणानां भागान् कृत्वा तेभ्यश्चतुर्गुणान् कहान् विशोध्य शेषस्यास्य १५५६५३८३४२४० द्वादशांशेनानेन १२१३७८१६५२० शेषं कहाश्चापवर्त्तिता जाताः शेषस्थाने द्वादश १२ कहस्थाने खगुणेन्दवः १३० । अतः पृथगहर्गणो द्वादशभिर्गुण्यः । पूर्वं चात्र चतुर्गुणोऽहर्गण आसीत् । स एव त्रिगुणो द्वादशगुणो गुणगुण उक्तः । पृथक् स्थितो यश्चतुर्गुणितः स एव त्रिगुणीकृतस्तेन द्वादशगुणितो जातः । खगुणेन्दुभिर्भक्तः फलभागैः पृथक्स्थितश्चतुर्गुणोऽहर्गणो युतः कार्यः । एवं ते भागाः प्राग्वत् ध्रुवके क्षेप्या इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण को चार से गुणा करना फिर उसको अलग रखकर तीन से गुणाकर १३० का भाग देकर फल को चतुर्गुण अहर्गण में जोड़ देना और उस अंशादिफल को बुध के चल ध्रुवक में जोड़ देने से बुध का शीघ्रोच्च सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

चौगुना अहर्गण अंश होंगे यह दिनगति से स्पष्ट है । बुध शीघ्रोच्च के कल्पभगण भागों में चतुर्गुण कल्प कुदिनों के घटाने से जो शेष रहै उसका शेष और कुदिन में अपवर्तन देने से शेषस्थान में १२ और कुदिनस्थान में १३० होते हैं । इसप्रकार अहर्गण के १२ गुणक

हुए । परंतु पहले अहर्गण ४ गुण था, वही त्रिगुण द्वादशगुण हो जाता है । और भाजक १३० है । इससे अंशादिफल द्वारा उक्त विधि स्पष्ट है ॥ १८ ॥

इदानीं गुरोरानयनमाह—

द्युमणिभिः कुनगैर्द्युगणो हृतो
लवकलाः स्वमृणं ध्रुवके गुरुः ।

अत्रोपपत्तिः । किंचिन्न्यूनाः पञ्च कला गुरोर्गतिरिति द्वादशभिर्दिनैरेको भागः । यन्न्यूनं तेन रूपे हृत एकसप्ततिर्लभ्यते । अत एकसप्तत्या दिनैरेका कला नेत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण में बारह का भाग देकर अंशादि फल को गुरु के ध्रुवक में जोड़ना । फिर अहर्गण में इकहत्तर ७१ का भाग देकर कलादि फलको उसी ध्रुवक में घटाने से गुरुका शीघ्रोच्च सिद्ध होता है ।

उपपत्ति यों है:—कुछ कम पांच कला ५′ गुरुकी दैनिक गति है । इसलिए बारह दिनों में एक अंश हुई । और शेष ०।०।५०।५१ का १ में भाग देनेसे ७१ दिन प्राप्त होते हैं । इसलिए १२ और ७१ का भाग देना कहा है । पहला फल अधिक लिया है इसलिये दूसरा ऋण किया है ॥

अथ शुक्रचलानयनमाह—

ऋतुभिरक्षदिनैर्दशसंगुणात्
फललवाः स्वमृणं ध्रुवके सितः ॥ १९ ॥

अत्रोपपत्तिः । अत्र सुखार्थमहर्गणं दशगुणं कृत्वा भागहारद्वयेन फले साधिते । तत्र दशभ्यः षड्भिर्भागे हृते लब्धमेको भागश्चत्वारिंशत् कलाः १।४०। इदं

दिनगतेरधिकं जातम् । अस्माद्गतिं विशोध्य शेषम् ० । ३ । ५२ । १५ । २५ । अनेन दशभ्यो भागे हृते लब्धाः पञ्चपञ्चेन्दवः १५५ । अतोऽहर्गणाद्दशघ्नात् पृथक् षड्भिः पञ्चतिथिभिश्च हृताल्लब्धे भागाद्ये धनर्णरूपे फले इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण को दश से गुणाकर अलग अलग ६ और ११५ का भाग देकर अंशादिफल को ध्रुवक में क्रम से धन और ऋण करने से शुक्र का शीघ्रोच्च सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

सुखार्थ अहर्गण को १० गुणाकरके १० में ६ का भाग देने से १ । ४०, दिनगति १ । ३६ । ७ । ४४ । ३५ से अधिक लब्ध आता है । इसलिए दिनगति में घटाने से ० । ३ । ५२ । १५ । २५ शेष रहा ८३६१२५ इसका सवर्णित दस १२९६०००० में भाग देने से १५५ लब्ध हुआ बाद धन और ऋणफल हुए ॥ १६ ॥

इदानीं शनेरानयनमाह—

छिन्नो दिनौघः पृथगक्षभक्तो
लिप्ता विलिप्ता ध्रुवके स्वमार्किः ।

अत्रोपपत्तिः । गतिः कलाद्वयम् । अधोऽवयवात् पञ्चभिर्दिनैर्द्वे विकले च भवत इत्युपपन्नं छिन्नो दिनौघ इत्यादि ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण को दो से गुणाकर एक स्थान में कला और दूसरे स्थान में पांच का भाग देकर विकलात्मक फल का ग्रहण करके दोनों को ध्रुवक में जोड़ देनेसे मध्यम शनि होता है ।

उपपत्ति ।

शनि की दो कला गति है इस लिए अहर्गण को दूना किया बाद ० । २२ । ५१ गति शेष से पांच दिन में दो विकला प्राप्त होती है इस लिए पांच का भाग दिया ॥

इदानीं विधूच्चानयनमाह ।

दिग्भिर्गजेभैश्च हृतो दिनौघः
क्षेप्यो ध्रुवांशेषु भवेद्विधूच्चम् ॥ २० ॥

अत्रोपपत्तिः । कलाषट्कं गतिरिति दशभिर्दिनैर्भागः। भागादिगतेः कलाषट्कं विशोध्य शेषेणानेन ० । ० । ४० । ५३ । ५६ । रूपे हृते लब्धा गजेभाः ८८ । अतो दिग्भिर्गजेभैरित्याद्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण में दश और अठासी ८८ का भाग देकर दोनों फलों को वर्षारम्भकालिक चन्द्र के ध्रुवक में जोड़ देने से चन्द्र का शीघ्रोच्च सिद्ध होता है ।

यहां ऊपर की वासना के अनुसार—

$$\text{चन्द्रोच्च} = \text{चं ध्रु} + \left(\frac{\text{अह}^{\circ}}{१०} + \frac{\text{अह}^{\circ}}{८८} \right) \parallel २० \parallel$$

अथ पातानयनमाह—

ताडितः खदहनैर्दिनसङ्घः
षट्कषट्कशरहृत् फलमंशाः ।
स्वं ध्रुवे कुमुदिनीपतिपातो
राहुमाहुरिह केऽपि तमेव ॥ २१ ॥

अत्रोपपत्तिः । कल्पराहुभगणानां राशिभिः कुदि-

नेषु भक्तेषु लब्धं षट्कषट्कशरा: ५६६। एभिर्युगणे भक्ते राश्यादि फलम् । तद्भागादिकं कर्तुं ताडितः खदहनैरित्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

कुमुदिनीपतिपातश्चन्द्रपातः । पातस्य पश्चिमगत्या भ्रमणान्मेषमीनकुम्भेत्यादि विपरीतगणनया गतराश्याद्यनुसारेण भोगः । अतएव सूर्यसिद्धान्ते ' विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ।' इति द्वादशराशिभ्यः शोधितस्यास्यान्यग्रहवन्मेष-वृषादिक्रमेण गणनावधेया । स्वागताछन्दः ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण को तीस ३० से गुणाकर ५६६ का भाग देकर अंशादि फल को पात ध्रुव में जोड़ने से चन्द्र का पात होता है । इसीको कोई आचार्य राहु कहते हैं ।

यहां उपपत्ति स्पष्ट ही है । श्लोक के अनुसार—

$$\text{चन्द्रपात} = \text{चंपाध्रु} + \frac{३० \text{ अह}^{\circ}}{५६६} ।$$

कल्प के पात भगणों की राशियों का कुदिन में भाग देने से फल ५६६ होता है। इसलिए इसका अहर्गण में भाग देने से राश्यादि फल मिलता है । उसको अंशादि करने के लिए तीस ३० से गुणा किया है ॥ २१ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह—

लक्षाहताद्दिनगणाच्छशिषट्कशक्र—
दिग्भि१०१४६१र्नगाष्टनगभूतिथिभिःक्रमेण१५१७८७।
देवाष्टखाङ्कशशिभि१९०८३३श्च रसाग्निवेद—
सिद्धैः२४४३६खखाग्धिदहनाभ्रयमेन्दुभिश्च१२०३४००॥२२

भूपाब्धिलोचनरसैः ६२४१६ खखखाभ्रनन्द—
नन्दाश्विभि२९९०००० र्गगनखाभ्रगजाङ्कनागैः८९८००० ।
खाभ्राष्टषड्गजधृतिप्रमितै१८८६८००श्च भक्ताद्
भागादिकानि हि फलानि रवेः सकाशात् ॥ २३ ॥

विधोः फलं खाश्विगुणं विधेयं
ग्रहध्रुवाः स्वस्वफलैः समेताः ।
ते वा भवन्ति द्युचराः क्रमेण
भागादिकः स्यात् फलमेव भानुः ॥ २४ ॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः । यदि कल्पकुदिनैः कल्पभगणभागा लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमिति । एवं त्रैराशिके कृते पश्चात् संचारः । यदि भगणभागमिते गुणके कुदिनानि हारस्तदा लक्षमिते किमिति । एवं लक्षगुणकुदिनेभ्यः पृथक् भगणभागहतेभ्यो यानि फलानि तानि लक्षाहतस्य दिनगणस्य भागहारा भवन्ति । विधोस्तु लक्षेण विंशत्या च गुणितेभ्यः कुदिनेभ्यो हारः साध्यते । गतेर्बहुत्वादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण को एक लाख से गुणाकर, क्रम से १०१४६१ आदि अङ्कों का भाग देने से रवि से लेकर प्रत्येक ग्रहों के अंशादि फल होते हैं । उनको निज ध्रुवकों में युक्त करने से राश्यादि मध्यम-ग्रह सिद्ध होते हैं । चन्द्रमा के फल को बीस २० से गुणाकर ध्रुवक में जोड़ने से मध्यमचन्द्रसिद्ध होता है । और सूर्य के ध्रुवक के शून्य होने से यथागत अंशादि फलही सूर्य होता है ।

उपपत्ति ।

यदि कल्पकुदिनों में कल्पभगण, तो अहर्गण में क्या ?

$$\text{गतभगण} = \frac{\text{कभ} \times \text{अह}}{\text{ककु}},$$

$$\text{गत अंशादि} = \frac{\text{कभ} \times ३६० \times \text{अह}}{\text{ककु}} ।$$

अत्र संचार किया—यदि कल्पभगण गुणक में कुदिन के तुल्य हार है तो लक्षमित गुणक में क्या ?

$$\text{इसप्रकार,} \quad \frac{\text{कभ} \times ३६०}{\text{ककु} \times १००००० } = \text{भागहाराङ्क} ।$$

$$\therefore \text{गत अंशादि} = \frac{१००००० \times \text{अह}}{\text{भागहाराङ्क}};$$

और चन्द्र के साधन में, $\frac{\text{कभ} \times ३६०}{\text{ककु} \times १००००० \times २०} = \text{भागहाराङ्क},$

सिद्ध होता है । क्योंकि चन्द्र की अधिकगति होने से सावयव हाराङ्क को एकत्र करने के लिए बीस २० से गुणा किया है ॥ २२–२४ ॥

इदानीं दिनगतिसाधनमाह—

महीमितादहर्गणात् फलानि यानि तत्कलाः ।
भवन्ति मध्यमाः क्रमान्नभःसदां द्युभुक्तयः ॥ २५ ॥
समागतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत् ।
कलादिकल्पनावशान्मृदुद्रुता च सा स्मृता ॥ २६ ॥

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । पूर्वं गतिर्योजनात्मिका ग्रहाणां तुल्यैवोक्ता। इदानीमतुल्या । सा कलादिकल्पना-वशात् ।

भाषाभाष्य ।

रूप अहर्गण कल्पना करके, पूर्वकथित रीति से जो ग्रहफल सिद्ध

हों वे ग्रहों के मध्यम दिनगति रूप होते हैं। ग्रहों की योजनात्मक गति समान होती है । परन्तु कला, विकला आदि की कल्पना से वह अतुल्य होती है ।

उपपत्ति ।

यहां अनुपात इस प्रकार है:—कल्पकुदिन में कल्पभगण, तो रूप अहर्गण में क्या ? इससे सिद्ध फल एक दिन का ग्रह भोग मध्यमगति होती है ।

किसी ग्रह की गतिकला बहुत और किसी की कम होती हैं इसकारण पूर्वाचार्यों ने गति की मृदुता और शीघ्रता कही है * अर्थात् योजनात्मक तुल्यगति होने पर भी कलादिक अतुल्य गति की कल्पना की है ।

तात्पर्य यह है कि अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए ग्रह, तुल्य योजनरूप गति में कलाभेद की उपलब्धि होने से अतुल्य चलते हैं ॥ २५–२६ ॥

इदानीमतुल्यत्वे कारणमाह—

कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्कितास्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः ।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण॥२७॥

यतः सर्वा अपि कक्षाश्चक्रलिप्ताभिरेवाङ्किताः । अतो महति वृत्ते महत्यो लिप्ताः स्युः । लघुनि लघ्व्यः । तद्यथा

---

* श्रीपति ने लिखा है 'तुल्यागतिर्योजनवर्त्मनैषा लिप्ताप्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः ।' प्राचीन आचार्यों के मत से योजनात्मकगति समान और सब ग्रह वृत्ताकार मार्ग में भ्रमण करते हैं । परन्तु सांप्रत के नवीन युरोपियन मत से यह सिद्ध है कि ग्रहों की योजनात्मकगति विषम और ग्रह दीर्घवृत्त में भ्रमण करते हैं । दीर्घवृत्त भ्रमण मार्ग मानने से योजनात्मकगति तुल्य नहीं होती ।

चन्द्रकक्षा सर्वाधस्था लघुः । तस्यामेका कला पञ्चदशभि-र्योजनैर्भवति । शनेः कक्षा सर्वोपरिस्था सा महती । तस्या-मेका कला योजनानां षड्भिः सहस्रैरेकसप्तत्योनै ५९२९ र्भवति । योजनं चतुः क्रोशमेव । अतश्चन्द्रात् सकाशादू-र्ध्वोर्ध्वस्था बुधशुक्रादयः क्रमेण मन्दाक्रान्ता मन्दगतय इव भान्ति । मन्दाक्रान्ताछन्दोऽपि सूचितम् ।

इति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये प्रत्यब्दशुद्धिः ।

प्रभा ।

सर्वाः कक्षाः सूर्यादीनां प्रतिवृत्तादयः। मन्दाक्रान्ताः मन्दं स्वल्प-माक्रान्तं गमनं येषां ते मन्दाक्रान्ता मन्दगतयः । इवोत्प्रेक्षायाम् । वस्तुतस्त्वल्पगमनात् । क्रमेण यथोक्तक्रमेणोत्तरोत्तरम् । शेषं स्फुटम् ।

इति प्रभायां प्रत्यब्दशुद्धिः ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहों की सब कक्षाएं चक्रकला २१६०० से अङ्कित हैं । किन्तु छोटे बड़े वृत्तों के क्रमसे उनमें भेद है । अर्थात् किसी ग्रह की कक्षा-कला अधिक योजनों में होती है किसी के कम योजनों में होती है । इसी कारण, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु और शनि कक्षा क्रमसे चन्द्रकक्षा से दूर होने से योजनात्मक समान गति से भ्रमण करते हुए भी कलादि गति में स्वल्प गमन करते मालूम होते हैं ।

उपपत्ति ।

ग्रहों की कक्षाओं में बड़ी छोटी के हिसाब से कला का भेद होता है । उसके लिये अनुपात—चक्रकला २१६०० में इष्टग्रह के कक्षायो-जन मिलते हैं तो एक कला में क्या ? चन्द्र की कक्षा में १५ योजन की एक कला सिद्ध होती है । बुधकक्षा में ४८ योजन और शुक्र की १२३ योजन की कला होती है । इसीप्रकार अन्य ग्रहों की भी सम-

झना चाहिए। इसप्रकार बड़े वृत्तों में अधिक और छोटे वृत्तों में कम योजनों की कला होती है * इसलिए वह अतुल्य होने से कलात्मक गति भी प्रत्येक ग्रहों की भिन्न भिन्न होती है। क्योंकि कक्षाओं के तुल्य योजन प्रदेश में, कलाओं की समता नहीं हो सकती। इसप्रकार कक्षादि गति की मृदुता और शीघ्रता जो पूर्वश्लोक में कही गई है वह युक्तिसिद्ध है ॥ २७ ॥

भाषाभाष्य में प्रत्यब्दशुद्धि पूर्ण हुई।

इदानीमहर्गणादौ विशेषमाह—

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्
सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्।
तदाधिमासावमशेषके च
कल्पाधिमासावमहीनयुक्ते ॥ १ ॥

इह किल स्थूलतिथ्यानयने यस्यां तिथौ यो वार आगतः सचेदहर्गणे नागच्छति तदाहर्गणं सैकं निरेकं कृत्वा ग्रहाः साध्या इति ज्योतिर्विदां संप्रदायो युक्तियुक्त एव। यतोऽहर्गणस्य वारो नियामकः। एवंकृते यो विशेषः सोऽभिधीयते। तिथयोऽपि तद्वदित्यादि। अत्रैतदुक्तं भवति। यदा वारार्थं सैकोऽहर्गणः कृतस्तदाधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयने कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वैरित्यादौ द्वादशगुणास्तिथयोऽर्कभागेषु याः क्षेप्यास्ताः सैकाः कृत्वा

---

* यह विषय सूर्यसिद्धान्त में स्पष्ट लिखा है—
'उपरिस्थस्य महती कक्षाल्पाधःस्थितस्य च।
महत्या कक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ॥
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्पभगणाश्रितः।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन् ॥'

भूगोलाध्याय, ७५–७६।

द्वादशगुणाः क्षेप्याः । यदा निरेकोऽहर्गणः कृतस्तदा निरेकाः कृत्वा । तथा यदि सैकोऽहर्गणस्तदाधिमासशेषं कल्पाधिमासैर्युतं कार्यम् । अवमैरवमशेषं च । यतः सैकासु तिथिषु सैकोऽहर्गणो निरेकासु निरेकः।तथा प्रतिदिनमधिमासशेषस्याधिमासैरुपचयोऽवमैरवमशेषस्यातोयुक्तमुक्तम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण में इष्टवार की प्राप्ति के लिए एक जोड़ना किंवा घटाना चाहिए । उसी प्रकार तिथिसंख्या में भी एक जोड़ना वा घटाना चाहिए । अधिमास और अवमशेष द्वारा सूर्य और चन्द्र के साधनप्रसङ्ग में, सैक वा निरेक तिथि का, अहर्गण के अनुसार ग्रहण करना चाहिए । और अधिमासशेष एवं अवमशेष को कल्पाधिमास और कल्पावम में जोड़ना और घटाना चाहिए ।

उपपत्ति ।

इष्टवार में अहर्गणसाधन के लिए गत मासों को तीस से गुणाकर उस में इष्टवार तक पञ्चाङ्ग की स्पष्ट तिथि को ही मध्यम मानकर जोड़ते हैं, क्योंकि मध्यम तिथिका ज्ञान नहीं रहता । इस स्पष्ट तिथिकी अग्रिम वार में यदि मध्यममान से पूर्ति होजाय तो स्पष्टतिथि और मध्यम का भेद नहीं रहता । तब यथास्थित अहर्गण से ही वारगणना ठीक होती है । और जिस स्थिति में स्पष्टतिथि की मध्यममान से अग्रिमवार के भी आगे पूर्ति होवे तब स्पष्टतिथि का अग्रिमवार में जोड़ना गत मध्यमतिथि के समान होता है । इसलिए अहर्गण से वार आगे होजाने से उसमें सैक अर्थात् एक जोड़ना चाहिये । इष्टवार की गत स्पष्टतिथि को सैक करने से मध्यममान से गत तिथियाँ होती हैं । और जब इष्टगत तिथि की मध्यम मान से इष्टवार को ही पूर्ति हो तो स्पष्ट गततिथि को जोड़ने से इष्टदिन के अगले वार में मध्यमगत तिथि जोड़ने के समान होता है ।

इसलिए अहर्गण को निरेक करते हैं * इष्टवार में स्पष्ट गततिथियों को निरेक करने से मध्यममान से गततिथि होती है ।

अहर्गण जब सैक कियाजाता है तब अधिमासशेष और अवमशेष के द्वारा चन्द्र के साधन में चैत्रादिगत तिथियों से सैक करके द्वादशगुणा करनी चाहिए । जब अहर्गण निरेक किया जाता है उस समय चैत्रादि तिथियों को निरेक करके द्वादशगुणा करना चाहिये । क्योंकि तिथियों में एक जोड़ने और घटाने से अहर्गण भी एक से युक्त और हीन होता है । इसीप्रकार अहर्गण को सैक करने में अधिमासशेष को कल्पाधिमास से युक्त करना चाहिए और निरेक करने में अधिमास शेष को कल्पाधिमास से हीन करना चाहिए । इसीप्रकार अवमशेष में कल्पावम को जोड़ना और घटाना चाहिए । क्योंकि प्रतिदिन अधिशेष की कल्पाधिमास के समान, तथा अवमशेव की कल्पावम के समान वृद्धि अनुपातद्वारा स्पष्ट है ॥ १ ॥

इदानीं लघुदिनौघविषयमाह—

अथैवमेवाल्पदिवागणेऽपि
सैकं निरेकं च तदावमाग्रम् ।
तथाधिमासस्य तिथीर्गृहीत्वा
लघुर्दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥ २ ॥

लघ्वहर्गणे सैके निरेके तिथयोऽपि सैका निरेकाः । तत्रावमशेषमपि सैकं निरेकं कार्यम् । यतस्तत्रावमानयने

* आचार्य कमलाकर ने सिद्धान्ततत्त्वविवेक की शेष वासना में सैक-निरेक का तत्त्व स्पष्ट लिखा है । वह इसप्रकार हैः— वर्तमान मध्यमतिथि जिस मध्यम सूर्योदयकालिक है उसी के उदयकाल का अहर्गण सिद्ध होता है । परन्तु स्पष्टतिथि जिस मध्यम सूर्योदयकालिक है उसके उदय में अहर्गण अपेक्षित है । मध्यम और स्पष्ट तिथियों का अन्तर चन्द्र-सूर्य के मन्दफल संस्कार से उत्पन्न काल होता है । उसीका संस्कार करने से कभी वार का अन्तर पड़ा करता है इसलिए अहर्गण सैक निरेक किया जाता है ।

रूपगुणा एव तिथयश्चतुःषष्ट्या हृताः । अथ लघ्वहर्गणे साध्यमानेऽभीष्टाहचैत्राद्यन्तरे यद्यधिमासोऽस्ति तदा तस्यापि तिथिर्गृहीत्वा लघुर्दिनौघः साध्यः । तत्र लघुरिति विशेषणाद्बृहदहर्गणे न ग्राह्याः । यतस्तत्राधिमासानयनेन लब्धाधिमासा ता युक्ता भविष्यन्ति । लघ्वहर्गणानयने त्वब्दान्तादूर्ध्वमधिमासानयनस्याभावात् तत्रावश्यंयोज्याः ।

भाषाभाष्य ।

इसीप्रकार लव्वहर्गण के साधन में भी गततिथियों को सैक किंवा निरेक करना चाहिये । यदि इष्टदिन और चैत्रादि के अन्तर में अधिमास आपड़े तो उसकी भी तिथियों का ग्रहण करके लव्वहर्गण का साधन करना चाहिये ।

उपपत्ति ।

पहले कही रीति से अहर्गण का सैक निरेक होना साधारण विषय है । इसलिए लघु अहर्गण को भी सैक निरेक और चन्द्रसाधनप्रसङ्ग में तिथि को भी करना चाहिए ।

लघु अहर्गण एक सौरवर्ष के भीतर सिद्ध होता है । इसलिए उसके साधन में सौरवर्ष के आगे अधिमास का साधन असंभव होने से यदि बीच में अधिमास पड़जाय और उसका ग्रहण न कियाजाय तो अहर्गण में ३० दिन का अन्तर होजायगा । इसलिए चैत्रादि गततिथियों में अधिमास तिथियों को भी जोड़ देना चाहिये ॥ २ ॥

इदानीमन्यदाह—

स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो
यदा यदा वाऽपतितोऽपि लब्धः ।
सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासै-
स्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥ ३ ॥

कृत्वा युतोनं क्रमशोऽधिशेषं
दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः ।
सैकान्निरेकान्मधुयातमासां-
स्ततः प्रसाध्यौ खलु पुष्पवन्तौ ॥ ४ ॥

अहर्गणानयने योऽधिमास आगच्छति स मध्यममानेन । यदा स्पष्टोऽधिमासः पतितः । अथ चाहर्गणानयनेन लब्धस्तदा लब्धाधिमासान् सैकान् कृत्वाऽहर्गणः साध्यः । तदा यदधिमासशेषमागतं तच्च युतं कार्यम् । कैः । दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः । तथा चैत्रादिमासान् सैकान् कृत्वा चन्द्राकौं साध्यौ । यदा वाऽपतितोऽपि लब्धस्तदास्माद्विपरीतम् । एतदुक्तं भवति । यदा स्पष्टोऽधिमासःपतितस्तदाऽलब्धोऽपि ग्राह्यः । यदा न पतितस्तदा लब्धोऽपि न ग्राह्यः । तदाधिमासशेषं कल्पाधिमासैर्दिनीकृतैर्यथाक्रमं युतोनं कार्यम् । यतस्त्रिंशता दिनैर्दिनगणोऽन्तरितः । तस्मादधिमासशेषाच्चन्द्राकौं साध्यौ । तदा चैत्रादयो मासाः सैका निरेकाश्च ग्राह्याश्चन्द्रार्कसाधने ।

प्रभा ।

एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरावित्यभिधानात्सूर्यचन्द्रौ खलु असंशयं कोस्याहतैरित्यादिना साध्यावित्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण के साधन में मध्यममान से अधिमास न प्राप्त होने पर भी यदि स्पष्टमान से आपड़े तो अधिमाससंख्या में एक जोड़ देना । इसी प्रकार मध्यममान से प्राप्त होने पर भी यदि स्पष्टमान से न मिले तो अधिमाससंख्या में एक घटा देना । फिर अहर्गण सिद्ध करना चाहिए । कल्पाधिमास संख्या को तीस ३० से गुणाकर दिनात्मक बनाकर,

अधिशेष में उक्त नियम के अनुसार जोड़ किंवा घटा देना । फिर चैत्रादि गत माससंख्या में एक जोड़ वा घटाकर सूर्य चन्द्र का साधन करना चाहिए ।

उपपत्ति ।

ग्रह स्पष्टगति से भ्रमण करते हैं, मध्यममान से नहीं । कल्पना केवल व्यवहारसिद्धि के लिए है । स्पष्टमान प्रतिक्षण विलक्षण हुआ करता है । यों कल्पित मध्यममान से प्रत्यक्ष उपलब्धि नहीं होती । इसकारण मध्यम और स्पष्ट गणना में अन्तर होता है ।

इष्टकाल में स्पष्टमान से अधिमास पड़जाने पर भी अहर्गण द्वारा यदि मध्यममान से अधिमास न पड़े तो उक्तविधि से मध्यममान से इष्टकाल में साधित अहर्गण पूर्वमास का सिद्ध होता है । क्योंकि स्पष्टमान से एकमास अधिक सिद्ध होता है । इसलिए इष्टकाल में मध्यममान से अहर्गणसाधन के लिए अनुपात से सिद्धगत अधिमास में एक जोड़ देना चाहिए । इसीप्रकार इष्टकाल के आगे स्पष्टमान से अधिमास पड़ने पर, पहले न पड़ने पर भी अनुपातसिद्ध गत अधिमास में एक घटाना चाहिए ।

सूर्य और चन्द्र के साधनार्थ अहर्गणोपयुक्त चैत्रादि गत तिथियों को तीस ३० दिन में जोड़ देने से इष्टकालिक गत तिथियाँ होती हैं । तात्पर्य यह है कि जैसे सैक निरेक गताधिमास के ग्रहण न करने से अहर्गण में तीस दिन का अन्तर पड़जाता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्र भी इष्टकाल के नहीं होते । और जब अधिमास पड़े और गणित से भी उपलब्ध हो तब स्वतः सिद्ध अहर्गण ही इष्टकालिक होता है । उस स्थिति में अधिमास होनेपर भी—सूर्य, चन्द्र के साधनार्थ चैत्रादि गतमासों को सैक न करना चाहिए ॥ ३—४ ॥

इदानीं शुद्धौ विशेषमाह—

शुद्ध्यागमे त्वपतितोऽपि स लभ्यते चे-
च्छुद्ध्या तदा खदहनै ३० युतया दिनौघः।
एतद्विदन्ति सुधियः स्वयमेव किन्तु
बालावबोधविधये मयका निरुक्तम् ॥ ५ ॥

शुद्ध्यानयने स स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽपि यदि लभ्यते तदा सोऽपि न ग्राह्यः। तस्मिन्नगृहीते त्रिंशदधिकाशुद्धिर्भवति। तयाहर्गणस्तदा कर्तुं युज्यते। स्पष्टाधिमासस्य ग्रहणात्।

प्रभा।

मयैवेति मयका अव्ययसर्वनाम्नामकजिति सूत्रेणाकच्प्रत्ययः।

भाषाभाष्य।

शुद्धि के साधन में स्पष्टाधिमास न पड़ने पर भी यदि अधिमास उपलब्ध हो तो उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए। उसका ग्रहण न करने से, शुद्धि में तीस ३० जोड़ कर अहर्गण का साधन करना चाहिए। इस बात को विद्वान्लोग स्वयं जानते हैं। मैंने केवल विद्यार्थियों के ज्ञानार्थ कहा है।

उपपत्ति।

इस स्थल में यह जानना चाहिए कि जब स्पष्टमान से स्पष्टचैत्र अधिमास नहीं हुआ और शुद्धिके साधन में फल में लब्ध हुआ तो स्पष्ट चैत्र मध्यममान से अधिमास हुआ। और स्पष्टचैत्र से स्पष्ट-वैशाख मध्यममान से चैत्र होता है। इसलिए गणित से प्राप्त शुद्धि वैशाख के आरम्भकाल की, मध्यममान से होती है। अब मध्यचैत्र से गतमासों के ज्ञानार्थ प्रसिद्ध स्पष्टचैत्रादि की गणना से प्राप्त मासों को निरेक करना प्राप्त हुआ। पर यों न करके लाघव से गणितागत शुद्धिको ही

एकमास के दिन ३० संख्या में जोड़ दिया। इस शुद्धि से प्रसिद्ध चैत्रादि-तिथियों को घटादेने से मध्यम सौर वर्षान्त से तिथियां गृहीत होती हैं।

और इसीकारण से 'गताब्दाधिमासान्तरम्—'इत्यादि रीति से जो अब्दप साधन किया गया है उसमें मध्यममान से गताधिमास के प्रयो-जन से तीस में घटी हुई उक्त शुद्धि का आवश्यक है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि वास्तव पतित अधिमास के लिए गणि-तागत अधिमासों को निरेक करना चाहिए। परन्तु यह विषय तभी है जब स्पष्टशुद्धि के आनयन में लब्ध अधिमाससंख्या मध्यम शुद्धि के साधन में लब्ध गताधिमाससंख्या से निरेक हो। इस प्रकार, स्पष्ट चैत्रादि से स्पष्ट मेषसंक्रान्ति के अन्तर काल को स्पष्ट शुद्धि जानना चाहिए॥ ५॥

इदानीमधिमासस्य क्षयमासस्य च लक्षणमाह—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यतः स्या-
त्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च॥ ६॥

यस्मिन् शशिमासेऽर्कसंक्रान्तिर्नास्ति सोऽधिमास इति प्रसिद्धम्। तथा यत्र मासे संक्रान्तिद्वयं भवति स क्षय-मासो ज्ञेयः। यतः संक्रान्त्युपलक्षिता मासाः। अत एकस्मिन् मासे संक्रान्तिद्वये जाते सति मासयुगलं जा-तम्। स क्षयमासः कदाचित् कालान्तरे भवति। यदा भवति तदा कार्त्तिकादित्रय एव। तदा क्षयमासात्पूर्वं मासत्रयान्तर एकोऽधिमासोऽग्रतश्च मासत्रयान्तरितो-न्यश्चासंक्रान्तिमासः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः । चन्द्रमासप्रमाणमेकोनत्रिंशत्सावनदिनान्येकत्रिंशत् घटिकाः पञ्चाशत् पलानि २९ । ३१ । ५० । तथार्कमासस्त्रिंशद्दिनानि षड्विंशतिर्घटिकाः सप्तदशपलानि ३० । २६ । १७ । एतावद्भिर्दिवसै रविर्मध्यमगत्या राशिं गच्छति । यदार्कगतिरेकषष्टिः कलास्तदा सार्धैकोनत्रिंशता दिनै २९ । ३० राशिं गच्छति । अतश्चान्द्रमासादल्पोऽर्कमासस्तदा स्यात् । एवं रविमासस्य परमाल्पता २९ । २० । ४० सा चैकषष्टिर्गतिर्वृश्चिकादित्रयेऽर्कस्य । स ईदृशोऽल्पोऽर्कमासो यदा चन्द्रमासस्यानल्पस्यान्तःपाती भवति तदैकस्मिन् मासे संक्रमणद्वयमुत्पद्यते । अत उक्तं क्षयः कार्त्तिकादित्रय इति । पूर्वं किल भाद्रपदोऽसंक्रान्तिर्जातस्ततोऽर्कगतेरधिकत्वान्मार्गशीर्षादिसंक्रान्तिः । ततः पूर्वगतेरल्पत्वाच्चैत्रोऽप्यसंक्रान्तिर्भवति । ततो वर्षमध्येऽधिमासद्वयमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह असंक्रान्तिमास अधिमास कहलाता है * और जिस चान्द्रमास में दो रविसंक्रान्ति हों वह क्षयमास कहलाता है । क्षयमास कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और पौष इन तीन मासों में हुआ करता है और मासों में नहीं । जिस वर्ष में क्षयमास होता है उस वर्ष दो अधिमास होते हैं ।

---

* पितामह का वाक्य—'चान्द्रो मासो ह्यसंक्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः ।'

ब्रह्मसिद्धान्त—'मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः ।
चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः ॥'

वसिष्ठ का वाक्य—'यस्मिन् दर्शस्यान्तादर्वागेकापरं दर्शम् ।
उल्लंघ्य भवति भानोः संक्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात् ॥'

उपपत्ति।

स्पष्टमान से एक अमान्त से दूसरे अमान्त तक चान्द्रमास का प्रमाण होता है। उसके बीच में यदि मेष की संक्रान्ति होजाय तो वह चैत्र मास इसी प्रकार वृष की संक्रान्ति से वैशाख इत्यादि बारह संक्रान्तियों के वश से चैत्रादि द्वादश मास शुद्ध होते हैं। और जिसमें संक्रान्ति न हो वह अधिक मास है, जैसा कि पहले टिप्पणी और मूल में लिखा है। यों स्पष्ट है कि जब सौरमास चान्द्रमास से अधिक होगा तब अधिमास का संभव होगा। वह स्पष्टमान से होता है। मध्यममान से ३२।१६।४ इतने दिन और घड़ियों में हुआ करता है। परन्तु यह नियम प्रायिक है।

स्पष्टमान से जिस समय चान्द्रमास के प्रमाण से सौरमास का मान कम होता है तब एक चान्द्रमास में दो संक्रान्तियों के सम्भव होने से क्षयमास होता है। वह सौरमास अल्प, स्पष्ट रविगति की अधिकता में होता है। क्योंकि अधिकगति से थोड़े समय में राशिभोग पूरा होता है। इस आधिक्य का प्रायः सब मासों में सम्भव होसकता है इसलिये हरएक महीनों में क्षयमास का सम्भव होता है। परन्तु यहां आचार्य ने निज समयानुरोध से २।१८। मन्दोच्च कल्पना करके, वृश्चिक आदि तीन राशियों के वश, कार्त्तिक आदि तीन मासों में ही क्षयमास का होना स्थिर किया है। परन्तु यह नियम ठीक नहीं है।

यह क्षयमास जिस वर्ष होता है उस वर्ष में दो अधिमास भी होते हैं। कल्पना किया कि भाद्रपद अधिमास है, उस समय अधिमास-शेष बहुत कम रहता है और फिर क्रम से घटता है क्योंकि सूर्य अपने नीचस्थान के आसन्न में है। यों जब घटकर शून्य होजाता है तब क्षयमास होता है। क्योंकि चान्द्रमास से रविमास कम है। क्षयमास

के अनन्तर अधिमासशेष एक चान्द्रमास के आसन्न पहुँच जाता है, क्योंकि 'दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्—' उसके बाद जब रवि अपने उच्च के आसन्न होता है तब सौरमास के अल्प होने से फिर अधिमास होता है। इसप्रकार 'तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च—' उपपन्न होता है॥ ६॥

इदानीं गणकानां प्रतीत्यर्थं क्षयमासकालान् गतागतान् कतिचिद्दर्शयति स्म—

गतोऽब्ध्यद्रिनन्दै ९७४ र्मिते शाककाले
तिथीशै १११५ र्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः१२५६।
गजाद्रयग्निभूमि १३७८ स्तथा प्रायशोऽयं
कुवेदेन्दु १४१ वर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च १९॥७॥

स्पष्टम्।

अत्रोपपत्तिः। यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमासः। तस्मिन् जाते कार्त्तिकादित्रये क्षयमासः संभाव्यते। सा च तथाविधा शुद्धिः कुवेदेन्दु १४१ वर्षान्तरे काले पुनर्भवति। किन्तु सत्रिभागाभिः षड्भिर्घटिकाभिरधिका भवति। कदाचिदेकोनविंशत्या वर्षैस्तादृशी भवति। तत्र त्रिभागोनाभिश्चतुर्दशघटिकाभिरधिका भवति। कुवेदेन्दुवर्षेभ्यस्तथैकोनविंशतिवर्षेभ्यो द्विधाब्दा द्विरामैः खरामैश्च भक्ता इत्यादिना लब्धेष्वधिमासेषु शेषतिथिषु शून्यं प्रथमस्थाने सत्र्यंशाः षड्घटिकाः स्युः ६। २० द्वितीये वित्र्यंशाश्चतुर्दश १३। ४०। अत उक्तं प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्चेति। प्रागग्रतश्चेत्यर्थादुक्तं स्यात्।

भाषाभाष्य ।

शक ६७४ में एक क्षयमास हो चुका है। और १११५, १२५६ और १३७८ शकों में होगा । प्रायः क्षयमास १४१ वर्षों के अन्तर से होता है । कभी कभी १६ * वर्ष में भी हो जाता है ।

यहां उपपत्ति वासनाभाष्य में स्पष्ट है ॥ ७ ॥

इदानीमस्य प्रश्नमाह—

यत्प्रोक्तं फलकीर्तनाय मुनिभिर्वर्षेऽधिमासद्वयं
तत्प्रब्रूहि कथं कदा कतिषु वा वर्षेषु तत्संभवः ।

---

* कल्पभ : कल्पाधि : : इभ : = $\frac{१५९३३००००००}{४३२००००००००} = \frac{५३११}{१४४००}$; इस संख्या को विततभिन्न का रूप दिया—

$$\frac{५३११}{१४४००} = ० + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{२ + \cfrac{१}{६ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{१ + \cfrac{१}{७ + \cfrac{१}{३ + \cfrac{१}{२}}}}}}}}}}$$

इससे आसन्नमान निकाला—

$\frac{०}{१}, \frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{३}{८}, \frac{७}{१९}, \frac{४५}{१२२}, \frac{५२}{१४१}, \frac{९७}{२६३}, \frac{७३१}{१९८२},$

$\frac{२२९०}{६२०१}, \frac{५३११}{१४४००}$ । इस प्रकार यहां ज्ञात होता है कि इन इन वर्षों में क्षयमास का सम्भव होगा । यहां आचार्य के लेखानुसार १९ और १४१ वर्ष सिद्ध हुए हैं । यों और भी वर्ष ज्ञात हो जाते हैं ।

एवं प्रश्नविदांवरेण गणकः पृष्टो विजानाति य-स्तं मन्ये गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने भास्करम् ॥८॥

स्पष्टम् ।

इत्यधिमासादिनिर्णयः ।

प्रभा ।

एवमनया रीत्या प्रश्नविदां पूर्वपक्षकर्तॄणां मध्ये वरेणोत्कृष्टेन सुपण्डितेनेत्यर्थः पृष्टः यो गणकः विजानाति प्रत्युत्तरं ददाति, तं गणका एवाब्जकुड्मलवनानि तेषां प्रोद्बोधने विकाशकर्मणि भास्करं रविं मन्ये । अहमिति शेषः ।

इति प्रभायामधिमासादिनिर्णयः ।

भाषाभाष्य ।

मुनियों ने फलादेश के लिए जो वर्ष में दो अधिमास का संभव कहा है, उस वर्ष का क्या स्वरूप है ? वह कब और कितने वर्षों में होगा ? इन विषयों का उत्तर पूंछने पर जो देता है, उसको गणकरूपी मुरझाए कमलवनों के विकाश करने में, मैं सूर्य मानता हूं ॥ ८ ॥

भाषाभाष्य में अधिमासनिर्णय समाप्त हुआ ।

इदानीं भूपरिधिमाह—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः
सप्ताङ्गनन्दाऽब्धय-४९६७
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो१५८१
ऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं
भूवेष्टनं भांश ३६० हृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह
ज्ञेयं समं योजनम् ॥ १ ॥

भूपरिधेरुपपत्तिर्गोले कथ्यते। योजनलक्षणं गणिते कथितमस्ति। तथाप्यत्र यदुच्यते तत्रेदं कारणम्। भूरेकैव किन्तु यत्त्वार्यभटादिभिराचार्यैः सत्यपि नियामके पलांशदर्शनेऽन्यथाऽन्यथा तत्प्रमाणमभिहितं तत्र षट्सप्ताष्टयवमंगुलं कनिष्ठकादिभेदेन शास्त्रेषूच्यते। तेनाभिप्रायेणान्येन वा यत्तैरुक्तं तदनेन स्पष्टीक्रियते। याम्योत्तरयोः पुरयोः पलांशान् वक्ष्यमाणप्रकारैर्ज्ञात्वा तेषामन्तरेणानुपातः। यदि भांशपरिधौ दक्षिणोत्तरमण्डल एतावत् पलान्तरं तदा भूपरिधौ पुरान्तरे किमिति। यल्लब्धं तावन्तो विभागाः पुरान्तरस्य क्रियन्ते। यावानेको विभागस्तावद्योजनं ज्ञेयम्। तादृशैर्योजनैर्देशान्तरं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

भाषाभाष्य।

भूपरिधि का योजनात्मक मान ४९६७ है और उसका व्यास १५८१ योजन है। भूपरिधि को दक्षिण और उत्तर में स्थित नगरों

के अक्षांशान्तर से गुणाकर, भांश ३६० का भाग देने से उक्त दोनों स्थानों के अन्तर योजन सिद्ध होते हैं।

उपपत्ति।

आर्यभट, लल्ल * प्रभृति आचार्यों ने भूपरिधि का योजनात्मक मान भिन्न भिन्न लिखा है। और अंगुलमान भी अलग अलग स्थिर किया है। इस विषय का पूरा विवरण गोलाध्याय में किया गया है। यहां वासनाभाष्य में आचार्य कहते हैं कि भूमि एक है और अक्षांश का नियामक होते भी भिन्न भिन्न मध्यपरिधि कही है उसका कारण—छ, सात, तथा आठ जवों के पेट मिलाने से जो लंबाई बनती है उसके बराबर छोटा, मझोला तथा बड़ा अंगुल मानना है इस प्रकार एक ही वस्तु तीन परिमाण की हो सकती है। परन्तु वह किसी अभिप्राय से हो, यहां उसका स्पष्टीकरण कहा जाता है।

दक्षिणोत्तर में वर्तमान दो स्थानों का पलांश आगे कही विधि से जानकर, उनके अन्तर से अनुपात किया—यदि भांश ३६० परिधि में दक्षिणोत्तर वृत्तगत इतना अन्तर उपलब्ध होता है तो भूपरिधिगत पुरान्तरों में क्या ? इसप्रकार उन देशीय अक्षांशों का अन्तर स्वदेशीय भूपरिधिमान से सिद्ध होता है। याम्योत्तरवृत्त में अक्षांश की स्थिति होने से, दक्षिणोत्तर दिशा में अन्तरित देशों का, याम्योत्तरवृत्तगत आकाश में जो अन्तरांश होते हैं, उनको परिधिगत भूमि में कल्पना करते हैं।

इस प्रकार सिद्ध विभाग योजनात्मक होता है। उसका एक

---

* आर्यभट—'त यवांगुलमानेन क्षितिपरिधिर्भवति योजनैर्मध्यः।
वेतरसै ६६२५ पूर्वापर उत्तरयाम्योऽथवा तावान्॥
लल्ल—'खखामरायोजनवेष्टनं भुवो नभःशरा भूक्षितयोऽस्य विस्तृतिः।'

विभाग एक योजन का मान है। इस से देशान्तर का साधन करना चाहिये ॥ १ ॥

इदानीं भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखां चाह—

लम्बज्यागुणितो भवेत्कुपरिधिः
स्पष्टस्त्रिभज्याहृतो
यद्वा द्वादशसंगुणः स विषुव-
त्कर्णेन भक्तः स्फुटः ।
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरिकुरु-
क्षेत्रादि देशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता
सा मध्यरेखा भुवः ॥ २ ॥

अत्रोपपत्तिर्गोले ।

भाषाभाष्य ।

भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से फल स्पष्टपरिधि होती है। अथवा भूपरिधि को द्वादश से गुणाकर विषुवत्कर्ण का भाग देने से स्पष्ट भूपरिधि होती है।

जो रेखा लङ्का और उज्जयिनी में होकर कुरुक्षेत्र आदि देशों को स्पर्श करती हुई मेरु में जाकर मिली है, उसको भूमि की मध्यरेखा* कहते हैं।

---

* मध्यरेखा में जो नगर स्थित हैं उनको रेखापुर कहते हैं। आचार्य श्रीपति ने निम्नलिखित श्लोक में रेखापुर के नाम लिखे हैं—

'लङ्का कुमारी नगरी च काञ्ची पानाटमद्रिश्च सितः षडास्यः ।
श्रीवत्सगुल्मं च पुरी ततश्च माहिष्मती चोज्जयिनी प्रसिद्धा ॥
स्यादाश्रमोऽस्मान्नगरं सुरम्यं ततः पुरं पट्टशिवाभिधानम् ।
श्रीगर्गराटं च सरोहिताक्षस्थानेश्वरं शीतगिरिः सुमेरुः ॥
इतीव याम्योत्तरगां धराया रेखामिमां गोलविदो वदन्ति ।
अन्यानि रेखास्थितिभाञ्जि लोके ज्ञेयानि तज्ज्ञैः पुटभेदनानि ॥'

उपपत्ति ।

निरक्षदेश की परिधि मध्यम होती है, उसी का मान ४९६७ पहले लिखा है। स्वदेश की परिधि अक्षांश के अनुरोध से कम होती। नव्वे अंश में इष्टाक्षांश घटाने से शेष लम्बांश उसका व्यासार्ध होता है। यह स्पष्टपरिधि कहलाती है।

विषुवद्दिन के मध्याह्न में जो छायाकर्ण उत्पन्न होता है उस को हैविषुवत्कर्ण कहते हैं। अब यहां स्पष्टपरिधि के लिए अनुपात करते हैं—

$$\text{त्रि} : \text{मध्यप} :: \text{लंज्या} : \text{स्पप} = \frac{\text{मध्यप} \times \text{लंज्या}}{\text{त्रि}};$$

अथवा,

$$\text{विषुक} : १२ :: \text{लंज्या} : \text{स्पप} = \frac{१२ \times \text{लंज्या}}{\text{विषुक}}।$$

इसकी विशेष उपपत्ति गोलाध्याय में लिखी है ॥ २ ॥

इदानीं देशान्तरमाह—

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्यः पल—
स्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनैः ।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टने—
नोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद्ग्रहे ॥ ३ ॥
अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन गोलेऽभिहिता च ।

प्रभा ।

यत्र यस्मिन् भूप्रदेशे विद्यमानः पलः, विषुवद्दिनमध्याह्ने खस्वस्तिकात्सूर्यस्य याम्योत्तरवृत्ते यैरंशैर्नतिस्तन्मानरूपः ; स्वाक्षतुल्यः स्वदेशीयाक्षांशतुल्यो भवति तत्ताद्दग्रेखागतभूप्रदेशः निजस्थानं च तयोर्मध्येऽन्तरे स्थितैर्विद्यमानैर्योजनैः खेटभुक्तिर्ग्रहगतिर्हता साधितस्पष्टभूपरिधिना भक्ता फलं देशान्तराख्यमहर्गणानीतग्रहे

रेखातः पूर्वविभागे देशे हीनं पश्चिमे युतं विधेयमित्यर्थः। स्रग्विणी छन्दः।

भाषाभाष्य।

जिस रेखापुर में स्वदेशीय अक्षांश के समान अक्षाश हों उसके और निज स्थान के अन्तर योजनों से ग्रहगति को गुणाकर और स्पष्टपरिधि का भाग देकर, फल (देशान्तर) को, रेखापुर से पूर्व स्वदेश होने पर ग्रह में ऋण और पश्चिम होने पर धन करना।

उपपत्ति।

अहर्गण से साधित ग्रह निरक्षदेश में मध्यम सूर्योदय समय के होते हैं। उनको अपने देश का सिद्ध करने के लिए देशान्तर रूप पूर्वापरसंस्कार किया जाता है। उसके साधनार्थ स्वदेशीय स्पष्टपरिधि संलग्न स्वरेखापुरसंज्ञक भूप्रदेश से स्वदेश तक अन्तर योजन जानकर अनुपात किया—स्पष्टप : गतिक :: अन्तयो: देशान्तर = $\frac{\text{गतिक} \times \text{अंयो}}{\text{स्पष्टप}}$; फल का पूर्व लेखानुसार ग्रह में संस्कार करना चाहिए।

यह उपपत्ति गोलाध्याय की मध्यगतिवासना में लिखी है॥ ३॥

इदानीं देशान्तरघटिका आह—

प्राग्भूविभागे गणितोत्थकाला-
दनन्तरं प्रग्रहणं विधोः स्यात्।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या
भवन्ति देशान्तरनाडिकास्ताः॥ ४॥

तद्घ्नं स्फुटं षष्टिहृतं कुवृत्तं
भवन्ति देशान्तरयोजनानि।
घटीगुणा षष्टिहृता द्युभुक्तिः
स्वर्णं ग्रहे चोक्तवदेव कार्यम्॥ ५॥

अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः
　　प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्तिः ।
ऊर्ध्वं तथाधश्चरनाडिकाभी
　　रवावुदग्दक्षिणगोलयाते ॥ ६ ॥

यः किल मध्यरेखाया अपरिज्ञानात् ततः प्राक् पश्चाद्वा स्थितोऽस्मीति न वेत्ति तेनैवं ज्ञातव्यम् । विधुग्रहणदिने घटिकायन्त्रेण स्पर्शकाले रात्रिगतं ज्ञेयम् । अथच गणितेन स्पर्शकालो ज्ञेयः । गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं यदि दृष्टं तदा द्रष्टा रेखातः प्राग्भूविभागे । यतो द्रष्टा यथा यथा रेखातः प्राग्व्रजति तथा तथा रेखोदयात् प्रागेवार्कोदयं पश्यति । इतोऽन्यथा चेत् तदा पश्चाद् द्रष्टा । दृग्ग्रहणप्रग्रहणकालयोरन्तरं देशान्तरघटिकास्ताभिर्गुणितं षष्ट्याहृतं स्पष्टभूवेष्टनम् । एवमनुपाताद्देशान्तरयोजनानि । अथवा किं योजनैः । यदि घटी षष्ट्या गतिर्लभ्यते तदा देशान्तरघटीभिः किमिति एवं यत्फलमुत्पद्यते तत् प्रागृणं पश्चाद्धनमिति युक्तमुक्तम् । तथा प्राच्यां ताभिर्घटीभिर्दिनवारप्रवृत्तिरर्कोदयादूर्ध्वं भवति । प्रतीच्यां तु तस्मादधः । यतो लङ्कोदये वारादिः । अत एव च रवावुत्तरगोलस्थे चरार्धघटिकाभिरूर्ध्वम् । यतस्तदोन्मण्डलं क्षितिजादूर्ध्वम् । दक्षिणे त्वधोऽतस्तत्रोदयादधो वारप्रवृत्तिरिति सर्वं निरवद्यम् ।

भाषाभाष्य ।

यदि स्वदेश में चन्द्रग्रहण गणितागत काल के अनन्तर हो तो निज देश को मध्यरेखा से पूर्व दिशा में जानना और पूर्वही हो जाय

तो पश्चिम दिशा में समझना चाहिए । रेखापुर और स्वदेश की अन्तर घटिकाओं को देशान्तरघटिका कहते हैं । इन देशान्तर-घटिकाओं से स्पष्टपरिधि को गुणाकर साठ ६० का भाग देने से, देशान्तर योजन होते हैं । देशान्तरघटिका को दिनगति से गुणाकर साठ ६० का भाग देकर, फल का ग्रह में, पूर्व में ऋण और पश्चिम में धनसंस्कार करना । इस प्रकार ग्रह देशान्तर–संस्कृत होते हैं ।

देशान्तर काल के तुल्य काल में, सूर्योदय के बाद दिन की प्रवृत्ति अर्थात् आरम्भ होता है । रेखापुर से पश्चिम में स्वदेश होने से उक्तकाल से पहले और पूर्व में पीछे, स्वदेश में, वारप्रवृत्ति होती है । उत्तर गोल में चरघटी तुल्य काल से पूर्व और दक्षिण गोल में पीछे वारप्रवृत्ति होती है । लङ्का सूर्योदय वारप्रवृत्ति का समय है * वह उत्तरगोल में स्वक्षितिज से उन्मण्डल ऊपर होने से चरार्ध घटिका से पहले और दक्षिण में उससे विपरीत होता है ।

उपपत्ति ।

चन्द्रग्रहण के दिन रात्रि की गत घटिका और स्पर्शकाल का निश्चय करना । गणितागत काल के बाद यदि ग्रहण, स्वस्थान में दीखे तब द्रष्टा को स्वयं रेखापुर से पूर्व दिशा में जानना चाहिए । क्योंकि द्रष्टा जैसे पूर्व दिशा को जायगा उसी क्रम से पहले ही ग्रहण देखेगा । और इससे उलटी स्थिति में निज को पश्चिम समझे । इस प्रकार, दृग्ग्रहण और प्रग्रहण का अन्तर देशान्तर घटिकारूप होता है । उसको योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया—

---

* ‘केचिद्वारं सवितुरुदयात् प्राहुरन्ये दिनार्धात्
भानोरर्धास्तमयसमयादूचिरे केचिदेवम् ।
वारस्यादिं यवननृपतिर्दिङ्मुहूर्ते निशायां
लाटाचार्यः कथयति पुनश्चार्धरात्रे स्वतन्त्रे ॥’

$$६० : स्वप :: देशाघ: = \frac{स्वप \times देघ}{६०} = देशान्तरयोजन ।$$

अथवा, योजनात्मक न सिद्ध करके घटिकाओं से ही अनुपात किया—

$$६० : गक :: देशांघ : = \frac{गक \times देशांघ}{६०} ।$$

इस प्रकार सिद्ध फल को ग्रह में उक्त विधि के अनुसार धन, ऋण करना ॥ ४—६ ॥

इदानीं ग्रहाणां बीजकर्माह—

खाभ्रखार्कैर्हृताः कल्पयाताः समाः
शेषकं भागहारात् पृथक् पातयेत् ।
यत्तयोरल्पकं तद्द्विशत्या भजे-
ल्लिप्तिकाद्यं फलं तत्त्रिभिः सायकैः ॥ ७ ॥
पञ्चभिः पञ्चभूभिः कराभ्यां हृतं
भानुचन्द्रेज्यशुक्रेन्दुतुङ्गेष्वृणम् ।
इन्दुना दस्रबाणैः कराभ्यां कुलै-
र्भौमसौम्येन्दुपातार्किषु स्वं क्रमात् ॥ ८ ॥

अत्रोपलब्धिरेव वासना । यद्वर्षसहस्रषट्कं यावदुपचय इत्यत्रागम एव प्रमाणं नान्यत् कारणं वक्तु शक्यत इत्यर्थः ॥ ७-८ ॥

भाषाभाष्य ।

कल्पगत वर्षसंख्या को १२००० से भाजित करना, जो शेष रहे उसको अलग रखना और उसी को १२००० में घटाकर शेष को भी रखना । इन दोनों अङ्कों में जो न्यून हो उसमें २०० का भाग देकर कलादि फल का ग्रहण करना । उस फल को ३, ५, ५,

१५ और २ से गुणा करके सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र और चन्द्र के मन्दोच्च में घटा देना । फल को १, ५२, २, और ४ से गुणाकर मङ्गल, बुध, चन्द्रपात और शनि में क्रम से जोड़ देना । इसको बीज कर्म * कहते हैं ।। ७–८ ।।

उपपत्ति ।

उक्त भगणों से साधित ग्रह ठीक आकाश में संवाद नहीं करते किन्तु कुछ अन्तर देखने में आया करता है । इसलिए दृग्गणितैक्य के लिए ग्रहों में यह संस्कार किया जाता है । इसको बीजकर्म कहते हैं । यहां इस बीजकर्म की उपपत्ति नहीं लिखी केवल आगम प्रामाण्य मानकर परंपरा सिद्ध माना है ।

कल्पादि से लेकर छः हज़ार वर्षों में अन्तर का उपचय और बाद छः हज़ार वर्षों में अपचय क्रम से हुआ करता है । यह स्थिति बारह हज़ार वर्षों में दो बार होती है । इष्टकाल में, अन्तराभाव काल से लेकर गतवर्षों के ज्ञानार्थ, कल्पगत वर्षों को बारह हज़ार से तष्टित किया है । शेष यदि छः हज़ार से अल्प बचे तब अन्तर का उपचय काल होने से उसी से फलानयन करना चाहिए । और उक्त संख्या से अधिक शेष में अन्तर का अपचयकाल होने से इष्टकाल और अग्रिम अन्तराभाव काल के बीच के वर्षों को फलानयन के लिए ग्रहण करना चाहिए । अब अनुपात किया—

यदि छः हज़ार वर्षों में परमान्तर उपलब्ध होता है तो अल्प वर्षों में क्या ? यों अनुपात करके गुण और हर में तीस का अपवर्तन देने से उक्त अङ्क उत्पन्न होते हैं ।

$$-\frac{\text{६०}'\text{र}}{\text{६०००}} = -\frac{\text{३}'\text{र}}{\text{२००}} \mid -\frac{\text{१५०}'\text{चं}}{\text{६०००}} = -\frac{\text{५}'\text{चं}}{\text{२००}} \mid -\frac{\text{१५०}'\text{गु}}{\text{६०००}} = -\frac{\text{५}'\text{गु}}{\text{२००}} \mid -$$

* यह बीजकर्म-संस्कार ब्रह्मगुप्ताचार्य के 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' में नहीं मिलता ।

$\frac{\text{४५०' शु शीउ}}{\text{६०००}} = -\frac{\text{१५' शु शी उ}}{\text{२००}}$ । $-\frac{\text{६०' चं उ}}{\text{६०००}} = -\frac{\text{२' चं उ}}{\text{२००}}$ । में ऋणफल संबन्धी गुणक भाजक हैं ।

$\frac{\text{३०' मं}}{\text{६०००}} = \frac{\text{१' मं}}{\text{२००}}$ । $\frac{\text{१५६०' बु शी उ}}{\text{६०००}} = \frac{\text{५२' बु शी उ}}{\text{२००}}$ । $\frac{\text{६०' चं पा}}{\text{६०००}} = \frac{\text{२' चंपा}}{\text{२००}}$

$\frac{\text{१२०' श}}{\text{६०००}} = \frac{\text{४' श}}{\text{२००}}$ । ये धनफल संवन्धी हैं ॥ ७–८ ॥

अथाधिकारोपसंहारे श्लोकद्वयं युक्तियुक्तमाह—

यद्ग्राम्यैरपि विस्तृतं बहुतरैस्तन्त्रं प्रकारान्तरै-
र्मन्दानन्दकरं तदत्र निपुणैः प्राज्ञैरवज्ञायते ।
आख्याते पृथुता सगोलगणितेव्यर्थाहि तस्मान्मया
संक्षिप्तं नच विस्तृतं विरचितं रज्ज्यो हि सर्वो जनः ॥ ९ ॥
रूपस्थानविभागतो दृढगुणच्छिद्भ्यां च संचारतो
नानाच्छेदविभेदभिन्नगुणकैर्नानाप्रकारेष्वपि ।
आद्याद्यत्र विचित्रभङ्गिभिरभिप्रेतप्रसिध्यै क्रिया
लघ्वी वाथ समा तदेव सुधिया कार्यं प्रकारान्तरम् ॥१०॥

स्पष्टार्थमिदं श्लोकद्वयम् ।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणि-
वासनाभाष्ये मिताक्षरे मध्यगतिसाधना-
धिकारः प्रथमः ॥ १ ॥

अत्राधिकारे ग्रन्थसंख्या नवशतानि ॥ ९०० ॥

प्रभा ।

ग्राम्यैरचतुरैर्लल्लप्रमुखैः अतिशयेन बहवो बहुतरास्तैः प्रकारान्तरै-र्यत्तन्त्रं शास्त्रं कृतं तत् मन्दानन्दकरं मन्दानां सन्तोषकरमत्र जगति निपुणैः प्राज्ञैरवज्ञायते तिरस्क्रियते । अत्र हेतुमाह । हि यतः सगोल-गणिते आख्याते कथिते पृथुता प्रकारान्तरैः शास्त्रविस्तृतिर्व्यर्था निष्प्रयोजिका । तस्मान्मया संक्षिप्तं न च विस्तृतं विरचितं हि यतः

सर्वो मन्दसुबुद्धिसाधारणोजनः पिपठिषू रञ्ज्योऽनुरञ्जनीयो ग्रन्थेनुरक्तः कार्योऽस्तीत्यर्थः ।

एतदखिलं पाल्युक्तं क्रमेण ज्ञेयम् । नाना अनेके ये छेदविभेदाः भिन्नगुणकैरनेकगुणकभेदैश्च । आद्यात् प्राचीनोक्तप्रकारात् विचित्ररचनाभिर्बुद्धिजनिताभिरभिप्रेतप्रसिद्ध्यै अहर्गणादिपदार्थज्ञाननिमित्तम् । तत्तादृशं प्रकारान्तरम् । एवकार आद्योक्त प्रकाराधिकगौरवप्रकारान्तरव्यवच्छेदार्थः । यथा लघुभूतप्रकारज्ञानं भवति तथा विचार्यम् । सुधियेति शेषः ।

इति प्रभायां मध्यमाधिकारः ।

भाषाभाष्य ।

मन्दबुद्धियों ने नानाविध गौरव प्रकारों से निज ग्रन्थों को खूब बढ़ाया है । पर बुद्धिमानों ने उन सबका तिरस्कार किया है । गोलगणित के ग्रन्थों में गौरव व्यर्थ होता है । इसलिए हमने न संक्षेप से और न विस्तार से सब विषय लिखे हैं । क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को प्रसन्न करना है ।

रूप विभाग और स्थानविभाग, दृढ़ गुण और छेद से, संचार से, नानाविध भिन्न गुणकों से, नाना प्रकारों में पूर्वाचार्यों की अपेक्षा लघुप्रकार अथवा उसके समान जिस तरह इष्टसिद्धि के लिए हो सके उसी को बुद्धिमान् कल्पना करें ॥ ६–१० ॥

भाषाभाष्य में मध्यमाधिकार पूर्ण हुआ ।

इदानीं स्पष्टगतिर्व्याख्यायते । तत्रादौ तदारम्भ-प्रयोजनमाह—

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ
खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम् ।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां
स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या ॥ १ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

उत्सवः नामकर्मादि मौञ्जीबन्धनान्तः संस्कारः जातकं जन्मकालः । आदिपदाद्वर्षप्रवृत्तिप्रश्नादिषु खेटैः ग्रहैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वं फलव्यक्तत्वं स्यात् । एवकारो मध्यमन्दस्पष्टादिनिरासार्थम् । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

यात्रा, विवाह, संस्कारविषयक उत्सव, जन्मकाल, वर्षप्रवृत्ति और प्रश्ननिरूपण इत्यादि विषयों में स्पष्टग्रहों से ही फल की स्पष्टता होती है । इसलिए दृग्गणितैक्य के लिए ग्रहों की स्पष्टविधि कहते हैं ॥ १ ॥

इदानीमर्धज्याकरणं ताश्चाह—

अर्धज्याग्रे खेचरो मध्यसूत्रात्
तिर्यक्संस्थो जायते येन तेन ।
अर्धज्याभिः कर्म सर्वं ग्रहाणा-
मर्धज्यैव ज्याभिधानात्र वेद्या ॥ २ ॥

तत्त्वाश्विनो नन्दसमुद्रवेदा-
श्चन्द्राद्रिषट्का गगनाङ्कनागाः ।
पञ्चाश्वरुद्रास्तिथिविश्वतुल्या
आद्यैर्निरुक्ता नखबाणचन्द्राः ॥ ३ ॥

नन्दावनीशैलभुवो दिगङ्क-
चन्द्रा हुताशग्रहपूर्णदस्राः ।
तुरङ्गषट्काकृतयः कुराम-
सिद्धाः शराष्टेषुयमाः क्रमेण ॥ ४ ॥

गजाश्विभान्यङ्कशराष्टदस्रा-
स्तुरङ्गसप्तग्रहलोचनानि ।
अम्भोधिकुम्भ्यश्रगुणास्तुरङ्ग-
शैलेन्दुरामा रसभूतदन्ताः ॥ ५ ॥
कुदन्तलोका द्वितुरङ्गदेवा
गोऽब्धिलोकाः कुगुणाब्धिरामाः ।
भुजङ्गलोकाब्धिगुणाः क्रमज्या
अथोत्क्रमज्या मुनयोऽङ्कदस्राः ॥ ६ ॥
रसर्तवो भूधरभूमिचन्द्रा
द्व्यष्टेन्दवो भूरसलोचनानि ।
कृतेषुरामाः शशिषट्कवेदा
नन्दाद्रिबाणा गगनेन्दुशैलाः ॥ ७ ॥
गुणेषुनागा नगखाभ्रचन्द्राः
कुशैलरुद्राः शरवेदविश्वे ।
भुजङ्गनेत्रेषुभुवो नवेन्दु-
सप्तेन्दवोऽथो धृतिलन्दचन्द्राः ॥ ८ ॥
त्रिसूर्यनेत्राण्यमरास्त्रिदस्रा
वस्वब्धितत्त्वानि नगर्तुभानि ।
गोऽष्टाङ्कदस्रा दहनेन्दुदन्ता
नागाग्निवेदाज्यभुजास्त्रिभज्या ॥ ९ ॥
स्याद्व्यासखण्डं खलु खण्डकानि

प्रोक्तानि जीवाविवराणि तज्ज्ञैः।

इह हि स्पष्टीकरणप्रभृति सर्वं कर्मार्धज्याभिः प्रतिपाद्यते। यतो ग्रहवलये कोऽप्यवधिभूतः प्रदेशो मध्यशब्देनोच्यते। तस्मान्मध्याद्वलयगर्भगामि सूत्रं मध्यसूत्रमित्युच्यते। तस्मान्मध्यसूत्रात् तिर्यक्स्थो ग्रहो वलयेऽर्धज्याग्रे भवति। अतोऽर्धज्याभिः सर्वं कर्म। तत्र भगणकलाङ्कितवृत्तचतुर्थांश ईदृशान्येव चतुर्विंशतिज्यार्धानि भवन्ति। अतएव सूर्यसिद्धान्तार्यभटतन्त्रेष्वेतान्येव। एषामुपपत्तिर्गोलेऽनेकधा कथिता। तेषां ज्यार्धानामन्तराणि ज्याखण्डसंज्ञानि।

क्रमज्याः २२५। ४४९। ६७१। ८९०। ११०५। १३१५। १५२०। १७१९। १९१०। २०९३। २२६७। २४३१। २५८५। २७२८। २८५९। २९७७। ३०८४। ३१७७। ३२५६। ३३२१। ३३७२। ३४०९। ३४३१। ३४३८॥

अन्तराणि २२४। २२२। २१९। २१५। २१०। २०५। १९९। १९१। १८३। १७४। १६४। १५४। १४३। १३१। ११८। १०७। ९३। ७९। ६५। ५१। ३७। २२। ७॥

उत्क्रमज्याः ७। २९। ६६। ११७। १८२। २६१। ३५४। ४६१। ५७९। ७१०। ८५३। १००७। ११७१। १३४५। १५२८। १७१९। १९१८। २१२३। २३३३। २५४८। २७६७। २९८९। ३२१३। ३४३८॥

अन्तराणि २२। ३७। ५१। ६५। ७९। ९३। १०७। ११८। १३१। १४३। १५४। १६४। १७४। १८३।

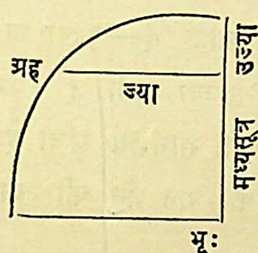
१६१ । १६६ । २०५ । २१० । २१५ । २१६ । २२२ । २२४ । २२५ ॥

प्रभा ।

सांख्यशास्त्रे पञ्चविंशतितत्त्वानां प्रसिद्धत्वात्तत्पदेनोक्तसंख्या बोध्या । लोकशब्देन त्रिसंख्या सर्गमृत्युपातालभेदात् । आद्यैः सूर्यब्रह्मादिभिरार्षैर्निरुक्ताः । एवमत्र ब्रह्मगुप्तस्वीकृतानां ज्यानां काल्पनिकत्वादत्र सूर्याद्युक्तमेवाङ्गीकृता इति भावः । 'तत्त्वाश्विनो-ङ्काऽधिकृताः'-इत्यादि सौरोक्तानुरूपमेवात्रापि प्रतिपादिताः ।

भाषाभाष्य ।

वृत्त में मध्यसूत्र से ग्रह तिरछा होने पर अर्धज्या के अग्र में होता है इसलिए ग्रहों का सारा स्पष्टीकरण आदि कर्म अर्धज्या से किया जाता है । यहां अर्धज्या को ज्या नाम से ही कहते हैं । इसके आगे ज्या, उत्क्रमज्या और इन दोनों के अन्तर कहे हैं ॥ २-६ ॥



इदानीं ज्यासाधनमाह ।

तत्त्वाश्विभक्ता असवः कला वा
तल्लब्धसंख्या गतशिञ्जिनी सा ॥ १० ॥
यातैष्यजीवान्तरशेषघातात्
तत्त्वाश्विलब्ध्या सहितेप्सिता स्यात् ॥

यदि कलानां जीवाः साध्यास्तदा ताः कलास्तत्त्वा-श्विभि २२५ भांज्याः । यदि कलावयवस्य तदासव-

स्तत्त्वाश्विभिर्भाज्याः । यल्लब्धं तत्संख्या गतज्या ग्राह्या । यातैष्यजीवयोरन्तरस्य शेषकलानां च घातात् तत्वाश्विभक्ताद्या लब्धिस्तया लब्ध्या सहिता सतीप्सिता स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । चतुर्विंशतिः किल ज्यार्धानि । वृत्तचतुर्थांशे कलाः खखाब्धिविषयाः ५४०० । आसां कलानां चतुर्विंशतिभागस्तत्त्वाश्विनः २२५ । अतो गतकलासु तत्त्वाश्विहृतासु गतज्या लभ्यते । अथ वृत्ते ज्याग्रयोरन्तरं तत्त्वाश्विकलामितधनुः खण्डम् । यद्यनेन धनुः खण्डेन गतागतज्यान्तरतुल्यं ज्याखण्डं लभ्यते तदा शेषकलातुल्येन किमिति । फलेन युक्ता सती गतज्येप्सिता स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अब ज्या का साधन कहते हैं—कला अथवा असुओं में २२५ का भाग देने से लब्धि गतज्या होती है । गत और गम्य ज्याओं के अन्तर को पहले जो भागशेष बचा है उससे गुणाकर, २२५ का भाग देकर फल को गत धनु की ज्या में जोड़ने से अभीष्टज्या होती है ।

उपपत्ति ।

वृत्त में ९६ ज्यार्ध होते हैं और चतुर्थांश में चौबीस २४ होते हैं । वृत्त में २१६०० कला और चतुर्थांश में ५४००′ कला होती हैं । अब अनुपात किया—

९६° : २१६०० :: १° : २२५ ; यों स्पष्ट है कि गत कलाओं में २२५ का भाग देने से गतज्या होती है । वृत्त में ज्याओं का अन्तर २२५ कला का खण्ड होता है । अनुपात किया—

२२५ : गतागतज्यान्तर : शेषकलाः ; फल गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है ॥ १० ॥

अथ धनुःकरणमाह ।

ज्यां प्रोज्झ्य तत्त्वाश्विहतावशेषं
यातैष्यजीवाविवरेण भक्तम् ॥ ११ ॥
जीवा विशुद्धा यतमात्र तद्‌घ्नै-
स्तत्त्वाश्विभिस्तत् सहितं धनुः स्यात् ॥

यस्य धनुः कार्यं तस्माद्या जीवा विशुध्यति सा शोध्या । शेषात् तत्त्वाश्विगुणाद्‌गतागतज्यान्तरहृताद्य-ल्लभ्यते तत् स्थाप्यम् ततो यतमा जीवा विशुद्धा तद्‌गुणितैस्तत्त्वाश्विभिः सहितं धनुः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिर्ज्योत्पत्तिवैपरीत्येन ।

भाषाभाष्य ।

ज्या से धनु करने का प्रकार कहते हैं:—इष्टज्या में जिस धनु की ज्या घट सके उसको घटाकर शेष को २२५ से गुणाकर गत और गम्य ज्याओं के अन्तर का भाग देना । फल में, पूर्व लब्ध धनु संख्या को २२५ से गुणाकर जोड़ देने से कलादि इष्टधनु होता है ।

उपपत्ति ।

यहां उपपत्ति ज्यासाधन से विपरीत है । अनुपात—यदि गतागतज्यान्तर में २२५ मिलते हैं तो शेष में क्या ? फल को लब्धज्या से गुणित २२५ में जोड़ने से कलादि इष्टधनु सिद्ध होता है ॥ ११ ॥

इदानीं परमक्रान्तिज्यामाह ।

अश्वाङ्कविश्वे १३९७ऽत्र जिनांशजीवा
यद्वा सुखार्थं लघुखण्डकैर्ज्या ॥ १२ ॥

रूपाश्विनो विंशतिरङ्कचन्द्रा २१।२०।१६
अत्यष्टितिथ्यर्कनवेषुदस्राः १७।१५।१२।६।५।२।
ज्याखण्डकान्यंशमितेर्दशाप्तं
स्युर्यातखण्डान्यथ भोग्यनिघ्नाः ॥ १३ ॥
शेषांशकाः खेन्दुहृता यदाप्तं
तद्यातखण्डैक्ययुतं लघुज्या ।
जिनांशजीवाङ्कृता विपादाः ४८।४५
स्यादुत्क्रमज्यात्र विलोमखण्डैः ॥ १४ ॥
विशोध्य खण्डानि दशघ्नशेषा-
दशुद्धलब्धं धनुरंशकाद्यम् ।
विशुद्धसंख्याहृतादिग्युतं स्याद्
भोग्यात् स्फुटाज्ज्यातिपरिस्फुटात्र ॥ १५ ॥

चतुर्विंशतिभागानां जीवाश्वाङ्कविश्व १३९७ तुल्या भवति। इयं परमक्रान्तिज्या सन्ततोपयोगित्वात् पठिता। अथ लघुखण्डकैर्ज्या साध्यते सुखार्थम्। कानि तानि खण्डकानि। रूपाश्विन इत्यादीनि नव। अथ ज्यासाधनम्। यस्य ज्या साध्या तस्य भागान् कृत्वा दशभि १० र्भजेत्। तत्र यावल्लभ्यते तावन्ति गतखण्डकानि स्युः। अथ शेषांशान् भोग्यखण्डेन संगुण्य दशभिर्भजेत्। फलं यातखण्डैक्येन युतं लघ्वी ज्यका स्यात्। एवमत्र त्रिनज्या खार्क १२० मिता स्यात्। तथा जिनांशज्या पादोना नवाब्धयः ४८।४५ अत्रोत्क्रमज्यानां पृथक् पाठाभावात् कथमुत्क्रमज्याः साध्या इत्यत आह। स्यादुत्क्रमज्यात्र विलोमखण्डैरिति। अथ धनुःसाधनम्। यस्य धनुः साध्यते तस्माद्याद्यखण्डादारभ्य यावन्ति

खण्डकानि शुध्यन्ति तावन्ति शोधयेत् । शेषाद्दशगुणा-दशुद्धखण्डभक्ताद्यल्लब्धमंशाद्यं तद्विशुद्धखण्डसंख्यागुणै-र्दशभिर्युतं धनुः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः प्राग्वदनुपातेन । अत्र यावद्यावन्मह-द्व्यासार्धं बहूनि च खण्डानि तावत्तावत् स्फुटा ज्या स्यात् । तदन्यथा स्थूला । अत उक्तं भोग्यात्स्फुटाज्ज्या-तिपरिस्फुटात्रेति ।

भाषाभाष्य ।

परमक्रान्तिज्या २४° की ज्या १३६७ होती है । अथवा सुखार्थ लघुखण्डों से ज्या साधन करना । लघुखण्ड २१, २०, १६, १७, १५, १२, ६, ५, २ होते हैं । जिस की ज्या साधन करना हो उसके अंशों में दश का भाग देने से गत ज्याखण्ड होता है । शेष अंशों को भोग्यखण्ड से गुणाकर दश का भाग देकर फलको गत खण्डों के योग में जोड़ने से लघुज्या सिद्ध होती है । इन लघु-खण्डों में त्रिज्या १२० और परमक्रान्तिज्या ४८ । ४५ होती है । इस प्रकार ज्यासाधन करके विलोमखण्डों से उत्क्रमज्याओं का साधन करना । अब धनु का साधन कहते हैं—जिस ज्या का धनु सिद्ध करना हो उसके आद्य ज्यखण्ड से लेकर जितने घट सकें उतने घटावे, शेष में दशगुणित अशुद्ध खण्ड का भाग देने से जो अंशादि फल मिले उसमें जितने खण्ड घट गए हों, उस संख्या को दशगुणित जोड़ देने से, धनु सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

यहां उपपत्ति बृहत्खण्डों से जिसप्रकार ज्या सिद्ध करने में लिखी है उसी तरह जानना चाहिए । लघुखण्ड १० अंश के अन्तर से

लिखे हैं। इसलिए इष्टचाप की ज्या * साधनार्थ उसके अंशों में दश १० का भाग देने से गतखण्ड होते हैं।

$$\frac{\text{इष्टचापांश}}{१०} = \text{गत खण्ड}; \quad \frac{\text{शेषांश} \times \text{भोग्यखण्ड}}{१०} = \text{फल},$$

$$\text{फल} + \text{गत खण्ड योग} = \text{लघुज्या}।$$

धनु साधनार्थ अनुपात—

$$\frac{\text{शेष} \times १०}{\text{अशु. ख.}} = \text{अंशादि फल} + \text{शुद्ध खण्ड सं} \times १० = \text{धनु}$$ ॥ १२–१५॥

इदानीं भोग्यखण्डस्पष्टीकरणमाह—

गतैष्ययोः खण्डकयोर्विशेषः
शेषांशनिघ्नो नखहृत् तदूनम्।
युतं गतैष्यैक्यदलं स्फुटं स्यात्
क्रमोत्क्रमज्याकरणेऽत्र भोग्यम् ॥ १६ ॥

गतैष्ययोः खण्डयोर्यदन्तरं तज्ज्यासाधने दशभक्तभागेभ्यो ये शेषांशास्तैर्गुणितं नखैर्भजेत्। फलेन गतैष्ययोः खण्डयोर्योगार्धमूनीकृतं स्फुटं भोग्यं भवति। उत्क्रमज्याकरणे तु युक्तम्।

---

* यहां बृहज्ज्याखण्ड और लघुज्याखण्डों से ज्या साधन का प्रकार दिखलाया गया है। बृहज्ज्याखण्डों से कुछ सूक्ष्म और लघुखण्डों से सुखार्थ स्थूल ज्या का साधन होता है। उसकी स्थूलता निवारणार्थ भोग्यखण्ड का स्पष्टीकरण किया है। इसीलिए लिखा है 'भोग्यात्स्फुटाज्ज्यातिपरिस्फुटात्र।' यों स्फुट भोग्यखण्ड का स्थूलता में प्रयोजन पड़ता है। परन्तु ज्याओं के प्रति प्रदेश में अन्तर का वैलक्षण्य होता है इसलिए तात्कालिक स्फुट भोग्यखण्ड से भी तादृश सूक्ष्मता नहीं होती।

सूक्ष्म ज्या साधनार्थ सांप्रतिक प्रघातमापक सारणी (Logarithmic Table) का उपयोग करना चाहिए। उससे प्रत्यंशज्या सूक्ष्म सिद्ध होती है। उक्त सारणी में १०,०००,०००,००० व्यासार्ध में चापज्या लिखी हैं। इसी लिए आचार्य ने भी भाष्य में 'यावद्यावन्महद्व्यासार्धं.........'लिखा है। गणित में सूक्ष्मता सर्वत्र इष्ट है।

अत्रोपपत्तिः। गतैष्ययोः खण्डयोर्योगार्धं खण्डसन्धौ खण्डं भवितुमर्हति। भोग्यखण्डं तु भोग्यान्तस्थाने। तदन्तरेऽनुपातः। यदि दशभिर्भागैस्तयोरन्तरार्धं लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति। एवं त्रैराशिकेन गतैष्यखण्डान्तरगुणितानां शेषांशानां विंशतिर्भागहारः स्यात्। फलेन गतैष्ययोर्योगार्धमत्र ऊनं क्रियते यतः क्रमज्याकरणे खण्डान्यपचयेन वर्तन्ते। उत्क्रमज्याकरणे तूपचयेनातस्तत्र युतमित्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

गत और गम्य ज्याखण्डों के अन्तर को शेषांश से गुणाकर बीस २० का भाग देना, फलको गत और एष्य खण्डों के योगार्ध में घटा देने से और उत्क्रमज्या के साधन में जोड़ने से स्पष्ट भोग्यखण्ड होता है। क्योंकि क्रमज्या में खण्डों का अपचय और उत्क्रमज्या में उपचय होता है।

उपपत्ति।

(१) प्रत्येक चापखण्ड दश दश भाग के कल्पना किए गए हैं। कल्पना किया सोलह भाग की ज्या सिद्ध करनी है। नीचे लिखे क्षेत्र में—

गतज्या = बबा.

एष्यज्या = कका.

इष्टज्या = लला. इनसे त्रैराशिक किया—

बक : कके : बल : लले.

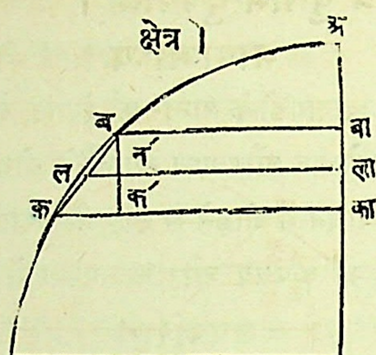
परन्तु बकके त्रिभुज सरल नहीं है किन्तु चापीय है, इसलिए अनुपात असङ्गत होता है। और बक रेखा चापाकार होने से कुछ वक्र है इसलिए उसकी पूर्णाज्यारूप सरल रेखा मानकर अनुपात किया, इससे इष्टज्या कुछ न्यून आई। उसके लिए उपाय किया कि गत और गम्य खण्डों के योगार्धरूप भोग्यखण्ड को खण्डसन्धि

'ब' चिह्न पर कल्पना किया। उत्तरोत्तर ज्याखण्डों के अपचित होने से दशभाग के अन्तर पर भोग्यखण्डान्तस्थान 'क' चिह्न पर यात और एष्य खण्ड के अन्तरार्ध की उपलब्धि होती है।

जैसा, भोग्यखण्ड $\frac{ब+क}{२}$, न्यूनता जानने के लिए अन्तर करने पर—

$$\frac{ब+क}{२} - क = \frac{ब+क-२क}{२} = \frac{ब-क}{२} ।$$

क्षेत्र।



इसप्रकार, भोग्यखण्डान्त में अन्तरार्ध के तुल्य ह्रास सिद्ध हुआ। उससे अन्तर में अनुपात किया—यदि दशभाग में यातैष्य खण्डों के अन्तरार्ध तुल्य ह्रास होता है तो इष्ट अंशों में क्या? फल इष्टस्थान में ह्रास सिद्ध हुआ—

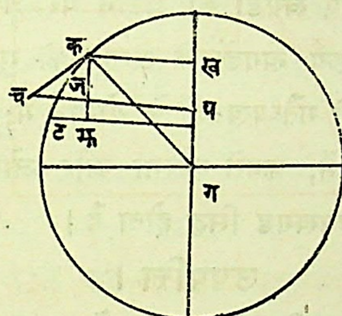
$$\frac{\text{यातैष्यखं} \times \text{इष्टांश}}{२ \times १०} = \text{ह्रासफल} ।$$

इस प्रकार 'यातैष्ययोः खण्डकयोः—' इत्यादि उपपन्न हुआ। यही अभिप्राय आचार्य ने भाष्य में दिखलाया है।

(२) अब प्रकारान्तर से भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण की उपपत्ति दिखलाई जाती है।

एक वृत्त निर्माण करके दिगङ्कित किया उसमें, इष्टज्या = क ख

उसकी कोटिज्या = ख ग, कर्ण = क ग; यह एक बड़ा चापजात्य हुआ। अब यदि प्रथमचाप = क ट, तब एष्यज्या = ट प हुई। इसकी और इष्टज्या का अन्तर ट भ रेखा के तुल्य भोग्यखण्ड है। अब 'क' चिह्न से क ट चाप के तुल्य क च सरलरेखा वृत्तसंपातरेखारूप किया, वह क ग रेखा के ऊपर लम्बरूप होती है (क्षेत्रमिति,अ. ३) इसलिए च क ग कोण समकोण है, उसमें ग क भ कोण घटाया, तो शेष भ क च कोण रहा। इसीप्रकार भ क ख समकोण से ग क भ कोण घटाने से शेष ग क ख कोण रहा। इसलिये भ क च, ग क ख कोण तुल्य हुए। यों क ज = भुज, च ज = कोटि, क च = कर्ण यह लघुजात्य बड़े जात्य के सजातीय हुआ। इससे अनुपात किया—



ग क त्रिज्या कर्ण में कोटिज्या ख ग कोटि है, तो च क कर्ण प्रथम चाप तुल्य में क्या ? च ज रेखा हुई यही आचार्योक्त स्फुट भोग्यखण्ड का स्वरूप है॥ १६ ॥

इदानीं भोग्यखण्डस्य धनुःकरणाय स्फुटीकरण-माह—

विशोध्य खण्डान्यवशेषकार्ध-
निघ्नं गतैष्यान्तरमेष्यभक्तम्।

फलोनयुग्येयगतैक्यखण्डं
चापार्थमेवं स्फुटभोग्यखण्डम् ॥ १७ ॥

अत्र धनुःकरणे खण्डेषु विशुद्धेषु यच्छेषं तस्यार्धेन गतैष्यखण्डान्तरं गुणितमेष्यखण्डेन भजेत् । फलेन गतैष्यखण्डैक्यदलं प्राग्वत् क्रमधनुःकरणाय हीनमुत्क्रमधनुःकरणाय योज्यम् ।

अत्रापि सैव वासना । इदं धनुःखण्डस्फुटीकरणं किंचित् स्थूलम् । स्थूलमपि सुखार्थमङ्गीकृतम् । अन्यथा बीजकर्मणाऽसकृत्कर्मणा वा स्फुटं कर्तुं युज्यते ।

भाषाभाष्य ।

धनु करने के लिए खण्डों को घटाने पर जो शेष बचे उसके आधे से गत और एष्य खण्डों के अन्तर को गुणाकर एष्य खण्ड का भाग देना, फलको गतैष्यखण्डों के योगार्ध में; क्रमज्या वा उत्क्रमज्या के धनु करने में, क्रमसे घटाना और जोड़ना । इस प्रकार धनुसाधनार्थ स्फुटभोग्यखण्ड सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

अनुपात किया—यदि भोग्यखण्ड में अन्तरार्ध के तुल्य ह्रास मिलता है तो इष्टशेष में क्या ?

$$\frac{\text{यातैष्यखण्डान्तर} \times \text{शेष}}{\text{एष्यखं.} \times २} = \frac{\text{शेष}}{२} \times \frac{\text{यातैष्य खं.}}{\text{एष्य खं.}} \text{ ।}$$

इस प्रकार उपपन्न हुआ । यह धनु साधन स्थूल है सूक्ष्मतार्थ असकृत्कर्म वा बीजकर्म * करना चाहिये ।

असकृत्कर्म का स्वरूप यों है—पहले 'विशोध्य खण्डानि' इसविधि से इष्टज्या से धनु सिद्ध करके क्रमज्या के लिए 'यातैष्ययोः खण्ड-

---

* बीजकर्म से स्फुटीकरण श्रीबापूदेवशास्त्री ने अपनी शिरोमणिकी टिप्पणी में दिखलाया है ।

क्योः—' इस विधि से भोग्यखण्ड सिद्ध करना । इसी भोग्यखण्ड को लेकर 'विशोध्य खण्डानि—' इस रीति से फिर इष्टज्या से धनु साधना पुनः क्रमज्यार्थ भोग्यखण्ड साधन करना यों असकृत्कर्म से स्पष्ट होता है ॥ १७ ॥

इदानीं मन्दकेन्द्रमभिधीयते ततो धनर्णकल्पनां भुजकोटिकल्पनां च श्लोकचतुष्टयेनाह—

मृदूच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रं
चलोच्चं ग्रहोनं भवेत्शीघ्रकेन्द्रम् ।
तुलाजादिकेन्द्रे फलं स्वर्णमेवं
मृदु ज्ञेयमस्माद्विलोमं च शीघ्रम् ॥ १८ ॥

त्रिभिस्तैः पदे तानि चत्वारि चक्रे
क्रमात्स्यादयुग्युग्मसंख्या च तेषाम् ।
अयुग्मे पदे यातमेष्यं तु युग्मे
भुजो बाहुहीनं त्रिभं कोटिरुक्ता ॥ १९ ॥

ये दोःकोटयोः स्तः क्रमज्ये तदूने
त्रिज्ये ते वा कोटिदोरुत्क्रमज्ये ।
ये दोःकोट्योरुत्क्रमज्ये तदूने
त्रिज्ये ते वा कोटिदोष्णोः क्रमज्ये ॥ २० ॥

दोः कोटिज्यावर्गहीनौ त्रिभज्या-
वर्गौ मूले वा तयोः कोटिदोर्ज्ये ।
एवं द्युज्याक्रान्तिजीवे मिथः स्तो
दृग्ज्याशङ्कू यच्छ्रुतिर्वा त्रिभज्या ॥ २१ ॥

स्पष्टानि ।

अत्रोपपत्तिर्गोले कथितैव । तथापि बालावबोधार्थं किंचिदुच्यते । अत्र समायां भूमौ त्रिज्यातुल्येन कर्कटकेन वृत्तं कृत्वा भांशै ३६० रङ्कयम् । तन्मध्ये पूर्वा-

परां याम्योत्तरां च रेखां कृत्वा प्राच्याः सकाशात् सव्यक्रमेण किल पदानि कल्प्यानि वृत्ते रेखावच्छिन्नानि। तेषां क्रमेणायुग्मयुग्मसंज्ञा च। अत्र प्रथमपदे प्राच्याः सकाशाद्वृत्तेऽभीष्टस्थाने बिन्दुः कार्यः। तस्य बिन्दोः प्राच्यपरायाश्च यदन्तरं सा दोर्ज्या। बिन्दोर्याम्योत्तरायाश्च यदन्तरं सा कोटिज्या। तद्धनुषी भुजकोटिसंज्ञे। यथा यथा बिन्दुरग्रतश्चाल्यते तथा तथा दोर्ज्योपचीयते कोटिज्या चापचीयते। पदान्तं प्राप्ते बिन्दौ कोटेरभावः दोर्ज्या च व्यासार्धतुल्या स्यात्। ततो द्वितीयपदे कोटेरुपचयः। तत्पदान्ते कोटिः परमा। भुजस्याभावः। अतएवोक्तम्। अयुग्मे पदे यातमेष्यं तु युग्म इति। तथात्र धनुषि ज्यारूपा या सा क्रमज्या। शररूपं यदन्तरं सोत्क्रमज्या। बाणोनं व्यासार्धं चैतदितरज्यातुल्यं स्याज्जीवोनं व्यासार्धं तदितरबाणतुल्यं स्यादिति वृत्तोपरि सर्वं दर्शनीयम्।

भाषाभाष्य।

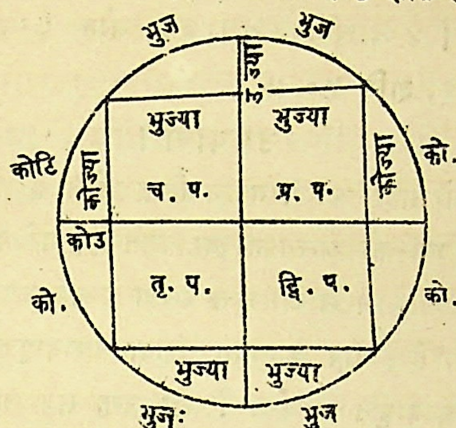
ग्रह को मन्दोच्च में घटाने से मन्दकेन्द्र और शीघ्रोच्च में घटाने से शीघ्रकेन्द्र होता है। तुलादि मन्दकेन्द्र में धन और मेषादि में ऋणफल होता है। इससे विपरीत शीघ्रकेन्द्र में होता है। तीन राशियों का एक पद होता है। यों चारपद होते हैं और उनकी सम और विषम संज्ञा होती है। विषमपद में गत और समपद में एष्य भुज होता है। भुजको तीनराशि में घटाने से कोटि होती है। त्रिज्या में क्रमसे भुजज्या और कोटिज्या घटा देने से कोटि और भुजकी उत्क्रमज्या रहती है। और त्रिज्या में भुज और कोटि की उत्क्रमज्या घटा देने से कोटि और भुज की क्रमज्या होती है।

त्रिज्यावर्ग में, भुजज्या और कोटिज्या का वर्ग घटाकर मूल लेने

से भुजज्या, कोटिज्या होती है। ऐसे ही त्रिज्या वर्ग में क्रान्तिज्या वर्ग घटाने से द्युज्या और द्युज्या से क्रान्तिज्या होती है। शंकु वर्गको घटाने से दृग्ज्या और दृग्ज्या को घटाने से शंकु होता है।

उपपत्ति।

यहां नीचे लिखे क्षेत्र को देखने से सब स्पष्ट ज्ञात होता है।



इस प्रकार चारों पदों में भुजज्या आदि होती हैं॥ १८-२१॥

अथमन्दपरिधीनाह—

मन्दोच्चनीचपरिधिस्त्रिलवोनशक्र १३। ४०
भागा रवेर्जिनकलोनरदा ३१।३६ हिमांशोः।
खाश्वा ७० भुजङ्गदहना ३८ अमरा ३३ भवाश्च ११
पूर्णेषवो ५० निगदिताःक्षितिजादिकानाम् २२॥

इह ग्रहफलोपपत्त्यर्थं मन्दोच्चनीचवृत्तानि पूर्वैः कल्पितानि। तेषां प्रमाणान्येतावन्तो भागाः।

अत्रोपपत्तिः। ग्रहस्य यन्त्रवेधविधिना यत्परमं फलमुत्पद्यते तस्य ज्या परमफलज्यान्त्यफलज्या चोच्यते। अन्त्यफलज्यातुल्यव्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तन्नीचोच्चवृत्तम्। तत्परिधिस्त्रैराशिकेन। यदि त्रिज्या-

व्यासार्धे भांशाः ३६० परिधिस्तदान्त्यफलज्याव्यासार्धे किमिति लब्धं परिधिभागाः। एवमर्कादीनां त्रिलवोनशङ्का इत्यादय उत्पद्यन्ते।

भाषाभाष्य।

ग्रहों की मन्दोच्चनीचपरिधि का मान इसप्रकार है—

सूर्य १३।४०, चन्द्र ३१।३६, भौम ७०, बुध ३८, गुरु ३३, शुक्र ११, शनि ५० ॥

उपपत्ति।

वेध से जो ग्रहों का परमफल सिद्ध होता है उसको अन्त्यफल और उसकी ज्या को अन्त्यफलज्या कहते हैं। प्रत्येक ग्रहों के अन्त्यफलज्यातुल्य व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है वह उस ग्रह का नीचोच्च वृत्त कहलाता है। अत्र अनुपात किया—त्रिज्यावृत्त में भांशपरिधि तो अन्त्यफलज्यावृत्त में क्या? यों उक्त सब ग्रहों की परिधियां सिद्ध होती हैं ॥ २२ ॥

अथ भौमादीनां चलपरिधीनाह—

एषां चलाः कृतजिनास्त्रिलवेन हीना २४३।४०
दन्तेन्दवो १३२ वसुरसा ६८ वसुबाणदस्राः२५८।
पूर्णाब्धयो४०ऽथ भृगुजस्य तु मन्दकेन्द्र-
दोःशिञ्जिनी द्विगुणिता त्रिगुणेन ३४३८ भक्ता २३॥
लब्धेन मन्दपरिधी रहितः स्फुटः स्यात्
तच्छीघ्रकेन्द्रभुजमौर्व्यथ बाणनिघ्नी।
त्रिज्योद्धृताशुपरिधिः फलयुक्स्फुटः स्या-
द्भौमाशुकेन्द्रपदगम्यगताल्पजीवा ॥ २४ ॥
त्र्यंशोनशैल ६।४० गुणितार्धयुतस्य राशे-
र्मौर्व्योद्धृतासलवहीनयुतं मृदूच्चम्।
भौमस्य कार्किमकरादिगते स्वकेन्द्रे

लब्धांशकैर्विरहितः परिधिस्तु शैघ्र्यः ॥ २५ ॥

एवं भौमादीनां चलारचलनीचोच्चवृत्तपरिधिभागा एते। अथ शुक्रस्य मन्दकेन्द्रे या दोर्ज्या सा द्विगुणिता त्रिगुणेन ३४३८ भाज्या। फलेन मन्दपरिधिस्तस्य रहितः सन् स्फुटो भवति। अथ शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रे या दोर्ज्या सा पञ्चगुणा त्रिज्यया भाज्या फलेन शीघ्रपरिधिर्युतः सन् स्फुटो भवति। अथ भौमस्य प्रथमं शीघ्रकेन्द्रं कृत्वा तद्यस्मिन् पदे वर्तते तस्य यद्गतं यच्च गम्यं तयोरल्पस्य या ज्या सा त्रिभागोनैः सप्तभिरंशै ६।४० र्गुणनीया। ततः पञ्चचत्वारिंशद्भागानां ज्यया-नया २४३१ भाज्या। यल्लब्धं भागादिफलं तदलष्टं स्थाप्यम्। तेन कुजस्य मन्दोच्चं सहितं कार्यम्। यदि शीघ्रकेन्द्रं मकरादिषट्के। कर्क्यादिषट्के तु हीनं कार्यम्। एवं मन्दोच्चं स्फुटं भवति। अथ कुजस्य यः पठितः शीघ्रपरिधिः स तेनानष्टस्थापितेन फलेन सदैव वर्जितः सन् स्फुटो भवति।

अत्रोपपत्तिः। एषां भौमादीनां यानि परमाणि शीघ्रफलान्युपलभ्यन्ते तेषां ज्यान्त्यफलज्या। ततः प्राग्वत् परिधिभागाः। अथ शुक्रस्य ये मन्दपरिधिभागा रुद्रतुल्याः पठितास्ते युग्मपदान्ते। ओजपदान्ते तु नव ९। अवान्तरेऽनुपातः। यदि त्रिज्यया परिध्यन्तरं द्वयं २ लभ्यते तदेष्टदोर्ज्यया किमिति। फलेन परिधिरपचीयमानत्वाद्वर्जितः कृतः। तथा तस्य यः शीघ्रपरिधिः पठितो वसुबाणदस्रा इति २५८ एष युग्मपदान्ते। ओजपदान्ते तु पञ्चाधिकः २६३। अवान्तरेऽनुपातेन यत्फलं तदुपचीयमानत्वाद्धनं कृतम्। अथ भौमस्य

यन्मन्दोच्चं गणितागतं तच्छीघ्रकेन्द्रपदसन्धिषु सर्वेषु तथाविधमेव। पदमध्ये पुनस्त्रिभागोनैः सप्तभिरंशैरधिकमेव भवति । मृगादिकेन्द्रे । कर्क्यादौ तु हीनम्। तथा तस्य यः शीघ्रपरिधिः पठितः। असौ पदसन्धिषु। पदमध्ये तु तैर्भागैरून एव। तदन्तरेऽनुपातः। यद्यर्धयुतराशिज्यया २४३१ त्रिभागोनः सप्तभागा लभ्यन्ते तदा पदगतगम्याल्पज्यया किमिति । फलमुपचयापचयवशाद्धनर्णम्। अत्रागम एव प्रमाणम्।

भाषाभाष्य।

भौम की शीघ्र परिधि २४३। ४०, बुध १३२, गुरु ६८, शुक्र २५८ और शनि ४० है। शुक्र की मन्दकेन्द्रभुजज्याको द्विगुणित करके ३४३८ का भाग देकर फल को मन्दपरिधि में घटाने से स्पष्टपरिधि होती है । और शुक्र की शीघ्रकेन्द्रभुजज्या को पांच ५ से गुणकर ३४३८ का भाग देकर फल को शीघ्रपरिधि में युक्त करने से स्पष्टशीघ्र परिधि होती है। भौम का प्रथम शीघ्रकेन्द्र जिस पदका हो उसका गत, गम्य पद साधन करके दोनों में जो अङ्क अल्प हो उसकी ज्या को ६। ४० से गुणकर २४६१ का भाग देना। जो अंशादि फल मिले उसको शीघ्रकेन्द्र के मकरादि में, भौम के मंदोच्च में युक्त और कर्क्यादि में हीन करने से मन्दोच्च स्पष्ट होता है। और भौम की पाठ पठित शीघ्रपरिधि में उक्त फल को घटाने से स्पष्ट परिधि होतीहै।

यहां आचार्य ने उपपत्ति आगम प्रमाण से लिखी है॥ २३-२५॥

इदानीं भुजकोट्योः फलानयनमाह।

स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे
भांशै ३६० हृते च भुजकोटिफलाह्वयेस्तः।
त्रिज्योद्धृते च यदि वान्त्यफलज्यकाघ्न्यौ
त्रिज्योद्भवं फलमिहान्त्यफलस्य जीवा॥२६॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः । यावत्केन्द्रं प्रतिमण्डले तावदेव नीचोच्चवृत्ते स्यात् । अतः प्रतिमण्डलदोःकोटिज्ये अनुपातेन नीचोच्चवृत्ते परिणाम्येते । यदि भांशवृत्त एते दोःकोटिज्ये तदा परिध्यंशवृत्ते किमिति । अथवा त्रिज्याव्यासार्ध एते दोःकोटिज्ये तदान्त्यफलज्याव्यासार्धेन किमिति । फलं तुल्यमेव । अन्त्यफलज्या पूर्वं नोक्ता तदर्थं त्रिज्योद्भवं फलमित्यपि । त्रिज्या पृथग्ग्रहाणां मन्दशीघ्रपरिधिभागैर्गुण्या भांशै ३६० र्भाज्यान्त्यफलज्या भवतीत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

भुजज्या और कोटिज्या को अपनी परिधि से गुणाकर भांश ३६० का भाग देने से, फल भुजफल और कोटिफल होता है । अथवा, अन्त्यफलज्या से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से फल पूर्व तुल्य होता है ।

उपपत्ति ।

प्रतिवृत्तीय भुजज्या और कोटिज्या को नीचोच्चवृत्त में परिणामन करने से भुजफल और कोटिफल संज्ञक होते हैं । अन्त्यफलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त होता है उसे नीचोच्चवृत्त वा परिध्यंशवृत्त कहते हैं । केन्द्र का प्रमाण प्रतिमण्डल और नीचोच्चमण्डल में समान होता है । अब परिणामन के लिए अनुपात किया—

$$३६० : \text{भुज्या} :: \text{परिध्यं} : \text{भु.फ.} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{परिध्यं}}{३६०} ।$$

$$\text{अथवा, त्रिज्या} : \text{भुज्या} :: \text{अन्त्यफ} : \text{भुफ} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंज्या}}{\text{त्रिज्या}} ।$$

इसप्रकार भुजफल हुआ ऐसे ही कोटिफल भी होता है ।

$$\text{अन्त्यफज्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परिध्यं}}{३६०};$$

$$\text{नीचोच्चवृत्तपरिधि} = \frac{३६० \times \text{अंज्या}}{\text{त्रि.}} ।$$

इसप्रकार उपपन्न हुआ ॥ २६ ॥

इदानीं कर्णानयनं प्रकारचतुष्टयेनाह—

स्वकोटिजीवान्त्यफलज्ययोर्यो
योगो मृगादावथ कर्कटादौ ।
केन्द्रेऽन्तरं तद्भुजजीवयोर्यद्
वर्गैक्यमूलं कथितः स कर्णः ॥ २७ ॥

त्रिज्या तथा कोटिफलेन युक्ता
हीना च तद्दोःफलवर्गयोगात् ।
मूलं श्रुतिर्वान्त्यफलत्रिमौर्व्यो—
वर्गैक्यराशेश्च तथा युतोनात् ॥ २८ ॥

त्रिभज्यया कोटिफलद्विनिघ्न्या
कोटिज्यया वान्त्यफलद्विनिघ्न्या ।
मूलं श्रुतिर्वा मृदुदोः फलस्य
चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति ॥ २९ ॥

मृगादौ केन्द्रे कोटिज्यान्त्यफलज्ययोर्यो योगः कर्क्यादौ तु यदन्तरं तस्य भुजज्यायाश्च वर्गैक्यपदं कर्णः स्यात् । तथा मृगादि केन्द्रे त्रिज्याकोटिफलयोर्योगः कर्क्यादौ तु यदन्तरं तस्य भुजफलस्य च वर्गैक्यपदं वा कर्णः स्यात् । तथा मृगादिकेन्द्रे त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगात् त्रिज्यया कोटिफलगुणया द्विगुणया च युतादथवा कोटिज्ययान्त्यफलज्यागुणया द्विगुणया च युतात्

कर्क्यादौ तु हीनान्मूलं वा श्रुतिः स्यात् । अथ मन्दभुजफलस्य धनुर्ग्रहस्य मन्दफलं भवति ।

अत्रोपपत्तिः । समायां भूमौ बिन्दुं कृत्वा तां भूमिं प्रकल्प्य ततस्त्रिज्यामितेन कर्कटकेन कक्षाख्यमण्डलं लिखेत् । तद्भगणाङ्कितं कृत्वा मेषादेरारभ्य ग्रहमुच्चं च दत्त्वा तत्र चिह्ने कार्ये । ततो भूबिन्दूच्चचिह्नयोरुपरि रेखा दीर्घा । सोच्चरेखोच्यते । अथ तदुत्थमत्स्येन कक्षामण्डलेऽन्या तिर्यग्रेखा च कार्या । भूबिन्दोरुपर्यन्त्यफलज्याग्रमुच्चोन्मुखीं दत्त्वा तदग्रे त्रिज्यामितकर्कटेन प्रतिमण्डलं च कार्यम् । उच्चरेखया सह यत्र संपातस्तत्र प्रतिमण्डलेऽप्युच्चं ज्ञेयम् । तस्मादुच्चभोगं विलोमं दत्त्वा तत्र प्रतिमण्डले मेषादिर्ज्ञेयः । ततो ग्रहमनुलोमं दत्त्वा तत्र चिह्नं कार्यम् । अथ प्रतिमण्डलमध्येऽप्यन्या तिर्यग्रेखा कार्या । तिर्यग्रेखयोरन्तरमन्त्यफलज्यातुल्यमेव सर्वत्र भवति । ग्रहोच्चरेखयोरन्तरं दोर्ज्या । ग्रहतिर्यग्रेखयोरन्तरं कोटिज्या । प्रतिमण्डलस्य ग्रहाद्भूबिन्दुगामि सूत्रं कर्णः । कर्णसूत्रस्य कक्षावृत्तस्य च यत्र संपातस्तत्र स्फुटो ग्रहः । कक्षामण्डले स्फुटमध्ययोरन्तरं फलम् । तच्च मध्यग्रहात्स्फुटेऽग्रस्थे धनं पृष्ठस्थे त्वृणमिति किल ग्रहसंस्थानम् । अथात्र कर्णस्योपपत्तिः । कक्षावृत्तप्रतिवृत्ततिर्यक्स्थरेखयोरन्तरं किलान्त्यफलज्या । प्रतिमण्डले कोटिज्यान्त्यफलज्याग्रादुपरि भवति मृगादिकेन्द्रेऽतस्तत्र तदैक्यं स्फुटा कोटिः । कर्क्यादौ तु तदधोऽतस्तत्र तदन्तरं स्फुटा कोटिः । स्फुटकोटिमूलस्य भूबिन्दोश्च यदन्तरं तद्भुजज्यातुल्यमेव स्यात् । अतस्तयोर्भुजकोट्योर्वर्गयोगात्पदं कर्ण इत्युपपन्नम् ।

अथ क्रियोपसंहारः। कोटिज्यान्त्यफलज्ययोर्योगस्यान्तरस्य च वर्गः कार्यः स चैवम्। खण्डद्वयस्याभिहतिर्द्विनिघ्नी तत्खण्डवर्गैक्ययुता कृतिः स्यादिति। तत्र कोटिज्यैकं खण्डम्। अन्त्यफलज्या द्वितीयं खण्डम्। आभ्यां कृताकृतिः। कोअं २ को व १ अंव १। इयं योगस्य। अन्तरस्येयं कोअं २° को व १ अंव १। इदानीं दोर्ज्यावर्गः साध्यते। कोटिज्यावर्गोनस्त्रिज्यावर्गो दोर्ज्यावर्गः स्यादिति जातो दोर्ज्यावर्गः कोव १° त्रिव १। अनयोर्यावद्योगः क्रियते तावद्धनर्णयोः कोटिज्यावर्गयोस्तुल्यत्वाभावे कृते त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्वर्गैक्यं कोटिज्यान्त्यफलज्याग्रुणया द्विनिघ्न्या च युतं जातम्। एवं मृगादिकेन्द्रे। कर्क्यादिकेन्द्रे तु तया हीनं भवति। एवं तन्मूलं कर्ण इत्युपपन्नम्। इदं कर्णानयनद्वयं प्रतिमण्डलभङ्ग्या।

अथ नीचोच्चवृत्तभङ्ग्या चोच्यते। कक्षामण्डले मध्यग्रहस्थानेऽन्त्यफलज्यामितकर्कटेन वृत्तं विलिख्य भूबिन्दोर्मध्यग्रहोपरिगामिनी रेखा कार्या सा तत्रोच्चरेखा। तस्य वृत्तस्य रेखया सह यौ योगौ तयोरुपरितन उच्चसंज्ञः। अधस्ततो नीचसंज्ञः। तद्रेखातोऽन्या तिर्यग्वृत्तमध्ये मत्स्येन रेखा कार्या। तदपि वृत्तमुच्चप्रदेशाद्भांशैरङ्क्यम्। तत्रोच्चाच्छीघ्रकेन्द्रमनुलोमं देयम्। मन्दकेन्द्रं तु विलोमं देयम्। तत्र शीघ्रकेन्द्राग्रे पारमार्थिको ग्रहः। मन्दाग्रे मन्दस्फुटः। अत्रापि ग्रहोच्चरेखयोरन्तरं भुजफलं ग्रहतिर्यग्रेखयोरन्तरं कोटिफलं ग्रहभूम्योरन्तरं प्राग्वत्कर्णः। अथ तदानयनम्। मकरादिकेन्द्रे त्रिज्योर्ध्वतः कोटिफलं दृश्यते। कर्क्यादौ तु तदधः।

अतस्तदैक्यान्तरं स्फुटाकोटिः। भुजफलं तु तत्र भुजः। तयोर्वर्गयोगपदं कर्ण इत्युपपन्नम्। अत्रापि क्रियोपसंहारः। अत्र स्फुटकोटिवर्गः खण्डद्वयेन प्राग्वत्। तत्रैकं खण्डं त्रिज्या। द्वितीयं कोटिफलम्। अतः खण्डद्वयस्याभिहतिर्द्विनिघ्नीत्यादिना जातो वर्गः। त्रिकोफ २ त्रिव १ कोफव १ अयं योगस्य। अन्तरस्यायम्। त्रिकोफ २ त्रिव १ कोफव १। कोटिफलवर्गोनोऽन्त्यफलज्यावर्गो भुजफलवर्गो जातः। कोफव १ अंव १ अनयोर्योगे कोटिफलवर्गनाशे त्रिज्यान्त्यफलज्यावर्गैक्यं त्रिज्याकोटिफलघातेन द्विगुणेन मृगादिकेन्द्रे युतं कर्क्यादौ तु रहितं तस्य पदं कर्ण इत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

मकरादिकेन्द्र में कोटिज्या और अन्त्यफलज्या का योग और कर्कादि केन्द्र में अन्तर करके उसके वर्ग और भुजवर्ग के योग का मूल कर्ण होता है। इसीप्रकार मकरादिकेन्द्र में त्रिज्या और कोटिफल के योग और कर्कादि में उनके अन्तर के वर्ग का और भुजफल वर्ग का योग मूल कर्ण होता है। अथवा, त्रिज्यावर्ग और अन्त्यफलज्यावर्ग का योग करके, त्रिज्याको द्विगुणित कोटिफल से गुणाकर, किंवा कोटिज्या को द्विगुणित अन्त्यफलज्या से गुणाकर, मृगादि केन्द्र में योग और कर्कादि केन्द्र में वियोग करके मूल लेने से कर्ण होता है।

विद्वान्लोग, मन्दभुजफल के चाप को मन्दफल कहते हैं।

उपपत्ति।

यहां चार प्रकार से कर्ण का साधन दिखलाया गया है। दो

विधि प्रतिवृत्तभङ्गि और दो नीचोच्चवृत्तभङ्गि से है। इन दोनों क्षेत्रों की निर्माण विधि और अवयव निर्देश वासनाभाष्य में स्पष्ट लिखा है। इस लिए केवल कर्णसाधन का स्वरूप दिखलाया जाता है।

$$\text{कोज्या} + \text{अंज्या} = \text{स्पको} \mid \text{स्पको}^2 + \text{भुज्या}^2 = \text{क}^2 \mid$$

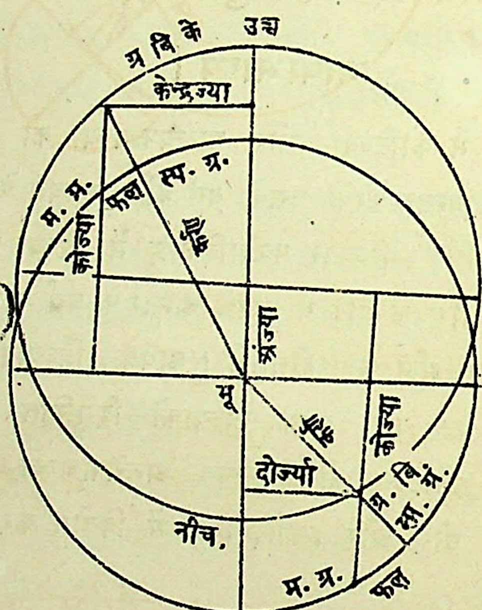
$$\text{कोज्या}^2 + \text{अंज्या}^2 + 2\,\text{कोज्या} \times \text{अंज्या} = \text{स्पको}^2$$

$$+ \text{त्रि}^2 - \text{कोज्या}^2 = \text{भुज्या}^2, \text{ दोनों का योग करने पर;}$$

$$\sqrt{(\text{त्रि}^2 + \text{अंज्या}^2) + 2\,\text{कोज्या} \times \text{अंज्या}} = \text{क}^2,$$

इस प्रकार 'अन्त्यफलत्रिमौर्व्योर्वर्गैक्यराशेरन्त्यफलद्विनिघ्न्या कोटिज्यया युतोनान्मूलं कर्णः।' यह उपपन्न हुआ।

प्रतिवृत्तभङ्गिः।



अब नीचोच्चवृत्तभङ्गि से सिद्ध किया जाता है।

$$\text{त्रिज्या} \pm \text{कोफ} = \text{स्पको} \mid \text{स्पको}^2 + \text{भुफ}^2 = \text{क}^2$$

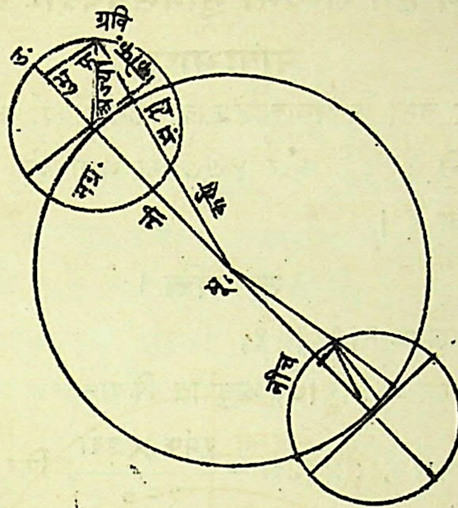
$$(\text{त्रिज्या}^2 + \text{कोफ}^2) + 2\,\text{त्रिज्या} \times \text{कोज्या} = \text{स्पको}^2.$$

अंज्या^{2} – कोफ^2 = भुफ^2. दोनों का योग किया.

∴ त्रि^{2} + कोफ^2 × २ त्रिज्या × को ज्या = क^2; $\sqrt{\text{क}^2}$ = क

इसप्रकार आनयन सिद्ध हुआ—

नीचोच्चवृत्तभङ्गिः ।



इदानीमर्केन्द्वोः फलानयनं लघुज्यया लघुप्रकारेणाह ।

ये केन्द्रदोर्ज्ये लघुखण्डकोत्थे
क्रमाद्रवीन्द्वोर्नखसङ्गुणे ते ।
भक्ते त्रिखेशै ११०३ र्मुनिसप्तवेदै ४७७
र्यद्वा तयोर्मन्दफले लवाद्ये ॥ ३० ॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः । अर्कस्य बृहज्ज्याभिः परमं फलमानीतं भागद्वयं सार्धदशकलाधिकं किल भवति २।१०।३१ यदि लघ्व्या त्रिज्यातुल्यया दोर्ज्ययेदं फलं तदाभीष्टया किमिति । एवमनुपातेन दोर्ज्यायाः फलं गुणस्त्रिज्या

१२० हरः । अथ संचारः । यदि फलमिते गुणे त्रिज्या हरस्तदा विंशतिमिते किमित्युत्पद्यन्ते त्रिखेशाः ११०३। अथ चन्द्रस्य परमं फलमष्टविकलाधिककलाद्वयाधिकाः पञ्चभागाः ५ । २ । ८ इहापि नखगुणत्रिज्यायाः २४०० फलेन भागे हृते लभ्यन्ते मुनिसप्तवेदाः ४७७ ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य और चन्द्र के लघुखण्डोत्पन्न केन्द्रदोर्ज्या को बीस २० से गुणाकर क्रमसे ११०३ और ४७७ का भाग देने से फल अंशादि मन्दफल होता है ।

उपपत्ति ।

रविमन्दफल = २।१०।३१,

चन्द्रमन्दफल = ५।२।८, अनुपात किया—

$$१२० : रमंफ :: इष्टदो = \frac{रमंफ \times इदो}{१२०}$$, फिर संचार किया—

यदि रविफल गुणक में त्रिज्या हर है तो बीस में क्या ?

$$\frac{१२० \times २०}{२।१०।३१} = ११०३$$ हुआ ।

$$\therefore रविमन्दफलांश = \frac{२० \times लघुज्या}{११०३} ।$$

इसी प्रकार चन्द्र का भी सिद्ध होता है ॥ ३० ॥

इदानीमर्केन्द्वोर्गतिस्पष्टीकरणमाह ।

तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्ता
रवेर्विधोर्वेदहताद्रिभक्ता ।
लब्धाः कलाः कर्किमृगादिकेन्द्रे
गतेः फलं तत्क्रमशो धनर्णम् ॥ ३१ ॥

तत्कोटिजीवेति । लब्धी कोटिज्या कृतबाणभक्ता रवेर्गतिफलं स्यात् । विधोस्तु केन्द्रकोटिज्या लघ्वी वेदगुणा सप्तभक्ता गतिफलं स्यात् । तत्फलं कर्क्यादिकेन्द्रे धनं मकरादावृणं गतेः कार्यम् । एवं तात्कालिकी स्फुटागतिर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः । तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिरित्यादिनानीते रविचन्द्रयोः परमे गतिफले कलाद्ये २।१४।६८।४८ आभ्यां गतिफलज्ञानार्थमनुपातः । यदि लब्ध्या त्रिज्यातुल्यया कोटिज्यया एते रविचन्द्रयोर्गतिफले तदेष्टया किमिति । अत्र गुणकेन गुणकभाजकावपवर्त्य ज्ञाता भाजके युगशराः ५४ । चन्द्रस्य गतिफलचतुर्थांशेन गतिफलं त्रिज्यां चापवर्त्य ज्ञातो गुणकः । भाजकश्च ७ । इत्युपपन्नम् । धनर्णतोपपत्तिरग्रे वक्ष्ये ।

भाषाभाष्य ।

रवि की लघुकोटिज्या को ५४ से भाजित करने से उसका गतिफल होता है । और चन्द्रमा की चार ४ से गुणाकर सात ७ का भागदेने से गतिफल होता है । इन गतिफलों को कर्कादिकेन्द्र में, गति में धन और मकरादि में ऋण क्रमसे करना चाहिए ।

उपपत्ति ।

वासनाभाष्यानुसार—

$$१२० : २।१४ :: इदो : \frac{२।१४ \times इदो}{१२०}$$ । यहां गुणक का

गुणक-भाजक में अपवर्तन देने से भाजक स्थान में ५४ लब्ध हुए ।

यों 'तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्ता—' उपपन्न हुआ। इसीप्रकार चन्द्र का भी गुणक-भाजक उपपन्न होजाता है ॥ ३१ ॥

इदानीं भौमादीनां शीघ्रफलानयनम्—

द्राग्दोःफलात् संगुणितात्त्रिमौर्व्या
घाताद्भुजज्यान्त्यफलज्ययोर्वा।
कर्णोद्धृताद्यत्सममेव लब्धं
तत्कार्मुकं शीघ्रफलं ग्रहाणाम् ॥ ३२ ॥

स्पष्टम्।

अत्रवासना त्रैराशिकेन। कर्णकोटिसूत्रयोर्यदि कर्णाग्रे भुजफलतुल्यमन्तरं तदा त्रिज्याग्रे किमिति। अतस्त्रिज्याघ्नं भुजफलं कर्णेन हृतम्। तच्चापकरणेन वृत्तगतत्वं फलस्योपपन्नम्। अथान्यथाप्रकारेण। दोर्ज्यान्त्यफलज्याघ्नी त्रिज्यया भक्ता भुजफलं भवति। यदि कर्णाग्र एतावदन्तरं तदा त्रिज्याग्रे किमिति। पूर्वं त्रिज्या हरः। इदानीं स गुणस्तुल्यत्वान्नाशे कृते सति घाताद्भुजज्यान्त्यफलज्ययोर्वेत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

भौम आदि ग्रहों के शीघ्रभुजफलको त्रिज्या से गुणा कर अथवा, भुजज्या और अन्त्यफलज्या का गुणन करके, दोनों स्थानों में कर्ण का भाग देने से जो समान लब्धि आती है उसका धनु ग्रहों का शीघ्रफल होता है।

उपपत्ति।

नीचोच्चवृत्तभङ्गि की क्षेत्रसंस्था से इसकी उपपत्ति होती है। अनुपात किया—यदि कर्णाग्र में भुजफल के समान अन्तर मिलता है तो त्रि-

ज्याग्र में क्या ? $\frac{\text{त्रि} \times \text{भुफ}}{\text{क}}$, यों त्रिज्याग्र में शीघ्रफल सिद्ध हुआ।

अथवा, भुजफल $= \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंज्या}}{\text{त्रि}}$, यदि कर्णाग्र में भुजफल के तुल्य

अन्तर है तो त्रिज्याग्र में क्या ? $= \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंज्या} \times \text{त्रि}}{\text{त्रि} \times \text{क}} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंज्या}}{\text{क}}$

=शीघ्रफल. इसप्रकार दोनों प्रकार उपपन्न हुए ॥ ३२ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण फलमाह—

त्रिज्याहता कर्णहृता भुजज्या
तच्चापबाह्वोर्विवरं फलं वा।
ज्ञेयोऽत्र बाहुः प्रतिमण्डलस्य
चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकायाः ॥ ३३ ॥

त्रिभं युतोनोनयुतं पदानि-
दोस्तेषु यातैष्यमयुग्मयुग्मे।

भुजज्या त्रिज्यया गुण्या कर्णेन भाज्या लब्धस्य यच्चापं तस्य बाहोश्च यदन्तरं तद्ग्रहस्य शीघ्रफलम्। परमत्र बाहुः प्रतिमण्डलस्य ज्ञेयः। अथ तद्बाहुज्ञानार्थमाह। चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकाया इति। ग्रहस्य परमेण शीघ्रफलेन युतोनोनयुतं कार्यम्। किम्। राशित्रयं चतुःस्थम्। तानि प्रतिमण्डलपदानि भवन्ति। तद्यथा बुधस्य परमं शीघ्रफलमेकविंशतिभागाः पादोनद्वात्रिंशत्कलाधिकाः २१। ३१। ४३ अनेन कृतानि पदानि।

३	२	२	३	एतानि बुधस्य प्रतिमण्डलपदानि ।
२१	८	८	२१	यदा प्रतिमण्डलभुजः क्रियते तदा-
३१	२८	२८	३१	युग्मे पदे यातमेष्यं तु युग्म इत्या-
४३	१७	१७	४३	

दिनैव । तद्यथा । यदा सार्धराशित्रयस्य केन्द्रस्य भुजः क्रियते तदा तावानेव भवति । यदा सार्धराश्यष्टकस्य केन्द्रस्य भुजः क्रियते तदा सार्धराशित्रयं भवतीति ज्ञेयम् । तच्चापबाह्वोर्विवरं फलं वेत्यत्रायं बाहुर्ज्ञेय इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । कर्णोच्चरेखयोरन्तरं यदि कर्णाग्रे भुजज्यातुल्यं भवति तदा त्रिज्याग्रे किमिति । फलं स्फुटग्रहोच्चरेखयोरन्तरं ज्यारूपं स्यात् । तच्चापस्य प्रतिमण्डलबाहोश्च यदन्तरं तच्छीघ्रफलं स्यात् । अतोऽत्र प्रतिमण्डलस्य बाहुः यतः प्रतिमण्डलस्यौजपदान्तं यावत् फलस्योपचयः ततोऽपचयः । तथाचोक्तं गोले ।

कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसंपाते ।
मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य ।

भाषाभाष्य ।

भौमादि ग्रहों की भुजज्या को त्रिज्या से गुणाकर शीघ्र कर्ण का भाग देकर फल और भुज का अन्तर करने से शीघ्र फल होता है । यहां भुज प्रतिमण्डल का ग्रहण करना चाहिए । शीघ्रान्त्यफलज्या के चाप में तीन राशि चार स्थानों में यात, एष्य पद के अनुसार जोड़ने और घटाने से प्रतिमण्डल के पद सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

प्रतिमण्डलीय पद का निर्माण वासनाभाष्य में स्पष्ट है । यहां

वासना प्रतिवृत्तभङ्गि के अनुसार है। उसी के अवयवों से अनुपात किया—यदि कर्णाग्र में भुजज्या तुल्य अन्तर है तो त्रिज्याग्र में क्या ? फल स्पष्टग्रह और उच्चरेखा के अन्तर में ज्यारूप होता है। इसके चाप का और प्रतिवृत्तीय भुज का अन्तर शीघ्रफल हुआ। प्रतिमण्ड-लीय फलकी विषमपद तक वृद्धि होती है। इसका विषय गोलाध्याय के 'कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा—' इत्यादि में कहा है। उसकी उपपत्ति भी वहीं स्पष्ट लिखी गई है ॥ ३३ ॥

इत्येवं फलानयनमुक्त्वेदानीं ग्रहस्पष्टीकरणमाह ।

स्यात्संस्कृतो मन्दफलेन मध्यो-
मन्दस्फुटोऽस्माच्चलकेन्द्रपूर्वम् ॥ ३४ ॥
विधाय शैघ्र्येण फलेन चैवं
खेटः स्फुटः स्यादसकृत्फलाभ्याम् ।
दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यां
ततोऽखिलानामसकृत्कुजस्तु ॥ ३५ ॥
स्फुटौ रवीन्दू मृदुनैव वेद्यौ
शीघ्राख्यतुङ्गस्य तयोरभावात् ।

आदौ ग्रहस्य मन्दफलमानीय तेन संस्कृतोऽसौ मन्दस्फुटः स्यात् । तं शीघ्रोच्चाद्विशोध्य शीघ्रकेन्द्रं कृत्वा ततः शीघ्रफलं तेन संस्कृतो मन्दस्फुटो ग्रहः स्फुटः स्यात्। तस्मात्स्फुटान्मन्दोच्चं विशोध्य मन्दफल-मानीय तेन गणितागतो मध्यः संस्कृतो मन्दस्फुटः स्यात्। तेन पुनश्चलकेन्द्रं ततश्चलफलं तेन मन्दस्फुटः संस्कृतः स्फुटः स्यात्। एवमसकृद्यावदविशेषः ।

अस्योपपत्तिर्गोले ।

शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं ज्ञातुमादौ कृतं कर्म मान्दं ततः ।

खेटबोधाय शैघ्र्यं मिथःसंश्रिते मान्दशैघ्ये हि तेनासकृत्साधिते।

इति तथा मन्दकर्माणि कर्णो न कृतस्तत्कारणमपि गोले कथितम्। यत्तु दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यामित्यादि कुजस्य विशेषस्तत्रोपलब्धिरेव वासना।

भाषाभाष्य।

मध्यमग्रह में मन्दफल का संस्कार करने से मन्दस्पष्ट होता है। उससे शीघ्रकेन्द्र आदि बनाकर शीघ्रफल का संस्कार करके मध्यग्रह स्पष्ट करना। फिर इस स्पष्ट को मध्यमानकर मन्दकेन्द्र, मन्दफल; शीघ्रकेन्द्र, शीघ्रफल सिद्ध करके स्पष्ट करना। यों असकृत्कर्म से जब एकही फल बार बार आवे तब उसको स्पष्ट मानना चाहिए। भौम स्पष्ट करने में प्रथम दो फलों का अर्ध करके और दूसरे दोनों फलों का संपूर्ण संस्कार करके असकृत्कर्म करना चाहिए। रवि, चन्द्र केवल मन्दफल संस्कृत ही स्पष्ट होते हैं। क्योंकि उनके शीघ्रोच्च नहीं है।

उपपत्ति।

यहां की उपपत्ति गोल में 'शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिम-' इसके प्रसङ्ग में स्पष्ट लिखी हैं॥ ३४-३५॥

इदानीं गतिस्फुटीकरणमाह।

दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्या-
द्भुक्तिः स्फुटा तत्समयान्तराले॥ ३६॥
कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्ति-
स्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे।
तया युतोना ग्रहमध्यभुक्ति-
स्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥ ३७॥
समीपतिथ्यन्तसमीपचालनं
विधोस्तु तत्कालजयैव युज्यते।

सुदूरसंचालनमाद्यया यतः
प्रतिक्षणं सा न समा महत्त्वतः ॥ ३८ ॥

अद्यतनश्वस्तनस्फुटग्रहयोरौदयिकयोर्दिनार्धजयोर्वास्तकालिकयोर्वा यदन्तरं कलादिकं सा स्फुटागतिः । अद्यतनाच्छ्वस्तने न्यूने वक्रा गतिर्ज्ञेया । तत्समयान्तराल इति । तस्य कालस्य मध्येऽनया गत्या ग्रहश्चालयितुं युज्यत इति । इयं किल स्थूलागतिः । अथ सूक्ष्मा तात्कालिकी कथ्यते । तुङ्गगत्यूना चन्द्रगतिः केन्द्रगतिः । अन्येषां ग्रहाणां ग्रहगतिरेव केन्द्रगतिः । मृदुकेन्द्रकोटिफलं कृत्वा तेन केन्द्रगतिर्गुणया त्रिज्यया भाज्या लब्धेन कर्यादिकेन्द्रे ग्रहगतिर्युक्ता कार्या । मृगादौ तु रहिता कार्या । एवं तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात् । तात्कालिक्या भुक्त्या चन्द्रस्य विशिष्टं प्रयोजनम् । तदाह । समीपतिथ्यन्तसमीपचालनमिति । यत्कालिकश्चन्द्रस्तस्मात्कालाद्गतो वा गम्यो वा यदासन्नस्तिथ्यन्तस्तदा तात्कालिक्या गत्या तिथिसाधनं कर्तुं युज्यते । तथा समीपचालनं च । यदा तु दूरतरस्तिथ्यन्तो दूरचालनं वा चन्द्रस्य तदाद्यया स्थूलया कर्तुं युज्यते । स्थूलकालत्वात् । यतश्चन्द्रगतिर्महत्त्वात् प्रतिक्षणं समा न भवति । अतस्तदर्थमयं विशेषोऽभिहितः ।

अथ गतिफलवासना । अद्यतनश्वस्तनग्रहयोरन्तरं गतिः । अतएव ग्रहफलयोरन्तरं गतिफलं भवितुमर्हति । अथ तत्साधनम् । अद्यतनश्वस्तनकेन्द्रयोरन्तरं केन्द्रगतिः । भुजज्याकरणे यद्भोग्यखण्डं तेन सा गुण्या शरद्विदस्रैर्भाज्या । तत्र तावत्तात्कालिकभोग्यखण्ड-

करणायानुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यया कोटिज्ययाद्यं भोग्यखण्डं शरद्विदस्रतुल्यं लभ्यते तदेष्टया किमित्यत्र कोटिज्यायाः शरद्विदस्रा २२५ गुणस्त्रिज्या हरः । फलं तात्कालिकं स्फुटभोग्यखण्डं तेन केन्द्रगतिर्गुणनीया शरद्विदस्रैर्भाज्या । अत्र शरद्विदस्रमितयोर्गुणकभाजकयोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते केन्द्रगतेः कोटिज्या गुणस्त्रिज्या हरः स्यात् । फलमद्यतनश्वस्तनकेन्द्रदोर्ज्ययोरन्तरं भवति। तत्फलकरणार्थं स्वपरिधिना गुण्यं भांशै ३६० र्भाज्यं पूर्वं किल गुणकः कोटिज्या सा यावत्परिधिना गुण्यते भांशै ३६० र्ह्रियते तावत्कोटिफलं जायत इत्युपपन्नं कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिरित्यादि। एवमद्यतनश्वस्तनग्रहफलयोरन्तरं तद्गतेः फलं कर्क्यादिकेन्द्रे ग्रहर्णफलस्यापचीयमानत्वात् तुलादौ धनफलस्योपचीयमानत्वाद्धनम्। मकरादौ तु धनफलस्यापचीयमानत्वान्मेषादावृणफलस्योपचीयमानत्वादृणमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

एक दिन के अन्तर से तात्कालिक स्पष्ट ग्रहों के अन्तर का मान, तात्कालिक स्पष्टगति होती है । मन्दकेन्द्रगति को कोटिफल से गुण कर त्रिज्या का भाग देकर, फल को, कर्कादि केन्द्र में मध्यम गति में युक्त और मकरादि केन्द्र में हीन करने से मन्द स्पष्टगति होती है ।

तिथ्यन्त के समीप होने से चन्द्र की तात्कालिकगति से तिथिसाधन और समीप चालन करना चाहिए । और दूर तिथ्यन्त में आद्यगति से चालन देना चाहिए । क्योंकि वहां स्थूलकाल होता है । चन्द्रगति के अधिक होने से प्रतिक्षण उसमें भेद होता है ।

उपपत्ति ।

अद्यग्र—श्वस्तग्र=गति ।

अद्यकें−श्वस्तकें=केन्द्रगति; अद्यउ−श्वस्तउ=उच्चगति।

उच्चग−केन्द्रग=ग्रहगति; उच्चग−ग्रहग=केन्द्रगति।

अब अनुपात किया—

$$२२५ : \text{भोग्यख} :: \text{केन्द्रग}; \text{दोर्ज्यान्तर} = \frac{\text{भोख} \times \text{कें ग}}{२२५},$$

भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण के लिए अनुपात—त्रिज्यातुल्य कोटिज्या में २२५ भोग्यखण्ड मिलता है तो इष्ट कोटिज्या में क्या? $\frac{२२५ \times \text{इको}}{\text{त्रि}}$,

इसको भोग्यखण्ड के स्थान में लिया, $\frac{२२५ \times \text{इको} \times \text{कें ग}}{२२५ \times \text{त्रि}} =$ $\frac{\text{इको} \times \text{कें ग}}{\text{त्रि}}$ = अद्यतन-श्वस्तन केन्द्र दोर्ज्यान्तर। अब इष्ट कोटिज्या का कोटिफल करने के लिए अनुपात किया—

$$३६० : \text{कोज्या} :: \text{परिध्यंवृ} = \frac{\text{कोज्या} \times \text{पवृ}}{३६०} = \text{कोफ}।$$

उक्त अनुपात के स्थान में स्थापन किया $\frac{\text{कोफ} \times \text{कें ग}}{\text{त्रि}}$ = इस प्रकार 'कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिः—' इत्यादि उपपन्न हुआ। सिद्धफल को कर्कादि केन्द्र होने पर मध्यगति में धन और मकरादि केन्द्र में ऋण करने से तात्कालिक मन्द स्पष्टगति* होती है॥ ३६−३८॥

---

* आचार्य के प्रकार से जो फल आता है वह फलज्याओं का अन्तररूप होता है। परन्तु सूक्ष्म अद्यतन और श्वस्तन फलों का अन्तर होता है। इसलिए फलान्तर के लिए अनुपात किया—

$$\text{भो} : २२५ :: \frac{\text{कोफ} \times \text{कें ग}}{\text{त्रि}} : \frac{२२५ \times \text{कोफ} \times \text{कें ग}}{\text{भो} \times \text{त्रि}} = \text{इष्ट धनुःखण्ड}।$$

$$\text{पुनः}, \text{त्रि} : २२५ :: \text{फको} = \frac{\text{फको} \times २२५}{\text{त्रि}} = \text{स्पष्टभोग्यखण्ड}।$$

इसका पूर्वानीत फल में भाग दिया—

$$\frac{\text{त्रि} \times \text{कोफ} \times \text{कें ग} \times २२५}{\text{त्रि} \times \text{फकोज्या} \times २२५} = \frac{\text{कोफ} \times \text{कें ग}}{\text{फको}}।$$

अर्थात् फल कोटिज्या का भाग देने से सूक्ष्मफल भिन्न होता है।

इदानीं गतेः शीघ्रफलमाह ।

फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी
द्राक्केन्द्रभुक्तिः श्रुतिहृद्विशोध्या ।
स्वशीघ्रभुक्तेः स्फुटखेटभुक्तिः
शेषं च वक्रा विपरीतशुद्धौ ॥ ३६ ॥

ग्रहस्य ये शीघ्रफलांशा आगच्छन्ति ते नवतेः ९० शोध्याः शेषांशानां या ज्या तया शीघ्रकेन्द्रगतिर्गुण्या शीघ्रकर्णेन भाज्या लब्धं शीघ्रोच्चगतेः शोध्यम् । शेषा स्फुटागतिर्भवति । यदि न शुध्यति तदा विपरीतशोधने कृते वक्रा गतिर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः । अद्यतनश्वस्तनशीघ्रफलयोरन्तरं गतेः शीघ्रफलं स्यात् । तच्च यथा मान्दं गतिफलं ग्रहफलवदानीतं तथा यद्यानीयते कृतेऽपि कर्णानुपाते सान्तरमेव स्यात् । तथा धीवृद्धिदे । नहि केन्द्रगतिजमेव फलयोरन्तरं स्यात् किन्त्वन्यदपि अद्यतनभुजफलश्वस्तनभुजफलान्तरे त्रिज्यागुणेऽद्यतनकर्णहृते यादृशं फलं न तादृशं श्वस्तनकर्णहृते । स्वल्पान्तरेऽपि कर्णे भाज्यस्य बहुत्वाद्बह्वन्तरं स्यादित्येतदानयनं हित्वान्यन्महामतिमद्भिः कल्पितम् । तद्यथा । केन्द्रगतिरेव स्पष्टीकृता । तस्यां हि शीघ्रोच्चगतेः शोधितायां ग्रहस्य गतिः स्फुटैवावशिष्यत इति । तत्र स्फुटकेन्द्रगतिप्रदर्शनार्थं छेद्यकोक्तविधिना कक्षावृत्तं प्रतिमण्डलं च विलिख्य तयोरद्यतनग्रहस्थानोच्चस्थाने चिह्नयित्वा भूमध्यात् प्रतिमण्डलग्रहचिह्नगामिनी कर्णरेखा कार्या । रेखाकक्षावृत्तयोः संपातेऽद्यतनः स्फुटो ग्रहः । यथा मध्यग्रहोच्चचिह्नयोर्मध्ये मध्यमं केन्द्रमेवं स्फुटोच्चयोर्मध्ये

स्फुटं केन्द्रमित्यवगन्तव्यम् । स्फुटकेन्द्रे शीघ्रोच्चाच्छोधिते स्फुटो ग्रहोऽवशिष्यत इति भावः । अथ कक्षावृत्ते प्रतिवृत्ते च मध्यचिह्नात् केन्द्रगतिर्विलोमा देया । तदग्रे श्वस्तनं मध्यकेन्द्रम् । अत्राप्यन्या कर्णरेखा कार्या । कक्षावृत्ते रेखोच्चयोर्मध्ये श्वस्तनं स्फुटकेन्द्रम् । रेखयोर्मध्ये स्फुटा केन्द्रगतिः । इह स्फुटग्रहस्थानयोरन्तरत्वात् कथमियमेव स्फुटा ग्रहगतिर्न स्यादिति नाशङ्कनीयम् । यतोऽद्यतनकर्णरेखा केन्द्रगतिः ज्ञानार्थमेव रक्षिता । अन्यथा श्वस्तनग्रह उच्चे च मेषादेरनुलोमं चालिते सत्यद्यतनस्फुटग्रहाच्छ्वस्तनस्फुटोऽग्रत एव भवत्यवक्रो यदि । वक्रगतस्तु पृष्ठतः । तयोरन्तरं सा ग्रहगतिः स्पष्टा । इयं तु केन्द्रगतिरेव । अथ तन्मानज्ञानार्थमुपायः। यथा भूमध्याद्विनिःसृता कर्णरेखा कक्षावृत्तेऽद्यतनमध्यग्रहात्फलतुल्येऽन्तरे लग्ना । एवं प्रतिमण्डलमध्याद्विनिःसृता रेखा प्रतिवृत्तग्रहात् फलतुल्येऽन्तरे यथा लगति तथा कृता सती कर्णसमकलया तिष्ठति । तस्याः कर्णेन सह तुल्यमेवान्तरं स्यादित्यर्थः । अथ तदवधित्वेन प्रतिमण्डले फलस्य ज्याङ्क्या । तयोर्जीवयोरन्तरं कर्णसूत्रात् तिर्यग्रूपं भवति । तदत्र गणितेन ज्याकरणवासनया सिध्यति । शीघ्रफलस्य जीवायां क्रियमाणायां यद्भोग्यखण्डं तेन केन्द्रगतिर्गुण्या । शरद्विदस्रैर्भाज्या । लब्धं तु तयोर्जीवयोरन्तरं स्यात् । यतो ज्याग्रस्थेन भोग्यखण्डेन जीवाया उपचयः । अथ तस्य भोग्यखण्डस्य स्फुटीकरणम् । यदि त्रिज्यातुल्यया कोटिज्ययाद्यं भोग्यखण्डं तदा फलकोटिज्यया किमिति । एवं कृत आद्यखण्डं फलकोटिज्या च केन्द्रगतेर्गुणौ । शर-

द्विदस्रास्त्रिज्या च हरौ २२५।३४३८। अथान्योऽनुपातः। यदि कर्णाग्र एतावदन्तरं तदा त्रिज्याग्रे किमिति। लब्धं कक्षावृत्ते ज्यारूपं भवति। तस्य धनुःकरणेऽल्पत्वाज्जीवा न शुध्यति किन्तु शरद्विदस्रा गुण आद्यखण्डं हरः स्यात्। तथाकृते दर्शनम्। गुणः। कें.ग. त्रि. फको. आ. २२५। छेदः त्रि. क. आ. २२५ अत्र शरद्विदस्रतुल्ययोस्तथा त्रिज्यातुल्ययोस्तथाद्यखण्डतुल्ययोश्च गुणकभाजकयोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते केन्द्रगतेः फलकोटिज्या गुणः कर्णो हरः स्यात्। फलं तु स्फुटा केन्द्रगतिर्भवति। सा शीघ्रोच्चगतेः शोध्या। शेषं स्फुटा ग्रहगतिर्भवति। अत उक्तं फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नीत्यादि। अत्र भोग्यखण्डस्फुटीकरणस्य फलं प्रदर्श्यते। कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्तसंपाते भुजज्या तुल्यः कर्णो भवति। तावती च फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनी। अतस्तुल्यत्वाद्गुणकभाजकयोरविकृतैव केन्द्रगतिः। ततो मध्यैवात्र गतिः स्पष्टा। अस्फुटखण्डग्रहणे

त्रिज्याहता स्वचलकर्णहृताशुचाप-
भोग्यज्यया विगुणिता विहृताद्यमौर्व्या।

इत्यनेनाप्यानयनेन तत्र मध्यगतितुल्या सम्यग्भवतीति सर्वमत्र निरवद्यमिति भावः।

भाषाभाष्य।

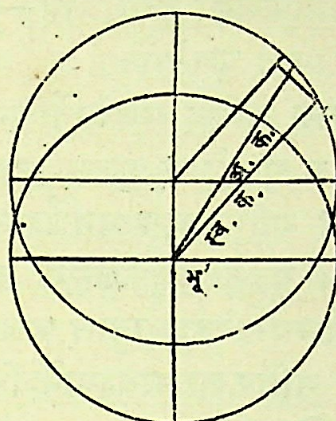
शीघ्रकेन्द्रगति को फलकोटिज्या से गुणाकर शीघ्रकर्ण का भाग देकर जो फल मिले उसको शीघ्रोच्चगति में घटाने से शेष स्पष्टगति होती है। विपरीत शोधन में वक्रगति होती है।

उपपत्ति।

आचार्य के वासनाभाष्यानुसार गति के शीघ्रफलसाधनार्थ निम्न-लिखित क्षेत्र बनता है।

क्षेत्र.

×



(१) अमंस्प−अशीफ=अस्प,

श्वमंस्प−श्वशीफ=श्वस्प,

मंस्पग − शीस्पग=स्पग;

(२) अशीउ− अमंस्प=अशीकें,

श्वशीउ−श्वमंस्प=श्वशीके,

शीउग − मंस्पग=शीकेंग;

अनुपात−

$$२२५ : \text{भोखं} :: \text{शीकेंग} : = \frac{\text{भोखं} \times \text{शीकेंग}}{२२५} = \text{ज्यान्तर}।$$

फको=९०−फ।

$$\text{त्रि} : २२५ :: \text{शीफको} : = \frac{\text{शीफको} \times २२५}{\text{त्रि}} = \text{स्पष्ट भोग्यखण्ड}।$$

$$\text{शीक} : \frac{\text{शीफको} \times \text{शीकेंग}}{\text{त्रि}} :: \text{त्रि} = \frac{\text{शीफको} \times \text{शीकेंग}}{\text{शीक}}।$$

$$\therefore \left(\text{शीउग} - \frac{\text{फको} \times \text{शीकेंग}}{\text{शीक}} \right) = \text{स्पष्टग्रहगति}$$ ।

इस प्रकार 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी' इत्यादि उपपन्न होता है * ३६ ॥

इदानीं लल्लोक्तगतिफलस्य दूषणमाह—

धीवृद्धिदे चलफलं द्युगतेर्यदुक्तं
लल्लेन तत्र सदिदं गणकैर्विचिन्त्यम् ।
केन्द्रे त्रिभे च नवभे च फलस्य नाशा-
द्भावात्तथा गतिफलस्य धनर्णसन्धौ ॥ ४० ॥

धीवृद्धिदे तन्त्रे यद्गतेश्चलफलमुक्तं तदसत् । त्रिभे नवभे च केन्द्रे भोग्यखण्डाभावात् फलाभावः स्यात् । तथा धनर्णसन्धौ गतिफलाभावस्थानेऽपि फलमुत्पद्यत एव । तत्पक्षे गतिफलाभावकारणस्याभावात् । येऽत्र वासनाविदस्तैरुक्तमात्रमपीदं ज्ञायते । येऽन्ये न विदन्ति । अथवा वृथाभिमानिनस्तेषां धूलीकर्मणा प्रतीतिरुत्पाद्या । तद्यथा । भौमस्य धनर्णसन्धिकेन्द्रं सार्धराशिचतुष्टयम् ४ । १५ । शुक्रस्य विंशतिभागाधिकम् ४ । २० । अत्र यावदुक्तं गतिफलमानीयते तावत् सप्तदशकला भौमस्य १७ । शुक्रस्य द्वात्रिंशत्कला ३२ आगच्छन्ति । तदसत् । अथ स्वल्पान्तरत्वादिति चेत्तदपि न । एकत्रिंशत् कलागतिः सप्तदशकलान्तरम् ।

---

* तात्कालिक भोग्यखण्ड से तात्कालिक गति का साधन आचार्योक्त वास्तविक नहीं है क्योंकि अद्यतन-श्वस्तन कर्णों का भेद है। इसकी उपपत्ति श्रीसुधाकर द्विवेदी ने अपनी सूर्यसिद्धान्त की टीका में लिखी है। वह अंग्रेजी गणित के सिद्धान्तानुसार है। उससे तात्कालिकगति का साधन सूक्ष्म रीति से होता है। प्राचीन गणितज्ञ उसे समझ नहीं सकते इसलिए नहीं लिखा। जो समझते हों उक्त ग्रन्थ की टीका में देखें।

तत्कथं स्वल्पमुच्यते । अत्र केचिद्वासनाबाह्याः स्वभोग्यखण्डाहतेत्यास्तु चापभोग्यखण्डाहतेति मन्यन्ते । एवं बुधगतिफलस्यर्णप्रवृत्तौ केन्द्रे राशिचतुष्टये भागेन कलापञ्चकेन चाधिके ४ । १ । ५ अवक्रस्थानेऽपि वक्रा गतिरायातीति सुधीभिरिदमपि विलोक्यम् ।

भाषाभाष्य ।

लल्लाचार्य ने अपने धीवृद्धिदतन्त्र में जो गति-शीघ्रफल कहा है वह ठीक नहीं है । इसका गणक विचार करे । और जो तीन राशि और नवराशि के केन्द्र में गतिफल का नाश और धन, ऋणसन्धि में गतिफल की सत्ता कही है वह भी अशुद्ध है ।

उपपत्ति ।

यहां आचार्य ने लल्ल का भ्रम स्पष्ट लिखा है । गोलाध्याय में 'कक्षामध्यगतिर्यरेखा–' इस श्लोक की उपपत्ति में धनर्णसन्धि और गति फलाभाव स्थान का विवरण स्पष्ट किया गया है ॥ ४० ॥

इदानीं वक्रतासंभवमाह—

द्राक्केन्द्रभागैस्त्रिनृपै १६५ शरेन्द्रै १४५
स्तत्त्वेन्दुभिः १२५ पञ्चनृपै १६५ स्त्रिरुद्रैः ११३ ।
स्याद्वक्रता भूमिसुतादिकाना–
मवक्रता तद्रहितैश्च भांशैः ३६० ॥ ४१ ॥

यादृशे केन्द्रे गतिः पूर्णं भवति तादृशस्य केन्द्रस्य भागाः सुखार्थं पाठेन पठिताः । यतो वक्रारम्भे वक्रत्यागे च गतिः पूर्णं भवति । अतश्चक्राच्च्युतास्तेऽवक्रभागा भवन्तीत्युपपन्नम् । मार्गभागाः १९७ । २१५ । २३५ । १९५ । २४७ ॥

भाषाभाष्य ।

भौम आदि ग्रहों के शीघ्रकेन्द्र क्रम से १६५, १४५, १२५,

१६५, ११३ होने पर वे वक्रगति होते हैं। और इन अंशों को ३६० में घटा देने से शेषांशों में मार्गगति होते हैं। अर्थात् शीघ्र-केन्द्रांश १६७।२१५।२३५।१६५ होने पर वक्रता छोड़ते हैं॥ ४१॥

इदानीमुदयास्तसंभवमाह—

प्राच्यामुदेति क्षितिजोऽष्टदस्रैः २८
शक्रै १४ गुरुः सप्तकुभिश्च १७ मन्दः।
स्वस्वोदयांशोनितचक्रभागै-३३२।३४६।३४३।
स्त्रयो व्रजन्त्यस्तमयं प्रतीच्याम्॥ ४२॥

खाक्षै ५० र्जिनै २४ र्ज्ञसितयोरुदयः प्रतीच्या-
मस्तश्च पञ्चतिथिभि ११५ र्मुनिसप्तभूभिः १७७।
प्राग्रुद्गमः शरनखै २०५ स्त्रिधृतिप्रमाणै-१८३
रस्तश्च तत्र दशवह्निभि ३१० रङ्गदेवैः ३३६॥४३॥

अवक्रवक्रास्तमयोदयोक्त-
भागाधिकोनाः कलिका विभक्ताः।
द्राक्केन्द्रभुक्त्यासदिनैर्गतैष्यै-
स्त्ववक्रवक्रास्तमयोदयाः स्युः॥ ४४॥

स्पष्टार्थमिदम्।

अत्रोपपत्तिः। उदयास्तमयाध्याये ये कालांशाः पठिताः स्फुटार्कात् स्फुटग्रहे तैरन्तरित उदयोऽस्तमयो वा भवति। इह तु मध्यमार्कात् स्थूलस्फुटे ग्रहे तावद्भिः क्षेत्रांशैरन्तरिते य उदयोऽस्तमयो वा स्थूलः स कथ्यते। इह यच्छीघ्रकेन्द्रं तन्मन्दस्फुटस्य मध्यरवेश्चान्तरम्। यथा क्षितिजस्याष्टदस्राः २८। एभिः केन्द्रभागैर्यावद्भौमस्य फलमानीयते तावदेकादशभागा ११ भवन्ति। तैरधिको मन्दस्फुटो यावदर्काच्छोध्यते तावत्सप्तदशभागान्तरितो भवति। सप्तदश हि तस्य कालांशाः। अत-

स्तावति केन्द्र उदयः । एभिः केन्द्रभागैश्चक्राच्च्युतैः पश्चिमदिशि तावदेव भौमार्कयोरन्तरं स्यात्। अतस्तत्रास्तमयः। एवं यदा गुरोश्चतुर्दश भागाः१४केन्द्रम्। तस्मात् केन्द्राद्भागत्रयं फलम् । तदधिकस्य गुरोरर्कस्य चान्तरमेकादश भागाः। एवं मन्दस्यापि स्फुटस्यार्केण सहान्तरं पञ्चदश कालांशाः १५। एवमनयोर्भौमवच्चक्राच्छुद्धैरस्तमयः। बुधशुक्रयोस्तु खाक्षै ५० र्जिनैः २४ केन्द्रांशैर्विश्वरुद्रमिताः कालांशा उत्पद्यन्ते। तैर्भागैरधिकौ तौ तैरेव भागै रवेरग्रतः स्याताम्। यतो य एव मध्यो रविस्तावेव ज्ञशुक्रौ । अतः कालांशान्तरितयोरुदयः । एवं तयोर्ये उदयास्तभागाः पठितास्तैस्तैः कालांशैस्तुल्यमेव फलं भवति । अवक्रवक्रोदयास्तभागेभ्य ऊनाधिकाः कला द्राकेन्द्रभुक्त्याप्ता गतैष्यदिनानि भवन्तीति त्रैराशिकेनोपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

मङ्गल का शीघ्रकेन्द्र २८, वृहस्पति १४ और शनि १७ अंश होने पर, इनका पूर्व दिशा में उदय होता है। इन अंशों को ३६०° में घटाने से शेष के समान अंशों में, पश्चिम दिशा में तीनों का अस्त होता है। अर्थात् क्रम से ३३२, ३४६, ३४३ इतने शीघ्र केन्द्रांशों में अस्त होता है। बुध और शुक्र का शीघ्र केन्द्र ५० और २४ अंश होने पर पश्चिम में उदय और १५५, १७३ में अस्त होता है । और २०५, १८३ अंशों में पूर्वोदय और ३१०, ३३६ में उसी दिशा में दोनों का अस्त होता है ।

पूर्वोक्त अवक्र, वक्र, अस्त और उदयांशादि को शीघ्रकेन्द्र में घटाकर, शेष की कला को शीघ्रकेन्द्रीय स्पष्टगति द्वारा भाजित करने

से, दिनादि गत, गम्य फल मिलता है । उसका इष्टकाल में संस्कार करने से अवक्र, वक्र, अस्त और उदय के अंश सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

यहां ग्रहों के जो कालांश लिखे हैं उतने अन्तर पर जब सूर्य से ग्रह होते हैं तब उनका उदयास्त होता है । परन्तु मध्यमार्क से स्थूल स्पष्टग्रह का अन्तर यहां दिखलाया गया है इस लिए वह स्थूल काल है ।

अनुपात किया—यदि शीघ्रकेन्द्रगतिकलाओं में एकदिन मिलता है तो अन्तर भागकला में क्या ? इसप्रकार जितने दिन गत किंवा गम्य उपलब्ध हों उसी प्रमाण से ग्रहों का उदय—अस्त और वक्री—मार्गी होना सिद्ध होता है ॥ ४२–४४ ॥

इदानीं स्फुटग्रहान्मध्यग्रहानयनमाह—

स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्य
कृत्वा फले मन्दचले यथोक्ते ।
ताभ्यां मुहुर्व्यस्तधनर्णकाभ्यां
सुसंस्कृतो मध्यखगो भवेत् सः ॥ ४५ ॥

स्पष्टार्थमिदम् । अत्र विलोमविधिरेव वासना ।

भाषाभाष्य ।

स्फुटग्रह से मध्यग्रहसाधनार्थ । स्फुटग्रह को मध्यमग्रह मानकर पूर्वोक्त विधि से मन्दफल और शीघ्रफल सिद्ध करके उनके विलोम धन ऋण संस्कार से मध्यग्रह होता है ।

अर्थात्—स्पष्टग्रह के समान मध्यग्रह से मन्दफल साधन करके पुनः स्पष्टग्रह तुल्य मन्द स्पष्ट से, पूर्वरीति से शीघ्रफलसाधन करके उसका विपरीत संस्कार करना । फिर उससे शीघ्रफल और उसके संस्कार से स्पष्ट एवं स्पष्ट से शीघ्रफल, यों असकृत्कर्म से शीघ्रफल स्थिर करना । अनन्तर उसके संस्कार से अहर्गण सिद्ध मध्यग्रह होता है।

उपपत्ति।

वास्तव मन्दफल और शीघ्रफल के संस्कार से मध्य स्पष्ट होता है। इसलिए स्पष्ट और वास्तवफलों के विपरीत संस्कार से मध्य होगा। स्पष्टग्रह से सिद्ध मन्दफल वास्तव होता है इसलिए उसमें असकृत्कर्म नहीं किया। और वास्तव मन्दफल वास्तव मन्दस्पष्ट के अधीन है, पर उसके अज्ञान से मन्दस्पष्ट से ही—शीघ्रफल साधन करने से वह स्थूल हुआ। स्थूलतानिवारणार्थ ही असकृत्कर्म किया गया है।

सूर्य चन्द्र का स्पष्टीकरण यदि असकृत्प्रकार से साधित मन्दफल से किया गया हो तो स्पष्ट से सकृत्साधित मन्दफल का व्यस्त संस्कार करना चाहिए। और यदि सकृत्साधित स्थूल मन्दफल से स्पष्ट किया हो तो स्थूल मन्दफल के संस्कार से ही वे मध्य होजाते हैं। स्पष्ट से मन्दफल स्थूल नहीं किन्तु सूक्ष्म आता है। इसलिए सकृत् अर्थात् एकवार ही सिद्ध किया गया है। यही सूर्यसिद्धान्त में भी लिखा है—

'तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः।'

इसप्रकार वासना स्पष्ट प्रतीत होती है॥ ४५॥

इदानीं पलभाज्ञानमाह—

क्रियतुलाधरसंक्रमपूर्वतो-
ऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्दिनम्।
मकरकर्कटसंक्रमतोऽयनं
द्युदलभा विषुवद्दिवसेऽक्षभा॥ ४६॥

अयनांशानां कला रविभुक्त्याहृताः फलमयनलवोत्थदिनानि। तैर्दिनैर्मेषसंक्रान्तेस्तुलासंक्रान्तेश्च प्राग्विषुवद्दिनं भवति। एवं मकरकर्कटसंक्रमतः प्रागयनदिनम्। तस्मिन् विषुवद्दिने मध्याह्ने या छाया सा पलभा।

अस्य क्षेत्रस्य वासनागोले।

भाषाभाष्य ।

अयनांशकला में रविगति का भाग देने से अयनदिन मिलते हैं। मेष और तुल संक्रान्ति के पहले अयनदिन के तुल्य दिनों में विषुवद्दिन होता है। और उन्हीं दिनों के समान दिनों में मकर और कर्क संक्रान्ति के पूर्व अयनदिन होता है।

सायन मेष और तुल संक्रान्तिकाल का दिन विषुवद्दिन और मकर, कर्क संक्रान्ति दिन अयनदिन कहलाता है। विषुवद्दिन के मध्याह्न में द्वादशांगुल शंकु की छाया को अक्षप्रभा वा पलभा कहते हैं।

उपपत्ति ।

अनुपात किया—गतिकला में एक दिन तो अयनांशकला में क्या ? जो सावयव फल मिले मेष संक्रान्ति से उतने दिन पूर्व सायन मेष संक्रान्ति होती है। सूर्य बिम्बकेन्द्र के मेषादि राशियों में संचार काल को, संक्रम कहते हैं।

जिस दिन सायन सूर्य मेषादि में हो उस दिन सूर्य नाडीवृत्त में भ्रमण करता है वही विषुवद्दिन कहलाता है। नाडीवृत्त लङ्का का पूर्वापर वृत्त है। विषुवद्दिन के मध्याह्न में खमध्य में सूर्य रहने से लङ्का में शंकु छाया का अभाव होता है। अन्य देशों में पूर्वापर सममण्डल होता है इसलिए उस दिन भी मध्याह्न में शंकुछाया उत्पन्न होती है। उसी अंगुलात्मक छायामान को ही पलभा किंवा विषुवती कहते हैं। सूर्यसिद्धान्त में भी लिखा है—

'एवं विषुवती छाया स्वदेशे या दिनार्धजा।'

द्वादशांगुलशंकु कोटि। पलभा भुज। पलकर्ण कर्ण। यह स्थिर क्षेत्र उत्पन्न होता है॥ ४६॥

इदानीं पञ्चज्यासाधनमाह—

युक्तायनांशाद्यमः प्रसाध्यः

कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।

जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणितार्कदोर्ज्या
त्रिज्यो ३४३८ द्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम् ॥४७॥
त्रिज्याकृतेः ११८१९८४४ प्रोह्य पदं द्युजीवा
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम् ।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या
तद्द्वादशांशो भवति क्षितिज्या ॥ ४८ ॥
सा त्रिज्यकाघ्नी विहृता द्युमौर्व्या
चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात् ।

अत्र खेटादित्युपलक्षणम् । यस्मात् खेटाल्लग्नाद्वापमः साध्यस्तस्मात् सायनांशादेव । तथा यस्मादुदयसम्बन्धिनौ भुक्तभोग्यकालौ साध्यौ तस्मादपि सायनांशादेव । सायनार्कस्य दोर्ज्या जिनभागज्यया गुणिता त्रिज्यया भक्ता क्रान्तिज्या स्यादित्यादि स्पष्टार्थम् ।

अस्योपपत्तिः । विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोर्याम्योत्तरमन्तरं क्रान्तिः । तयोः संपाते क्रान्त्यभावः । ततस्त्रिभेऽन्तरे परमा जिनतुल्यभागाः । अतस्तत्संपातादारभ्य क्रान्तिः साध्या । उदयाश्च तत एव । स तु संपातो मेषादेः प्रागयनांशतुल्येऽन्तरे । अत सायनांशात् खेटात् क्रान्तिभुक्तभोग्यकालौ चेत्युक्तम् । यदि त्रिज्यातुल्यया भुजज्यया जिनांशज्यातुल्या क्रान्तिज्या लभ्यते तदेष्टज्यया किमिति । फलं क्रान्तिज्या विषुवद्वृत्तात् तिर्यग्रूपा भवति । क्रान्तिज्या भुजस्त्रिज्या कर्णस्तद्वर्गान्तरपदमहोरात्रवृत्तव्यासार्धम् । सैव द्युज्या । अथ कुज्योच्यते । यदि द्वादशकोटेः पलभा भुजस्तदा क्रान्तिज्याकोटेः किमिति । फलं क्षितिजोन्मण्डलयोर्मध्येऽहोरात्रवृत्ते ज्यारूपं स्यात् । सैव कुज्या । सा धनुःकरणार्थं त्रिज्या-

वृत्ते परिणाम्यते। यदि द्युज्या व्यासार्धे एतावती तदा त्रिज्याव्यासार्धे किमिति । फलं चरज्या। तद्धनुश्चर-मित्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

ग्रह में अयनांश जोड़कर क्रान्ति और उदय सम्बन्धि भुक्त भोग्य-काल का साधन करना। रविदोर्ज्या को जिनांशज्या से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से, क्रान्तिज्या होती है। क्रान्तिज्यावर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल द्युज्या होती है। क्रान्तिज्या का चाप क्रान्ति होती है। क्रान्तिज्या को पलभा से गुणाकर, द्वादश का भाग देने से, फल कुज्या होती है। कुज्या को त्रिज्या से गुणाकर द्युज्या का भाग देने से चरज्या होती है। उसका धनु चर होता है।

उपपत्ति।

नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त का याम्योत्तर अन्तर क्रान्ति कहलाती है। इन दोनों वृत्तों के सायन मेष और तुलके दो संपात विन्दुओं में क्रान्ति का अभाव और तीन राशिपर परमान्तर २४° अंश का होता है। उक्त दोनों वृत्तों का संपात मेषादि से पूर्व अयनांशतुल्य अन्तर पर है इसलिए सायनग्रह की दोर्ज्या से क्रान्तिसाधन उपपन्न होता है। अनुपात—

त्रिज्यातुल्य भुजज्या में परमक्रान्ति २४° मिलती है तो इष्टदोर्ज्या में क्या ? फल क्रान्तिज्या विषुवद्वृत्त से तिरछी सिद्ध हुई। क्रान्तिज्या भुज, त्रिज्याकर्ण, दोनों का वर्गान्तर मूल द्युज्या हुई, जोकि अहोरात्र-वृत्त का व्यासार्ध है।

कुज्या साधनार्थ अनुपात किया—

१२ : पलभा : : क्रान्तिज्या = कुज्या। यह गोल में क्षितिज और उन्मण्डल के बीचमें अहोरात्रवृत्तगत ज्यारूप अन्तर आया।

इसके धनु के लिए त्रिज्यावृत्त में परिणामन किया—यदि द्युज्याव्या-सार्ध में यह प्राप्त होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी ? फल चरज्या हुई उसका धनु चर हुआ ॥ ४७–४८ ॥

अथ प्रकारान्तरेण चरानयनमाह ।

स्वदेशजैस्तच्चरखण्डकैर्वा
लघुज्यकावद्रविदोस्त्रिभागात् ॥ ४९ ॥
मेषादिराशित्रितयस्य यानि
चराण्यधोऽधः परिशोधितानि ।
तानि स्वदेशे चरखण्डकानि
दिङ्नागसत्र्यंशगुणै १०।८।३/१० विनिघ्नी ॥५०॥
पलप्रभातोयपलात्मकानि
स्थूलानि वा स्युश्चरखण्डकानि ।
स्थूलं चरं चाम्बुपलात्मकं तै-
स्तत्प्राणचापं यदि वापि सूक्ष्मम् ॥ ५१ ॥

अथवा तच्चरं वक्ष्यमाणैस्त्रिभिः खण्डकैः स्वदेशजैर्ल-घुज्याप्रकारेणांशमितेर्दशाशमित्यादिना साध्यम् । कस्मा-दित्याह । रविदोस्त्रिभागात् । अर्कस्य सायनांशस्य यो भुजस्तस्य यस्त्र्यंशस्तस्मादंशमितेर्दशाशमित्यादिना । अथ खण्डकानि । मेषादिराशित्रितयश्चेत्यादि सुगमम् । अथ स्थूलखण्डकैर्यच्चरं तत्स्थूलं पानीयपलात्मकं भवति । तत् षड्गुणं प्राणात्मकम् । तस्माद्यदि धनुः क्रियते तदा सूक्ष्मं चरार्धं स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । एकमंगुलं पलभां प्रकल्प्य एकद्वि-त्रिराशीनां पृथक् चराण्यानीय तानि षड्भिर्विभज्य पानीयपलात्मकानि कृत्वा यावदधोऽधो विशोध्यन्ते तावद्दिङ्नागसत्र्यंशगुणा उत्पद्यन्ते । अतोऽनुपातः ।

यद्येकांगुलया पलभयैतानि चरखण्डानि तदेष्टया किमिति। एवं चरखण्डानि स्युः। परं तानि ज्यात्मकानि। यतः पूर्वं स्वल्पत्वाद्धनुर्नोत्पन्नम्। अतएव तत्प्राणचापं यदि वापि सूक्ष्ममित्युक्तम्। खण्डकैश्चरकरणे लघुज्यासाधनवद्वासना। तत्र लघुज्याखण्डकानि नव चरखण्डकानि त्रीणि परमे राशित्रये भुजे यथा त्रीणि लभ्यन्ते तदर्थं रविदोस्त्रिभागादित्युक्तम्।

भाषाभाष्य।

अथवा, स्वदेशीय चरखण्डों से लघुज्या साधन के समान रवि भुजांश के तृतीयांश से 'अंशमितेर्दशाप्तम्—' इत्यादि रीति से चर साधन करना। मेषादि तीन राशियों के चर परस्पर घटाने से चरखण्ड होंगे। १०, ८ और ३। २० होते हैं। इन से पलभा को गुणने से पानीय पलात्मक चरखण्ड होते हैं। इनको छ से गुणाकर असु बनाकर फिर असु का धनु करने से सूक्ष्म चर होता है।

उपपत्ति।

एक अंगुल पलभा कल्पना करके, मेषादि तीन राशियों का चर अलग अलग साधन करके उन में ६ का भाग देकर पलात्मक करके परस्पर में शोधन करने से १०।८।३।२० उत्पन्न होते हैं। इन खण्डों से अनुपात किया—यदि एक अंगुल पलभा में, उक्त खण्ड मिलते हैं, तो इष्ट में क्या? फल चरखण्ड होंगे। उनके ज्यात्मक होने से उनका चाप सूक्ष्म चरखण्ड * होता है॥ ४६–५१॥

---

* चरज्या = अक्षांशस्पर्शरेखा × क्रान्तिस्पर्शरेखा, यह एक सिद्धान्त है। इसके मूल पर, चेम्बर्स की प्रघातमापक सारणी से, सूक्ष्म चर सिद्ध होता है।

उ०, अयोध्या में पलभा = ६।४, पक १३।२७। अक्षांश = २६।४८′ अक्षज्या = ४५०८७७५, लम्बांश = ६३।१२′। लम्बज्या = ८९२५८५८। पूर्व आचार्योक्त विधि से चरज्या = $\frac{\text{अज्या} \times \text{क्रांज्या} \times \text{त्रि}}{\text{द्युज्या} \times \text{लंज्या}}$, अथवा चरज्या = अक्षांस्प

इदानीं दिनरात्रिमानमाह ।

चरघटीसहिता रहिताः क्रमात्
तिथिमिता घटिकाः खलु गोलयोः ।
भवति तद् द्युदलं निजसावनं
खगुणतः पतितं रजनीदलम् ॥ ५२ ॥

पञ्चदशनाड्य उत्तरगोले चरघटीभिः सहिता दक्षिणे रहिताः । एवं कृते निजसावनं द्युदलप्रमाणं भवति । यस्य ग्रहस्य चरं तस्येत्यर्थः । दिनदलं त्रिंशतो विशुद्धं रात्रिदलं भवति ।

अत्र वासना । उन्मण्डलयाम्योत्तरवलययोर्मध्ये पञ्चदश घटिकाः । उन्मण्डलादधः क्षितिजमुत्तरगोलेचरार्धकालेनातस्तदधिकाः पञ्चदश घटिकाः । याम्यगोले तु तदूर्ध्वमतश्चरोनास्तत्र पञ्चदश ।

भाषाभाष्य ।

उत्तर गोल में पन्द्रह घड़ी में चरघटी जोड़ने और दक्षिण गोलमें घटाने से, जिस ग्रह की चरघटी होगी, उसके सावन दिनार्ध का मान होता है । उसको तीस में घटाने से रात्र्यर्ध का मान होता है ।

उत्तर गोल में स्वक्षितिज उन्मण्डल से चरार्धकाल के तुल्य नीचा

× क्रांस्प; अब मेषादि तीन राशियों में—

मेष क्रां = ११ ।२८′ । ४१″ = क्रांस्परे = ९ · ३०७१६७५

चरांश चरासु.

+ अक्षांस्प = ९ · ७०३४०८६ = ५ । ५३′ । ९″ = ३५३.

वृष क्रां = २० । ९′ । १७″ = क्रांस्परे = ९ · ५६४५९२५

चरांश चरासु.

+ अक्षांस्प = ९ · ७०३४०८६ = १० । ३०′ । १०″ = ६३०.

मिथु क्रां = २३ । २७′ । १०″ = क्रांस्परे = ९ · ६३७२६४६

चरांश चरासु.

+ अक्षांस्प = ९ · ७०३४०८६ = १२ । २१′ । ३७″ = ७४२.

है, इसलिए वहां जोड़ा और दक्षिण गोल में ऊंचा होने से घटाया है। उन्मण्डल और याम्योत्तरमण्डल के बीचमें पन्द्रह घटिका सदा रहती हैं ॥ ५२ ॥

इदानीं ग्रहाणां चरकर्माह ।

चरघ्नभुक्तिर्द्युनिशासुभक्ता
तयोनयुक्तः खचरो विधेयः ।
क्रमादुदग्दक्षिणगोलगेऽर्के
सूर्योदये व्यस्तमतोऽस्तकाले ॥ ५३ ॥

ग्रहस्य भुक्तिश्चरासुभिर्गुण्याहोरात्रासुभि २१६५६ र्भाज्या। फलकलाभिरुत्तरगोले ग्रहो रहितो दक्षिणगोले सहितः। एवमौदयिको ग्रहः । यद्यस्तकालिकस्तदातो व्यस्तम् । उत्तरगोले सहितो दक्षिणगोले रहित इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः। ये लङ्कोदयकालिकास्ते स्वोदयकालिकाः क्रियन्ते। अत्र तदुदययोर्मध्ये चरकालः। ततोऽनुपातः। यद्यहोरात्रासुभि २१६५६ र्गतिकला लभ्यन्ते तदा चरासुभिः किमिति । फलकलाभिरूनो ग्रह उत्तरगोलस्थेऽर्केऽतः क्रियते यतस्तत्र लङ्कोदयात् प्राक् स्वदेशोदयः। यल्लङ्कायां क्षितिजं तदन्यदेश उन्मण्डलम् । अत उन्मण्डलादधस्थे क्षितिजे ऋणम्। दक्षिणगोले तूपरिस्थिते धनम्। अस्तकाले तस्माद्विपरीतम् । यतस्तत्रोन्मण्डलं प्राप्य पश्चात् क्षितिजं प्राप्नोति रविरुत्तरगोले दक्षिणगोले त्वादावेव। एवं सर्वमुपपन्नमित्यादि वासना गोले सम्यगभिहिता। इह संक्षिप्तोक्ता।

भाषाभाष्य ।

ग्रह की गति को चरासुओं से गुणाकर अहोरात्रासुओं का भाग

देनेसे जो फल मिले उसको उत्तरगोल में ग्रह में ऋण और दक्षिण-गोल में धन करने से—औदयिक ग्रह होता है। अस्तकाल में इससे विपरीत संस्कार करना। अर्थात् उत्तरगोल में धन और दक्षिण में ऋण करना।

उपपत्ति।

लङ्का सूर्योदय और अपने रेखापुर के सूयादय का अन्तर–दक्षिणोत्तररूप चर संज्ञक है। चरके संस्कार से लङ्कोदयकालिक ग्रह स्वरेखोदयकालिक किए जाते हैं, क्योंकि दोनों के बीच में चरकाल का अन्तर रहता है। अनुपात किया—

$$२१६५९ : \text{गतिक} :: \text{चरासु} = \frac{\text{गक} \times \text{चसु}}{२१६५९} = \text{चरकला}।$$

इसका उक्त रीति से ग्रह में धन–ऋण संस्कार करना ॥ ५३ ॥

अथ लङ्कोदयसाधनमाह।

एकस्य राशेर्बृहती ज्यका या
द्वयोस्त्रिभस्यापि कृतीकृतानाम्।
स्वस्वापमज्या कृतिवर्जितानां
मूलानि तासां त्रिगुणाहतानि ॥ ५४ ॥
स्वस्वद्युमौर्व्या विभजेत् फलानां
चापान्यधोऽधः परिशोधितानि।
क्रमोत्क्रमस्थानि निरक्षदेशे
मेषादिकानामुदयासवः स्युः ॥ ५५ ॥

एकस्य राशेर्बृहती ज्येत्यष्टमी ज्या। द्वयोरिति षोडशी ज्या। त्रिभस्येति त्रिज्या। आसां वर्गितानां स्वकीय स्वकीय क्रान्तिज्यावर्गैर्वर्जितानां मूलानि त्रिज्यागुणितानि स्वस्वद्युज्यया विभजेत्। फलानां चापान्यधोऽधः परिशोधितानीति तृतीयाद् द्वितीयं द्वितीयात् प्रथमं शो-

ध्यम् । प्रथमं तथाविधमेव । एवं लङ्कोदयासवः स्युः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्रोद्गच्छतः क्रान्तिवृत्तस्य तिर्यक्स्थितत्वात् त्र्यस्राणि क्षेत्राण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा । मेषान्तस्य ज्या क्रान्तिवृत्ते कर्णः । तत्क्रान्तिज्या लङ्काक्षितिजे भुजः । तद्वर्गान्तरपदं मेषान्तेऽहोरात्रवृत्ते कोटिः । एवं राशिद्वयस्य ज्या कर्णः । तत्क्रान्तिज्या भुजः । तद्वर्गान्तरपदं वृषभान्तेऽहोरात्रवृत्ते कोटिः । एवं त्रिराशिज्या कर्णः । परमक्रान्तिज्या भुजः । परमाल्पद्युज्या कोटिः । एताः कोटयश्चापकरणार्थं त्रिज्यावृत्ते परिणामिताः । त्रिज्यागुणाः स्वस्वद्युज्यया भक्तास्तासां चापानि । प्रथमं मेषोदयस्य कालः । द्वितीयं राशिद्वयस्य । तृतीयं राशित्रयस्य । अतो विश्लेषितानीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

एक, दो, और तीन राशियों के बृहज्ज्यावर्ग में अपने अपने राशियों के क्रान्तिज्यावर्ग को घटाकर मूल लेना, फिर त्रिज्या से गुणाकर अपनी अपनी द्युज्या का भाग देना, जो फल मिले उसके चापको क्रमोत्क्रम रखकर परस्पर शोधन करने से मेषादि राशियों के लङ्कोदयासु होते हैं ।

उपपत्ति ।

साक्षदेश में, क्रान्तिवृत्त के तिरछा होने से उसके और अहोरात्रवृत्त के संपात से क्रान्तिक्षेत्र उत्पन्न होते हैं ।

(१) मेषान्तज्या कर्ण, क्रान्तिज्या भुज, मेषान्ताहोरात्र में कोटि ।

(२) वृषान्तज्या कर्ण, क्रान्तिज्या भुज, वृषान्ताहोरात्र में कोटि ।

(३) मिथुनान्तज्या कर्ण, क्रान्तिज्या भुज, मिथुनान्ताहोरात्र में कोटि ।

इन कोटिज्याओं के चाप करने के लिए त्रिज्यावृत्त में परिणामन

क्रिया—यदि द्युज्याग्र में ये कोटियां मिलती हैं तो त्रिज्याग्र में क्या ? इस प्रकार प्रथम मेषोदयकाल, दूसरा दो राशियों का, तीसरा तीन राशियों का उदयकाल सिद्ध हुआ । परस्पर में घटाने से अलग अलग उदयासु सिद्ध होते हैं ।

इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में स्पष्ट लिखी है ॥ ५४–५५ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणाह ।

कीटादिराश्यन्तजकोटिजीवा-
स्त्रिज्या ३४३८ गुणाः स्वस्वदिनज्ययाप्ताः ।
चापीकृताः प्राग्वदधो विशुद्धाः
कीटादिकानामुदयासवो वा ॥ ५६ ॥

कीटादिराश्यन्तजकोटिजीवास्ता एक द्वित्रिराशिज्या भवन्ति १७१९ । २९७७ । ३४३८ । एतास्त्रिज्यया गुण्याः स्वस्वदिनज्यया भक्ता इति । यैव वृषभान्ते द्युज्या सैव कीटान्तेऽपि ३२१८ । यैव मेषान्ते द्युज्या सैव सिंहान्तेऽपि ३३६६ । कन्यान्ते द्युज्या त्रिज्यैव ३४३८ । आभिस्ता भाज्याः । फलानां चापान्यधोऽधः शुद्धानि कीटादीनामुदयासवः स्युर्निरक्षे वा । त एव मिथुनवृषभमेषाणामित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । क्रान्तिवृत्ते वृषभान्ते सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं कीटान्ते निबध्यते तस्य सूत्रस्यार्धमेकराशेर्ज्या भवति । एवं सूत्रस्यैकमग्रं मेषान्ते बद्ध्वा द्वितीयं सिंहान्ते तस्य सूत्रस्यार्धं राशिद्वयस्य ज्या भवति । एवं मेषतुलादौ बद्धसूत्रस्यार्धं त्रिज्या । एता एव वृषभान्तमेषान्तमीनान्ताहोरात्रवृत्तानां ज्या भवन्ति । यतस्तत्संपातेषु क्रान्तिवृत्ते सूत्राणि बद्धानि । अतस्तासां त्रिज्यावृत्तपरिणतानां चापान्त-

राणि कीटादिकानामुदया भवन्तीति गोले प्रदर्शयेत् ।

भाषाभाष्य ।

कर्कादि तीन राशियों की कोटिज्या को, त्रिज्या से गुणाकर, अपनी अपनी द्युज्या का भाग देने से, जो ज्या प्राप्त हो उसका चाप करके परस्पर में घटाने से, कर्कादि तीन राशियोंके प्रकारान्तर से उदयासु होते हैं ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिवृत्त के सायन वृषभान्त और कर्कान्त में सूत्र बांधकर उसका अर्ध करने से एक राशिज्या होती है । ऐसे ही आगे भी वासनाभाष्य में स्पष्ट लिखा है । गोल देखना चाहिए ।

कर्कादि राशियों के अन्त चिह्न पर ध्रुवप्रोतवृत्त करना, वह जहां नाडीवृत्त में मिले वहां से ध्रुव तक त्रिज्या कर्ण, विषुवांश भुज, याम्योत्तरमण्डल में कोटि—यह एक चापीयत्रिभुज होता है । दूसरा—द्युज्या कर्ण, क्षेत्रांश भुज और याम्योत्तरवृत्त में कोटि, यह क्षेत्र होता है । अब अनुपात किया—

यदि द्युज्या में खेटकोटिज्या मिलती है तो त्रिज्या में क्या ?

$\frac{\text{को} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु}}$, यों 'कीटादिराश्यन्तजकोटिजीवा—' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ ५६ ॥

इदानीं पुनः प्रकारान्तरेणाह ।

मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या ३१४१
क्षुण्णा हृताः स्वस्वदिनज्यया वा ।
चापीकृताः प्राग्वदतो विशुद्धाः
मेषादिकानामुदयासवः स्युः ॥ ५७ ॥

स्पष्टार्थमिदम् । अत्रोपपत्तिर्गोले कथितैव सुगमा च ।

भाषाभाष्य ।

मेषादि राशिज्याओं को परमाल्पद्युज्या से गुणाकर, निज द्युज्याओं का भाग देकर फलका चाप करके पूर्व रीति के अनुसार परस्पर शोधन करने से, मेषादिकों के उदयासु प्रकारान्तर से, सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

अनुपात—यदि त्रिज्याकर्ण में परमाल्पद्युज्या कोटि है तो मेषादि जीवाओं में क्या ? फल अहोरात्र वृत्त में कोटिरूप होता है । उसके चापार्थ अनुपात किया, द्युज्या में उक्त फल तो त्रिज्या में क्या ?

$$\text{द्यु} : \frac{\text{पद्यु} \times \text{मेषाज्या}}{\text{त्रि}} :: \text{त्रि}, = \frac{\text{पद्यु} \times \text{मेषाज्या} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु} \times \text{त्रि}} = \frac{\text{पद्यु} \times \text{मेषादिज्या}}{\text{द्यु}} \text{।}$$

इसप्रकार 'मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या—' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ ५७ ॥

अथ निष्पन्नांस्तानसूनाह ।

तेऽश्राद्रिभूपा १६७० गुणगोद्रिचन्द्राः १७९३
सप्ताङ्गनन्देन्दुमिता १९३७ अथैते ।
क्रमोत्क्रमस्थाश्चरखण्डकैः स्वैः
क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः ॥ ५८ ॥
मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे
तुलादितोऽमीच विलोमसंस्थाः ।
उदेति राशिः समयेन येन
तत्सप्तमोऽस्तं समुपैति तेन ॥ ५९ ॥

अत्र धनुःकरणे जीवानां स्थूलत्वाद्द्वितीयतृतीयावुदयौ नान्यैः सम्यक् पठितौ । अथ प्रथमप्रकारेण

प्रथम उदयो गृह्यते । द्वितीयप्रकारेण द्वितीयतृतीयौ । शेषं स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । निरक्षस्वदेशार्कोदययोरन्तरं चरम् । निरक्षे स्वदेशे च मेषादिः सममुदेति । मेषान्त आदौ स्वक्षितिजे तत उन्मण्डले लगति । अतश्चरखण्डोनो मेषोदयः स्वदेशोदयो भवति । एवं वृषमिथुनयोरपि । कर्क्यादौ तु चरखण्डानामपचीयमानत्वाद्धनं तानि परिणमन्ति । तुलादौ तून्मण्डलस्याधःस्थितत्वाच्चरखण्डानि धनं भवन्ति । मकरादौ तु चरखण्डानामपचीयमानत्वादृणं परिणमन्ति । इत्यादि गोले सम्यग् विलोक्यते ।

भाषाभाष्य ।

लङ्कोदयासु १६७०, १७९३, १९३७ का मान है इनको अनुलोम और विलोम स्थापन करके, स्वदेशीय चरखण्डों को उसीप्रकार अनुलोम, विलोम रखकर जोड़ने और घटाने से, मेषादि छ राशियों के स्वदेश में उदयासु सिद्ध होते हैं * । उन्हीं को तुल से विलोम

---

* अयोध्या में पूर्व साधित सूक्ष्मचर का संस्कार करने से पलात्मक मेषादि राशियों का उदयकाल हुआ ।

पलात्मक उदय	होरात्मक उदय घं.	मि.	से.
मे. २२०, मी.	मे. १	२८	० = मी.
वृ. १६४, कुं.	वृ. १	१७	३६ = कुं.
मि. १६८, म.	मि. १	१६	१२ = म.
क. ४४६, ध.	क. २	५८	२४ = ध.
सिं. ४०४, वृ.	सिं. २	४१	३६ = वृ.
क. ३३८, तु.	क. २	१५	१२ = तु.

स्थापन करने से बाकी छ राशियों के भी उदयासु होते हैं । जिस समय जो राशि क्षितिज में उदित होती है उसी समय उससे सातवीं राशि अस्त होती है ।

उपपत्ति ।

स्वदेश और निरक्ष देश के सूर्योदयों का अन्तर चर होता है । उसका उत्तर और दक्षिणगोल में, धन ऋण संस्कार गोल में स्पष्ट प्रतीत होता है । आचार्य ने स्वयं लिखा भी है ॥ ५८–५९ ॥

इदानीं नैपुण्यमाह ।

क्षेत्राणां स्थूलत्वात् स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम् ।
सूक्ष्मार्थी होराणां कुर्याद्दृक्काणकानां वा ॥ ६० ॥

यथा राश्युदयाः साधितास्तथा होरोदया अपि साध्याः । तद्यथा । पञ्चदशादि पञ्चदशभागोत्तरभागानां ज्या होराज्याः षड् भवन्ति । ताभिर्मिथुनान्तद्युज्या ३१४१ पृथक् पृथग्गुणया स्वस्वद्युज्यया भाज्या । फलानां धनूंष्यधोऽधः शुद्धानि । षष्ठात् पञ्चमं पञ्चमाच्चतुर्थमित्यादि । शेषाणि होरोदयासवो भवन्ति । एवं दशादिदशोत्तरभागैर्द्रेष्काणोदया भवन्ति । ते च नव । तथा होरांशानां षट्चराणि यान्यधोऽधःशुद्धानि तानि तेषां चरखण्डानि । तैः क्रमोत्क्रमस्थैः क्रमोत्क्रमस्था ऊनयुताः सन्तः स्वदेशे होरोदया भवन्ति । मेषादीनां द्वादश । ते च व्यस्तास्तुलादीनाम् । एवं चतुर्विंशतिः २४ । एवमेवदृक्काणोदयाः षट्त्रिंशत् । तथा चार्कस्य सायनांशस्य भागाः पञ्चदश १५ हृता गतहोराः स्युः । शेषांशास्ते भुक्तास्ते पञ्चदशभ्यः शुद्धाः भोग्यांशाः स्युः । भोग्यांशघ्नः स्वदेशहोरोदयः पञ्चदशहृतः फलं भोग्यासवः स्युस्तानिष्टासुभ्यो विशोध्य तदग्रतो होरोदयांश्च शो-

धयेत् । शेषं पञ्चदशगुण्यमशुद्धहोरोदयेन भजेत् । फलं लवाः । अशुद्धपूर्वाणां होरोदयानां संख्यया गुणितैः पञ्चदशभिर्युताः सन्तो लग्नस्यांशा भवन्ति । एवं लग्नात् कालसाधनेऽपि एवमेव द्रक्काणोदयैरपि लग्नसाधनम् । तत्र पञ्चदशस्थाने दश १० गुणने भजने च कल्प्याः । एवं होरोदयैर्द्रक्काणोदयैर्वा साधितं लग्नादिकमुदयान्तराख्यं कर्म च सूक्ष्मं भवति । अन्यथा स्थूलम् ।

भाषाभाष्य ।

क्षेत्रों के अवयव स्थूल होने से राशियों के उदय भी स्थूल सिद्ध होते हैं । सूक्ष्मोदय सिद्ध करने के लिये होरोदय अथवा द्रेष्काणोदय सिद्ध करना चाहिये ।

उपपत्ति ।

जैसे राश्युदयों का साधन किया गया है, वैसेही होरोदयों का साधन भी हो सकता है । तीस ३० अंशों की एक राशि होती है उसका अर्ध १५ अंश एक होरा का मान माना गया है । वृत्त चतुर्थांश ९० अंशों में छ होराज्या होती हैं; क्योंकि ९०÷१५=६। इस प्रकार साधन करके 'मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या—' के अनुसार, होराज्याओं से परमाल्पद्युज्या को गुणाकर स्वद्युज्याओं का भाग देकर, लब्ध फलों का धनु करके उनका परस्पर में शोधन करने से होरा के उदयासु सिद्ध होंगे ।

इसी प्रकार, द्रेष्काणोदयासु भी बन सकते हैं । राशि में तीन द्रेष्काण होते हैं, प्रत्येक दश दश भाग का होताहै। ९०÷१०=९ । इन होरोदयासु और द्रेष्काणोदयासुओं को सिद्ध करके, पूर्वरीति से लग्नसाधन करना, वह लग्न पूर्वसाधित लग्न की अपेक्षा सूक्ष्म होगा । इस प्रकार कल्पना वैचित्र्य से, गणित में सूक्ष्मता सिद्ध होती है ॥६०॥

इदानीं भुजान्तरमाह ।

भानोः फलं गुणितमर्कयुतस्य राशे-
र्व्यक्षोदयेन खखनागमही १८०० विभक्तम् ।
गत्या ग्रहस्य गुणितं द्युनिशासु भक्तं
स्वर्णं ग्रहेऽर्कवदिदं तु भुजान्तराख्यम् ॥ ६१ ॥

अर्कस्य यद्भुजफलं यस्मिन् राशौ रविर्वर्तते तस्य राशेः सम्बन्धी यो निरक्षोदयस्तेन तद्गुणितं राशिकलाभि १८०० र्भक्तं पुनर्ग्रहगत्या गुणितमहोरात्रासुभि २१६५६ र्भक्तं यत् फलं तद्ग्रहेऽर्कवद्धनर्णं कार्यम् । यद्यर्कस्य भुजफलं धनं तदा सूर्यस्यान्येषां च धनम् । यदि ऋणं तदा ऋणमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । ये मध्यमार्कौदयिकास्ते स्फुटार्कौदयिकाः क्रियन्ते । तत्रार्कफलस्यासुकरणेऽनुपातः । यदि राशिकला १८०० निरक्षोदयासुभिरुद्गच्छन्ति तदा फलकलाः कतिभिरिति । लब्धं भास्वत्फलोत्था असवो भवन्ति । अथान्योनुपातः। यदि द्युनिशासुभिर्गतिकला लभ्यन्ते तदैभिः किमिति । ताः कला अतो ऋणं धनं यतो मध्यमार्कोदयात् प्राक् स्फुटार्कोदयः स्यादृणे तत्फले स्वे यतोऽनन्तरमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

रवि के भुजफल को सूर्याक्रान्तराशि के निरक्षोदय से गुणाकर, राशिकला का भाग देने से जो फल मिले, उसको ग्रहगति से गुणाकर अहोरात्रासु का भाग देना । प्राप्त फल को रवि के भुजफल के समान ग्रह में धन, ऋण करना । इसका नाम भुजान्तर-संस्कार है ।

उपपत्ति ।

अनुपात किया—

१८०० : निरक्षोदयासु : : फलकला : = अर्कभुजफलासु ।

पुनः—

अहोरात्रासु : गतिक : : फलासु :

जो कला मिले उसका ग्रह में संस्कार करना । इस प्रकार मध्यमार्कोदय कालिक—ग्रह स्पष्टार्कोदय कालिक होते हैं ॥ ६१ ॥

इदानीमुदयान्तरमाह ।

युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य
भुक्तासवोऽर्कस्य निरक्षदेशे ।
मेषादिभुक्तोदयसंयुता ये
यश्चायनांशान्वितमध्यभानोः ॥ ६२ ॥
लिप्तागणस्तद्विवरेण निघ्नी
गतिर्ग्रहस्य द्युनिशासुभक्ता ।
स्वर्णं ग्रहे चेदसवोऽधिकोना
इदं ग्रहाणामुदयान्तराख्यम् ॥ ६३ ॥

मध्यमार्कस्य सायनांशस्य ये राशेर्भुक्तभागास्तैस्तदुदयं निरक्षदेशीयं संगुण्य त्रिंशता विभजेत् फलं तस्य राशेर्भुक्तासवः । अथ मेषाद्या येऽर्केण भुक्ता राशयस्तेषां च निरक्षोदयासवस्तत्र योज्यास्ते मेषादि भुक्तोदयासवः स्युः । अथ मध्यमार्कस्य सायनांशस्य कलाः कार्याः । तासां कलानां तेषामसूनां च यदन्तरं तेन ग्रहगतिर्गुण्या द्युनिशासुभिर्भाज्या लब्धाः कला ग्रहे धनं कार्याः । यदि कलाभ्योऽसवोऽधिकाः स्युः । यदि न्यूनास्तदा ऋणम् ।

अत्रोपपत्तिः । इह यः पूर्वमहर्गणः कृतः स मध्यमसावनमानेन स्फुटसावनस्य चलत्वात् । रविमध्यगति कलातुल्यासुभिः सहिता नाक्षत्राः षष्टिघटिकाः ६० । ५९ । ८ । इदं मध्यममर्कसावनम् । ता गतिकला यैरसु-

भिरुद्गच्छन्ति तद्युताः षष्टिघटिकाः स्फुटसावनम् । तच्च-लम् । प्रत्यहं गत्यन्यत्वात् प्रतिमासं राश्युदयान्यत्वाच्च । तादृशोऽहर्गणः कर्तुं नायातीति मध्यमः कृतः । तेन सम्यगर्कोदये ग्रहा न भवन्ति । कदाचिदर्कोदयात्प्राक् कदाचिदनन्तरम् । अतएव प्रागुक्तम् ।

दशशिरःपुरि मध्यमभास्करे
क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः ।

इति । अथ स्फुटमध्याहर्गणयोरन्तरानयनम् । मेषादे-रारभ्य येऽर्कभुक्ता राशयस्ते यैरसुभिरुद्गच्छन्ति त एकी-कृताः । तावत्यस्वात्मके काले भदिनान्तादूर्ध्वमहर्गणेन भवितव्यम् । अथ च मेषादिभुक्तकलातुल्येऽन्तरे कृतः । अतोऽसूनां कलानां च यदन्तरं तावद्भिरसुभिरहर्गणो-न्तरितः । यद्यहोरात्रासुभिर्गतिर्लभ्यते तदैभिरन्तरासु-भिः किमिति । फलं ग्रहेषु स्वं यद्यसवोऽधिकाः । अन्यथा ऋणमित्येतदुक्तं युक्तमेव ।

भाषाभाष्य ।

सायन मध्यम सूर्य के भुक्तांशों को उसके निरक्षदेशीय उदयासुओं से गुणाकर, तीस ३० का भाग देने से उस राशि के भुक्तासु होते हैं। मेषादि जितनी राशियां भुक्त होचुकी हों उनके निरक्षोदयासुओं को पूर्व साधित राशि के भुक्तासुओं में जोड़ देने से मेषादि से लेकर भुक्तासु होते हैं । मध्यम–सायन रवि की कला करके उसका और भुक्तासुओं का अन्तर करके, उससे ग्रहगति को गुणाकर अहोरात्रासुओं का भाग देने से लब्ध कला को, कला से असु अधिक होने पर ग्रह में धन अन्यथा ऋण करना। यह ग्रहों का उदयान्तर नामक संस्कार है ।

उपपत्ति ।

स्पष्टसावन के प्रतिक्षण में चल होने से मध्यम सावन से ही ग्रह-

र्गण सिद्ध किया है। इसलिए अहर्गण से जो ग्रह मध्यम बनते हैं वे ठीक लङ्का क्षितिज के न होकर कभी अधिक और कभी न्यून होते हैं। इसलिए उदयान्तर संस्कार करने से वे लङ्काक्षितिज के हो जाते हैं।

मध्यम रवि के गतिकलातुल्यासु और गतिकलोत्पन्नासुओं का जो अन्तर है वही मध्यम और स्पष्ट अहर्गण का अन्तर है वही उदयान्तर है। उसके साधनार्थ अनुपात किया—अहोरात्रासु में गतिकला तो अन्तरासु में क्या? $\frac{\text{गक} \times \text{अन्तरासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$; फलको ग्रहमें उक्त रीतिके अनुसार धन किंवा ऋण करना चाहिए ॥ ६२–६३ ॥

इदानीं येऽस्योदयान्तरस्य वासनां न बुध्यन्ति तेषां प्रतीत्यर्थमन्यदाह।

चेत् स्वोदयैः स्फुटरवेरसवः कृतास्ते
विश्लेषिताश्च यदि मध्यरवेः कलाभिः।
बाह्वन्तराख्यमुदयान्तरकं चराख्यं
कर्मत्रयं विहितमौदयिके तदा स्यात् ॥ ६४ ॥

यदि स्फुटरवेः स्वोदयेन भुक्तासवः कृता मेषादिस्वोदयैश्च युतास्तेषामसूनां मध्यमार्ककलानां च यदन्तरं तेन भुक्तिर्गुणिता द्युनिशासुभिर्भक्ता। यद्यसवोऽधिकास्तदा फलं ग्रहे स्वमन्यथा ऋणम्। एवं कृते सति भुजान्तरमुदयान्तरं चराख्यं च कर्मत्रयमपि कृतं स्यादौदयिके ग्रहे।

भाषाभाष्य।

यदि स्फुटरवि के स्वोदय से भुक्तासु सिद्ध किए जायँ और मेषादि उदयासुओं को जोड़ दिया जाय तो उन असुओं और मध्यमार्क-कलाओं के अन्तर करने से भुजान्तर, उदयान्तर और चर ये तीनों संस्कार स्वतः हो जाते हैं ॥ ६४ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणौदयिककर्माह ।

मध्यार्कवेरयनभागयुताद्विनिघ्ना-
दोर्ज्या लघुर्गतिगुणा खनगाश्वि २७० भक्ता ।
स्वर्णं ग्रहे युगयुजोः पदयोर्विलिप्ता-
स्त्वेवं स्फुटं खलु भवेदुदयान्तरं वा ॥ ६५ ॥

मध्यमार्कस्य सायनांशस्य द्विगुणितस्य या लघुखण्ड-
कैर्दोर्ज्या तया गुणिता ग्रहगतिः खसप्तयमै २७० र्हृता
फलं विकलादिग्रहे धनम् । एवं युग्मपदस्थितेऽर्के । अयु-
ग्मपदस्थिते त्वृणम् ।

अत्रोपपत्तिः । क्रान्तिवृत्तस्य चत्वार्यपि पदानि पृथक्
पृथक् पञ्चदशभिः पञ्चदशभिर्घटिकाभिरुद्गच्छन्ति । परं
नैकैको राशिः पञ्चभिरत उदयान्तरकर्म पदमध्यं याव-
दुपचीयते ततोऽपचीयते । अत एव पदान्तेषु तस्याभावः ।
पदमध्येषु परमता । यदत्र निरक्षोदयैः कर्म दर्शितं त-
द्बालावबोधार्थम् । तत् स्थूलम् । उदयानां स्थूलत्वात् ।
अत एवार्यभटादिभिः सूक्ष्मत्वार्थं दृक्काणोदयाः पठिताः ।
इदमुदयान्तरं कर्म यथा सम्यग्भवति तथोच्यते । मध्य-
मार्कस्य सायनांशस्य दोर्ज्यां द्युज्यां च कृत्वा तया द्यु-
ज्यया सा दोर्ज्या भाज्या मिथुनान्तद्युज्यया गुणनीया ।
तस्या धनुषो येऽसवस्तैर्मध्यमार्कस्य सायनांशस्य भुज-
कला ऊनाः सत्यः स्फुटा अन्तरासवो भवन्ति । तैरुद-
योऽन्तरित इत्यर्थः । एवं पदमध्ये षड्विंशतिः २६ पलानि
किंचिदधिकानि भवन्ति । तानि ज्याप्रकारेण साधयि-
तुमर्को द्विगुणितः । द्विगुणितस्यार्कस्य यावद्भुजः क्रियते
तावत् पदमध्ये राशित्रयं भवति । तद्दोर्ज्यया लब्ध्या
षड्विंशत्या चानुपातः । यदि स्वार्कमितया दोर्ज्यया ष-

ड्विंशतिर्लभ्यते तदाभीष्टया किमिति । अत्र षड्विंशत्या खार्का अपवर्तिता गुणकस्थाने रूपम् १ । हरस्थाने सार्धाश्चत्वारः । फलं पानीयपलानि । पुनरन्योऽनुपातः । यदि पानीयपलषष्ट्या गतिकलातुल्या विकला लभ्यते तदैभिः किमिति । पूर्वं लघ्वी दोर्ज्या गुणः सार्धाश्चत्वारो हरः । इदानीं षष्टिर्हरः । अतो ग्रहगतेर्दोर्ज्या गुणः । हरयोर्घातो हरः खनगाश्वि इत्युपपन्नम् । ओजपदेऽसवः कलाभ्य ऊना एव भवन्त्यतस्तत्र ऋणम् । युग्मपदे त्वधिका अतस्तत्र धनम् ।

भाषाभाष्य ।

सायन मध्यम रवि को दो से गुणाकर, उसकी लघुखण्डों से दोर्ज्या साधना । और उससे रविगति को गुणाकर २७० का भाग देना फल को विकला में, समपद में धन और विषमपद में ऋण करना । इस प्रकार प्रकारान्तर से उदयान्तर संस्कार सिद्ध होगा ।

उपपत्ति ।

निरक्ष में क्रान्तिवृत्त के पद प्रत्येक भिन्न उदय और अस्वात्मक होने पर भी पंद्रह घड़ी में ही उदय होते हैं । इसलिए पदादि और पदान्त में कला और असुओं का अन्तराभाव होता है । केवल पदमध्य में उपचय होता है । इस स्थिति में उदयान्तर का साधन कहते हैं । सायन मध्य रवि की भुजज्या और द्युज्या बनाकर अनुपात किया—यदि इस द्युज्या में यह दोर्ज्या तो परमाल्पद्युज्या में क्या ? फल का धनु करने से जो असु मिलें उनमें सायनरवि की भुजकला घटा देने से दोनों के अन्तरासु सिद्ध होते हैं । ज्या विधि से सिद्ध करने के लिए सूर्य को द्विगुणित किया तो पद के बीच में तीन राशि हुए । उसकी लघु दोर्ज्या और २६ के साथ अनुपात—

$$१२० : २६ :: इदो = \frac{२६ \times इदो}{१२०} = \frac{इदो}{४\frac{२}{३}} = \text{पानीयपल;}$$

$$६० : गक :: \frac{इदो}{४\frac{२}{३}} = \frac{गक \times इदो}{६० \times ४\frac{२}{३}} = \frac{गक \times इदो}{२७०} = \text{उदयान्तर।}$$

यों 'मध्याद्रवेः–' इत्यादि उपपन्न हुआ † ॥ ६५ ॥

इदानीं तिथिकरणभयोगानां साधनान्याह।

रवि १२ रसै ६ र्विरवीन्दुलवा हृताः
फलमितास्तिथयः करणानि च।
कुरहितानि च तानि बवादितः
शकुनितोऽसितभूतदलादनु ॥ ६६ ॥
ग्रहकलाः सरवीन्दुकला हृताः
खखगजै ८०० श्च भयोगमिती क्रमात्।
अथ हृताः स्वगतैष्यविलिप्तिकाः
स्वगतिभिश्च गतागतनाडिकाः ॥ ६७ ॥

व्यर्केन्दोर्भागा छिष्टाः। एकत्र रविभिर्भाज्यास्तत्र फलं गतास्तिथयः। अन्यत्र रसैर्भाज्याः। फलं गतकरणानि। तानि त्वेकोनानि बवादितो भवन्ति। कृष्णचतुर्दश्यर्धादुपरि यान्यवशिष्यन्ते त्रीणि चतुर्थं प्रतिपत्प्रथमार्धे च। एतानि चत्वारि शकुनितः। शकुनिचतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानीति शेषः। यस्य ग्रहस्य नक्षत्रं ज्ञातुमिष्यते तस्य कलाः कार्याः। तथा चन्द्रार्कयोगस्य कलाः कार्याः। उभयत्र शताष्टकेन ८०० हृते प्रथमस्थाने गतभानि द्वितीयस्थाने गतयोगाः। अथ यान्यवशिष्टानि तानि गतानि। तानि स्वस्वहरच्युतानि गम्यानि स्युः।

---

† उदयान्तर की वासना गोल में सविस्तर लिखी गई है। पाश्चात्यरीति से भी संक्षेप से लिखी है।

तेषां गतानां सम्बन्धिन्यो विकलाः स्वस्वगतिभिर्भाज्याः। यल्लभ्यते ता गतघटिका भवन्ति । यद्येष्याणां विकला भक्तास्तदैष्या घटिका भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिः । यदि व्यर्केन्दोश्चक्रांशै ३६० स्त्रिंशत् तिथयो लभ्यन्ते ३० तदैभिः किमिति । अत्र त्रिंशतापवर्तिते हरे जातो द्वादश हरः । अथ यदि चक्रांशैः ३६० षष्टि ६० करणानि लभ्यन्ते तदैभिः किमिति । अत्रापि षष्ट्यापवर्तिते जातो हरः षण्मतः । अथ यदि चक्रकलाभिः २१६०० सप्तविंशतिर्भानि लभ्यन्ते योगा वा तदाभिः किमिति । अत्रापि सप्तविंशत्यापवर्तने कृते जातोऽष्टशती हर उभयत्र । अथ घटीकरणार्थमनुपातः । यदि गतिकलाभिः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा गतैष्याभिः कलाभिः किमिति फलं गतैष्या घटिकाः । अथ कलाः षष्ट्या गुणिता विकलाः स्युरित्यत उक्तम् । अथ हृताः स्वगतैष्याविलिप्तिका इति सर्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

रविचन्द्र के अन्तरांशों में बारह १२ और छ ६ का भाग देने से गत तिथि और करण होते हैं । उन करणों में एक घटाने से बव से लेकर होते हैं । और कृष्णचतुर्दशी के ऊपर प्रतिपदा के प्रथमार्ध पर्यन्त शकुनि से लेकर चार स्थिरकरण रहते हैं ।

ग्रहकी कला और रविचन्द्रयोग की कला करके दोनों स्थानों में आठसौ ८०० का भाग देने से गत नक्षत्र और गत योग का मान आता है । और इन गतगम्य नक्षत्र-योगों की विकलाओं में अपनी अपनी गति का भाग देने से गत और एष्य घटिका होती हैं ।

उपपत्ति ।

रवि और चन्द्र के द्वादश अन्तरांशों में एक तिथि होती है ।

इससे अनुपात किया—३६० अन्तरांशों में ३० तिथि तो इष्ट में क्या ?

$$= \frac{३० \times इष्ट}{३६०} = १२ ।$$

इस प्रकार सिद्ध होता है कि सूर्य-चन्द्र के द्वादश अन्तरांशों में एक तिथि का मान होता है ।

करण-व्यवस्था ।

'तिथ्यर्धं करणम्' इस आगम प्रामाण्य से एक तिथि में दो करणों का भोग होता है । करण दो प्रकार के हैं, एक स्थिर दूसरे चर । स्थिरों के नाम—शकुनि । नाग । चतुष्पद । किंस्तुघ्न । ये चार हैं । प्रत्येक मास की कृष्ण चतुर्दशी के अपरार्ध से लेकर तिथ्यर्ध भोग के प्रमाण से इनका भोग माना जाता है । अर्थात् कृष्ण चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि । अमा के पूर्वार्ध में नाग । अमा के उत्तरार्ध में चतुष्पद । शुक्लपक्ष-प्रतिपत् के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न । यहाँ भास्कराचार्य ने ब्रह्मसिद्धान्तानुसार—शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न इस क्रम से नाम लिखे हैं । सांप्रत में संपूर्ण पञ्चाङ्गों में इसी ब्राह्मक्रमानुसार ही स्थिर करण लिखे जाते हैं । इस लेख में कोई मूल नहीं उपलब्ध होता तौभी सर्वमत से ब्राह्मक्रम ही मान्य है ।

इन स्थिरकरणों के बाद, बवादि सात चर करणों का भोग, उसी तिथ्यर्ध में दो के प्रमाण से, होता है—उनके नाम—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि (भद्रा) ये सात हैं । तिथ्यर्ध में दो के प्रमाण से, मास (३० दिन) में साठ करणों का भोग हुआ । इन में चार स्थिरकरण निकाल देने से शेष छप्पन ५६ करणों का भोग आठ आवृत्ति में पूर्ण होता है—क्योंकि—७×८=५६ । इस प्रकार, एक एक चर करण की आवृत्ति, मास में आठ बार सिद्ध हुई । इसी प्रयोजन से—सूर्यसिद्धान्त में 'मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्तते ।' यह लिखा है ।

करणसाधनार्थ अनुपात—

$$३६० : ६० :: इष्टांश : \frac{६० \times इष्टांश}{३६०} = ६ ।$$

इस प्रकार जो सिद्ध हों उनकी गणना वत्र से होती है, इसलिए निरेक करने के लिए 'कुरहितानि च तानि—' लिखा है।

नक्षत्र और योग साधन की उपपत्ति वासनाभाष्य में स्पष्ट है ॥ ६६–६७ ॥

इदानीं नतकर्माह ।

तिथ्यन्तनाडीनतबाहुमौर्व्या
लब्ध्यार्कशीतांशुफले विलिघ्ने ।
क्रमेण भक्ते नखगोसमुद्रैः ४६२०
कगाग्निवेदैः ४३७१ फलहीनयुक्तः ॥ ६८ ॥
प्राक्पश्चिमस्थस्तरणिर्विधुः प्रा-
गृणे फले युक्त इतोऽन्यथोनः ।
मुहुः स्फुटातो ग्रहणे रवीन्द्वो-
स्तिथिस्त्विदं जिष्णुसुतो जगाद ॥ ६९ ॥

चन्द्रग्रहेऽर्कग्रहे वा यास्तिथ्यन्ते नतनाड्यस्ता रस ६ गुणा नतभागा भवन्ति । तेषां लघ्वी दोर्ज्या साध्या । तयार्कशीतांशुभुजफले गुण्ये । अर्कस्य नखगोसमुद्रैश्चन्द्रस्य कगाग्निवेदैर्भाज्ये । यदि फले अंशाद्ये गुणिते तर्ह्यंशाद्या लब्धिर्ग्राह्या । यदि कलाद्ये तर्हि कलाद्या तेन लब्धफलेन प्राक्पालस्थो रविर्हीनः कार्यः । यदि पश्चिमस्तदा युक्तः । विधुस्तु प्राक्पालस्थे ऋणे च फले वर्त्तमाने युक्तः कार्यः । अतोऽन्यथा प्राक् पश्चाद्वा हीन एव । अतः पुनस्ताभ्यां तिथिः । पुनर्नतकर्म च यावदविशेषः । इदं जिष्णुसुतो जगादेति । एतदागमप्रामा-

थ्येनास्माभिर्लिखितमित्यर्थः। चतुर्वेदाचार्येणाप्युपलब्धिरेव वासनेत्यभिहितम्। यदीदृश्युपलब्धिरस्ति तदास्माभिः किं नाङ्गीकर्तव्यमिति भावः।

अथ ब्रह्मगुप्तोक्तमुच्यते। अत्र त्र्यंशोनाश्चतुर्दशनीचोच्चवृत्तपरिधिभागा रवेः पठिताः तथा ये जिनकलोनरदा हिमांशोस्ते याम्योत्तरमण्डलस्थस्यैव। ते रवे र्मध्याह्नस्थस्य परिधिभागा ऋणे फले प्रागुन्मण्डलस्थस्य कला विंशत्याधिकाः पश्चादूनाः। धनफले तु प्रागूनाः पश्चादधिकाः।

	पू	म	प		पू	म	प
ऋणफले	१४	१३	१३	धनफले	१३	१३	१४
	०	४०	२०		२०	४०	०

अथ चन्द्रस्य मध्याह्नपरिधिभागाः प्रागुन्मण्डलस्थस्य ऋणे वा धने वा फले द्विपञ्चाशता ५२ कलाभिरूनाः। पश्चादृणे फले ताभिः कलाभि ५२ र्युताः। धने तु ताभिरूनाः।

	पू	म	प		पू	म	प
ऋणफले	३०	३१	३२	धनफले	३०	३१	३०
	४४	३६	२८		४४	३६	४४

अवान्तरे त्वनुपातात् परिधिभागानानीय तैः स्फुटीकरणं कृत्वेदानीं तत्संस्कारः क्रियते। तत्रानुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया नतभागज्यया भागत्र्यंशः परिध्यन्तरं तदेष्टया किमिति। अत्र नतभागज्याया भागत्र्यंशो गुणस्त्रिज्याहरः १२० एवंकृते सति नतज्यायाः षष्ट्यधिकशतत्रयं भागहारः। फलं स्फुटपरिध्यन्तरम्। अथान्योनुपातः। यदि त्र्यंशोनैश्चतुर्दशभिः परिधिभागैरिदं

फलं लभ्यते तदा स्फुटपरिध्यन्तरेण किमिति । अत्र फलस्य नतज्या गुणः । परिध्यंशाः षष्ट्यधिकशतत्रयं च हरः । इदानीं हरयोर्घाते उत्पन्ना नखगोसमुद्राः । एवं चन्द्रस्यापि । तत्र परिध्यन्तरं द्विपञ्चाशत्कलाः ५२ ॥

भाषाभाष्य ।

तिथ्यन्तकालिक नतघटिकाओं की लघुज्या प्रकार से ज्या साधकर उससे रवि चन्द्र के भुजफल गुणाकर क्रम से ४६२० और ४३७१ भाग देने से जो फल मिले, उसको नत के क्रमसे पूर्व कपाल में रवि में हीन और पश्चिम में युक्त करना । और चन्द्रमा में भुजफल ऋण होने पर उक्त फल को प्राक्कपाल में जोड़ना अन्यथा घटाना । इस प्रकार ग्रहण में तिथ्यन्तकालिक सूर्य, चन्द्र असकृत् स्पष्ट करके पुनः तिथिसाधन करना । इस प्रकार तिथिसाधन को ब्रह्मगुप्त ने कहा है ।

उपपत्ति ।

सूर्योदयकाल में स्पष्ट रवि चन्द्र से जो तिथ्यन्त सिद्ध किया जाता है वह स्थूल होता है । इसलिए स्थूल तिथ्यन्त होने से चन्द्र-ग्रहण का मध्यकाल उस समय नहीं होता । इस कारण, पूर्व प्रकार से जो तिथ्यन्त हो उस समय सूर्य, चन्द्र का दिनार्ध, रात्र्यर्ध और नत का साधन करना । अर्थात् दिन में तिथ्यन्त होने पर दिनगत और दिनार्ध घटिकाओं का अन्तर नत और रात्रि में अस्तकाल से गत रात्रि और रात्र्यर्ध घटिकाओं का अन्तर नत होता है । वह मध्याह्न से अर्धरात्रि तक पश्चिम और अर्धरात्रि से मध्याह्न तक पूर्व होता है । यह सूर्य का नत है । चन्द्र का नत यों है—स्पष्टचन्द्र के समान क्रान्तिवृत्त-प्रदेश की लग्न कल्पना होने से, वक्ष्यमाण विधि से जो काल सिद्ध हो उसका और तिथ्यन्त का अन्तर, उदयकाल के न्यून होने पर चन्द्रोदय के आगे तिथ्यन्त घटिका और अधिक में

पहले होती है। इसलिए अन्तर घटिकाओं को, साठ में घटाने से, तिथ्यन्त घटिका होती हैं। उनसे स्पष्ट चन्द्र दिनार्ध से, उक्त रीति से, नत साधन करना चाहिए । फिर नत भुजज्या से, उक्त प्रकार से, फल लाकर असकृत्कर्म से चन्द्र सूर्य स्पष्ट करना और उनसे तिथि का साधन करना। इस प्रकार यह तिथि सूर्य चन्द्र ग्रहण में मध्यग्रहण के योग्य सिद्ध होती है।

इस असकृत्कर्म से तिथि और नत के साधन को आगम प्रामाण्य से ब्रह्मगुप्त ने लिखा है *। उसी प्रमाण को मानकर भास्कराचार्य ने भी लिख दिया है।

सूर्य-चन्द्र के नीचोच्चवृत्तगत परिधिभाग याम्योत्तरमण्डलस्थ पूर्व पठित हैं। उनमें 'तिथ्यन्तनाडीनतबाहुमौर्व्या—' के अनुसार साधित कलात्मक फलों का संस्कार करना । रविपरिध्यन्तर २० कला और चन्द्रपरिध्यन्तर ५२ कला । इनका भाष्य के अनुसार संस्कार किया तो हुआ—

रवि परिधि संस्कार २० कला	पूर्व,	मध्य,	पश्चिम,	चन्द्रपरिधि संस्कार ५२ कला	पूर्व,	मध्य,	पश्चिम,
ऋणफल =	१४	१३	१३	ऋणफल =	३०	३१	३२
	०	४०	२०		४४	३६	२८
धनफल =	१३	१३	१४	धनफल =	३०	३१	३०
	२०	४०	०		४४	३६	४४

अब फल साधनार्थ अनुपात करते हैं—

त्रि (१२०) : परिध्यन्तर $\frac{१}{२}$ :: इष्टनतज्या : = $\frac{\text{नतज्या}}{३६०}$ = स्फुट परिधि।

* ब्रह्मगुप्तः 'तद्द्युदलपरिध्यन्तगुणा हृताः त्रिज्यया: स्वनतजीवा।
ऊने धनमृणमधिके दिनार्धपरिधौ स्फुटः परिधिः ॥ '

पुनः अनुपात—

$$१३।१४ : \text{मन्दफल} :: \frac{\text{नज्या}}{३६०} := \frac{\text{नज्या} \times \text{मंफ}}{१३।१४ \times ३६०} = ४६२०$$

इसी प्रकार चन्द्रकलार्थ अनुपात—

$$\text{त्रि} (१२०) : \text{परिध्यन्तर} \frac{५२}{६०} :: \text{इनज्या} = \frac{५२ \times \text{इनज्या}}{६० \times १२०}$$ यहां

(६० × १२०) इसके गुणन में ५२ का अपवर्तन देने से स्फुट-

परिध्यन्तर = इनज्या $\frac{१}{१३८}$।

पुनः अनुपात—

$$३१।३६ : \text{मन्दफल} :: \text{इनज्या} \frac{१}{१३८} := \frac{\text{मंफ} \times \text{इनज्या}}{३१।३६ \times १३८},$$

इस स्वरूप में हरके घात से ४३६१ अङ्क उपपन्न होता है। इस प्रकार, रवि और चन्द्र के भाजक क्रमसे ४६२० और ४३६१ सिद्ध हुए। 'क्रमेण भक्ते नखगोसमुद्रैः—' इत्यादि उपपन्न हुआ। इस फल का संस्कार करके तिथि और नत का साधन असकृत्कर्म से किया गया है ॥ ६८–६६ ॥

इदानीं स्फुटग्रहस्य तात्कालिकीकरणमाह ।

यातैष्यनाडीगुणिता द्युभुक्तिः
षष्ट्या ६० हृता तद्रहितो युतश्च ।
तात्कालिकः स्यात् खचरः शशीनौ
तिथ्यन्त एवं समलिप्तिकौ स्तः ॥ ७० ॥
पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यै-
र्दर्शान्तकालेऽवयवैर्ग्रहाद्यैः ।

स्पष्टम् । वासनापि सुगमा त्रैराशिकेन ।

भाषाभाष्य ।

इष्टकाल में, गत किंवा गम्य घटिकाओं को ग्रहगति से गुणाकर

साठ ६० का भाग देकर, फल का क्रम से घटाने और जोड़ने से, तात्कालिक स्पष्ट ग्रह होता है । सूर्य चन्द्र तिथ्यन्त काल में—विकलादि पूर्णान्त में—कलादि, और दर्शान्त में—राश्यादि अवयवों से समान होते हैं †

अनुपात—साठ घड़ी में ग्रहगति मिलती है, तो गत-गम्य घटिका में क्या ? कलात्मक फलको ग्रह में जोड़ने घटाने से, तात्कालिक ग्रह स्पष्ट होता है । पूर्वगति ग्रह उत्तरोत्तर अधिक होने से उसमें ऋण और पश्चिम में धन । स्पष्टगति के वैलक्षण्य से मध्यग्रह में ही चालन देकर फिर स्पष्ट करना चाहिए । तिथ्यन्त में साधित सूर्य चन्द्र में अंशान्तर होने से कला साम्य और अमान्त में क्रान्तिवृत्तीय चिह्न-रूप मेषादि की समता से राश्यादि की समता होती है । और पूर्णान्त में मासार्ध होने से छ राशि के अन्तर पर केवल अंशसाम्य होता है ॥ ७० ॥

इदानीं सूक्ष्मनक्षत्रानयनमाह ।

स्थूलं कृतं भानयनं यदेत-
ज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः ॥ ७१ ॥
सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं
विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै ।
अध्यर्धभोगानि ११८५ । ५२ षडत्र तज्ज्ञाः
प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि ॥ ७२ ॥
षडर्धभोगानि च ३९५ । १७ भोगिरुद्र-
वातान्तकेन्द्राधिपवारुणानि ।
शेषाण्यतः पञ्चदशैकभोगा-
न्युक्तो भभोगः शशिमध्यभुक्तिः ॥ ७३ ॥

---

† लल्लः—'मासान्ते रविशशिनौ समौ भवेतां पक्षान्ते लवकलिका विलिप्तिकाभिः । अन्यस्यामपि च तिथौ सदावसाने तुल्यौ स्तः खलु कलिकाविलिप्तिकाभिः ॥'

सर्वर्क्षभोगोनितचक्रलिप्ता
वैश्वाग्रतः स्यादभिजिद्भोगः ।
कलीकृताद्दिष्टखगाद्विशोध्य
दास्रादिभोगान् गतभानि विद्यात् ॥ ७४ ॥
विशुद्धसंख्यानि गतं तु शेष-
मशुद्धभोगात् पतितं तदेष्यम् ।
गतागते षष्टिगुणे विभक्ते
ग्रहस्य भुक्त्या घटिका गतैष्याः ॥ ७५ ॥

इह यन्नक्षत्रानयनं कृतं तत् स्थूलं लोकव्यवहारार्थ-मात्रं कृतम् । अथ पुलिशवसिष्ठगर्गादिभिर्यद्विवाहयात्रादौ सम्यक् फलसिध्यर्थं कथितं तत् सूक्ष्ममिदानीं प्रवक्ष्ये । तत्र षडध्यर्धभोगानि । विशाखापुनर्वसुरोहिण्युत्तरात्रयम् । अथ षडर्धभोगानि । आश्लेषार्द्रा स्वाती भरणी ज्येष्ठा शतभिषक् । एभ्यः शेषाणि पञ्चदशैकभोगानि । भोगप्रमाणं तु शशिमध्यभुक्तिः ७९० । ३५ । अध्यर्धभोगः ११८५ । ५२ अर्धभोगः ३९५ । १७ सर्वर्क्षभोगैरूनितानां चक्रकलानां २१६०० यच्छेषं सोऽभिजिद्भोगः २५४ । १८ अथ तत्साधनम् । ग्रहं कलीकृत्याश्विन्यादीनां भोगान् विशोधयेत् । यावन्तः शुद्धास्तावन्ति गतभानि जानीयात् । शेषाः कला गतसंज्ञाः । ता अशुद्धभोगात् पतिता एष्यसंज्ञाः । ता गतैष्याः कलाः षष्टि ६० गुणा ग्रहगत्या भक्ता गतैष्या घटिका भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिरागमप्रामाण्येन ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व जो नक्षत्रानयन किया गया है वह गणित में सुगमता के लिए

कहा है। अब मुनिप्रोक्त सूक्ष्म नक्षत्रानयन विधि, विवाहादि शुभ कर्मों में फलार्थ कही जाती है। विशाखा आदि छ नक्षत्रों का अध्यर्ध भोग होता है। आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती, भरणी, ज्येष्ठा और शतभिष इन छ नक्षत्रों का अर्द्ध भोग होता है। बाकी १५ नक्षत्रों का भोग चन्द्रमा के मध्य भोग के समान होता है। (चन्द्रभुक्ति ७९० । ३५ अर्ध भोग ३९५ । १७ अध्यर्ध भोग ११८५ । ५२) चक्रकला में सब नक्षत्रों का भोग हीन करदेने से अभिजित् का भोग होता है। उसका साधन इस प्रकार है—इष्टग्रह की कला करके, अश्विन्यादि गत नक्षत्रों का भोग घटाकर, गत नक्षत्र जानना। शेष को अशुद्ध नक्षत्र के भोग से घटाकर गम्य नक्षत्र जानना। गत और गम्य को साठ से गुणाकर ग्रहगति का भाग देने से गत और गम्य घटिका होती हैं।

अनुपात—ग्रहगति में साठ ६० घटिका, गतैष्यकला में क्या? इस प्रकार 'गतागते षष्टिगुणे विभक्ते–' इत्यादि उपपन्न हुआ।

यहाँ आचार्य ने उपपत्ति में आगमप्रामाण्य माना है—इसलिए विशेष स्थूल-सूक्ष्म* के विचार की आवश्यकता नहीं रही॥ ७१-७५॥

इदानीं ग्रहाणां राशिसंक्रान्तिमानं भतिथिकरणयोगानां सन्धिमानं चाह।

षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तं
संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये।
रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्व-
संक्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते॥ ७६॥

---

* आचार्यों ने फलकी व्यवस्था ऋषियों के वचन को मूल मानकर सर्वत्र की है। इसलिए अदृष्टफल के लिए जहाँ जो स्थूल वा सूक्ष्म गणितप्रकार उपलब्ध हो वही मान्य अतर्क्य है। सांप्रत में ग्रहणादि साधनार्थ जैसा सूक्ष्म गणित इष्ट है उसकी प्रवृत्ति फल में व्यभिचरित हो जाती है। इत्यादि अनेक विसंवादों से फल व्यवस्था में आर्षगणित को ही आँख मूँदकर मानलेना शास्त्रसिद्ध है।

शशितनुविकलाभ्यश्चन्द्रभुक्त्येन्दुभान्वो-
र्गतिविवरकलाभिर्भूय एताभिरेव ।
पृथगथ गतियुत्या नाडिकाः सन्धिरासा
भतिथिकरणयोगानां फलं तत्र मिश्रम् ॥ ७७ ॥

वक्ष्यमाणप्रकारेण ग्रहबिम्बकला आनीय षष्ट्या संगुण्य ग्रहभुक्त्या भजेत् । यल्लब्धं ताः संक्रान्तिनाड्यः । राश्यन्तकालात् पूर्वमर्धा उत्तरतोऽर्धा इत्यर्थाद्गम्यते । ताः संक्रान्तिनाड्यो रवेस्तु पुण्यतमाः । तथा यावत् संक्रान्तिस्थो ग्रहस्तावद्राशिद्वयोत्थं फलं करोति । एवं शशिबिम्बविकलाभ्यो या घटिका उत्पद्यन्ते ता भतिथिकरणयोगानां सन्धिघटिकाः स्युः । सन्धौ मिश्रफल मित्यर्थः । अत्र सन्धिरुभयतोऽपि बिम्बस्य स्थितत्वात् । उपपत्तिरप्यत्र सुगमा ।

इति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे ग्रहस्पष्टीकरणं समाप्तम् । ग्रन्थसंख्या ॥ ६०० ॥

भाषाभाष्य ।

ग्रह बिम्बकला को साठ ६० से गुणाकर, ग्रहगति का भाग देने से फल संक्रान्ति की घटिका होती है । रवि की संक्रान्ति संपूर्ण धर्मकृत्यों में अधिक पुण्यफलप्रद होती है । संक्रान्तिगत ग्रह मिश्रफल अर्थात् पूर्वापर राशि का फल करता है । चन्द्रबिम्ब विकला में चन्द्रभुक्ति का भाग देनेसे, नक्षत्र सन्धि होती है । चन्द्र और सूर्य के गत्यन्तर का भाग देने से तिथि और करण की सन्धि और गति योग का भागदेने से, योग सन्धि होती है । इन कालों में, मिश्रफल होता है ।

उपपत्ति ।

ग्रह के बिम्बकेन्द्र का राश्यादि-संचार संक्रान्ति कहलाती है । सूर्य का क्रान्तिवृत्त में भ्रमण होने से, रवि सक्रान्ति मुख्य है । और

चन्द्रादि ग्रहों के शराग्र में रहने से, क्रान्तिवृत्तीय राश्यादि और चन्द्र चिह्न के अभेद होने पर भी विम्बाधिष्ठान के अभाव से अमुख्य संक्रान्ति होती है। संक्रान्तिकाल अतिसूक्ष्म होने से दुर्ज्ञेय है। इस लिए जब राश्यादि स्थल में ग्रहविम्ब का सम्बन्ध हो वह स्थूलकाल कल्पना किया गया है। पूर्वाभिमुख जाते हुए ग्रहमण्डल का अग्र नेमि-सम्बन्ध संक्रान्ति का आरम्भ, मण्डलकेन्द्र सम्बन्ध मुख्य संक्रान्ति काल, मध्यरूप और पिछली नेमिका सम्बन्ध समाप्तिकाल होता है। अनुपात किया—

ग्रहगति में ६० सावन घटिका तो बिम्बकला में क्या? इसप्रकार सिद्ध घटिकाओं का अर्ध मुख्य संक्रान्तिकाल से पूर्व, और अर्ध पीछे पुण्यकाल होता है※।

अमाको क्रान्तिवृत्त में सूर्य बिम्बकेन्द्र और चन्द्र चिह्न का योग होता है। उसके पहले सूर्य की पश्चिम नेमि और चन्द्र के कल्पित मण्डल की पूर्व नेमिका संयोग उक्तरीति से संधि का आदि और उसके बाद सूर्य नेमि और कल्पित चन्द्रमण्डल की पश्चिम नेमिका संयोग संधिका अन्त होता है। इसीप्रकार तिथ्यर्धरूप करणान्त में भी संध्यादि और संध्यन्त काल होता है। अब सन्धिकाल की घटिका के लिए अनुपात किया—

※सूर्यसिद्धान्त—'अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।
तदर्धनाड्यः संक्रान्तेरर्वाक् पुण्यं तथा परे॥
ब्रह्मसिद्धान्त—मानार्धात्षष्टिगुणाद्भुक्तिहृतान्नाडिकादिलब्धेन।
राश्यन्तात्प्रागादिः पश्चादन्तोऽर्कसंक्रान्तेः॥
संक्रान्तिपुण्यकालो यल्लब्धं नाडिकादि ·········॥'

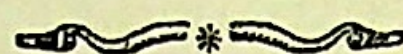
प्राचीन आचार्य और सूर्यसिद्धान्तादि के आर्षवाक्यों से सिद्ध होता है कि विम्बकेन्द्र का ही राश्यन्त में संचरणकाल संक्रान्तिकाल होता है। और इन मण्डलान्त अनार्षमान में जो कहीं नेमिसंचार माना है वह महाअशुद्ध एकदेशी मत है।

गत्यन्तर : ६० :: बिम्बकला :

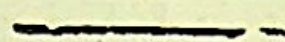
अथवा,

गतियोक : ६० :: बिम्बकला :

इन दो अनुपातों से उपपन्न हुआ । सन्धिकाल में दो राशियों पर बिम्ब संचार होने से मिश्रफल होता है ॥ ७६ – ७७ ॥



भाषाभाष्य में स्पष्टाधिकार पूर्ण हुआ ।



अथ त्रिप्रश्नाध्यायं विवक्षुस्तावत् तदारम्भप्रयोजनमाह ।

जगुर्विदोऽदः किल कालतन्त्रं
दिग्देशकालावगमोऽत्र यस्मिन् ।
त्रिप्रश्ननाम्नि प्रचुरोक्तिधाम्नि
ब्रुवेऽधिकारं तमशेषसारम् ॥ १ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

विदो विद्वांसः अद इदं ज्योतिःशास्त्रं कालतन्त्रं कालविधानशास्त्रं जगुरूचुः । किलेति प्रसिद्धम् । अत्र कालतन्त्रे यस्मिन् प्रचुराः नानाविधाः या उक्तयः प्रकारास्तासां धाम्नि स्थाने त्रिप्रश्ननाम्नि दिग्देशकालानां त्रयाणामवगमो ज्ञानमस्ति । तमशेषसारं प्रधानमधिकारं ब्रुवे कथयामि ।

भाषाभाष्य ।

इस शास्त्र से दिशा, देश और काल का ज्ञान होता है इसलिए विद्वानों ने इसको कालतन्त्र कहा है । इस त्रिप्रश्ननामक अधिकार में अनेक प्रकारों से दिग्, देश और काल का साधन कहा जाताहै ॥१॥

इदानीं लग्नसाधनमाह ।

तात्कालिकार्केण युतस्य राशे-
रभुक्तभागैर्गुणितोदयात् स्वात् ।
भोग्यासवः खाग्निहृतादवाप्ता
भुक्तासवो भुक्तलवैः स्युरेवम् ॥ २ ॥
इष्टासुसङ्घादपनीय भोग्यां-
स्तदग्रतो राश्युदयांश्च शेषम् ।
अशुद्धहृत्खाग्निगुणं लवाद्य-
मशुद्धपूर्वैर्भवनैरजाद्यैः ॥ ३ ॥

युक्तं तनुः स्यादयनांशहीन-
मिष्टासवोल्पा यदि भोग्यकेभ्यः।
त्रिंशद्गुणाः स्वोदयभाजितास्ते
लब्धांशयुक्तो रविरेव लग्नम् ॥ ४ ॥

यस्मिन् काले लग्नं ज्ञेयं तस्मिन् काले तात्कालिकोऽर्कः सायनांशः कार्यः। तेनार्केण युतस्य राशेर्ये भोग्यांशास्तैस्तदुदयासवो गुण्यास्त्रिंशता भाज्याः। ये लब्धास्ते भोग्यासवः स्युः। अथेष्टासुभ्यो भोग्यासून् विशोध्य तदग्रतो यावन्त उदयाः शुध्यन्ति तावन्तः शोध्याः। ततः शेषात् खरामगुणादशुद्धोदयेन भक्ताद्यल्लब्धमंशाद्यं तदशुद्धोदयात् पूर्वं यावन्तो मेषाद्या उदयास्तावद्भी राशिभिर्युतमयनांशैश्च रहितं तल्लग्नं स्यात्। अथ यदीष्टासुभ्यो भोग्या न शुध्यन्ति तदेष्टासवस्त्रिंशद्गुणास्तदुदयासुभिर्भाज्याः। फलेनांशाद्येन युतो रविर्लग्नं स्यात्।

भाषाभाष्य।

जिस समय लग्नसाधन करना हो उस समय सायन तात्कालिक सूर्य सिद्ध करके उसके भोग्यांश को राशि के उदयासुओं से गुणाकर, तीस का भाग देकर भोग्यासु बनाना। फिर इष्ट काल के असुओं में से भोग्यासुओं को घटाकर जितने राश्युदय घट सकें उतने घटावे जो शेष रहे उसको तीस ३० से गुणाकर अशुद्ध राशिके उदय का भाग देना। जो अंशादि फल मिले उसको अशुद्धोदय के पहले जितने राशियों के उदय घटे हों उस संख्या में जोड़कर अयनांश घटा देने से लग्न होता है। यदि इष्ट असुओं में भोग्यासु न घटें तब उनको तीस से गुणाकर अपने उदय का भाग देना। लब्ध अंशादि फल को रविमें जोड़देने से वही लग्न होजाता है।

उपपत्ति।

इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश क्षितिज में लगा हो वही राश्यादि लग्न है। उसका साधन किसी अवधि से करना युक्त है इस लिए सूर्य को अवधि कल्पना किया। सूर्य की निजगति पूर्व की है इस कारण वह पूर्व को चलता है और प्रवाह वायु से पश्चिम को भी जाता प्रत्यक्ष देखा जाता है। इष्टकाल में जितना पूर्व बिन्दु से पश्चिम को चला उसी के ज्ञानार्थ उपाय किया। अर्थात्—उस इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का कौन सा राश्यादि प्रदेश क्षितिज में लगा है। वही इष्ट लग्न है। सूर्योदय से इष्टकाल का व्यवहार होता है और उस काल में राश्यादि सूर्य और लग्न एकही होता है। पूर्वगति होने से सूर्य को तात्कालिक करके अनुपात किया—

$$३० : \text{स्वोदयासु} :: \text{भोग्यांश} : = \frac{\text{स्वोदसु} \times \text{भोग्यांश}}{३०} = \text{असु}।$$

पुनः—

$$\text{अशुद्धोदयासु} : ३० :: \text{शेषासु} = \frac{३० \times \text{शेषासु}}{\text{अशु उ.}} = \text{अंश},$$

इस फल को मेषादि से गिनकर अशुद्ध पूर्व राशियों में जोड़कर अयनांश घटा देने से लग्न होता है। क्योंकि पूर्व अयनांश जोड़ा है जिस प्रकार भोग्यासुओं से अनुपात किया है उसी तरह भुक्तासुओं से भी अनुपात द्वारा लग्न सिद्ध होता है। यह सब स्पष्ट है ॥२-४॥

इदानीं लग्नात्कालानयनमाह।

अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो
मध्योदयाढ्यः समयो विलग्नात्।
यदैकभे लग्नरवी तदा त-
द्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभागः ॥ ५ ॥
लग्नेऽल्पके तु द्युनिशात्स शोध्य-
स्तात्कालिकार्कादसकृच्च कालः।

चेत् सावनाः प्रष्टुरभीष्टनाड्य-
स्तदैव तात्कालिकतिग्मरश्मेः ॥ ६ ॥
आर्क्ष्यो यदेष्टा घटिका विलग्नं
कालश्च तत्रौदयिकात् सकृच्च ।

अर्कस्य प्राग्वद्भोग्यकालः साध्यः । लग्नस्य सायनांशस्य भुक्तकालः साध्यः । तयोरैक्यमर्कादग्रतो लग्नपर्यन्तं ये मध्ये राशयस्तेषामुदयाश्च क्षेप्यास्तत्रैव । एवं लग्नात् कालो भवति । अत्र यदैकराशौ लग्नार्कौ भवतस्तदा तयोरन्तरांशैः स्वोदयं संगुण्य त्रिंशता भजेत् । फलमिष्टकालः स्यात् । परं यद्यर्काल्लग्नमधिकम् । यद्यल्पं तदा स कालोऽहोरात्राच्छोध्यः । शेषमिष्टकालः स्यात् । अत्रेष्टकालसाधनेऽर्कस्य भोग्यमौदयिकादेव क्रियते । यतः कालज्ञानात्तात्कालिकत्वमर्कस्य कार्यम् । अतः स्थूलः काल आयाति । अनेन कालेन तात्कालिकमर्कं कृत्वा मुहुः कालः साधयितुं युज्यते । परं यदि प्रष्टुः सावनघटिका इष्टाः । एतदुक्तं भवति । उदयानन्तरमेतावतीष्वर्कसावनघटिकासु कीदृग्लग्नं भवत्येतदभीष्टं तदैव तात्कालिकार्काल्लग्नं साध्यते । तदैव लग्नादसकृत्कालः । यदा पुनरिष्टघटिका आर्क्ष्यस्तदौदयिकादेवार्काल्लग्नं लग्नात् कालः सकृच्च ।

अत्रोपपत्तिः सुगमा । तात्कालिकीकरणकारणता गोले कथिता व्याख्याता च ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व रीति से सायन सूर्य का भोग्यकाल और लग्न का भुक्तकाल साधकर, दोनों का योग करके, सूर्य और लग्न के बीच में जितने उदय हों उनको उसीमें जोड़ देना । इस प्रकार, लग्न से इष्टकाल

होता है । और जब सूर्य, लग्न एक राशि के हों तब दोनों के अन्त-रांशो को स्वोदय से गुणा कर तीस का भाग देने से इष्टकाल होता है । और जब सूर्य से लग्न कम हो तब उसको अहोरात्र में घटा देने से शेष इष्टकाल होता है । प्रष्टा की इष्टघटिका सावन हों तो तात्कालिक सूर्य से असकृत्कर्म द्वारा काल का साधन करना । और नाक्षत्र घटिका हों तो औदयिक सूर्य से लग्न और लग्न से इष्टकाल एकबार में ही सिद्ध होजाता है ।

उपपत्ति ।

यदि तीस ३० अंश में स्वोदय मिलते हैं तो लग्न और सूर्य के अन्तरांश में क्या ? $\frac{\text{स्वोदय} \times \text{अन्तरांश}}{३०}$ = इष्टकाल । यह स्थिति एकही राशि में लग्न और सूर्य के होने पर है ।

और जिस समय सूर्य से लग्न कम हो तब 'यदैकभे लग्नरवी–' इत्यादि से जो काल सिद्ध होगा वह लग्न और सूर्योदय के अन्तर्वर्ती होने से सूर्योदय से पूर्व का होगा *इसलिए सूर्योदय से घटिका ज्ञानार्थ अहोरात्र घटिका ६० में घटा देना चाहिए । रात्रि में सूर्य में छ राशि जोड़कर लग्न साधन करना । अस्तकाल में सूर्य ही अस्त लग्न होता है उसमें छ राशि जोड़ने से पूर्व क्षितिज में लग्न होता है और उदय लग्न में छ राशि जोड़ देने से अस्त लग्न होता है यह स्पष्ट ही है ।

औदयिक सूर्य और वास्तव लग्न से, उक्त रीति से नाक्षत्र काल एकबारगी ही सिद्ध होता है । और असकृत्कर्म से सावन इष्टकाल होता है । इसकी सविस्तर उपपत्ति गोल में 'लग्नार्थमिष्टघटिकाः–' इत्यादि की व्याख्या में हमने लिखी है ॥ ५ – ६ ॥

---

* 'सूर्यसिद्धान्त–सूर्यादूने निशाशेषे लग्नेऽर्कादधिके दिवा ।'

इदानीं विलोमलग्नमाह ।
भुक्तासुशुद्धेर्विपरीतलग्नं
भुक्तांशगेहाप्तलवोनितोऽर्कः ॥ ७ ॥

यदोदयात्पूर्वघटीषु लग्नमिष्टं तदा तात्कालिकमर्कं कृत्वा तस्य भुक्तासवः साध्यास्तानिष्टासुभ्यो विशोध्य शेषासुभ्यो यावन्त उदया विशुध्यन्ति तावतो विलोमेन विशोधयेत् । शेषात् खरामगुणितादविशुद्धोदयभक्ताद्ये लब्धा अंशास्तैस्तथार्कभुक्तांशैश्च तथा विशुद्धोदयतुल्यै राशिभिश्चोनीकृतो रविर्लग्नं भवति ।

वासनाप्यत्र सुगमा ।

भाषाभाष्य ।

सूर्योदय से पूर्व इष्टघटिका में लग्न अपेक्षित होने पर, तात्कालिक सूर्य के भुक्तासुओं को साध कर इष्टासुओं में घटा कर, शेषासुओं से विलोम उदयों को घटाना । शेष को तीस से गुणा कर अशुद्धोदय का भाग देकर, अंशादि फलको, रवि के भुक्तासुओं को, और जिन के उदय घट गये हों उन राशियों को, सूर्य में घटा देने से लग्न होता है । यह विलोम लग्न वा ऋण लग्न कहा जाता है ।

उपपत्ति ।

सूर्योदय के समय में लग्न और सूर्य समान होने से उससे पहले सूर्य से लग्न न्यून होता है । इस लिए इष्टकाल के असुओं में सूर्य का भुक्तकाल घटाने पर सूर्याक्रान्त राशि क्षितिज में लग्न नहीं होता । इस कारण, पूर्व राशियों के उदय विलोम घटाकर फिर उक्त विधि से लग्न बनाना । और विपरीत इष्टकाल के साधन में 'अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तः—' इत्यादि विधि से लग्न से सूर्य तक मध्य राशियों के उदय काल को जोड़ना । यह सब स्पष्ट है ॥ ७ ॥

इदानीं दिग्ज्ञानमाह ।

वृत्तेऽम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमा
  द्भाग्रं यत्रविशत्यपैति च यतस्तत्रापरेन्द्र्यौ दिशौ ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
  ल्लम्बज्यासमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्रीस्फुटाचालिता ॥ ८ ॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भवे-
  देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः ।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
  कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा ॥९॥

उदकेन समीकृतायां भूमाविष्टप्रमाणं वृत्तं विलिख्य तस्य केन्द्रे द्वादशाङ्गुलशङ्कुं निवेश्य तस्य छाया तस्मिन् वृत्ते यत्र प्रविशति पूर्वाह्णेऽपराह्णे यतो निर्गच्छति तत्र पश्चिमपूर्वदिशौ किल भवतः । परन्तु यस्मिन् काले छायाप्रवेशो जातो यस्मिन् काले च निर्गमस्तात्कालिकयोरर्कयोः क्रान्तिज्ये साध्ये । तयोरन्तरात् तस्याश्छायाया कर्णेन गुणिताल्लम्बज्यया भक्ताद्यल्लब्धमङ्गुलादि फलं तेनैन्द्री दिगुत्तरतश्चालिता स्फुटा भवति यद्युत्तरेऽयने रविर्वर्त्तते । यदि दक्षिणे तदा दक्षिणतः । एवं स्फुटा प्राची । अन्यथा स्थूलेत्यर्थः । तन्मत्स्याद्याम्यसौम्यौ दिशौ । अथ प्रकारान्तरेणाह । ध्रुवमवलम्बसूत्रेण विद्ध्वा ध्रुवाभिमुखकीलकः सौम्या । स्वस्थानकीलको याम्या । तन्मत्स्यात् पूर्वापरे । प्रथमं भाद्वयाग्रदर्शने दिग्ज्ञानमुक्तम् । इदानीमथवैकस्मादपि भाग्रतः । तच्चैवम् । अभीष्टकाले शङ्कोर्भाग्रं चिह्नयित्वा तस्याश्छायाया वक्ष्यमाणप्रकारेण भुजं कोटिं चानीय भुजकोटिमिते शलाके गृहीत्वा शङ्कुमूलाद्यथादिग्गतां कोटिशलाकां छायाग्राद्न्यस्तदि-

ग्गतां भुजशलाकां च तथा भुवि न्यसेद्यथा शलाकाग्रयोः संयुतिः स्यात्। एवं कृते सति कोटिः प्राच्यपरा दिग्भवति। बाहुश्च याम्योत्तरा।

अत्रोपपत्तिः। अहोरात्रवृत्त इष्टानामुन्नतघटिकानामग्रे पूर्वाह्णे सममण्डलेन यावदन्तरं तावदेवापराह्णे तावतीनामिष्टघटीनामग्रे भवति। अतस्तच्छायाग्रबिन्दुभ्यां दिग्ज्ञानमुपपद्यते। परं तत्कालान्तरेण। यदर्कक्रान्त्यन्तरं तेनान्तरितं भवति। अतस्तत्सन्धेयम्। तच्चैवम्। तस्मिन् काले यानि कर्णवृत्ताग्राङ्गुलानि पूर्वाह्णे यानि चापराह्णे तेषामन्तरं कार्यम्। तत्र लाघवार्थं तत्कालक्रान्त्योरेवान्तरं कृतम्। ततोऽत्रान्तरकरणायानुपातः। यदि लम्बज्याकोट्या त्रिज्याकर्णस्तदा क्रान्तिज्यान्तरेण किमिति। अत्र लब्धमग्रान्तरम्। ततोऽन्योनुपातः। यदि त्रिज्याव्यासार्धे एतावदन्तरं तदा कर्णव्यासार्धे किमिति। अत्र तुल्यत्वाद्गुणकभाजकयोस्त्रिज्यानाशे कृते सत्युपपन्नं तत्कालापमजीवयोस्तु विवरादित्यादि। यद्युत्तरमयनं वर्तत उत्तरतोऽर्के चलिते शङ्कोर्भाग्रं दक्षिणतो याति तदुत्तरतश्चालनीयम्। अत उपपन्नमैन्द्री स्फुटाचालितेति। भुजकोटीनामुपपत्तिरग्रे। तन्निवेशमात्रेण दिग्ज्ञानमिह दर्शितम्।

भाषाभाष्य।

जल के समान बराबर भूमि में, एक वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में द्वादशाङ्गुल शङ्कु रखने से पूर्वाह्ण में वृत्त के जिस विन्दु में छाया प्रवेश करे और अपराह्ण में जिस विन्दु से निकले उसको पूर्व और पश्चिम दिशा जाननी चाहिए। उस समय की क्रान्तियों का अन्तर करके छायाकर्ण से गुणाकर लम्बज्या का भाग देने से जो अङ्गुलादि

फल मिले, उससे अयन दिशामें चालित करने से पूर्व दिशा स्पष्ट होती है। इसप्रकार पूर्वापर रेखा निश्चित करके मत्स्य द्वारा उत्तर और दक्षिण दिशा का निर्णय करना। अथवा, ध्रुव को लम्बसूत्र से वेधकर ध्रुव संमुख उत्तर दिशा और स्वस्थान दक्षिण दिशा जानना। उससे पूर्व और पश्चिम का ज्ञान करना।

अथवा—एकही छाया से दिग्ज्ञान करना। इष्टकाल में शङ्कु के छायाग्र को अङ्कित करके वक्ष्यमाण प्रकार से उसकीभुज, कोटि लाकर, दोनों के समान शलाका लेकर शङ्कुमूल से कोटि तुल्य शलाका और भुजशलाका अपनी दिशा में इस तरह स्थापित करना कि दोनों के अग्रभागों का मेल हो। यों कोटि पूर्वापरा और भुज याम्योत्तरा दिशा होती है।

उपपत्ति।

समवृत्त और क्षितिज वृत्त का उदय भाग में संपात पूर्वा और पश्चिम भाग में संपात पश्चिमा होती है। और दोनों सम्पात बिन्दुओं में बंधा हुआ सूत्र प्राच्यपर सूत्र कहलाता है। वह स्वदेश और स्व निरक्ष देश के भूगर्भ प्रदेश में एक ही होता है और भूपृष्ठ में भिन्न होता है। सूर्य अपने अहोरात्रवृत्त में भ्रमण करता है। पूर्वाह्ण में इष्टउन्नत घटिकाओं पर सममण्डल और अहोरात्रवृत्त का जितना अन्तर होता है, अपराह्ण में भी उतनी घटी में वही अन्तर रहता है। इस लिए छायाग्र विन्दुओं से दिग्ज्ञान होता है। वह अन्तर तात्कालिक रविक्रान्ति के अन्तर के समान होता है। उसके जानने के लिए क्रान्तिज्याओं का अन्तर करके अग्रान्तर के लिए अनुपात किया—

$$\text{लम्बज्या} : \text{त्रि} :: \text{क्रांअ} = \frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांअ}}{\text{लंज्या}} = \text{अग्रान्तर} ।$$

$$\text{त्रि} : \text{अग्रान्तर} :: \text{छाक} = \frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांअ} \times \text{छाक}}{\text{त्रि} \times \text{लंज्या}} = \frac{\text{क्रांअ} \times \text{छाक}}{\text{लंज्या}}$$

=अङ्गुलात्मक फल। उत्तरायण में उत्तर में रवि जाने पर शङ्कुच्छाया दक्षिण होती है इस लिए प्राप्त अङ्गुलों से उत्तर में पूर्व दिशा चालित करने से स्पष्ट होती है। इस प्रकार तत्कालापमजीवयोस्तु*— इत्यादि उपपन्न हुआ।

यहां स्वल्पान्तर से एक दिन में, यदि सूर्यक्रान्ति स्थिर मानी जाय तो इष्ट उन्नत घटिकाओं पर पूर्वाह्न में सममण्डल के साथ अहोरात्र वृत्त का जो अन्तर है वही अन्तर उतनी ही इष्टघटिकाओं पर अपराह्न में भी होता है। छायाप्रवेश काल में छायाग्र— पूर्वापर रेखान्तररूप ज्यात्मक भुज जो होता है वही छाया निर्गम काल में भी होता है क्योंकि — छायाकर्ण तुल्य रहता है और क्रान्ति स्थैर्यवश अग्रा भी समान रहती है। इस लिए भुजाग्रपर जो रेखा की जायगी वह क्षितिज केन्द्रग पूर्वापर— रेखा के समानान्तर— पूर्वापर रेखा रूप होगी। इसकारण छायाप्रवेश और निर्गम बिन्दु गोल युक्ति से पूर्वापर बिन्दु होते हैं—

दोनों अयनों के समीप में क्रान्तिगति न्यून होने से यह कर्म ठीक होता है। अन्य दिनों में छाया प्रवेश-निर्गम कालाग्र-बिन्दु के वैषम्य से भुज साम्य न होने से उन बिन्दुओं में गत रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा के समानान्तर नहीं होती इसीलिए आचार्य ने यहां भुजान्तरों के वश से स्फुट पूर्वापरा का साधन किया है। परन्तु भुजान्तरों का दान वृत्तपरिधि में असङ्गत होता है—इसलिए स्पष्ट पूर्व दिशा की सिद्धि नहीं होती। वास्तव में प्रवेश-निर्गम बिन्द्वन्तर व्यास कृत वृत्तमें

---

* श्रीपति ने अपने सिद्धान्तशेखर में यही विधि लिखी है।

छायानिर्गमनप्रवेशसमयार्कक्रान्तिजीवान्तरं
क्षुण्णं स्वश्रवणेन लम्बकहृतं स्यादंगुलाद्यं फलम्।
पश्चाद्बिन्दुमनेन स्व्ययनतः संचालयेद्व्यत्ययात्
स्पष्टा प्राच्यपराश्रवायनवशात्प्राग् बिन्दुमुत्सारयेत्॥

स्थूल पूर्वा से पूर्णाज्यारूप भुजान्तर दान से जो विन्दु हो उस पर स्थूल पश्चिम दिग्बिन्दु से जो रेखा बढ़ाई जायगी वह पूर्वापर रेखा के सदृश होगी ॥ ८–६ ॥

इदानीमेतत्सम्बन्धमाह ।

दिक्सूत्रसंपातगतस्य शङ्को-
श्छायाग्रपूर्वापरसूत्रमध्यम् ।
दोर्दोःप्रभावर्गवियोगमूलं
कोटिर्नरात् प्रागपरा ततः स्यात् ॥ १० ॥

अत एव दिक्संपातस्थस्य शङ्कोर्भाग्रं यत्र पतति तस्य पूर्वापरसूत्रस्य च तदन्तरं स दोरित्युच्यते । दोश्छायो-र्वर्गान्तरपदं पूर्वापरा कोटिरिति ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व और पश्चिम बिन्दु, दक्षिण और उत्तर विन्दुगत सूत्र के संपात में स्थापित शङ्कु के छायाग्र और प्राच्यपर सूत्र का अन्तर भुज होता है । छायावर्ग और भुज का वर्गान्तर मूल, पूर्वापर कोटि होती है ॥ १० ॥

इदानीं छायातः कर्णं कर्णाच्छायां चाह ।

भाकृतीनकृतिसंयुतेः पदं
स्याच्छ्रुतिः श्रुतिकृतीनवर्गयोः १४४ ॥
अन्तराद्रवियुतोनकर्णयो-
राहतेश्च यदि वा पदं प्रभा ॥ ११ ॥

छायावर्गाद्द्वादशवर्ग १४४ युतान्मूलं कर्णः । कर्ण-वर्गाद्द्वादशवर्गो १४४ नान्मूलं छाया । अथवा कर्णो द्विष्ठः । एकत्र द्वादशभिरूनोऽन्यत्र युतस्तयोर्घातान्मूलं छाया । अस्योपपत्तिर्गणिते कथिता ।

भाषाभाष्य।

छायावर्ग और द्वादशवर्ग के योग का मूल कर्ण होता है। कर्ण-वर्ग में द्वादशवर्ग घटाकर मूल छाया होती है। अथवा, कर्ण में द्वादश एक स्थान में जोड़कर दूसरे में घटाकर दोनों के गुणन का मूल छाया होती है।

यहां 'वर्गान्तरं योगान्तरघातसमम्।' इस सिद्धान्त से उपपत्ति स्पष्ट है॥ ११॥

इदानीं संज्ञाविशेषानाह।

शङ्कुर्नरो ना कथितः स एव
खार्धाद्रवेर्या विषुवद्दिनार्धे।
नतिः पलोऽक्षश्च स एव तज्ज्ञै-
स्तत्रोन्नतिर्यास्य स एव लम्बः॥ १२॥

स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

शङ्कु, नर, ना ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं। विषुवद्दिन के मध्याह्न में खमध्य से जो सूर्य का नतांश है—उसको पलांश अथवा अक्षांश कहते हैं। और जो क्षितिज से उन्नतांश है वह लम्बांश कहलाता है।

यहां उपपत्ति गोल में स्पष्ट ही है॥ १२॥

इदानीमक्षक्षेत्राण्याह।

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलोना
कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां
विद्येव मानार्थयशःसुखानाम्॥ १३॥
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा
भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभज्या।

कुज्या भुजः कोटिरपक्रमज्या
कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम् ॥ १४ ॥
तथैव कोटिः समवृत्तशङ्कु-
रग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्णः ।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः
कुज्योनिता तद्धृतिरत्र कोटिः ॥ १५ ॥
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटि-
रुद्वृत्तना दोः श्रवणोऽपमज्या ।
उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्र-
खण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या ॥ १६ ॥
खण्डं यदूर्ध्वं समवृत्तशङ्को-
र्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णौ ।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ
क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत् ॥ १७ ॥

अत्र किल निरक्षदेशे यदेव विषुवन्मण्डलं तदेव सममण्डलम् । तथा क्षितिजादन्यदुन्मण्डलं नाम वलयं नास्ति । तत्र ध्रुवौ च क्षितिजासक्तौ । अथ निरक्षदेशाद् द्रष्टा यथा यथोत्तरतो गच्छति तथा तथोदग्ध्रुवमुन्नतं पश्यति । तथा यैर्भागैर्ध्रुव उन्नतस्तैरेव भागैरक्षसंज्ञैः खस्वस्तिकाद्दक्षिणतो विषुवन्मण्डलं नतं पश्यति विषुवन्मण्डलस्य तिर्यक्स्थितत्वात् तदाश्रितान्यहोरात्रवृत्तानि स्वस्थाने तिरश्चीनानि भवन्ति । अतः साक्षे देशे खगोलवलयानां तिरश्चीनभगोलवलयानां च संपातात् त्र्यस्राणि क्षेत्राण्युत्पद्यन्ते । तान्यक्षक्षेत्रसंज्ञान्युपयोगित्वात् कथ्यन्ते ।

अक्षभा नाम पलभा प्रसिद्धा सा भुजः । द्वादशाङ्गु-

लशङ्कुः कोटिः। अक्षकर्णस्तत्र कर्णः। इदं तेषामक्षक्षेत्राणां वक्ष्यमाणानां मूलम्। केषां किमेवेत्याह। विद्येव मानार्थयशःसुखानामिति। अन्यैरप्येवमुच्यते।

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य हेतुविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥

अथान्यत् क्षेत्रम्। क्षेत्रदर्शनार्थं यथोक्तं खगोलं भगोलं च बद्धा क्षेत्राणि दर्शयेत्। तत्र दक्षिणोत्तरमण्डले विषुवद्वृत्तसंपातादधो यावांल्लम्बः क्षितिजसमसूत्रपर्यन्तः सा तत्र कोटिः लम्बनिपातकुमध्ययोरन्तरं साक्षज्या तत्र भुजः। भूमध्याल्लम्बाग्रगामि सूत्रं त्रिज्या सा तत्र कर्णः। इदमप्यक्षक्षेत्रम्।

इष्टाहोरात्रवृत्तं यत्र क्षितिजे लग्नं तस्य प्राक्स्वस्तिकस्य चान्तरमग्राचापांशाः। तेषां ज्याग्रा। तावती च प्रत्यक्क्षितिजे। अग्राग्रयोर्निबद्धं सूत्रमुदयास्तसूत्रम्। अहोरात्रवृत्तोन्मण्डलसंपातस्य प्राच्यपरसूत्रस्य च यदन्तरं सा क्रान्तिज्या। सा तत्र कोटिः। अग्रा कर्णः। तदग्रयोरन्तरं सा कुज्या। स भुजः। इदमक्षक्षेत्रम्।

तथाहोरात्रवृत्तसममण्डलसंपातादधोऽवलम्बः समवृत्तशङ्कुः। सा कोटिः। अग्राभुजः। अहोरात्रवृत्ते ज्याखण्डकं तद्धृतिः कर्णः। इदमक्षक्षेत्रम्।

तथा कुज्योनिता तद्धृतिरहोरात्रवृत्ते ज्यार्धं सा कोटिः। उन्मण्डले क्रान्तिज्या स भुजः। समवृत्तशङ्कुः कर्णः। इदमक्षक्षेत्रम्। तथाहोरात्रोन्मण्डलयोः संपातादवलम्ब उन्मण्डलशङ्कुः स भुजः। उन्मण्डले क्रान्तिज्या कर्णः।

उन्मण्डलशङ्कुमूलस्य प्राच्यपरसूत्रस्य च यदन्तरं तद्ग्रादिखण्डं सा तत्र कोटिः । इदमक्षक्षेत्रम् ।

तथोन्मण्डलशङ्कुः कोटिः। शङ्कुमूलोदयास्तसूत्रयोरन्तरमग्राग्रखण्डं स भुजः। कोटिभुजाग्रयोरन्तरसूत्रं सा कुज्या । स तत्र कर्णः । इदमक्षक्षेत्रम् ।

तथोन्मण्डलशङ्कुना हीनः समशङ्कुस्तत् समशङ्कोरूर्ध्वं खण्डं सा कोटिः । कुज्योना तद्धृतिस्तद्धृतेरूर्ध्वखण्डं स कर्णः । अग्रादिखण्डं स भुजः। इदमक्षक्षेत्रम् ।

एतान्यष्टौ तावत् कथितानि एवमन्यान्यपि भवन्ति ।

भाषाभाष्य ।

अक्षांशवाले देशों में, तिरछे भगोलीय और खगोलीय वृत्तों के संपात से, चापीय त्रिभुज कई प्रकार के बनते हैं। उनको साक्ष देश में होने से अक्षक्षेत्र कहते हैं । यहां आठ अक्षक्षेत्र लिखे हैं । ऐसे ही कल्पनावश और भी उत्पन्न होते हैं । ये सब दृग्गोल में देखने से स्पष्ट प्रतीत होते हैं ।

अक्षक्षेत्रों के नाम इस प्रकार हैं—

	भुज,	कोटि,	कर्ण ।
(१)	पलभा,	द्वादश,	अक्षकर्ण ।
(२)	अक्षज्या,	लम्बज्या,	त्रिज्या ।
(३)	कुज्या,	क्रान्तिज्या,	अग्रा ।
(४)	अग्रा,	समशङ्कु,	तद्धृति ।
(५)	क्रान्तिज्या,	कुज्योनतद्धृति,	समशङ्कु ।
(६)	उन्मण्डलशङ्कु,	अग्रादिखण्ड,	क्रान्तिज्या ।

(७) अग्राग्रखण्ड, उन्मण्डलशङ्कु, कुज्या।

(८) अग्रादिखण्ड, समशङ्कु का ऊर्ध्वखण्ड, तद्धृति का ऊर्ध्व खण्ड ये आठों क्षेत्र गोल में देखने चाहिए। इनका एक क्षेत्र गोलाध्याय में लिखा है ॥ १३-१७ ॥

इदानीमेषां साधनान्याह।

एषामथैकस्य च बाहुकोटी-
कर्णैर्मिथोऽन्यान्यनुपाततः स्युः।

एषां क्षेत्राणामेकस्य दोः कोटिकर्णैः परस्परमन्यानि भवन्ति।

भाषाभाष्य।

इन अक्षक्षेत्रों में, एक के भुज, कोटि और कर्ण जानकर, परस्पर में अनुपातद्वारा दूसरे क्षेत्र के भी भुज-कोटि-कर्ण सिद्ध होजाते हैं।

उपपत्ति।

सब अक्षक्षेत्र सजातीय हैं। इसलिए अनुपात की प्रवृत्ति होती है। त्रिज्या कर्ण में अक्षज्या भुज है। इसलिए, $\text{त्रि}^2 - \text{अक्षज्या}^2 = \text{लंज्या}^2 \therefore \sqrt{\text{लंज्या}^2} = \text{लंज्या}$।

$$\therefore \text{लंज्या} : \text{अक्षज्या} :: १२ = \frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{लंज्या}} = \text{पलभा}।$$

इसी प्रकार, सब साधन जानना चाहिए। आगे यह साधन सविस्तर लिखा है ॥

इदानीं तथाह।

त्रिज्ये पृथक् कोटिभुजाहते ते
कर्णोद्धृते लम्बपलज्यके स्तः ॥ १८ ॥
तत्कार्मुके लम्बपलौ च तज्ज्ये
दोःकोटिजीवावद्वतो मिथो वा।

अक्षज्यका कोटिगुणा भुजाप्ता
लम्बज्यका वाक्षगुणोऽन्यथातः ॥ १६ ॥

तत्र त्रिज्या सप्तसु स्थानेषु सप्तभिः कोटिभिर्गुण्या । स्वकीयेन स्वकीयेन कर्णेन पृथक् पृथग्भाज्या । एवं सप्तधा लम्बज्या भवति । अथ सप्तधा त्रिज्या भुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या । सप्तधाक्षज्या भवति । लम्बज्याक्षज्ययोर्धनुषी कार्ये । तौ लम्बाक्षौ स्तः । लम्बोत्क्रमजीवयोना त्रिज्याक्षज्या स्यात् । अक्षोत्क्रमजीवयोना त्रिज्या लम्बज्या स्यात् । त्रिज्यावर्गात् पृथक् पृथक् लम्बाक्षज्यावर्गोनान्मूले अक्षलम्बज्ये वा । अक्षज्या सप्तसु स्थानेषु सप्तभिः कोटिभिर्गुण्या स्वस्वभुजेन भाज्या सप्तधा लम्बज्या भवति । सप्तधा लम्बज्या सप्तभिर्भुजैर्गुण्या स्वस्वकोट्या भक्ता सप्तधाक्षज्या स्यात् ।

भाषाभाष्य ।

त्रिज्या को अलग अलग सातों कोटि और भुजों से गुणाकर निज कर्णों का भाग देने से सात प्रकार से लम्बज्या और पलज्या सिद्ध होती है । उनके धनु लम्ब और पल होते हैं । अक्षज्या को कोटिज्याओं से गुणा कर भुजज्याओं का भाग देने से, सात प्रकार से लम्बज्या और उससे अक्षज्या भी सिद्ध होती है ॥ १८–१६ ॥

इदानीमन्यदाह ।

क्रान्तिज्यके कर्णगुणे विभक्ते
कोट्या भुजेनाप्तमिताग्रका स्यात् ।
आद्यं द्वितीयं समशङ्कुरेष
स्यात् तद्धृतिः कोटिहृतः श्रुतिघ्नः ॥ २० ॥

क्रान्तिज्या अक्षक्षेत्रकर्णेन गुणिता द्विःस्थाप्या। एकत्र स्वकोट्या भक्ता सत्यग्रा भवति। अन्यत्र स्वभुजेन भक्ता तत्र समशङ्कुः। एवं सप्तभिः कर्णैः सप्तधाग्रा सप्तधा च समशङ्कुर्भवति। एष शङ्कुः सप्तभिः कर्णैर्गुणितः स्वस्वकोटिभक्तः सप्तधा तद्धृतिर्भवति।

भाषाभाष्य।

क्रान्तिज्या को अक्षक्षेत्र के कर्णों से गुणाकर, एक स्थान में निज कोटि और दूसरे स्थान में भुज का भाग देने से क्रम से अग्रा और समशङ्कु होते हैं। इस समशङ्कु को कर्णों से गुणाकर स्वकोटिका भाग देने से तद्धृति होती है।

यहां भी सात प्रकार से अग्रा और तद्धृति उक्त रीति से सिद्ध होती हैं॥ २०॥

इदानीमन्यदाह।

कर्णेन निघ्नी पृथगग्रका वा

भुजेन भक्ता खलु तद्धृतिः स्यात्।

अग्रका सप्तधा सप्तभिः कर्णैर्गुण्या स्वस्वभुजेन भाज्या सप्तधा वा तद्धृतिर्भवति।

भाषाभाष्य।

अथवा—अग्रा को अलग रखकर कर्णों से गुणाना और भुजों का भाग देना तब तद्धृति होगी।

यहां भी सातों कर्णों से गुणाकर सातों भुजों का भाग देने से सात प्रकार से तद्धृति सिद्ध होगी।

इदानीमन्यदाह।

कोट्या हता तद्धृतिरग्रका च

कर्णेन दोष्णा क्रमशो विभक्ता॥ २१॥

द्विधा भवेद्वा समवृत्तशङ्कुः
स दोर्गुणः कोटिहृतोऽग्रका वा ।

सप्तधा तद्धृतिः सप्तभिः कोटिभिर्गुण्या स्वस्वकर्णैर्भाज्या सप्तधा समशङ्कुर्भवति । एवं सप्तधाग्रा सप्तभिः कोटिभिर्गुण्या स्वस्वभुजेन भक्ता । एवं वा सप्तधा समशङ्कुर्भवति । स समशङ्कुः सप्तधा सप्तभिर्भुजैर्गुण्यः स्वस्वकोट्या भक्तः सप्तधाग्रा वा भवति ।

भाषाभाष्य ।

तद्धृति और अग्रा को कोटि से गुणाकर कर्ण और भुज का क्रम से भाग देने से, दो प्रकार से समवृत्तशङ्कु होता है । उसको भुज से गुणाकर कोटि का भाग देने से अग्रा होती है ।

यहां भी सात प्रकार की कोटियों से गुणाकर सात प्रकार के भुजों का भाग देने से सात प्रकार से समशङ्कु होता है । ऐसे ही उससे सात विधि की अग्रा होती है ॥ २१ ॥

इदानीमन्यदाह ।

कोट्युद्धृतं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं
श्रुत्या हतं वा समवृत्तशङ्कुः ॥ २२ ॥

कुज्योनिता तद्धृतिस्तत् तद्धृत्यूर्ध्वखण्डम् । तत् सप्तधा सप्तभिः कर्णैर्गुण्यं स्वस्वकोट्या भक्तं सप्तधा वा समशङ्कुर्भवति ।

भाषाभाष्य ।

अथवा —तद्धृति के ऊपरी भाग को कर्ण से गुणाकर कोटि का भाग देने से, समवृत्तशङ्कु होता है ॥ २२ ॥

इदानीमन्यदाह ।

द्विधापमज्या भुजकोटिनिघ्नी
कोट्या च दोष्णा विहृताद्यमासम् ।

कुज्या परं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं
स्यात् तद्धृतिः संयुतिरेतयोर्वा ॥ २३ ॥

सप्तधापमज्या सप्तधा भुजैर्गुण्या स्वस्वकोट्या भक्ता सप्तधा वा कुज्या भवति । अथ सप्तधापमज्या सप्तधा कोटिभिर्गुण्या स्वस्वभुजेन भाज्या सप्तधा तद्धृतेरूर्ध्वं खण्डं भवति । कुज्योर्ध्वखण्डयोर्योगस्तद्धृतिरित्यष्टनवतिर्भेदा भवन्ति ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिज्या को दो स्थान में रखकर भुज और कोटि से गुणाकर, भुज और कोटि का भाग देने से क्रम से कुज्या और तद्धृति का ऊर्ध्वखण्ड होता है । कुज्या और तद्धृति के ऊर्ध्वखण्ड का योग करने से तद्धृति होती है ।

उपपत्ति ।

$$\text{अग्रा}=\frac{\text{क्रां.पक}}{\text{द्वा}} \mid \frac{\text{क्रां.त्रि}}{\text{लं}} \mid \frac{\text{क्रां.त}}{\text{सशं}} \ldots\ldots 7$$

$$\text{समशङ्कु}=\frac{\text{क्रां.पक}}{\text{वि}} \mid \frac{\text{क्रां.त्रि}}{\text{प}} \mid \frac{\text{क्रां.त}}{\text{अग्रा}} \ldots\ldots 7$$

प्रत्येक रूप के ग्रहण करने से

$$\left(\frac{\text{क्रां.पक}}{\text{द्वा}}\right)^2+\left(\frac{\text{क्रां.पक}}{\text{वि}}\right)^2=\text{त}^2 \therefore \text{तद्धृति}$$

$$\left(\frac{\text{क्रां.पक}}{\text{द्वा}}\right)^2+\left(\frac{\text{क्रां.त्रि}}{\text{प}}\right)^2=\text{त}^2 \therefore \text{तद्धृति} \ldots 7\times 7=49$$

$$\text{कुज्या}=\frac{\text{क्रां.वि}}{\text{द्वा}} \mid \frac{\text{क्रां.प}}{\text{लं}} \ldots\ldots 7$$

$$\text{तद्धृत्यूर्ध्वखण्ड}=\frac{\text{क्रां.द्वा}}{\text{वि}} \mid \frac{\text{क्रां.लं}}{\text{प}} \ldots\ldots 7$$

रूप लेने से

$$\frac{\text{क्रां.वि}}{\text{द्वा}} + \frac{\text{क्रां.द्वा}}{\text{वि}} = \text{त} \,।\, \frac{\text{क्रां.वि}}{\text{द्वा}} + \frac{\text{क्रां.लं}}{\text{प}} = \text{त} \;\ldots\ldots\; \frac{\text{४६}}{\text{६८}}$$

इस प्रकार सब भेद सिद्ध हुए ॥ २३ ॥

इदानीमन्यदाह ।

कुज्यापमज्ये भुजकोटिनिघ्न्यौ
कर्णोद्धृते स्यात् क्रमशो यदासम् ।
अग्राग्रखण्डं प्रथमं द्वितीय-
मग्रादिखण्डं च तदैक्यमग्रा ॥ २४ ॥

कुज्या सप्तधा भुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या सप्तधा-ग्राग्रखण्डं भवति । एवं क्रान्तिज्या सप्तधा कोटिभिर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या । सप्तधाग्रादिखण्डं भवति । खण्डयोर्युतिः प्राग्वदनेकधाग्रा भवति ।

भाषाभाष्य ।

कुज्या और क्रान्तिज्या को भुज और कोटि से गुणाकर कर्ण का भाग देने से क्रमसे पहला फल अग्राग्रखण्ड और दूसरा अग्रादि-खण्ड होता है । इन दोनों के योग से अग्रा, पूर्वरीति के अनुसार, अनेक प्रकार से होती है ॥ २४ ॥

इदानीमन्यदाह ।

अग्रादिखण्डं च तथापमज्या
भुजाहते ते क्रमशो विभक्ते ।
कोटिश्रुतिभ्यामुभयत्र शङ्कु-
रुन्मण्डलस्थे रविमण्डले स्यात् ॥ २५ ॥

अग्रादिखण्डं सप्तधा भुजैर्गुण्यं स्वस्वकोट्या भाज्यं सप्तधोन्मण्डलशङ्कुर्भवति । एवमपमज्या सप्तधा भुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या सप्तधोन्मण्डलशङ्कुर्भवति ।

भाषाभाष्य ।

अग्रादिखण्ड और क्रान्तिज्या को भुजों से गुणाकर कोटियों का भाग देने से उन्मण्डल शङ्कु होता है । और क्रान्तिज्या को भुजों से गुणाकर कोटियों का भाग देने से भी उन्मण्डल शङ्कु होता है ।

उन्मण्डल के प्रवेश में रवि होने से जो शङ्कु होता है उसको उन्मण्डल शङ्कु कहते हैं । ऐसे ही सममण्डलशङ्कु आदि की बात है ॥ २५ ॥

इदानीमन्यदाह ।

अग्राग्रखण्डं क्षितिशिञ्जिनी च
कोट्या हते दोःश्रवणोद्धृते स्तः ।
उद्वृत्तशङ्कू समना तदूनः
स्यादूर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोः ॥ २६ ॥

अग्राग्रखण्डं सप्तधा कोटिभिर्गुण्यं स्वस्वभुजेन भाज्यं सप्तधावोन्मण्डलशङ्कुर्भवति । एवं कुज्या सप्तधा कोटिभिर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या । एवं सप्तधा वो-न्मण्डलशङ्कुर्भवति । तेनोन्मण्डलशङ्कुना रहितः सममण्डलशङ्कुस्तस्योर्ध्वं खण्डं स्यात् ।

भाषाभाष्य ।

अग्राग्रखण्ड और कुज्या को अक्षक्षेत्र की कोटियों से गुणाकर क्रम से भुज और कर्णों का भाग देने से, उन्मण्डलशङ्कु होता है । उसको सममण्डलशङ्कु में घटा देने से समशङ्कु का ऊपर का खण्ड होता है ।

इदानीमन्यदाह ।

अग्रा भुजघ्नी श्रुतिहृत् क्षितिज्या
तदूनिता तद्धृतिरूर्ध्वखण्डम् ।

अग्रा सप्तधा भुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या सप्तधा

कुज्या स्यात् । कुज्योनिता तद्धृतिस्तदूर्ध्वखण्डं स्यात् ।

भाषाभाष्य ।

अग्रा को भुजों से गुणाकर, निजकर्णों का भाग देने से सात प्रकार से कुज्या अलग अलग सिद्ध होती है । कुज्या को तद्धृति में घटा देने से तद्धृति का ऊपरी भाग शेष रहता है ।

इदानीमन्यदाह ।

ज्ञाताच्च साध्यादितरे भवन्ति
यद्वा गुणच्छेदविपर्ययेण ॥ २० ॥
दोःकोटिवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्यात्
तत्कोटिवर्गान्तरतः पदं दोः ।
दोः कर्णवर्गान्तरतश्च कोटि-
र्द्वाभ्यां तृतीया यदि वा स्युरेवम् ॥ २८ ॥

प्रभा ।

साध्यात् यत्प्रकारेण यदानयनं कृतं तस्माज्ज्ञातमानात् गुणकहरयोर्व्यस्तासेन, यद्वा प्रकारान्तरेण इतरे पदार्थाः भवन्ति । यथा अग्रा भुजगुणा, कर्णभक्ता कुज्या स्यात्तत्र कुज्या कर्णगुणा भुजभक्ताग्रा स्यादित्येवं गुणच्छेदविपर्ययो ज्ञेयः । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

अनुपात में क्षेत्र के ज्ञात अवयवों के गुणक और भाजक को उलट देने से दूसरे अवयव ज्ञात होते हैं ।

भुजवर्ग और कोटिवर्ग का योगमूल कर्ण होता है । कर्णवर्ग में कोटिवर्ग घटा देने से मूल भुज और ऐसे ही कर्णवर्ग में भुजवर्ग घटाने से मूल कोटि होती है । इस प्रकार दो पदार्थ जानकर तीसरा जाना जाता है ॥ २८ ॥

इदानीमुपसंहारश्लोकमाह ।

त्रिषष्टिरत्रानयनप्रभेदा-

स्तावत्स्युरेवं पललम्बसौर्व्योः ।
अग्रादिकानां शतशः प्रभेदै-
र्लम्बादयोऽपि स्युरनन्तभेदाः ॥ २९ ॥
बहुप्रकारप्रतिपादनार्थमिदम् ।
इति लम्बाक्षज्याग्रादिभेदप्रकरणम् ॥

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार यहां अक्षज्या और लम्वज्या के ६३ भेद होते हैं । और अग्रा आदि के भेदों से लम्बादिकों के भी अनन्त भेद होते हैं ।

उपपत्ति ।

'त्रिज्ये पृथक् कोटिभुजाहते ते—' इत्यादि प्रकार से सात तरह से लम्बज्या और अक्षज्या सिद्ध होती है फिर 'अक्षज्यका कोटि-गुणा भुजाप्ता—' इत्यादि प्रकार से लम्बज्या और अक्षज्या के प्रत्येक रूप लेने से उनके उनचास २ भेद होते हैं । फिर पूर्वोक्त सात भेद लेने से छप्पन भेद होते हैं और 'तत्कोटिवर्गान्तरतः पदं—' इत्यादि रीति से उनके सात भेद और होते हैं; यों अक्षज्या और लम्बज्या के तिरसठ भेद हुए ॥ २९ ॥

इदानीं दिङ्नियमेन छायानयनं विवक्षुरादौ कोण-शङ्कोरानयनमाह ।

अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गात्११८१९८४४
त्यक्त्वा पदं तदिह कोणनरोऽक्षभाघ्नः ।
अर्को१२द्धृतः फलयुजाऽसकृदग्रयासौ
सौम्ये फलेन वियुजा तु तया प्रसाध्यः ॥ ३० ॥

त्रिज्याया वर्गादग्रावर्गेण द्विगुणितेनोनाद्यन्मूलं स किल कोणशङ्कुः स्थूलो भवति । स पलभया गुण्यो द्वादश १२ भक्तो यत् फलं तेन युताग्रा कार्या । ताय-

ग्रया पुनः शङ्कुः साध्यः । तस्मादपि पुनः फलम् । पुन-स्तेन युतयाग्रया स साध्यः । यावदविशेषः । एवं या-म्यगोले । सौम्ये तु फलस्याग्रायाश्च यदन्तरं तामग्रां प्रकल्प्यासकृत् साध्यः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र कोणवृत्तस्थस्यार्कस्य सममण्डलेन सह यावदन्तरं ज्यारूपं स भुजः । तावदेव याम्योत्तर-मण्डलेन सहान्तरं भवति । सा कोटिः । तद्वर्गयोगपदं खमध्यार्कान्तरभागानां ज्या सा दृग्ज्या । एवं भुजवर्गो द्विगुणो दृग्ज्यावर्गो भवति । स दृग्ज्यावर्गस्त्रिज्यावर्गा-द्यावद्विशोध्यते तावच्छङ्कुवर्गोऽवशिष्यते । अतस्तन्मूलं कोणशङ्कुर्भवति । किन्त्वत्र भुजो न ज्ञायते तज्ज्ञानं वक्ष्यमाणविधिना । अथाक्षभाघ्नो नरोऽर्कहृदित्यादिना । अतः शङ्कुः पलभया गुण्यते द्वादशभिर्ह्रियते । फलं शङ्कुतलं दक्षिणं स्यात् । स्वाग्रास्वशङ्कुतलयोर्याम्यगोले योगः सौम्ये त्वन्तरं भुजो भवति । अत्र कोणशङ्कोरज्ञा-नाच्छङ्कुतलाज्ञानम् । केवलमग्रा ज्ञायते । सैव प्रथमं बाहुः कल्पितः । ततोऽग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गादित्यादिना यः शङ्कुरानीतः स स्थूलो जातः । अतोऽसकृद्विधिना सम्यग्भवति । यथा यत्र देशे यस्मिन् कालेऽग्राध्यर्धराशिज्यातो २४३१ ऽभ्यधिका भवति तत्र तदा याम्यगोले कोणशङ्कोरभावः । उत्तरगोले तु कोण-शङ्कुचतुष्टयमुत्पद्यत एकस्मिन् दिने । यत्र देशे सप्त-दशांगुला १७।५।२२ भ्यधिका विषुवती तत्रैवं भवति ।

भाषाभाष्य ।

अग्रा के वर्ग को द्विगुणित करके त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने

से कोणशङ्कु होता है। इस शङ्कु को पलभा से गुणाकर द्वादश १२ का भाग देने से फल शङ्कुतल होता है। उसको दक्षिण गोल में अग्रा में जोड़ने और उत्तर गोल में घटाने से भुज सिद्ध होता है। इस भुजरूप स्थूल अग्रा से असकृत्कर्म द्वारा कोणशङ्कु का साधन करना।

उपपत्ति।

(१) जिस प्रकार सममण्डल और अहोरात्रवृत्त के संपात में ग्रह होने से समशङ्कु उत्पन्न होता है, वैसेही कोणवृत्त और अहोरात्र वृत्त के संपात में रवि रहने से वहाँ से क्षितिज पर जो लम्ब होता है उसको कोणशङ्कु कहते हैं। उसके साधनार्थ उपाय—कोणवृत्त गत सूर्य का सममण्डल से जितना अन्तर रहता है उतनाही याम्योत्तर-मण्डल से भी रहता है। गोल देखो। सममण्डल से अन्तर भुज-रूप और याम्योत्तर से कोटिरूप होता है। क्योंकि शङ्कुमूल से दोनों लम्बरूप हैं इन दोनों का वर्गयोग मूल खमध्य से रविबिम्ब तक, कोणवृत्त दृङ्मण्डल में दृग्ज्या कर्णरूप है। यहां दोनों अन्तर समान होने से भुजवर्ग द्विगुणित दृग्ज्यावर्ग होता है क्योंकि समचतुरस्र क्षेत्र बनता है। उसको त्रिज्यावर्ग में घटाने से शङ्कुवर्ग रहता है। मूल लेने से कोणशङ्कु होता है।

यहां जो भुज माना है वह वास्तविक नहीं है। क्योंकि अग्रा और शङ्कुतल के योग और वियोग से भुज बनता है * यहां केवल अग्राही ज्ञात है। इसलिए कोणशङ्कु स्थूल सिद्ध हुआ है। सूक्ष्मता के लिए असकृत्कर्म किया है। अब शङ्कुतल के लिए अनुपात—

$$१२ : \text{पलभा} :: \text{शङ्कु} = \frac{\text{पल} \times \text{शङ्कु}}{१२} = \text{शङ्कुतल}।$$

---

* निरक्षदेश में शंकुतल के अभाव होनेसे केवल क्रान्तिज्या ही भुज होता है। उसी से उक्त विधि से कोणशंकु सिद्ध होसकता है।

∴ अग्रा = शङ्कुतल = भुज, उत्तर–दक्षिणगोल में । शङ्कुकोटि शङ्कुतल भुज और त्रिज्याकर्ण यह क्षेत्र बनता है ।

दक्षिणगोल में अग्नि और नैर्ऋत्यकोण में एकही कोणशङ्कु और उत्तरगोल में अक्षांशाधिक क्रान्ति में ईशान और वायुकोण में समान शङ्कु होता है । और क्रान्ति से अधिक अक्षांश में अग्नि और नैर्ऋत्य में समान होता है । परमक्रान्ति से अधिक अक्षांशवाले देश में सदा अग्नि और नैर्ऋत्य में ही उत्पन्न होता है । ईशान और वायु में नहीं । इसी प्रकार जहां अग्रा ४५° से अधिक होती है वहां दक्षिण और उत्तरगोल में ग्रहाधिष्ठित अहोरात्रवृत्त का प्रदेश क्षितिज लक्ष्य ही अग्नि और नैर्ऋत्यकोण में रहता है । इसलिए दक्षिणगोल में कोणशङ्कु का अभाव होताहै और उत्तरगोल में पहले ईशानी में शङ्कु, फिर समवृत्त प्रवेश में, उसके बाद अग्निकोण में, फिर मध्याह्न में उत्पन्न होता है, इस प्रकार चार शङ्कु होते हैं ।

(२) अथवा—

कोणशङ्कु = य

$$\text{द्वा} : \text{वि} :: \text{य} : \frac{\text{य. वि}}{\text{द्वा}} = \text{शङ्कुतल}।\ \text{अ} \pm \frac{\text{य. वि}}{\text{द्वा}} = \text{भुज}।$$

$$२\left(\text{अ} \pm \frac{\text{य. वि}}{\text{द्वा}}\right)^{२} = \text{दृ}^{२}।\ \text{त्रि}^{२} - \text{य}^{२} = \text{दृ}^{२}$$

$$\therefore \frac{\text{द्वा}^{२}.\ \text{अ}^{२} \pm २\ \text{य. द्वा. अ. वि} + \text{य}^{२}.\ \text{वि}^{२}}{\frac{१}{२}\ \text{द्वा}^{२}} = \text{त्रि}^{२} - \text{य}^{२}$$

समशोधन आदि से

$$\left(\frac{१}{२}\ \text{द्वा}^{२} + \text{वि}^{२}\right) \text{य}^{२} \pm २\ \text{य. द्वा. अ. वि} = \text{द्वा}^{२}\left(\frac{\text{त्रि}^{२}}{२} - \text{अ}^{२}\right)$$

$$\text{अथवा; } य^{2} \pm २\, य.\ \frac{द्रा.\ अ.\ वि}{\frac{१}{२}द्रा^{2} + वि^{2}} = \frac{द्रा^{2}\left(\frac{त्रि^{2}}{२} - अ^{2}\right)}{\frac{१}{२}द्रा^{2} + वि^{2}}$$

आद्य और पर संज्ञा करने से

$$य^{2} \pm २\, य.\ प = आ$$

फिर वर्ग समीकरण विधि से

$$य^{2} \pm २\, य.\ प + प^{2} = आ + प^{2}$$

$$\therefore\ य = \sqrt{आ + प^{2}} - प$$

यहां 'अव्यक्तमूलर्णग—' इसके अनुसार उत्तरगोल में आद्य के ऋण होने पर चार कोणशङ्कु और दक्षिण गोल में कोणशङ्कु का अभाव होगा। अतएव श्रीपति ने कहा है—

'अग्राकृत्याविहीनं त्रिगुणकृतिदलं वेदशक्रघ्नमाद्यः
सूर्याग्राक्षप्रभाणामभिहतिरपरो भक्तयोरक्षभायाः।
कृत्या द्व्यश्वाढ्ययासौ परकृतिसहितादाद्यतो यत्पदं स्या-
दन्येनाढ्यं विहीनं धनदयमककुब्गोलयोः कोणशङ्कुः॥
उत्तरेतरविदिङ्नरो भवेदुत्तरे तु पदहीनयुक् परः।
दक्षिणेन सममण्डलात्ततो भाश्रुतिश्च घटिकाश्च पूर्ववत्॥'

इस प्रकार इस आनयन का व्यभिचार जहाँ स्थूलभुज ४५ ज्यासे अधिक होगा वहाँ पर होगा। विशेष विवरण श्रीसुधाकर द्विवेदी कृत सूर्यसिद्धान्त टीका सुधावर्षिणी पृ. १२१–१२७ देखना चाहिए॥ ३०॥

इदानीं दिनार्धशङ्क्वर्थमाह।

स सौम्यगोलो भदलं यदाद्यं
याम्योऽपरं सायनभागभानोः।
क्रान्तेः ककुब् गोलवशेन वेद्या

सदाक्षलम्बाविह याम्यसौम्यौ ॥ ३१ ॥
पलावलम्बावपमेन संस्कृतौ
नतोन्नते ते भवतो दिवादले ।
लवादिकं वा नवतेर्विशोधितं
नतं भवेदुन्नतमुन्नतं नतम् ॥ ३२ ॥

स्पष्टार्थः प्रथमः श्लोकः । पलावलम्बावपमेन संस्कृताविति । अत्र किल विंशतिर्भागाः २० पलो दक्षिणः । लम्बः सप्तत्यंशाः ७० । स चोत्तरः । खार्धाद्विषुवन्मण्डलं दक्षिणतो विप्रकृष्टमतो दक्षिणोऽक्षः । क्षितिजा-दुत्तरतो विषुवद्वृत्तमतो लम्बस्योत्तरसंज्ञा । अत्र सम-दिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरं संस्कार उच्यते । अत्र किल रवेरुत्तरोऽपमो द्वादशभागाः १२ । अनेनापमेन संस्कृतौ पललम्बौ जाते नतोन्नते ८ । ८२ । यदापम उत्तरश्चतु-र्विंशतिर्भागाः २४ । तदापमाच्छुद्धेऽक्षे जातं नतमुत्तर-म् ४ । लम्बे च संस्कृते जातमुत्तरमुन्नतम् ६४ । एतदर्था-न्नवतेरधिकत्वात् साशीतिशता १८० च्छोधितमुन्नतं स्यात् । लवादिकं वा नवतेर्विशोधितमित्यतो वा ।

भाषाभाष्य ।

मेषादि छ सायन राशियों का उत्तर गोल और तुलादि छ राशियों का दक्षिण गोल नाम है । गोल क्रम से क्रान्ति की दिशा जानी जाती है । अक्षांश और लम्बांश क्रम से सदा दक्षिण और उत्तर होते हैं ।

अक्षांश और लम्बांश में क्रान्ति का संस्कार करने से, दिनार्ध में क्रमसे नतांश और उन्नतांश होते हैं । अथवा, अंशादि नतांश को नब्बे ९० अंश में घटा देने से उन्नतांश और उन्नतांश को घटाने से नतांश होते हैं ।

यहां नत और उन्नत का उदाहरण ऊपर भाष्य में स्पष्टही है ॥ ३१–३२ ॥

इदानीं शङ्कुंदृग्ज्यां चाह ।

नतांशजीवा भवतीह जीवा
दिनार्धशङ्कुश्च तथोन्नतज्या ।

इह मध्याह्ने नतांशानां जीवा दृग्ज्या स्यात् । तथोन्नतांशानां ज्या स दिनार्धशङ्कुः । वासनात्र सुगमा ।

भाषाभाष्य ।

मध्याह्नकाल में नतांशों की ज्या दृग्ज्या होती है और उन्नतांशों की ज्या दिनार्धशङ्कु होता है ।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह ।

त्रिभज्यकोन्मण्डलशङ्कुघाता-
चरज्ययाप्तं खलु यष्टिसंज्ञम् ॥ ३३ ॥
युतोनितोदृवृत्तनरेण यष्टिका
भवेदुदग्दक्षिणगोलयोर्नरः ।

उन्मण्डलशङ्कौ त्रिज्यया गुणिते चरज्यया भक्ते यल्लब्धं सा यष्टिः स्यात् । सा यष्टिरुत्तरगोल उन्मण्डलशङ्कुना युक्ता दक्षिणे हीना सती दिनार्धशङ्कुर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः । क्षितिजोन्मण्डलयोर्मध्ये चरकालः । तस्य ज्याक्षकर्णवत्तिर्यग्रूपा । सा चरज्या । उन्मण्डलादूर्ध्वं याम्योत्तरवृत्तं यावद्यः कालः स सदैव सर्वत्र पञ्चदशघटिकात्मक एव । तस्य कालस्य ज्या त्रिज्या । इदानीमनुपातः । यदि चरज्ययोन्मण्डलशङ्कुतुल्यमूर्ध्वं लभ्यते तदोन्मण्डलादूर्ध्वकालज्यया त्रिज्यया किमिति । फलमुन्मण्डलशङ्कु समसूत्रादुपर्यूर्ध्वरूपं भवति । तस्य

यष्टिसंज्ञा कृता । सा यष्टिरुन्मण्डलशङ्कुनोत्तरगोले युता दिनार्धशङ्कुः स्यादित्युपपन्नम् । दक्षिणगोले तून्मण्डलस्याधःस्थितत्वाद्धीना ।

भाषाभाष्य ।

उन्मण्डलशङ्कु को त्रिज्या से गुणाकर चरज्या का भाग देने से फल यष्टि होती है । उसको उन्मण्डलशङ्कु में, उत्तर गोल में जोड़ने और दक्षिण में घटाने से दिनार्धशङ्कु होता है ।

उपपत्ति ।

क्षितिज और उन्मण्डल के बीच में चरकाल माना है, उसकी ज्या पलकर्णों की तरह तिरछी होती है । यह प्रसिद्ध है । उन्मण्डल के ऊपर याम्योत्तरवृत्त तक सदा पन्द्रह १५ घटिका रहती हैं । उनकी ज्या त्रिज्या होती है । अनुपात किया—यदि चरज्या में उन्मण्डलशङ्कु मिलता है तो उक्त त्रिज्या में क्या ? $= \frac{\text{उंश} \times \text{त्रि}}{\text{चज्या}}$, फल, उन्मण्डलशङ्कु समान धरातल में याम्योत्तर वृत्त से लम्ब हुआ । इसकी यष्टि संज्ञा की है * । इसको उत्तर गोल में उन्मण्डलशङ्कु में जोड़ने

---

* यह यष्टि साधन विषुवद्दिन में व्यभिचरित होता है । क्योंकि उस दिन, चरज्या = ० उन्मण्डलशङ्कु = ० । इसलिए यष्टि स्वरूप $= \frac{0 \times \text{त्रि}}{0} = 0$ होता है । परन्तु उस दिन यष्टि लम्बज्या के समान होती है । जैसे, पक : १२ : : त्रि = लम्बज्या ।

आचार्य कमलाकर ने तत्त्वविवेक में 'अथापमांशोत्क्रमजीवयाघ्नी—' इत्यादि विधि से मध्याह्न यष्टि का साधन किया है । उसका कहीं नहीं व्यभिचार होता ।

वहां क्षेत्र स्थिति इसप्रकार है—मध्याह्न में कलाकर्ण = द्युज्या, यष्टिकोटि, शङ्कुतल ± अग्राग्रखण्ड = भुज । अनुपात, त्रि : लं ज्या : : द्यु $= \frac{\text{द्यु} \times \text{लं ज्या}}{\text{त्रि}}$ = मध्ययष्टि ।

$\text{द्युज्या} = \frac{\text{लं (त्रि} - \text{क्रांउ)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{लं} \times \text{त्रि । लं} \times \text{क्रांउ १}}{\text{त्रि}} = \text{लं} - \frac{\text{लं} \times \text{क्रांउ}}{\text{त्रि}}$; इस प्रकार उपपन्न होता है ।

से और दक्षिण में घटाने से दिनार्धशङ्कु होता है। यष्टिकोटि अग्रा-ग्रखण्डोनयुत शङ्कुतल भुज और त्रिज्याकर्ण यह क्षेत्र बनता है॥३३॥

इदानीं हृतिमन्त्यां चाह।

क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा हृति-
श्चरज्ययैवं त्रिगुणोऽपि सान्त्यका॥ ३४॥

द्युज्यैवं क्षितिज्ययोत्तरगोले युता याम्ये रहिता हृति-र्भवति। एवं त्रिज्या चरजीवया युतोनान्त्या स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र गोलेऽहोरात्रवृत्तक्षितिजसंपातयोर्बद्धं यत् तदुदयास्तसूत्रम्। एवमुन्मण्डलसंपातयोर्बद्धं तदहोरात्रवृत्तव्याससूत्रम्। तदुदयास्तसूत्रयोरन्तरं सर्वत्र कुज्या। अथ याम्योत्तरवृत्तसंपातयोर्बद्धं तत् तन्मितं तस्य व्याससूत्रम्। तयोर्व्याससूत्रयोर्यः संपातस्तस्मादुपरितनं खण्डं द्युज्या। सोत्तरगोलेऽधस्थया कुज्यया युता यावत् क्रियते तावद्दिनार्धेऽर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं स्यात्। दक्षिणे तु कुज्यया हीना। यतस्तत्रोदयास्तसूत्रादधः कुज्या। यदर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं सा च हृतिरुच्यते। एवमन्त्यापि। अत्राहोरात्रवृत्तव्यासार्धं त्रिज्यातुल्यैरङ्कैरङ्क्यते तावत् त्रिज्यातुल्यं भवति। तैरङ्कैर्यावत् कुज्या गण्यते तावच्चरज्यातुल्या भवति। अथ चरज्यया त्रिज्या युतोनान्त्यासंज्ञा भवति। न ह्यन्त्या हृत्योः क्षेत्रसंस्थानभेदः किन्त्वङ्कानां गुरुलघुत्वात् केवलं संख्याकृतो भेद इत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

इस प्रकार उत्तरगोल में कुज्या द्युज्या में जोड़ने से हृति, और त्रिज्या में चरज्या जोड़ने से अन्त्या होती है।

उपपत्ति ।

अहोरात्रवृत्त और क्षितिज के पूर्व-पश्चिम संपात में बँधा सूत्र उदयास्तसूत्र और उन्मण्डल के संपातों में बँधा व्याससूत्र कहलाता है । इन दोनों सूत्रों का अन्तर कुज्या के तुल्य होता है। याम्योत्तरवृत्त और अहोरात्रवृत्त के संपातों में बँधा सूत्र उसका व्याससूत्र कहलाता है । उसके ऊपर का खण्ड द्युज्या होती है । इसमें नीचे की कुज्या, उत्तर गोल में जोड़ने से उदयास्त सूत्र से लेकर रविबिम्ब तक अन्तर होता है इसको हृति कहते हैं । दक्षिण गोल में कुज्या घटाने से हृति होती है क्योंकि—वहां उदयास्त सूत्र के नीचे कुज्या होती है ।

जैसे अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध द्युज्या को त्रिज्यावृत्त में गणना करने से त्रिज्या होती है । वैसेही द्युज्यावृत्तीय हृति को त्रिज्यावृत्तीय मानने पर अन्त्यानामक होती है । क्षेत्र में दोनों का स्वरूप एकही होता है केवल परिणामन का भेद है । कुज्या त्रिज्यावृत्तीय चरज्या होती है इसको त्रिज्या में जोड़ने घटाने से अन्त्या होती है । यह गोल में स्पष्ट ही है ॥ ३४ ॥

इदानीमन्त्यातो हृतिं हृतेश्चान्त्यामाह ।

हृतिस्त्रिमौर्व्या चरजीवया वा
हता द्युमौर्व्या क्षितिजीवया वा ।
भक्तान्त्यका स्यादथवान्त्यकाया
हृतिर्गुणच्छेदविपर्ययेण ॥ ३५ ॥

हृतिस्त्रिज्यया गुणिता द्युज्यया भक्ता सत्यन्त्या भवति । अथवा चरज्यया गुणिता कुज्यया भक्तान्त्यका स्यात् । एवमन्त्या द्युज्यागुणा त्रिज्यया भक्ता हृतिः स्यात् । अथवा कुज्या गुणा चरज्यया भक्ता हृतिः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि द्युज्यया त्रिज्या लभ्यते कुज्यया वा चरज्या तदा हृत्या किमिति । फलमन्त्या। यतो द्युज्यापरिणता कुज्या त्रिज्यापरिणता चरज्या । एवमन्त्यातो हृतिर्विलोमविधिनेति सर्वमुपपन्नम्।

भाषाभाष्य ।

हृति को त्रिज्या अथवा चरज्या से गुणकर द्युज्या या कुज्या का भाग देने से अन्त्या होती है । अन्त्या के गुण और भाग हार के बदलने से हृति होती है ।

उपपत्ति ।

उक्त विधि के अनुसार अनुपात किया—

$$\text{द्यु} : \text{त्रि} :: \text{हृति} = \frac{\text{त्रि} \times \text{हृति}}{\text{द्यु}} = \text{अन्त्या}।$$

अथवा,

$$\text{कुज्या} : \text{चज्या} :: \text{हृति} = \frac{\text{चज्या} \times \text{हृति}}{\text{कुज्या}} = \text{अन्त्या}$$

$$\text{अथवा, चज्या} : \text{कुज्या} :: \text{अन्त्या} = \frac{\text{कुज्या} \times \text{अन्त्या}}{\text{चज्या}} = \text{हृति}$$

$$\text{त्रि} : \text{द्यु} :: \text{अन्त्या} = \frac{\text{द्यु. अन्त्या}}{\text{त्रि}} = \text{हृति}$$ सिद्ध होती है ॥ ३५ ॥

इदानीमन्त्याहृतिभ्यां दिनार्धशङ्कुमाह ।

अन्त्याथवोन्मण्डलशङ्कुनिघ्नी
चरज्ययाप्ता स दिनार्धशङ्कुः ।
हृतिः पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी
तत्कर्णभक्ता यदि वा स शङ्कुः ॥ ३६ ॥

अन्त्योन्मण्डलशङ्कुना गुणिता चरज्यया भक्ता फलं दिनार्धशङ्कुः । अथवाष्टधा हृतिरष्टाभिः फलक्षेत्रकोटिभिर्गुणिता स्वस्वकर्णेन भक्ता फलमष्टधा दिनार्धशङ्कुः ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि चरज्यातुल्येनान्त्याधःखण्डेनोन्मण्डलशङ्कुर्लभ्यते तदा समग्रान्त्यया किमिति। फलं दिनार्धशङ्कुः । अथ हृतितः । हृतिर्नामाक्षकर्णगत्यार्कप्रापि सूत्रम् । अतोऽक्षक्षेत्रकर्णैरनुपातः । यद्यक्षक्षेत्रकर्णेन तत्कोटिर्लभ्यते तदा हृत्या कर्णेन किमिति । फलमर्काल्लम्बितसूत्रस्य भूपर्यन्तस्य प्रमाणं शङ्कुर्भवतीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अथवा—अन्त्या को उन्मण्डलशङ्कु से गुणाकर, चरज्या का भाग देने से दिनार्धशङ्कु होता है । अथवा—हृति को अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणाकर उसी के कर्ण का भाग देने से दिनार्धशङ्कु होता है ।

उपपत्ति ।

चरज्या : उन्मण्डलशङ्कु : : अन्त्या $= \frac{\text{उशं} \times \text{अन्त्या}}{\text{चज्या}} =$ दिनार्धशङ्कु । अथवा—

अक्षक्षेत्र को : अक्षक्षेत्रक : : हृति $= \frac{\text{अक्षक} \times \text{हृति}}{\text{अक्षको}} =$ दिनार्धशङ्कु । फल अर्कविम्ब से लेकर भूमि तक अन्तर शङ्कु प्रमाण होता है । यह सब स्पष्ट है ॥ ३६ ॥

इदानीं दिनार्धदृग्ज्यामाह ।

हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी
तत्कर्णभक्ताग्रकयोनयुक्ता ।

गोलक्रमात् स्यादथवात्र दृग्ज्या
यास्याथ सौम्या विपरीतशुद्धौ ॥ ३७ ॥

अथाष्टधा हृतिरष्टभिः पलक्षेत्रभुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या। यत्फलं तदुत्तरगोलेऽग्रया हीनं याम्ये युतं दिनार्धे दृग्ज्या स्यात्। सा च याम्या। यद्युत्तरगोले फलादग्रा न शुध्यति तदाग्रायाः फलमेव जह्यात्। शेषं दृग्ज्या तदा सौम्या स्यात्।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन। यदि पलक्षेत्रकर्णेन तद्भुजो लभ्यते तदा हृत्या किमिति। फलमुदयास्तसूत्राद्दक्षिणतः शङ्कुमूलं यावद्भवति। दृग्ज्या तु शङ्कुमूलप्राच्यपरयोरन्तरम्। अतः प्राच्यपरोदयास्तसूत्रयोरन्तरमग्रातुल्यं याम्यगोले तत्र क्षेप्यम्। उत्तरगोले तु तस्माद्विशोध्यम्। शेषं याम्या दृग्ज्या स्यादिति युक्तम्। यदा तूत्तरगोले खार्धादुन्नतो रविर्वर्त्तते तदा शङ्कुमूलं प्राच्यपराया उत्तरतो भवति। अतस्तत्र फलादग्रा न शुध्यति। अग्रातो यावत्फलं विशोध्यते तावत् प्राच्यपरा शङ्कुमूलयोरन्तरमवशिष्यते। सैव दृग्ज्या। एवं सौम्या चेत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

हृति को अक्षक्षेत्र के भुज से गुणाकर, उसके कर्ण का भाग देनेसे जो फल मिले, उसको उत्तर गोल में अग्रा में घटाने और दक्षिण में जोड़ने से दृग्ज्या होती है। और उत्तर गोल में, यदि फल में अग्रा न घटे, तो अग्रा में ही फल को घटा देना। इस विपरीत शोधन से सौम्य दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति।

शङ्कुमूल और प्राच्यपर सूत्र का अन्तर = दृग्ज्या, और प्राच्य-

पर—उदयास्त सूत्र का अन्तर = अग्रा, शङ्कुमूल—उदयास्त सूत्र का अन्तर = शङ्कुतल होता है । अनुपात किया—पलक्षेत्र के कर्ण में उसका भुज तो हृति में क्या ? = $\frac{\text{भु} \times \text{हृति}}{\text{पक}}$ = फल उदयास्त सूत्र से दक्षिण शङ्कुमूल तक शङ्कुतल होता है ।

∴ फल ± अग्रा = दृग्ज्या, दोनों गोलों में होती है ।

अक्षांशाधिक क्रान्ति में उत्तरगोल में खार्ध से उत्तरकी ओर जब सूर्य आवेगा तो शङ्कुमूल प्राच्यपर रेखा से उत्तर होगा इसलिए अग्रा नहीं घटती ।

∴ अग्रा—फल = दृग्ज्या, यह उत्तर होती है ॥ ३७ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणाह ।

गोलक्रमात् तद्धृतिहीनयुक्ता
हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी ।
तत्कर्णभक्ता भवतीह दृग्ज्या
प्रद्योतने वा द्युदलं प्रयाते ॥ ३८ ॥

हृतिरुत्तरगोले तद्धृत्या हीना दक्षिणे युक्ता साष्टधाष्टाभिः पलक्षेत्रभुजैर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या फलमष्टधा दृग्ज्या स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । अहोरात्रवृत्तसममण्डलसंपातयोः पूर्वपश्चिमयोर्यद्बद्धं सूत्रं तस्य याम्योत्तरवृत्तसंपाते निबद्धहृतिसूत्रस्योदयास्तसूत्रपर्यन्तस्य यः संपातस्तस्मादधस्तनं हृतिखण्डं तद्धृतितुल्यं भवति । अतस्तेनोनिता हृतिरूर्ध्वखण्डं समसूत्राद्दक्षिणतोऽक्षकर्णगत्यार्कपर्यन्तं भवति । अतस्तेनानुपातः । यद्यक्षक्षेत्रकर्णेन तद्भुजो लभ्यते तदानेन किमिति । फलं दृग्ज्या ।

दक्षिणगोले तु क्षितिजादधोऽहोरात्रवृत्तस्य सममण्डलेन संपातस्तत्राधोमुखः समशङ्कुः क्षितिजादधश्च तद्धृतिः। अतस्तया तद्धृत्येयं हृतिर्युताधःसमसूत्राद्दक्षिणतोऽक्ष-कर्णगत्यार्कपर्यन्तं भवति। अतस्तयानुपातः। फलं याम्या दृग्ज्या। खस्वस्तिकाद्दक्षिणोत्तरवृत्ते यैर्भागैरर्को नतस्तेषां ज्येत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

उत्तरगोल में तद्धृति को हृति में घटाकर और दक्षिणगोल में जोड़कर उसको पलक्षेत्र के भुज से गुणाकर कर्ण का भाग देने से दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति।

अहोरात्र वृत्त और सममण्डल के पूर्व-पश्चिम संपातों में बँधे सूत्र का और याम्योत्तर वृत्त के बँधे हृति सूत्र का, उदयास्त सूत्र तक जो संपात है उसके नीचे का खण्ड तद्धृति के तुल्य होता है। यह गोल में स्पष्ट दिखलाई देता है। उसको हृति में घटाने से तद्धृति का ऊर्ध्वखण्ड होता है। वह समसूत्र से दक्षिण तिरछी सूर्यबिम्ब तक रेखा होती है।

∴ तद्धृति $\pm$ हृति = ऊर्ध्वखण्ड, उत्तर और दक्षिणगोल में। अब अनुपात किया —

$$\text{अक्षक्षेक} : \text{अक्षक्षेभु} :: \text{ऊर्ध्वख} = \frac{\text{अक्षभु} \times \text{तद्धृति} \pm \text{हृति}}{\text{अक्षक}} =$$

दृग्ज्या। इस प्रकार 'गोलक्रमात्—' इत्यादि उपपन्न हुआ।

दक्षिणगोल में अहोरात्रवृत्त और सममण्डल का क्षितिजवृत्त के नीचे संपात होने से वहां शङ्कु अधोमुख और तद्धृति भी नीचे होती है। इसलिए तद्धृति को हृति में जोड़ देने से क्षितिज से अर्कबिम्ब तक

सूत्र होता है । इससे उक्त अनुपात करने से दक्षिण दृग्ज्या होती है । यह सब गोल में स्पष्ट है ॥ ३८ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणाह ।

त्रिज्या नृचापोत्क्रमजीवयोना
दृग्ज्या भवेदेवमतो नरो वा ।
एवं हि दृग्ज्या यदि वाखिलानां
विदिक्समोदृवृत्तनरादिकानाम् ॥ ३६ ॥

त्रिज्या शङ्कुचापस्योत्क्रमज्यया हीना दृग्ज्या भवति । दृग्ज्या चापस्योत्क्रमजीवयोना तदा शङ्कुर्भवति । अनेन प्रकारेण दिनार्धोन्मण्डलसमशङ्क्वादीनां दृग्ज्या स्यात् । पूर्वं तु या कथिता सा दिनार्ध एव ।

अस्योपपत्तिर्भुजकोटिज्याप्रकरणत एव प्रतिपादिता ।

भाषाभाष्य ।

शङ्कु चाप की उत्क्रमज्या को त्रिज्या में घटाने से दृग्ज्या और दृग्ज्या चाप की उत्क्रमज्या को घटाने से शङ्कु होता है । इसीप्रकार, दिनार्धशङ्कु, उन्मण्डलशङ्कु और कोणशङ्कु आदि की दृग्ज्या सिद्ध होती हैं ।

यहां उपपत्ति भुजज्या-कोटिज्या संबन्धी ज्योत्पत्तिक्षेत्र से स्पष्ट है ॥ ३६ ॥

इदानीं छायाकर्णावाह ।

दृग्ज्यात्रिजीवे रविसंगुणे ते
शङ्कूद्धृते भाश्रवणौ भवेताम् ॥

दृग्ज्या च त्रिज्या च द्वे द्वादशगुणे शङ्कुना भाज्ये । दृग्ज्यास्थाने यत् फलं लभ्यते सा छायाङ्गुलात्मिका भवति । यत्त्रिज्यास्थाने सोऽस्याश्छायायाः कर्णः ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि शङ्कुकोटेर्दृग्ज्या त्रिज्ये भुजकर्णौ तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कोः कौ । फले छायाकर्णौ स्त इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

दृग्ज्या और त्रिज्या को, द्वादश से गुणाकर शङ्कु का भाग देने से छाया और छायाकर्ण होता है ।

यहां उपपत्ति यों है—

शङ्कु कोटि : दृग्ज्या, वा, त्रिज्या : : द्वा = $\frac{\text{दृग्ज्या, वा त्रिज्या} \times \text{द्वा}}{\text{शङ्कु}}$

= छाया और छायाकर्ण । शङ्कु कोटि, दृग्ज्या भुज, त्रिज्या कर्ण यह बड़ा छायाक्षेत्र है । और द्वादशाङ्गुल शङ्कु कोटि, छाया भुज, छायाकर्ण कर्ण, यह अपवर्तित लघु छायाक्षेत्र है ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण दिनार्धकर्णमाह ।

त्रिज्याक्षकर्णेन गुणा विभक्ता
हृत्या श्रुतिर्वा दिनमध्यगेऽर्के ॥ ४० ॥

त्रिज्यामक्षकर्णेन संगुण्य हृत्या भजेत् । फलं मध्यकर्णः स्यात् । अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकाभ्याम् । यद्यक्षकर्णेन द्वादश शङ्कुस्तदा हृत्या तुल्येन किमिति । अत्र हृतिर्द्वादशगुणाक्षकर्णेन भाज्या । फलं मध्यशङ्कुः । अथान्योऽनुपातः । यदि मध्याह्नशङ्कुना त्रिज्याकर्णस्तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कुना किमिति । इह त्रिज्या द्वादशगुणा पूर्वानीतशङ्कुरूपभाजकस्य छेदांशविपर्यासे कृतेऽक्षकर्णगुणा च द्वादशगुणया हृत्या भाज्या । अत्र गुणकभाजकयोर्द्वादशकयोर्नाशे कृते त्रिज्याक्षकर्णेन गुण्या हृत्या भाज्या । फलं मध्यकर्णः स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

त्रिज्याको अक्षकर्ण से गुणाकर हृतिका भाग देने से, प्रकारान्तर से, मध्याह्न में—मध्यकर्ण सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

$$\text{पक} : १२ :: \text{हृति} = \frac{१२ \times \text{हृ}}{\text{पक}} = \text{मध्यशङ्कु ।}$$

$$\text{मश} : \text{त्रिक} :: १२ = \frac{\text{त्रि} \times १२}{\text{मश}} = \frac{\text{पक} \times १२ \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{हृ}} = \frac{\text{पक} \times \text{त्रि}}{\text{हृ}}$$

= मध्यकर्ण ॥ ४० ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणाह ।

युतायनांशार्कबृहद्भुजज्यया
स्वरामतिथ्यभ्रभुवो १०१५३० हृताः परः ।
पलश्रुतिघ्नः पलभाविभाजितः
परोऽथवोद्वृत्तगते रवौ श्रुतिः ॥ ४१ ॥

अर्कस्य सायनांशस्य बृहती भुजज्या साध्या । न लघुखण्डज्येत्यर्थः । तथा ज्यया पूर्णाग्नितिथिशून्यशशिनो १०१५३० भाज्याः । यल्लब्धमसौ पराख्यः । स परः पलकर्णेन गुण्यः पलभया भाज्यः । फलमुन्मण्डलगतस्यार्कस्य छायाकर्णो वा भवति ।

भाषाभाष्य ।

सायन-सूर्यकी बृहत्खण्डों से भुजज्या साधकर उसका १०१५३० में भाग देना । जो फल मिले उसकी परसंज्ञा है । पर को पलकर्ण से गुणाकर, पलभा का भाग देने से, उन्मण्डल-गत सूर्यका छायाकर्ण होता है ॥ ४१ ॥

इदानीं तस्मादेव परसंज्ञात् समवृत्तकर्णमाह ।

परोऽक्षभा संगुणितोऽक्षकर्ण-
भक्तोऽथवा स्यात् समवृत्तकर्णः ।

स एव परः पलभया गुण्यः पलकर्णेन भाज्यः । फलं सममण्डलगस्यार्कस्य छायाकर्णो वा भवति ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकत्रयेण । यदि त्रिज्यया परक्रान्तिज्या लभ्यते तदार्कदोर्ज्यया किमिति । अत्र दोर्ज्या परमक्रान्तिज्यया गुण्या त्रिज्यया भाज्या फलं क्रान्तिज्या । अथान्योऽनुपातः । यद्यक्षकर्णेन पलभा भुजो लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया किमिति । फलमुन्मण्डलशङ्कुः । इदानीं दोर्ज्यायाः परमक्रान्तिज्या पलभा च गुणस्त्रिज्याक्षकर्णश्च हरः । इदानीमन्योऽनुपातः । यद्यस्य शङ्कोस्त्रिज्याकर्णस्तदा द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोः किमिति । अत्र त्रिज्या द्वादशगुणा भाज्यः । पूर्वराशिर्भाजकः । इह छेदांशविपर्यासे कृते त्रिज्यावर्गो द्वादशगुणोऽक्षकर्णगुणश्च भाज्यः । दोर्ज्या परमक्रान्तिज्यागुणा पलभागुणा च भाजकः । अत्र भाज्यभाजकयोः परक्रान्त्यापवर्तः । द्वादशगुणस्त्रिज्यावर्गः परक्रान्त्या यावदपवर्त्यते तावत् खरामतिथ्यभ्रभुवो लभ्यन्ते १०१५३० । एते दोर्ज्यया भक्ताः परसंज्ञाः कृताः । अन्यस्मिन्नानयन उपयोगित्वात् । इदानीमसौ परोऽक्षकर्णेन गुण्यः पलभया विभक्त उन्मण्डलकर्णः स्यादित्युपपन्नम् । एवं सममण्डलकर्णार्थं यथायोगमनुपातत्रये कृते तथैव परक्रान्तिज्ययापवर्ते कृते स एव परः स्यात् । किन्तु तत्राक्षभा गुणोऽक्षकर्णो हरः । फलं सममण्डलकर्णः स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

पहले जो पर साधन किया है उसको पलभा से गुणाकर अक्षकर्ण का भाग देने से समवृत्तकर्ण होता है ।

उपपत्ति ।

$$\text{त्रि}: \text{पक्रां} :: \text{इदो} = \frac{\text{पक्रा} \times \text{इदो}}{\text{त्रि}} = \text{इक्रां};$$

$$\text{पक}: \text{पल} :: \text{क्रां} = \frac{\text{पल} \times \text{क्रां}}{\text{पक}} = \frac{\text{पल} \times \text{पक्रा} \times \text{इदो}}{\text{त्रि} \times \text{पक}} =$$

उन्मण्डलशङ्कु । फिर अनुपात किया—

$$\text{उशं}: \text{त्रि} :: \text{द्वा} := \frac{\text{त्रि} \times \text{द्वा}}{\text{उशं}} = \frac{\text{त्रि}^2 \times \text{पक} \times \text{द्वा}}{\text{पल} \times \text{पक्रां} \times \text{इदो}}$$

$$\frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि}^2}{\text{पक्रा}} = १०१५३० \div \text{इदो} = \text{पर};$$

$$\therefore \frac{\text{पर} \times \text{पक}}{\text{पल}} = \text{उन्मण्डलकर्ण} ।$$

इसी प्रकार सममण्डलकर्ण के साधनार्थ ऊपर के तीनों अनुपात करने से हुआ, $\frac{\text{पर} \times \text{पलभा}}{\text{पक}}$ = सममण्डलकर्ण । यहां 'परोक्षभा संगुणितः' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥

इदानीमुन्मण्डलकर्णान्मध्यकर्णमाह ।

उद्वृत्तकर्णश्चरशिञ्जिनीघ्नो
भक्तोऽन्त्यया वा श्रवणो दिनार्धे ॥ ४२ ॥

उन्मण्डलकर्णश्चरज्यया गुण्योऽन्त्यया भाज्यः । फलं वा मध्यकर्णो भवति । अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यद्यन्त्याधःशकलेन चरज्यामितेनोन्मण्डलकर्णो लभ्यते तदान्त्यया किमिति । इदं व्यस्तत्रैराशिकम् ।

इच्छावृद्धौ फले ह्रासो ह्रासे वृद्धिश्च जायते ।
व्यस्तं त्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणितकोविदैः ॥

अतोऽत्र चरज्या गुणोऽन्त्या हरः फलं मध्यकर्ण इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

उन्मण्डलकर्ण को चरज्या से गुणाकर अन्त्य का भाग देने से, प्रकारान्तरसे, मध्यकर्ण होता है ।

उपपत्ति ।

$$\text{उमंक} : \text{द्वा} :: \text{त्रि} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि}}{\text{उक}} = \text{महाशङ्कु} ।$$

$$\text{चरज्या} : \text{उशं} :: \text{अन्त्या} = \frac{\text{उशं} \times \text{अन्त्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{अं}}{\text{चज्या} \times \text{उक}} =$$

मध्यशङ्कु । फिर अनुपात किया—

$$\text{मशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वा} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{मशं}} = \frac{\text{चज्या} \times \text{उक} \times \text{त्रि} \times \text{द्वा}}{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{अं} \times \text{म}},$$

$= \frac{\text{चज्या} \times \text{उक}}{\text{अं}} =$ मध्यकर्ण । इस प्रकार 'उद्वृत्तकर्णः—' इत्यादि समत्रैराशिक से भी उपपन्न होता है ॥ ४२ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणोन्मण्डलकर्णात् समवृत्तकर्णाच्च मध्यकर्णमाह ।

उद्वृत्तकर्णः समवृत्तकर्णः
क्षितिज्यया तद्धृतिसंज्ञया च ।
क्रमेण निघ्नौ विहृतौ च हृत्या
दिनार्धकर्णावथवा भवेताम् ॥ ४३ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यद्युन्मण्डलाधःस्थेन हृति

खण्डेन कुज्यामितेनोन्मण्डलकर्णो लभ्यते तद्धृत्या च सममण्डलकर्णो लभ्यते तदा हृत्या किमिति। एते च व्यस्तत्रैराशिके। अत्र फलं मध्यकर्णः कर्णादुक्तवन्मध्यच्छायेत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

उन्मण्डलकर्ण और सममण्डल कर्ण को क्रमसे कुज्या और तद्धृति से गुणकर, हृतिका भाग देने से दिनार्धकर्ण, प्रकारान्तर से सिद्ध होते हैं।

उपपत्ति।

$$\text{उक} : \text{द्वा} :: \text{त्रिक} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रिक}}{\text{उक}} = \text{महाशङ्कु}।$$

$$\text{कुज्या} : \text{उशं} :: \text{हृति} = \frac{\text{उश} \times \text{हृ}}{\text{कुज्या}} = \text{दिनार्धशङ्कु}।$$ फिर अनुपात किया—

$$\text{दिशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वा} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{दिशं}} = \frac{\text{कुज्या} \times \text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{उक}}{\text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{हृ}};$$

$$= \frac{\text{कु} \times \text{उक}}{\text{हृ}} = \text{दिनार्धकर्ण}।$$

फिर प्रकारान्तर में अनुपात—

$$\text{सक} : \text{द्वा} :: \text{त्रिक} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रिक}}{\text{सक}} = \text{महाशङ्कु}।$$

$$\text{तद्धृति} : \text{सशं} :: \text{हृ} = \frac{\text{सशं} \times \text{हृ}}{\text{तद्धृ}} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रिक} \times \text{हृ}}{\text{तद्धृ} \times \text{सक}} = \text{मध्यशङ्कु}।$$

$$\text{मशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वा} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{मशं}} = \frac{\text{तद्धृ} \times \text{सक} \times \text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{हृ} \times \text{त्रि} \times \text{द्वा}},$$

$$= \frac{\text{सक} \times \text{तद्धृ}}{\text{हृ}} = \text{दिनार्धकर्ण}$$ । इसप्रकार 'उद्वृत्तकर्णः समवृत्तकर्णः—' इत्यादि समत्रैराशिक से भी उपपन्न होता है॥ ४३॥

इदानीमिच्छादिक्छायां विवक्षुस्तज्ज्ञस्य सुज्ञताधिक्यं निरूपयन् प्रश्नरूपेणाह।

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनै-
र्यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता याः प्रच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम् ॥४४॥

इह किल पूर्वाचार्यैः कालानपेक्षया तिस्र एव छाया आनीताः एका पूर्वापरा। अन्या याम्योत्तरा। तदन्या कोणच्छाया। ताश्च पृथक् पृथक् साधनैः। येनानयनेन मध्यच्छायागच्छति न तेन कोणच्छाया न समच्छाया। इतरस्यानयनेन इतरा नागच्छतीत्यर्थः। या एता याश्च तद्दिग्विवरान्तर्गता याश्च प्रच्छकेच्छावशात्। एतदुक्तं भवति। एताश्छाया य आनयति। परमेकेनैवानयनेन। न नानानयनभेदैः। तमहं भुवि सूर्यमन्यं मन्ये। एकः किल दिवि सूर्यः। अयं भुवि। कस्मिन् विषये। ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने गणकवदनकमलकलिकाविकासे।

भाषाभाष्य।

पूर्वाचार्योंने, अलग अलग साधनों से याम्योत्तर, सम और कोण छायाओं का साधन किया है। परन्तु उन सब छायाओं का और प्रश्नकर्ता के इच्छावश उक्त दिशाओं के मध्य में, और इष्ट स्थानों में, जो छाया होगी उनको जो एकही प्रकार से सिद्ध करता है, उसको गणकों के कमल-रूप मुखके विकास करने में, पृथ्वीपर दूसरा सूर्य मैं मानता हूं॥ ४४॥

इदानीं तदर्थमाह ।

चक्रांशकाङ्के क्षितिजाख्यवृत्ते
प्राक्स्वस्तिकाभीष्टदिशोस्तु मध्ये ।
येंशाःस्थितास्तेऽत्र दिगंशकाख्या-
स्तज्ज्यात्र दिग्ज्येत्यपरे विभागे ॥ ४५ ॥

कदाचिदप्यभीष्टदिने यस्मिन् काले प्रच्छकः पृच्छति तत्र कालेऽर्कोपरि न्यस्तस्य दृङ्मण्डलस्य क्षितिजस्य च संपाते याभीष्टा दिक् तस्याः प्राक् स्वस्तिकस्य चान्तरे क्षितिजवृत्ते येंशास्तेऽत्र दिगंशका ज्ञेयाः । तेषां ज्या दिग्ज्येति । एवं पश्चिमभागेऽपि ।

भाषाभाष्य ।

क्षितिजवृत्त बनाकर उसको पूर्व-पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं से चिह्नित करके फिर उसको ३६० अंशों से अङ्कित करना । उसमें प्राक्स्वस्तिक और इष्टदिशा के बीच में जो अंश होते हैं वे दिगंश होते हैं । उनकी ज्या दिग्ज्या कहलाती है । इसी प्रकार, पश्चिमदिशा में भी दिगंश और दिग्ज्या होती है ॥ ४५ ॥

इदानीमिच्छादिक्छायानयनमाह ।

पलप्रभा व्यासदलेन निघ्नी
दिग्ज्योद्धृता तां पलभां प्रकल्प्य ।
साध्याक्षजीवाथ तया विनिघ्नी
स्वाक्षज्ययाप्तापमशिञ्जिनी च ॥ ४६ ॥
ताभ्यां दिनार्धद्युतिवद्दिदृध्या-
दभीष्टदिक्स्थे द्युमणौ द्युतिं वा ।

पलप्रभा त्रिज्यया गुण्या । इच्छादिग्ज्यया भाज्या । यल्लभ्यते तां पलभां प्रकल्प्यान्याक्षज्या साध्या । अथ

या क्रान्तिज्या सेदानीमानीतयाक्षज्यया गुण्या स्व-देशाक्षज्यया भाज्या । फलमिष्टक्रान्तिज्या भवति । ताभ्यां दिनार्धद्युतिवद्विद्ध्यादिति । एतदुक्तं भवति । इष्टाक्षज्याया धनुरिष्टपलो भवति । इष्टक्रान्तिज्याया धनुरिष्टापमो भवति । पलावलम्बावपमेन संस्कृता-वित्यादिना या मध्यच्छाया भवति साभीष्टदिक्स्थे द्युमणौ छाया भवति ।

अत्रोपपत्तिः । विषुवद्दिने विषुवन्मण्डले रविर्भ्रमति । तत्र भ्रममाणेऽर्के इष्टदिशं गते यावती छाया सा ताव-दिह साध्यते । द्वादशाङ्गुलशङ्कोश्छायाग्रं दिङ्मध्ये यथा भवति तथा विन्यस्तस्य प्राच्यपरया सहान्तरं विषुवती तुल्यमेव भवति । तच्छङ्कुतलम् । अग्राभावात् स एव भुजः । छाया दृग्ज्या । अथ दिङ्मध्यात् त्रिज्या-तुल्येन कर्कटकेन यद्वृत्तं लिख्यते तत् किल क्षितिजम् । तत्र क्षितिजे या दिग्ज्या स भुजः । दिग्ज्याग्राद्दिङ्मध्यगामिनी त्रिज्या तत्र दृग्ज्या । इदानीमनुपातः । यदि दिग्ज्या-मितेन भुजेन त्रिज्यातुल्या दृग्ज्या लभ्यते तदा पलभा-मितेन किमिति । अत्र त्रिज्या पलभया गुण्या । दिग्ज्यया भाज्या । फलं विषुवन्मण्डलस्थेऽर्के इच्छादिक्छाया भवति । अथ तां पलभां प्रकल्प्य साध्याक्षजीवेति । खमध्यार्कयोरन्तरे येंऽशा दृङ्मण्डलस्थितास्तेषां ज्या साध्या । येयमिदानीमानीता छाया तां पलभां प्रक-ल्प्य तस्याः कर्णमानीय सा पलभा त्रिज्यया गुण्या तत्कर्णेन भाज्या । फलमिष्टाक्षज्या स्यात् । स्वदेशा-क्षज्या दक्षिणोत्तरवृत्तगता । इयं तु दृङ्मण्डलगता

तिर्यक्स्थितत्वादधिका जाता । इदानीं क्रान्तिज्यापि दृङ्मण्डलगता क्रियते । तत्रानुपातः । यदि स्वदेशाक्षज्ययेष्टाक्षज्या दृङ्मण्डलगतैतावती लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया दृङ्मण्डलगता कियतीति । अत उक्तम् अथ तथा भिन्निघ्नी स्वाक्षज्ययाप्तापमशिञ्जिनी चेति । अत्र फलं विषुवन्मण्डलार्कयोर्दृङ्मण्डले येऽन्तरांशास्तेषां ज्या भवति । सेष्टक्रान्तिज्या । अथ ताभ्यां दिनार्धद्युतिवच्छिद्ध्यादिति । इष्टाक्षज्याया धनुर्दृङ्मण्डलगतं स इष्टोऽक्षः । इष्टक्रान्तिज्याया धनुरिष्टक्रान्तिर्दृङ्मण्डलगता । अथ तयोर्याम्यगोले योगः सौम्ये त्वन्तरे खमध्याद्दृङ्मण्डलगतार्कनतांशा भवन्ति । तेषां ज्या दृग्ज्या । नवतेर्विशोधितानां तेषां ज्योन्नतज्या स शङ्कुः । दृग्ज्या त्रिजीवे रविसंगुणे ते इत्यादिना छायाकर्णौ भवत इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

पलभा को त्रिज्या से गुणाकर और दिग्ज्या का भाग देकर जो फल मिले उसको पलभा मानकर अक्षज्या का साधन करना । उस अक्षज्या से क्रांतिज्या को गुणाकर स्वदेशीय अक्षज्या का भाग देने से इष्टक्रान्तिज्या होगी । फिर इष्टाक्षज्या और इष्टक्रान्तिज्या से पूर्व कथित रीति से, इष्टदिशा में वर्तमान सूर्य की छाया सिद्ध होती है ।

उपपत्ति ।

विषुवद्दिन में रवि विषुवद्वृत्त में भ्रमण करता है । वह घूमता हुआ जब किसी दिशा में हो उस समय छाया सिद्ध करना है । मान लिया, कोणवृत्त में पहुँचा तब उसकी छाया क्या होगी ? एक इष्ट त्रिज्यावृत्त बनाकर उसमें पूर्वापर और याम्योत्तर रेखा करदी । फिर

रवि के ऊपर दृङ्मण्डल किया वह जहां क्षितिज में लगा उस बिन्दु से पूर्वापर चिह्नतक दिग्ज्या होती है। वृत्त के बीच में द्वादशाङ्गुल शङ्कु इस प्रकार रक्खा कि उसकी छाया वृत्त के केन्द्र में जा पड़ी, तब शङ्कुमूल और प्राच्यपर रेखा का अन्तर पलभा के समान रहा और उस दिन अग्राके अभाव से वही भुज हुआ, उसका नाम शङ्कुतल है। इस प्रकार यहां दो क्षेत्र उत्पन्न होते हैं—त्रिज्याकर्ण, दिग्ज्या भुज, पूर्वापर रेखा में कोटि। दूसरा, त्रिज्याखण्ड कर्ण, पलभा भुज और पूर्वापर में कोटि। अब इनसे अनुपात किया—

दिग्ज्या: त्रिक : : पल $= \frac{\text{पल} \times \text{त्रिक}}{\text{दिग्ज्या}} =$ इच्छा दिक्छाया। इसको पलभा मानकर अक्षज्या के लिए अनुपात—

द्वा: पल : : लंज्या $= \frac{\text{पल} \times \text{लंज्या}}{\text{द्वा}} =$ अक्षज्या। यह दृङ्मण्डल-गत अक्षज्या है इसलिए इष्टाक्षज्या नाम पड़ा। क्योंकि स्थानीय अक्षज्या सदा दक्षिणोत्तर वृत्त में ही होती है। क्रान्तिज्या को भी दृङ्मण्डलीय लाने के लिए अनुपात—

स्वदेक्षज्या: दृङ्सक्षज्या : : क्रांज्या $= \frac{\text{दृक्षज्या} \times \text{क्रांज्या}}{\text{स्वदेज्या}} =$ दृङ्मण्डलीय क्रान्ति।

यह विषुवद्वृत्त से रविबिम्बतक होती है। इस प्रकार 'तया विनिघ्नी स्वाक्षज्ययाप्तापमशिञ्जिनी च—' उपपन्न हुआ।

इष्टाक्षज्या का धनु इष्टाक्ष और इष्टक्रान्तिज्या का इष्टापम। इन दोनों का एक दिशा में योग, भिन्न में अन्तर करने से खमध्य से रविबिम्बतक नतांश हुए। इनको नब्बे ९०° में घटाने से उन्नतांश, उसकी ज्या शङ्कुकोटि, नतज्या भुज, त्रिज्या कर्ण। इनसे 'दृग्ज्या-त्रिजीवे—' के अनुसार इष्टदिशा में छाया और छाया कर्ण साधन सुगम है।

यह छाया साधन आचार्य ने दो खण्डों से किया है। इष्टाक्षज्या = खमध्य से नाडीवृत्त तक और इष्टापम = नाडीवृत्त से रविबिम्बतक, दोनों का योग दृङ्मण्डलीय नतांश परिणामित हुए। इसी युक्ति से सब दिशा में सिद्ध होते हैं यह छाया साधन साक्षदेश में ही होता है॥ ४६॥

इदानीं विशेषमाह।

एवं कृते ये पलभागकाः स्यु-
स्तद्धीनखाष्टेन्दुमिताश्च येंऽशाः॥ ४७॥
तांश्चाक्षभागान् प्रविकल्प्य साध्या
द्विधेष्टदिग्भा यदि दिग्लवज्या।
अल्पाग्रकायाः खलु सौम्यगोले
याम्ये तु तस्यां दिशि नास्ति भैव॥ ४८॥

उत्तरगोले उत्तरेच्छादिग्ज्याग्रे दृङ्मण्डलं विन्यस्तं कस्मिंश्चिदहोरात्रवृत्ते पूर्वाह्णेऽपराह्णे चस्थानद्वये लगति। तस्मिन्नहोरात्रवृत्ते भ्रमतः सूर्यस्य तत्स्थानद्वयं प्राप्तस्य तद्दिक्स्थत्वं वारद्वयं भवति। अतस्तद्दिशि भाद्वयेन भवितव्यम्। तत् कथमिति चेत् तदर्थमिदम्। एवमनेनप्रकारेण य इष्टपलांशाः स्युस्तेषु साशीतिशता १८० च्छोधितेषु ये शेषांशास्तांश्चाक्षभागान् प्रकल्प्य सति संभवे द्विधेष्टभा साध्या। एवं तदैव भवति। यदोत्तरगोलेऽग्रायाःसकाशाद्दिग्ज्यालपा भवति। याम्यगोले तु तस्यां दिश्यर्कः क्षितिजादुपरि न प्रविशति। अतस्तत्र छायाऽभाव एव।

अत्रोपपत्तिः। अत्रेच्छादिशि न्यस्तस्य दृङ्मण्डलस्य विषुवन्मण्डलेन सह संपात एकः खस्वस्तिकादासन्नो

यैर्भागैर्भवति ते किलेच्छापलांशाः । अन्यः खस्वस्तिकाद्दूरत इतरस्यां दिशि यैर्भागैर्भवति ते च पलांशाः कल्पिताः । तेषामक्षांशानामग्रादितरेषां चाग्राद्दिष्टाहोरात्रवृत्तमिष्टक्रान्त्यग्रे भवति । अत उभयतोऽपि साध्या छाया । अतः सति सम्भवे द्विधा भवति । इदं यथास्थिते गोले दिग्ज्याग्रे दृङ्मण्डलं विन्यस्य दर्शनीयम् ।

अथानेनानयनेन सममण्डलच्छायानयनार्थमुदाहरणम् । यस्मिन् देशे पञ्चाङ्गुला पलभा तत्र यद्यशीत्यधिका सप्तशती क्रान्तिज्या ७८० तदाष्टाविंशत्यधिकसहस्रद्वयं २०२८ समशङ्कुः । अग्रा पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टशती ८४५ । अनेनानयनेनाप्ययं समशङ्कुरागच्छति । तद्यथा । तत्र देशेऽक्षज्या द्विदन्तेन्दुमिताष्टादशविकला १३२२।पलप्रभा ५ व्यासदलेन निघ्नी १७१९० दिग्ज्योद्धृता । अत्र दिग्ज्या पूर्णम् ० । अनेनोद्धृता जातः खहरः १७१९० एतां पलभां प्रकल्प्याक्षज्या किल साध्या । अस्या वर्गाद् द्वादशवर्गेण सदृशच्छेदेन शून्यीभूतेन युक्तान्मूलं जातः कर्णः पलभा सम एव १७१९० । त्रिज्या पलभया गुण्या तत्कर्णेन तत्समानेनैव भाज्या । एवमक्षज्या भवति । अत्र तुल्यत्वाद्गुणकभाजकयोः शून्ययोः पलभा तुल्ययोश्च नाशे कृते त्रिज्यैवाक्षज्या जाता । तद्धनुरंशा नवति ९० रक्षः । नवतेः शोधितोऽक्षो लम्बः पूर्णम् ० । अथ तया विनिघ्नीत्यादि । तया त्रिज्यातुल्याक्षज्यया ३४३८ क्रान्तिज्या ७८० गुण्या स्वदेशाक्षज्यया १३२२ । १८ भाज्या । एवं कृते समशङ्कु-

रुत्पद्यते । इयमिष्टक्रान्तिज्या जाता २०२८ । अत्र लम्ब: पूर्णम् ० । अथमिष्टक्रान्तिज्या धनुषा किलाधिक: कर्त-व्य: । एवं कृत उन्नतांशा भवन्ति । तेषां जीवा स शङ्कु: । एवं स एव सममण्डलशङ्कुर्भवति । एवं यदा क्रान्तिज्या पूर्णं ० भवति तदा खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधावित्यादि गणितोक्त्या शून्यपरिभाषयाग्रासमशङ्कादीनि साधि-तान्यन्येषामनुपातार्थं न क्वचिद् दुष्यन्ति ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार, जो पलांश सिद्ध हों उनको १८०° अंश में घटाकर, शेष को अक्षांश मानकर, दो प्रकार की इष्ट छाया का साधन करना । उत्तरगोल में जब अग्रा से दिग्ज्या कम होगी तभी दो प्रकार की छाया सिद्ध होगी । और दक्षिणगोल में क्षितिज के ऊपर सूर्य प्रवेश न होने से छाया का अभाव ही होगा ।

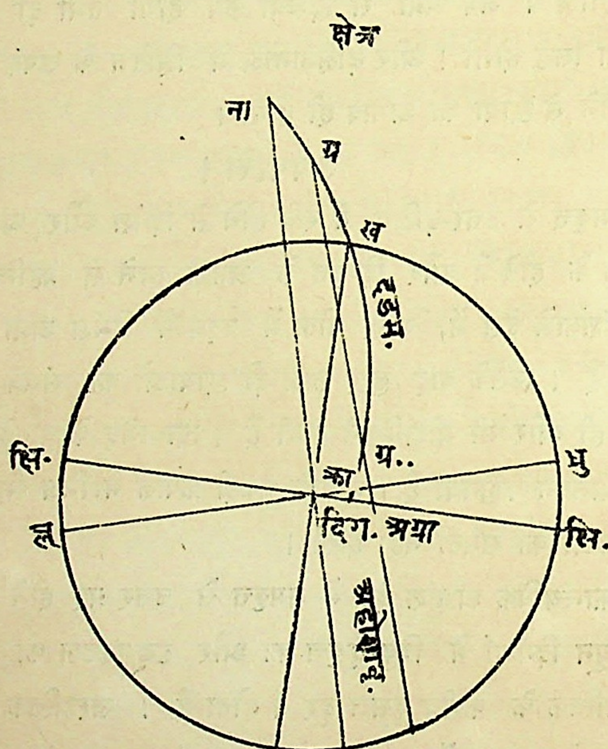
उपपत्ति ।

समवृत्त से उत्तर-दक्षिण में रवि होने से दिगंश और अग्रा एक ही दिशा के होते हैं और दिग्वृत्त के भ्रमण करने से क्रान्ति से न्यून अक्षांशवाले देश में, उत्तर गोल में उदय में दिगंश अग्रा के समान होते हैं । उसके बाद कुछ काल दो छायाओं का संभव होता है । ऐसे ही और भी गोलस्थिति होती है । छायाभेद के वास्ते दो प्रकार से आनयन कहागया है । क्योंकि एकही कपाल में भिन्न भिन्न समय में छायाओं की समता नहीं होती ।

क्रान्त्यधिक अक्षांश देश में समवृत्त से उत्तर ग्रह होने पर अग्रांश से न्यून दिगंशों में विषुवद्वृत्त का और दृङ्मण्डल का संपात एक खस्वस्तिक के करीब दूसरा दूर में होता है । खस्वस्तिक से आसन्न संपात के अन्तर में दृग्वृत्तगत इच्छा पलांश, दूसरे संपात में पलांश

माननना चाहिए । तात्कालिक क्रान्ति ज्ञात ही है । इसलिए छाया साधन उक्त विधि से स्फुट ही है । और समवृत्त से दक्षिण सूर्य होने से दृग्वृत्त और ग्रहासन्न विषुवद्वृत्त के संपात तक दृग्वृत्त में अक्षांश होंगे, वहां गणितागत ही अक्षांश होते हैं । क्योंकि युक्त संपात से यहां विपरीत संपात होता है । उत्तर क्रान्ति से न्यून अक्षाश वाले देश में जब अग्रा से दिगंश न्यून हो तब एक कपाल में ग्रहगत दृग्वृत्त और ग्रहगत अहोरात्र वृत्त का दो स्थान में संपात होता है । यह सब गोल में दृङ्मण्डल के रखने से स्पष्ट प्रतीत होता है । याम्य गोल में अग्रा से न्यून दिग्ज्या में क्षितिज के नीचे अहोरात्रवृत्त में ग्रह होने से छाया का अभाव ही होता है ।

क्षेत्र



इस क्षेत्र में उत्तर दिग्ज्याग्र में स्थापित दृङ्मण्डलका अहोरात्रवृत्त के साथ ग्र और ग्र' दो स्थानों में संपात होता है इसलिए दो प्रकार की छाया सिद्ध होगी—यही बात वासनाभाष्य में लिखी है। इस प्रकार 'एवं कृते—' इत्यादि विशेष स्पष्ट होता है *।

सममण्डल-प्रवेश में छाया साधन का उदाहरण लिखा ही है ॥ ४७-४८ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणेच्छादिक्छायामाह।

व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो
दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गनिघ्नी।
तत्संयुतिः स्यात् प्रथमस्तथान्य-
स्त्रिज्याक्षभाग्राभिहतिस्ततस्तौ ॥ ४९ ॥
दिग्ज्याग्रयोर्वर्गवियोगभक्तौ
यदन्यवर्गेण युताद्यराशेः।
पदं तदन्योनयुतं श्रुतिर्वा
गोलक्रमादिष्टदिशं गतेऽर्के ॥ ५० ॥
स्यादग्रकाया यदि दिग्ज्यकाल्पा
तदान्यवर्गात् प्रथमेन हीनात्।
मूलेन हीनः सहितो द्विधान्यः
कर्णद्वयं स्यादिति सौम्यगोले ॥ ५१ ॥

एकत्र त्रिज्यावर्गः पलभावर्गेण गुण्योऽन्यत्र दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गेण गुण्या। तयो राश्योर्योगः प्रथमसंज्ञः

---

* आचार्य कमलाकर ने तत्त्वविवेक के त्रिप्रश्नाधिकार में 'सौम्याग्रकाल्पस्वदिगंशमौर्व्यां परो यदा स्वाग्रमसंमितः स्यात्—' इत्यादि विधि से उत्तरगोल में, अग्रासे दिगंशन्यून होनेपर भी दो छाया नहीं सिद्ध होती यह दिखलाया है। यहां यह विशेष व्यभिचरित होता है।

स्थाप्यः। अथ त्रिज्यया अक्षभाया अग्रायाश्च तिसृणां घातोऽन्यसंज्ञश्च स्थाप्यः। अथ दिग्ज्याया अग्रायाश्च वर्गान्तरेण तावाद्यान्यावपवर्त्यौ। ततो य आद्यराशिस्तस्मादन्यराशेर्वर्गेण युताद्यत् पदं तदन्येन राशिनोनं सदुत्तरगोले दक्षिणगोले तु युतं सदिष्टदिशं गतेऽर्के छायाकर्णो वा भवति। अथोत्तरगोले यदि दिग्ज्याग्रायाःसकाशादल्पा भवति। तदान्यराशेर्वर्गात् प्रथमेन हीनाद्यन्मूलं तेनान्यराशिरेकत्र हीनोऽन्यत्र युतः सन् द्विधाकर्णो भवति। यत्र युतः कृतस्तत्र सममण्डलादुत्तरस्थेऽर्के यत्र हीनः कृतस्तत्र दक्षिणस्थ इति ज्ञेयम्। कदाचिदुत्तरतोऽपि कर्णद्वयं भवति।

अत्रोपपत्तिर्बीजगणितप्रक्रियया। तत्राऽव्यक्तं याकारोपलक्षितं त्रिज्याग्रादिका आद्याक्षरोपलक्षिताः कृत्वा बीजप्रक्रिया प्रदर्श्यते। तद्यथा। छायाकर्णप्रमाणं यावत्तावत् १। अस्माद्भुजः साध्यः। त्रिभज्याहृतार्काग्राकाकर्णनिघ्नीत्यादिना दक्षिणगोल उत्तराजाता कर्णवृत्ताग्रा $\frac{\text{या. अ } १}{\text{त्रि}}$। इयं कर्णवृत्ताग्रा पलच्छायया संस्कृता जातो भुजः $\frac{\text{या. अ } १ \text{ वि. त्रि } १}{\text{त्रि } १}$। अस्मात् त्रिज्याहतोऽसौ प्रभया विभक्त इत्यादिना दिग्ज्या साध्या। अयं त्रिज्यागुणितः या. अ १ वि. त्रि १। कर्णवर्गाद्द्वादशवर्गेऽपनीते जातश्छायावर्गः याव १ रु १४४। वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्चेत्यनेन पूर्वराशिवर्गो भाज्यः। पूर्वराशेर्यावद्वर्गः क्रियते तावत् प्रथमं यावत्तावद्वर्गगुणितोऽग्रावर्गः। ततो याकारगुणितोऽग्रात्रिज्यापलभानां घातो

द्विगुणस्ततः पलभावर्गगुणस्त्रिज्यावर्गो रूपराशिरन्ते भवति । स तेन छायावर्गेण भक्तो जातः

याव. अव १ या. अ. वि. त्रि २ विव. त्रिव १

याव १ रु १४४

अत्र फलं दिग्ज्यावर्गः । अतोऽयं दिग्ज्यावर्गेण समः क्रियते । अत्र पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे तयोः शोधनार्थं न्यासः ।

याव. अव १ या. अ वि. त्रि २ विव. त्रिव १

याव. १ दिव १ या० दिव १४४

अत्रैकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षादित्यादिना समशोधने कृते जातं प्रथमपक्षे प्रथमस्थाने दिग्ज्याग्रावर्गान्तरं यावद्वर्गगुणितं द्वितीयस्थाने त्रिज्याक्षभाग्राभिहतिर्द्विगुणिता यावत्तावद्गुणिता ऋणगता च । द्वितीयपक्षे रूपस्थाने व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गनिघ्नी तत्संयुतिर्जाता । शोधितपक्षयोर्न्यासः ।

याव. द्विव १ याव. अव १ या. अ. वि. त्रि २

विव. त्रिव १ दिव १४४

अथ पक्षयोर्मूलार्थं दिग्ज्याग्रावर्गवियोगेनापवर्तनं कृतम् । अव्यक्तवर्गस्थाने रूपं जातम् । इतरौ राशी अपवर्तितौ जातौ लघू । तत्र यो रूपराशिः सोऽत्र प्रथमसंज्ञः कृतः । अव्यक्तस्थाने त्रिज्याक्षभाग्राभिहतिर्दिग्ज्याग्रावर्गवियोगभक्ता चान्यसंज्ञः कृतः । इदानीं पक्षयोरन्यवर्गतुल्यानि रूपाणि प्रक्षिप्याव्यक्तपक्षस्य मूलम् । या १ अन्य १ । इदं प्रथमपक्षमूलम् । अथान्यवर्गेण युताद्यराशेर्मूलम् द्वितीयपक्षमूलम् । तेन सह प्रथमपक्षमूलस्य

पुनः समीकरणम् । तत्र प्रथमपक्षमूले योऽन्यो रूपराशिः स द्वितीयपक्षमूले समशोधने ऋणगतत्वात् क्षेप्यो भवति दक्षिणगोले । उत्तरगोले तु धनगतत्वाच्छोध्यः ।

यदोत्तरगोलेऽग्रया अल्पे दिग्गुण इच्छादिक्छायासाधनं तदा दिग्ज्यावर्गादग्रावर्गो न शुध्यति । अतः समक्रियायां विलोमशोधने क्रियमाणेऽव्यक्तपक्षमूलेऽन्य ऋणगतो लभ्यते स च द्वितीयपक्षमूलादधिकः स्यात् तदा,

अव्यक्तमूलर्णगरूपतोऽल्पं
व्यक्तस्य पक्षस्य पदं यदि स्यात् ।
ऋणं धनं तच्च विधाय साध्य-
मव्यक्तमानं द्विविधं क्वचित्तत् ॥

इत्यस्याः परिभाषाया विषयः । अतस्तत्र द्विधाश्रुतिः स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

एक स्थान में त्रिज्यावर्ग को पलभावर्ग से गुणा कर, दूसरे स्थान में दिग्ज्यावर्ग को द्वादश वर्ग से गुणा कर दोनों के योग की प्रथम संज्ञा करना । फिर, त्रिज्या, पलभा और अग्रा को परस्पर में गुणा-कर अन्यसंज्ञक कल्पना करना । दिग्ज्यावर्ग और अग्रावर्ग के अन्तर से प्रथमसंज्ञक और अन्यसंज्ञक फलों में भाग देना । प्रथमसंज्ञक और अन्यसंज्ञक के वर्गयोग का मूल लेना । उसको, उत्तरगोल में अन्यसंज्ञक राशि में घटाना और दक्षिण गोल में जोड़ना । इस प्रकार, इष्ट दिशा में गत सूर्य के छायाकर्ण होंगे । उत्तर गोल में यदि अग्रा से दिग्ज्या कमती हो तब अन्यसंज्ञक राशि के वर्ग से प्रथम-संज्ञक राशि को घटाकर शेष का मूल लेकर, अन्यसंज्ञक में एक

जगह घटाना, दूसरे स्थान में जोड़ना, इस प्रकार दो छायाकर्ण होंगे। जहां जोड़ा है वह समवृत्त के उत्तर सूर्य का छायाकर्ण और घटाने के स्थान में दक्षिण दिशा में वर्तमान सूर्य का छायाकर्ण होताहै । कभी कभी उत्तर गोल में भी दो छायाकर्ण होते हैं ।

उपपत्ति ।

यहां उपपत्ति वीजगणित की रीति से समीकरण द्वारा सिद्ध होती हैं । छायाकर्ण=य,

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{य} \times \text{अ}}{\text{त्रि}} \text{ । भुज} = \frac{\text{य} \times \text{अ}}{\text{त्रि}} + \text{वि ।}$$

इससे ' कर्णाग्रया वाहुरिह प्रसाध्यः- ' इस प्रकार से दिग्ज्या का साधन करना है । छाया के अज्ञान से प्रकारान्तर से छायावर्ग साधन किया—

$\text{छाया}^2 = \text{य}^2 - \text{द्वा}^2$, इससे त्रिज्या गुणित पूर्वज्ञात भुज को विभाजित किया, तव 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च-' इस रीति से,

$$\text{दिज्या}^2 = \frac{\text{य}^2 \times \text{अ}^2 + २\,\text{य} \times \text{अ} \times \text{वि} \times \text{त्रि} + \text{वि}^2 \times \text{त्रि}^2}{\text{य}^2 - \text{द्वा}^2} = \text{दिज्या}^2;$$

समीकरण करने पर समच्छेद करके पक्षों के शोधनार्थ न्यास किया-

$$\text{य}^2 \times \text{अ}^2 + २\,\text{य} \times \text{अ} \times \text{वि} \times \text{त्रि} + \text{वि}^2 \times \text{त्रि}^2$$

$$= \text{य}^2 \times \text{दिज्या}^2 + \text{द्वा}^2 - \text{वि}^2$$

$$\therefore \text{य}^2\,(\,\text{दिज्या}^2 - \text{अ}^2\,)\,\text{य} \times \text{अ} \times \text{वि} - २\,\text{त्रि} = \text{द्वा}^2 \times \text{दिज्या}^2 + \text{वि}^2 \times \text{त्रि ।}$$

दोनों पक्षों में ' $\text{दिज्या}^2 - \text{अ}^2$ ' का अपवर्तन देने से-

$$\text{अन्य} = \frac{\text{अ} \times \text{वि} \times \text{त्रि}}{\text{दिज्या}^2 - \text{अ}^2} \text{ । आद्य} =$$

$$\frac{\text{द्वा}^2 \times \text{दिज्या}^2 + \text{त्रि}^2 \times \text{त्रि}^2}{\text{दिज्या}^2 - \text{अ}^2} \text{।}$$

अन्यवर्ग को जोड़कर पक्षों के मूलार्थ न्यास—

$$\text{य}^2 - 2\,\text{य} \times \text{अ} + \text{अन्य}^2 = \text{आद्य} + \text{अन्य}^2$$

$$\sqrt{\text{य}^2 - 2\,\text{य} \times \text{अ} + \text{अन्य}^2} = \text{य} - \text{अ} =$$

$$\sqrt{\text{आद्य} + \text{अन्य}^2};$$

इन दोनों पक्षों का फिर समीकरण करने पर प्रथम पक्ष गत राशि ऋणात्मक होने से 'अव्यक्तमूलर्णगरूपतोऽल्पम्—' इत्यादि बीजगणित के विशेष नियम से दो प्रकार का मान सिद्ध होता है। इसीलिए दो प्रकार का कर्ण सिद्ध होता है। यह विषय यहां वासनाभाष्य में स्पष्ट ही है॥ ४६–५१॥

इदानीमिहो सर्वासां दिक्छायानामेकमेवानयनमप्रसिद्धमनेनाचार्येणोक्तम्। तत्र का प्रतीतिरिति मन्दानामाशङ्कां परिहरन्नाह।

कर्णाग्रया बाहुरिह प्रसाध्य—
स्त्रिज्याहतोऽसौ प्रभया विभक्तः।
भवेत् प्रतीत्यर्थमियं च दिग्ज्या
तुल्यैव सा स्याच्छ्रवणद्वयेऽपि॥ ५२॥

इदं सुज्ञैरुक्तमात्रमपि ज्ञायते। इदानीं ये जडास्तेषां प्रतीत्यर्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण कर्णाग्रया बाहुः साध्यः। स बाहुस्त्रिज्यया गुण्यश्छायया भक्तो दिग्ज्या भवति। यतः शङ्कुमूलाच्छायाग्रगामि सूत्रं यत्र त्रिज्यावृत्ते लगति सा तस्याश्छायाया दिक्। किन्त्वर्कदिग्वैपरीत्येन भवति। एवं मन्दानां प्रतीतिरुत्पाद्या।

भाषाभाष्य ।

कर्णावृत्तीय अग्रा से जो भुज सिद्ध किया है, उसको त्रिज्या से गुणाकर छाया का भाग देने से, दिग्ज्या होती है । यह दिग्ज्या पूर्व साधित दिग्ज्या के समान होती है—यह विश्वास गणित से उत्पन्न करना चाहिए । यह दिग्ज्या दोनों कर्णों में बराबर ही होती है ।

अनुपात किया—

छायाकर्ण में यह कर्णावृत्तीय अग्रा से सिद्ध भुज मिलता है तो त्रिज्याकर्ण में क्या ? फल दिग्ज्या होगी । इसप्रकार एक ही दिग्ज्या में कर्ण और छाया के भेद होने पर भी उनसे उक्त रीति से एक ही दिग्ज्या सिद्ध होती है ॥ ५२ ॥

एवं दिङ्नियमेन छायानयनमभिधायेदानीं कालनियमेनाह ।

उक्ता प्रभाभिमतदिङ्नियमेन तावत्
तामेव कालनियमेन च वच्मि भूयः ।
स्यादुन्नतं द्युगतशेषकयोर्यदल्पं
तेनोनितं दिनदलं नतसंज्ञकं च ॥ ५३ ॥

अथोन्नतादूनयुताच्चरेण
क्रमादुदग्दक्षिणगोलयोर्ज्या ।
स्यात् सूत्रमेतद्गुणितं द्युमौर्व्या
व्यासार्धभक्तं च कलाभिधानम् ॥ ५४ ॥

दिवसस्य यद्गतं यच्च शेषं तयोर्यदल्पं तदुन्नतसंज्ञं ज्ञेयम् । तेनोन्नतेनोनीकृतं दिनदलप्रमाणं तन्नतसंज्ञं भवति । अथोन्नतादुन्नतकालादुत्तरगोले चरेणोनितादक्षिणे युताद्या ज्या तत् सूत्रम् । सा सूत्रसंज्ञेत्यर्थः । तत् सूत्रं द्युज्यया गुणितं त्रिज्यया भक्तं कलासंज्ञं भवति ।

अत्रोपपत्तिः। यस्मिन् काले छाया साध्या तस्मिन् काले स्वाहोरात्रवृत्ते यावतीभिर्घटिकाभिः क्षितिजादुन्नतो रविस्तासामुन्नतसंज्ञा। येन कालेन मध्याह्नान्नतस्तस्य नतसंज्ञा। अथ चरेणोनयुतस्योन्नतकालस्य किल ज्या साध्या। सा च ज्या मध्यावधिर्भवति। स च मध्यप्रदेशोऽहोरात्रवृत्तस्योन्मण्डलसंपाते भवति। यत उन्मण्डलसंपाताभ्यामूर्ध्वमहोरात्रवृत्तस्यार्धमधोऽर्धम्। अत उन्मण्डलावधेर्जीवा साध्या। क्षितिजोन्मण्डलयोरन्तरं चरार्धम्। अतश्चरार्धेन वर्जितादुन्नतादुत्तरगोले दक्षिणे तु युतात्। यत उत्तरगोले क्षितिजादुपर्युन्मण्डलं दक्षिणेऽधः। तस्मात् कालाद्या ज्या साधिता सा त्रिज्यावृत्तपरिणता सा च सूत्रसंज्ञा। अथ यदि त्रिज्यावृत्त एतावती तदा द्युज्यावृत्ते कियतीत्यनुपातेन द्युज्यावृत्तपरिणता। सा च कलासंज्ञा।

प्रभा।

इष्टदिक्सम्बन्धेन प्रभा छाया तावत्पूर्वमुक्ता। भूयः पुनस्तां छायां कालनियमेन कालोपाधिसंबन्धेन वच्मि कथयामि। तथा च दिक्कालाभ्यामेकत्र छायैक्यं भवतीति भावः।

भाषाभाष्य।

इष्ट दिशा के अनुरोध से छाया का साधन उक्त विधियों से कहा गया है। अब उसी छाया साधन को कालनियम से कहता हूं। दिन के गत और गम्य काल में, जो अल्प हो वह उन्नतकाल और उसको दिनार्ध में घटा देने से नतकाल होता है।

उत्तरगोल में उन्नतकाल में, चरकाल घटाने से और दक्षिणगोल में जोड़ देने से जो उन्नतज्या होती है, उसको सूत्र कहते हैं। सूत्र को द्युज्या से गुणाकर, त्रिज्या का भाग देने से फल कलासंज्ञक होता है।

उपपत्ति ।

जिस समय छाया सिद्ध करनी हो उस समय उन्नतकाल में चर को उत्तरगोल में घटाने से और दक्षिण में जोड़ने से उन्मण्डल से लेकर रविविम्ब तक जो काल उसकी ज्या उन्नतज्या होती है। वह त्रिज्या-वृत्त परिणत होती है उसकी सूत्रसंज्ञा है। इसको द्युज्यावृत्त में परि-णामन के लिए अनुपात किया—

त्रिज्या में सूत्र तो द्युज्या में क्या ? $= \frac{\text{सूत्र} \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रि}} =$ कला;

अर्थात् त्रिज्यावृत्तीय सूत्र और वही द्युज्यावृत्त परिणत कलासंज्ञक होता है ॥ ५३–५४ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण कलां तस्याश्चेष्टयष्टिमाह ।

सूत्रं कुजीवागुणितं विभक्तं
चरज्यया स्यादथवा कला सा ।
कला पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी
तत्कर्णभक्ता भवतीष्टयष्टिः ॥ ५५ ॥

अथवा तत् सूत्रं कुज्यया गुणितं चरज्यया भक्तं सत् कला भवति । सा च कलाष्टधा पलक्षेत्रकोटिभिर्गुण्या स्वस्वकर्णेन भाज्या फलमष्टधेष्टयष्टिर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र चरज्याकुज्ये त्रिज्याद्युज्यापरि-णते । अतस्ताभ्यां चानुपातः । यदि चरज्यया कुज्या लभ्यते तदा सूत्रेण किमिति । फलं कला । सा कला-होरात्रवृत्ते ज्या । सा पलवशादक्षकर्णवत् तिरश्चीना जाता । अथ तस्याः कोटिसूत्रमात्रमानेयम् । तत्रानु-पातः । यदि पलक्षेत्रकर्णेन तत्कोटिर्लभ्यते तदा कला-कर्णेन किमिति । फलमुन्मण्डलशङ्क्वग्रसमसूत्रादुपर्यर्क-बिम्बादध ऊर्ध्वं कोटिरूपं भवति । तस्येष्टयष्टिसंज्ञा ।

भाषाभाष्य।

सूत्र को कुज्या से गुणाकर चरज्या का भाग देने से कला होती है। उस कला को किसी अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणाकर, उसके कर्ण का भाग देने से, इष्टयष्टि होती है।

उपपत्ति।

चरज्या और कुज्या क्रम से त्रिज्या और द्युज्या वृत्त परिणत हैं। इसलिए अनुपात किया—

$$\text{चज्या} : \text{कुज्या} :: \text{सूत्र} = \frac{\text{सूत्र} \times \text{कुज्या}}{\text{चज्या}} = \text{कला}$$, प्रकारान्तर से हुई।

$$\text{पक} : \text{द्वा} :: \text{कलाक} = \frac{\text{द्वा} \times \text{कला}}{\text{पक}} = \text{इष्टयष्टि}$$ ।

कला अहोरात्रवृत्त की ज्या होती है, इसलिए तिरछी कर्णरूप होती है। उसी से अनुपात किया है। इष्टयष्टि, उन्मण्डल शङ्कु के ऊपर अर्कबिम्ब तक कोटिरूप होती है। इष्टकाल में होने से इष्टयष्टि नाम पड़ा ॥ ५५ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणेष्टयष्टिमाह।

उद्वृत्तशङ्कोरपि सूत्रनिघ्ना-
चरज्ययाप्तं यदि वेष्टयष्टिः।

स्पष्टार्थम्। अत्रोपपत्तिः। यदि चरज्यया उन्मण्डलशङ्कुर्यष्टिस्तदा सूत्राख्यस्य किमिति त्रैराशिकेन वा यष्टिरित्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

अथवा—उन्मण्डलशङ्कु को सूत्र से गुणाकर चरज्या का भाग देने से, प्रकारान्तर से इष्टयष्टि होती है।

$$\text{चज्या} : \text{उंश} :: \text{सूत्र} = \frac{\text{उंश} \times \text{सूत्र}}{\text{चज्या}} = \text{इष्टयष्टि}$$ ।

क्योंकि चरज्या कर्णा में उन्मण्डलशङ्कु यष्टिरूप होता है ॥

इदानीमिष्टान्त्यकाहृत्योरानयनमाह।

रवावुदग्दक्षिणगोलयाते
सूत्रं युतोनं चरजीवया स्यात् ॥ ५६ ॥
इष्टान्त्यकैवं क्षितिजीवया च
कलायुतोनाहृतिरिष्टकाले।

यत्पूर्वानीतं सूत्रं तदुत्तरगोले चरज्यया युक्तं दक्षिणे हीनमिष्टान्त्यकासंज्ञं भवति। एवमनेनैव गोलक्रमेण कुज्यया युतहीना सती कलेष्टहृतिसंज्ञा भवति।

अत्रोपपत्तिः। अत्रोन्मण्डलादुपरितनकालस्याहोरात्रवृत्ते या ज्या सा कला। अधस्तनस्य या ज्या सा कुज्या। तयोरुत्तरगोले योगे कृतेऽर्कबिम्बादुदयास्तसूत्रपर्यन्तमक्षकर्णगत्या तिर्यक् सूत्रं भवति। सेष्टहृतिः। सैव त्रिज्यापरिणता सतीष्टान्त्यका भवति। अतश्चरज्यया सूत्रं युतं कृतम्। दक्षिणगोले तून्मण्डलस्य क्षितिजादधःस्थितत्वात् कला कुज्यया हीना कार्या सूत्रं चरज्ययेत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

सूर्य के उत्तर और दक्षिण गोल में होने पर, क्रम से सूत्र को चरज्या में जोड़ने और घटाने से इष्टान्त्यका होती है। इसीप्रकार, कला को कुज्या में जोड़ने और घटाने से इष्ट हृति होती है।

उपपत्ति।

उन्मण्डल से ऊपर अहोरात्रवृत्त में जो इष्टकालज्या होती है वह कला है। और उन्मण्डल के नीचे कुज्या है।

∴ कला ± कुज्या = इष्टहृति, दोनों गोल में। यह अर्कबिम्ब से

लेकर उदयास्त सूत्र तक तिरछा सूत्र होता है। त्रिज्यावृत्त में इष्टहृति को परिणामित करने से इष्टान्त्या होती है।

∴ सूत्र =।= चज्या = इष्टान्त्या, दोनों गोल में। इस प्रकार सब उपपन्न हुआ ॥ ५६ ॥

इदानीमिष्टशङ्कुमाह।

युतोनितोन्मण्डलशङ्कुनैव-

मिष्टाख्ययष्टिर्भवतीष्टशङ्कुः ॥ ५७ ॥

एवमुत्तरगोल उन्मण्डलशङ्कुना युता दक्षिणे रहिते-ष्टयष्टिरिष्टशङ्कुर्भवति।

अत्रोपपत्तिः। या पूर्वमानीतेष्टयष्टिः सोन्मण्डल-शङ्क्वग्रसमसूत्रादुपर्यूर्ध्वरूपा। सा यावदुत्तरगोल उन्म-ण्डलशङ्कुना युता दक्षिणे रहिता क्रियते तावदर्कबि-म्बादवलम्बो भूपर्यन्तो भवति। स एवेष्टशङ्कुरित्युप-पन्नम्।

भाषाभाष्य।

इसी प्रकार, उत्तरगोल में उन्मण्डलशङ्कु को इष्टयष्टि में जोड़ने और दक्षिण में घटाने से, इष्टशङ्कु होता है।

उपपत्ति।

इष्टयष्टि, उन्मण्डलशङ्कु के ऊपर इष्ट रविबिम्ब तक होती है। उसको उन्मण्डलशङ्कु में जोड़ देने से, उत्तरगोल में भूमि से लेकर रविबिम्ब तक अन्तर होता है, उसी को इष्टशङ्कु कहते हैं। दक्षिण गोल में उन्मण्डल से क्षितिज ऊपर होने से, घटाने से होता है ॥ ५७ ॥

उन्नतकालाच्छङ्कुमानीयेदानीं नतकालादाह।

नतोत्क्रमज्या शर इत्यनेन

हीनान्त्यका वाभिमतान्त्यका स्यात्।

द्युज्याहतो व्यासदलेन भक्तः
कुज्याहतो वा चरशिञ्जिनीहृत् ॥ ५८ ॥
शरः पृथक्स्थेन फलेन हीना
हृतिर्भवेद्वा हृतिरिष्टकाले।

इष्टकाले यन्नतं तस्योत्क्रमज्या सा शरसंज्ञा ज्ञेया। अनेन शरेण प्रागानीतान्त्यारहिता सतीष्टान्त्या वा भवति। अथ शरो द्युज्यागुणो व्यासदलेन भक्तः। अथवा कुज्यागुणश्चरज्यया भक्तः। यत्फलं तदनष्टं स्थाप्यम्। तेन पृथक्स्थेन फलेन प्रागानीता हृतिर्वर्जिता सतीष्टहृतिर्वा भवति।

अत्रोपपत्तिः। गोलक्रमेण त्रिज्या चरज्यया युतोना किलान्त्या भवति। सूत्रं चरज्यया युतोनमिष्टान्त्या भवति। नतोत्क्रमज्या बाणरूपया त्रिज्या यावदूना क्रियते तावत् सूत्रं भवति। अत उक्तं शरोनान्त्येष्टान्त्या भवति। अथ यः शरस्त्रिज्यापरिणतोऽसावनुपातेन द्युज्यापरिणतः कृतः। यदि त्रिज्यया द्युज्या लभ्यते तदा शरेण किमिति। अथवा चरज्यया कुज्या लभ्यते तदा शरेण किमिति त्रैराशिकाभ्यां यत्फलमुत्पद्यते सा नतोत्क्रमज्या द्युज्यापरिणता जाता। द्युज्या कुज्यया युतहीना किल हृतिः स्यात्। कला तु कुज्यया युतोनेष्टहृतिः स्यात्। अथ नतोत्क्रमज्या द्युज्यापरिणतया यावद् द्युज्यया वर्जिता क्रियते तावत् कला भवति। यदि हृतिरूना क्रियते तदेष्टहृतिर्भवतीत्युपपन्नम्।

अथ स्वाहोरात्रवृत्ते याम्योत्तरवृत्तसंपाते सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमधः संपाते च। तस्य सूत्रस्योदया-

स्तत्सूत्रेण यः संपातस्तस्मादुपरितनं खण्डं हृतिः। अथाहोरात्रवृत्ते याम्योत्तरवृत्तसंपातात् पूर्वतः पश्चिमतश्च नतघटिकाग्रे चिह्नयित्वा तत्र सूत्रं बध्नीयात्। तस्य सूत्रस्य हृतिसूत्रस्य च यः संपातस्तस्मादधःखण्डं यदुदयास्तसूत्रपर्यन्तं तावत्प्रमाणेष्टहृतिः। यत्तूर्ध्वखण्डं सा नतोत्क्रमज्या द्युज्यापरिणता फलसंज्ञा। एवं गोलोपरि दर्शयेत्।

भाषाभाष्य।

इष्टकाल में, नतकाल की उत्क्रमज्या शरसंज्ञक होती है। उस शर को पूर्व साधित अन्त्या में घटा देने से इष्टान्त्या होती है। शर को द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या का भाग देना अथवा–कुज्या से गुणाकर चरज्या का भाग देना, जो फल मिले उसको पूर्व साधित हृति में घटा देने से, इष्टकाल में हृति होती है।

उपपत्ति।

उत्तर और दक्षिण गोल के क्रम से,

$$\text{त्रिज्या} \pm \text{चरज्या} = \text{अन्त्या},$$

$$\text{सूत्र} \pm \text{चरज्या} = \text{इष्टान्त्या},$$

$$\text{त्रिज्या} - \text{शर} = \text{सूत्र}।$$

शर, त्रिज्या परिणत है उसको द्युज्या परिणत करने के लिए अनुपात किया—

$$\text{त्रि} : \text{द्यु} :: \text{शर} = \frac{\text{शर} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{नतोत्क्रमज्या}।$$

$$\text{अथवा, चज्या} : \text{कुज्या} :: \text{शर} = \frac{\text{शर} \times \text{कु}}{\text{चज्या}} = \text{नतोत्क्रमज्या}।$$

$$\text{द्युज्या} \pm \text{कुज्या} = \text{हृति}।$$

और, कला =।= द्युज्या = इष्टहृति । द्युज्यापरिणत नतोत्क्रमज्या, यदि द्युज्या में घटा दीजाय तो कला होती है । और हृति घटाने से इष्ट हृति होती है । नतोत्क्रमज्या द्युज्या परिणत फलसंज्ञक होता है ॥ ५८ ॥

इदानीमिष्टशङ्कर्थमाह ।

फलं पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नं
तत्कर्णभक्तं च तदूर्ध्वसंज्ञम् ॥ ५९ ॥
उदूवृत्तशङ्कोः शरसंगुणात्स्या-
च्चरज्ययाप्तं यदिवोर्ध्वसंज्ञम् ।
ऊर्ध्वेन हीनो दिनमध्यशङ्कुः
स्यादिष्टशङ्कुर्नततोऽथवैवम् ॥ ६० ॥

यत् पूर्वफलमनष्ट स्थापितं तदष्टधा पलेक्षेत्रकोटिभिर्गुणितं स्वस्वकर्णेन भक्तं सदूर्ध्वसंज्ञमष्टधा भवति । अथवा प्रागानीतः शर उन्मण्डलशङ्कुना गुणितश्चरज्यया भक्तस्तदूर्ध्वसंज्ञं स्यात् । किं फलानयनप्रयासेन । तेनोर्ध्वसंज्ञेन दिनार्धशङ्कुरूनितः सन्निष्टशङ्कुर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः । यत् प्राक् प्रदर्शितं हृतेरुपरिखण्डं फलसंज्ञं तिर्यग्रूपं तस्य कोटिरूपकरणायानुपातः । यदि पलक्षेत्रकर्णेन तत्कोटिर्लभ्यते तदानेन फलसंज्ञेन किमिति । लब्धमूर्ध्वं कोटिरूपं भवति । तद्यावद्दिनार्धशङ्कोर्विशोध्यते तावदिष्टशङ्कोः समानमवशेषं भवति । यतस्तत्समसूत्रेणैवार्कबिम्बमहोरात्रवृत्ते वर्तते । यदि चरज्यया त्रिज्यावृत्तपरिणतयोन्मण्डलशङ्कुतुल्यमूर्ध्वं लभ्यते तदा शरेण त्रिज्यावृत्तपरिणतेन कियदित्येवं तावदूर्ध्वमिति सर्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

पहले जो फल सिद्ध किया है, उसको किसी पल क्षेत्र की कोटि से गुणाकर—उसके कर्ण का भाग देने से—ऊर्ध्वसंज्ञक फल होता है। अथवा—उन्मण्डल शङ्कु को शरसंज्ञक से गुणाकर चरज्या का भाग देने से ऊर्ध्व फल होता है। उसको दिनार्धशङ्कु में घटा देने से इष्टशङ्कु, नतकाल से सिद्ध होता है।

उपपत्ति ।

द्युज्यावृत्त परिणत फल पहले लिखा गया है। वह कर्णरूप होता है उसको कोटिरूप में लाने के लिए अनुपात करते हैं।

$$\text{पलक} : \text{पलको} :: \text{फ} = \frac{\text{फल} \times \text{पलको}}{\text{पलक}} = \text{ऊर्ध्वसंज्ञक} ।$$

दिनार्धशङ्कु—ऊर्ध्वसंज्ञक = इष्टशङ्कु ।

अथवा प्रकारान्तर से अनुपात किया—

$$\text{चरज्या} : \text{उशं} :: \text{शर} = \frac{\text{शर} \times \text{उश}}{\text{चज्या}} = \text{ऊर्ध्वसंज्ञक} ।$$

इसप्रकार सब उपपन्न हुआ ॥ ५९—६० ॥

इदानीमिष्टान्त्यकाहृतिभ्यां शङ्कुमाह ।

इष्टान्त्यकायाश्च हृतेश्च यद्वा
दिनार्धशङ्कूक्तवदिष्टशङ्कुः ।
शङ्कोश्च दिग्ज्याश्रवणप्रभाः स्यु-
र्हृतेर्न दृग्ज्या सुधियात्र कार्या ॥ ६१ ॥

यथान्त्याया अन्त्याथवोन्मण्डलशङ्कुनिघ्नीत्यादिना प्रकारेण दिनार्धशङ्कुरानीतः। तथा यथा हृतेश्च हृतिः पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नीत्यादिना च तथेष्टान्त्यकाया इष्ट-हृतेश्चेष्टशङ्कुः साध्यः। तथा शङ्कोर्दृग्ज्या ततश्छायाकर्ण-

श्छाया च साध्या। सा दिनार्धोक्तिवत् साध्येति शेषः। किन्त्वत्र हृतेर्दृग्ज्या हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नीत्यादिना न साध्या अयमर्थस्तत्राप्युक्तः।

अत्रोपपत्तिः। हृतिर्दक्षिणोत्तरमण्डलगता तया या दृग्ज्या साधिता सा दक्षिणोत्तरमण्डल एव दिनार्धे भवितुमर्हति। यतस्तत्र दक्षिणोत्तरमण्डलमेव दृङ्मण्डलम्। इह त्वन्यत्। अतो हृतेर्दृग्ज्या न साध्येत्युक्तम्।

भाषाभाष्य।

अथवा—इष्टान्त्या और इष्ट हृति से, दिनार्ध शङ्कु साधन के अनुसार इष्टशङ्कु का साधन करे और उससे दृग्ज्या फिर छाया और छायाकर्ण सिद्ध करे। पर यहां हृति से दृग्ज्या का साधन न करना चाहिए।

उपपत्ति।

यहां उपपत्ति पूर्व रीति से स्पष्ट ही है। विशेष यही है कि इष्टशङ्कु के साधन में हृति से दृग्ज्या न करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि हृति याम्योत्तरवृत्त में होती है और उस से जो दृग्ज्या सिद्ध होगी वह दक्षिणोत्तर में होगी मध्याह्न में दृङ्मण्डल, याम्योत्तरवृत्त होता है। परन्तु इष्टकाल में दृङ्मण्डल भिन्न होता है॥ ६१॥

अथ प्रकारान्तरैश्छायाकर्णमाह।

उदवृत्तकर्णात् क्षितिशिञ्जिनीघ्नात्
समाख्यकर्णादपितद्धृतिघ्नात्।
दिनार्धकर्णादथवा हृतिघ्ना-
द्धृत्येष्टयासं यदिवेष्टकर्णः॥ ६२॥

यः पूर्वमुन्मण्डलकर्ण आनीतः स कुज्यया गुण्यः।

यश्च समवृत्तशङ्कोः कर्ण उत्पद्यते स तद्धृत्या गुणनीयः। यस्तु मध्याह्नच्छायाकर्णः स हृत्या गुण्यः। तेभ्यस्त्रिभ्य इष्टया हृत्या भागे हृते पृथक् पृथक् त्रिधेष्टकर्णो भवति।

अत्रोपपत्तिर्व्यस्तत्रैराशिकेन। यदि कुज्यातुल्यया हृत्योन्मण्डलकर्णस्तद्धृत्या सममण्डलकर्णो हृत्या मध्याह्नकर्णो लभ्यते तदेष्टहृत्या किमिति। फलमिष्टकर्णो लभ्यत इत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

उन्मण्डलकर्ण को कुज्या से, सममण्डलकर्ण को तद्धृति से, और दिनार्धकर्ण को हृति से गुणाकर तीनों स्थानों में इष्टहृति का भाग देने से, प्रकारान्तर से, इष्टकर्ण होता है।

उपपत्ति।

यहां उपपत्ति आचार्य ने व्यस्तत्रैराशिक से लिखी है। समत्रैराशिक से भी होती है:—

$$\text{उक} : \text{द्वा} :: \text{त्रि} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि}}{\text{उक}} = \text{उन्मण्डलशङ्कु}।$$

$$\text{कुज्या} : \text{उशं} :: \text{इहृ} = \frac{\text{उशं} \times \text{इहृ}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{इहृ}}{\text{कुज्या} \times \text{उक}}$$

$=$इष्टशङ्कु।

$$\text{इशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वा} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{इशं}} = \text{छायाकर्ण},$$

$$= \frac{\text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{कु} \times \text{उक}}{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{इहृ}} = \frac{\text{उक} \times \text{कु}}{\text{इहृ}} = \text{छायाकर्ण}$$

सिद्ध हुआ।

प्रकारान्तर में उपपत्ति—

$$\text{सक} : \text{द्वा} :: \text{त्रि} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि}}{\text{सक}} = \text{समशङ्कु} ।$$

$$\text{तद्धृति} : \text{सशं} :: \text{इह} = \frac{\text{सशं} \times \text{इह}}{\text{तद्धृ}} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{इह}}{\text{तद्धृ} \times \text{सक}}$$

= इष्टशङ्कु ।

$$\text{इशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वा} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा}}{\text{इशं}} =$$

$$\frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वा} \times \text{तद्धृ} \times \text{सक}}{\text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{इह}} = \frac{\text{सक} \times \text{तद्धृ}}{\text{इह}} = \text{इष्टकर्ण}$$

सिद्ध हुआ ।

अथवा,

$$\text{दिक} : \text{द्वा} :: \text{त्रिक} = \frac{\text{द्वा} \times \text{त्रिक}}{\text{दिक}} = \text{दिनार्धशङ्कु} ।$$

$$\text{हृति} : \text{दिशं} :: \text{इह} = \frac{\text{दिशं} \times \text{इह}}{\text{हृति}} =$$

$$\frac{\text{द्वा} \times \text{त्रि} \times \text{इह}}{\text{हृति} \times \text{दिक}} = \text{इष्टशङ्कु} ।$$

$$\text{इशं} : \text{त्रिक} :: \text{द्वाशं} = \frac{\text{त्रिक} \times \text{द्वाशं}}{\text{इशं}} =$$

$$\frac{\text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{हृ} \times \text{दिक}}{\text{त्रि} \times \text{द्वा} \times \text{इह}} = \frac{\text{दिक} \times \text{हृ}}{\text{इह}} = \text{इष्टकर्ण} ।$$

इस प्रकार तीनों प्रकार से छायाकर्ण सिद्ध होता है । और 'उद्वृत्त-कर्णात्—' इत्यादि उपपन्न होता है ॥ ६२ ॥

इदानीं विशेषमाह ।

यत्र क्वचिच्छुद्धिविधौ यदेह
शोध्यं न शुध्येद्विपरीतशुद्ध्या ।

विधिस्तदा प्रोक्तवदेव किन्तु
योगे वियोगः सुधिया विधेयः ॥ ६३ ॥

अथ यत्र क्वचिच्छुद्धिविधौ कर्तव्ये शोध्यं यदि न शुध्यति तदा शोध्यादितरराशिं विशोध्य शेषविधिः कर्तव्यः । किन्तु व्यस्तशोधने कृते यदा योगविधिरुत्पद्यते तदा वियोगविधिः कार्यः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्राथोन्नतादूनयुताच्चरेणेत्यादौ यदोत्तरगोल उन्नतकालाच्चरं न शुध्यति तदा चरादुन्नतं विशोध्य शेषस्य ज्योन्मण्डलादधश्चरज्याखण्डं सूत्रसंज्ञं भवति। तस्य यदा कला क्रियते तदोन्मण्डलादधः कुज्याखण्डं भवति। कलाया यदेष्टयष्टिः क्रियते तदोन्मण्डलशङ्कोरूर्ध्वं खण्डं भवति । अथ रवावुदग्दक्षिणगोलयात इत्यादौ सूत्रं किल चरज्यया युक्तं कार्यम् । तदिह न कार्यम् । किन्तून्मण्डलादधोमुखं यत् सूत्रमागतं तच्चरज्यया विशोध्यम् । शेषमिष्टान्त्या भवति । एवं तदा या कलोन्मण्डलादधोमुख्यागता सा कुज्यया विशोधिता शेषं कुज्याधस्तनखण्डमिष्टहृतिः । एवमुन्मण्डलादधोमुखी येष्टयष्टिरागता सोन्मण्डलशङ्कोः शोध्या शेषमिष्टशङ्कुर्भवतीति युक्तमुक्तम् ।

भाषाभाष्य ।

जब किसी स्थान में घटाने के समय शोध्य राशि न घट सके तो उसमें दूसरी राशि को घटाना चाहिए । वहां सब गणित यथानियम करें केवल जहां जोड़ने का प्रसङ्ग आवे वहां घटाना और घटाने के स्थान में जोड़ना चाहिए ।

इस विपरीत शोधनविधि को इस प्रकार समझना चाहिए जैसा 'अथोन्नतादूनयुताच्चरेण—' इत्यादि में उन्नतकाल में चर घटाना लिखा है—यदि चर से उन्नतकाल कम हो तब चर में ही उसको घटाना चाहिए। ऐसेही अन्य स्थानों में भी समझना। वासनाभाष्य में सब स्पष्ट है॥ ६३॥

इदानीमन्यं विशेषमाह।

बाणेन्दु १५ नाड्यूननतात् क्रमज्या
त्रिज्यान्विता सैव नतोत्क्रमज्या।
उद्वृत्तशङ्कुस्तु न याम्यगोले
दृश्योऽनुपातार्थमयं प्रसाध्यः॥ ६४॥

यदा नतं पञ्चदशघटिकाभ्योऽधिकं भवति तदोत्क्रमज्याकरणे नतात् पञ्चदशघटिका विशोध्य शेषस्य क्रमजीवा त्रिज्यया युता सत्युत्क्रमज्या स्यादित्यवगन्तव्यम्। तथा दक्षिणगोले क्षितिजादधःस्थितत्वादुन्मण्डलशङ्कुरदृश्यस्तथाप्ययमन्येषामनुपातार्थं साध्यः।

अत्रोपपत्तिः। उत्क्रमज्या हि बाणरूपा भवति यदा नतं पञ्चदशघटिकाधिकं तदा पञ्चदशघटिकानामुत्क्रमज्या बाणरूपा त्रिज्यातुल्या भवति। अथ पञ्चदशघटिकाधिको यः कालस्तस्य क्रमज्योर्ध्वाधोरूपा भवति। सा यावत् त्रिज्यया युता क्रियते तावद्बाणरूपोत्क्रमज्या भवति। अत्र गोलेऽहोरात्रवृत्ते याम्योत्तरवृत्तात् पूर्वतो नतघटिकाग्रे सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं पश्चिमतश्च नतघटिकाग्रे निबध्यते तस्य सूत्रस्य याम्योत्तराहोरात्रवृत्तसंपातस्य च यदन्तरं तद्बाणरूपम्। एवं तासामुत्क्रमज्यां प्रदर्शयेत्।

भाषाभाष्य ।

जब नत पन्द्रह घड़ी से अधिक हो तब उत्क्रमज्या साधन करने में उसको १५ घड़ी में घटाकर शेष की ज्या को त्रिज्या में जोड़ देने से नतोत्क्रमज्या होती है । दक्षिणगोल में उन्मण्डलशङ्कु देखने में नहीं आता । पर अनुपात के लिए साधन करना चाहिए ।

यहां उपपत्ति स्पष्ट लिखी है । गोल देखने से ज्ञात होगी ॥ ६४ ॥

इदानीमन्यं विशेषमाह ।

मार्त्तण्डः सममण्डलं प्रविशति स्वल्पेऽपमे स्वात् पलात्
दृश्योह्युत्तरगोल एव स विशन् आव्या तदैवास्य भा ।
अप्राप्तेऽपि समाख्यमण्डलमिने यः शङ्कुरुत्पद्यते
नूनं सोऽपि परानुपातविधये नैवं क्वचिद् दुष्यति ॥६५॥

मार्तण्डस्य यावदुत्तरा क्रान्तिः पलाधिका भवति तावत् सममण्डलादुत्तरस्थस्यैव तस्य दिनार्धं भवति । यावत् पलादूना तावद्दक्षिणस्थस्यैव । अतस्तत्र सममण्डलं प्रविशति । किन्तु तत्र क्षितिजादधःस्थितत्वात् प्रविशन् न दृश्यते । उत्तरगोले तु दृश्यते । अतस्तत्रैव तस्य भा आव्या कथनीया । तथाऽप्राप्तेऽपि समाख्यमण्डलमिने यः शङ्कुरुत्पद्यत इति । यत्र किल विंशतिर्भागाः पलस्तत्र मिथुनान्तस्थो रविः सममण्डलादुत्तरतो भागचतुष्टयेन दिनार्धे भवति । अतस्तस्य सममण्डलमप्राप्तस्यापि यो गणितेन समशङ्कुरुत्पद्यते तथा तद्धृतिश्च तत् कथमिदं द्वयं वन्ध्यासुतवत् । तदपि प्रदर्श्यते । उदयास्तसूत्रमध्याद्धृतिसूत्रगत्या सूत्रमेकं प्रसार्य द्वितीयं गोलमध्यात् खस्वस्तिकगामि च । तयोः सूत्रयोर्यो गोलादूर्ध्वभागे संपातस्तस्मादध ऊर्ध्वसूत्रं यत्प्रमाणं

तत्प्रमाणस्तदा समशङ्कुरुत्पद्यते । यत्तु तिर्यक्सूत्रप्रमाणं तत्प्रमाणा तद्धृतिरुत्पद्यते । तत्राप्यग्रा भुजरूपिणी । इदमक्षक्षेत्रम् । अतोऽन्येषामनुपातार्थमिदं न दुष्यति । दक्षिणगोलेऽदृश्यो यः समशङ्कुः सोऽप्यनुपातार्थं न दुष्यतीत्यपि शब्दार्थः ।

भाषाभाष्य ।

उत्तरगोल में जब अक्षांश से क्रान्ति अधिक होगी तब सममण्डल के उत्तर में मध्याह्न होगा । इसीप्रकार जब अक्षांश से न्यून होगी तब सममण्डल के दक्षिण में मध्याह्न होगा और सूर्य सममण्डल प्रवेश करेगा । परन्तु उत्तरगोल में ही सममण्डल प्रवेश देखने में आवेगा और तभी समच्छाया आदि होंगी । दक्षिणगोल में नहीं । और जिस देश में सममण्डल प्रवेश न हो और गणित द्वारा समशङ्कु सिद्ध हो, वह भी अनुपात के लिए व्यभिचरित नहीं होता ।

उपपत्ति ।

विषुवद्वृत्त से सूर्यविम्ब तक याम्योत्तरवृत्त में क्रान्ति और खस्वस्तिक तक अक्षांश होता है । इसलिए अक्षांश से अधिक क्रान्ति में खस्वस्तिक से उत्तर दिनार्ध में सूर्य होता है । इस कारण वहां सममण्डल प्रवेश का अभाव होगा । और अक्षांश से न्यून क्रान्ति होनेपर समवृत्त के दक्षिण सूर्य होने से वहां सममण्डल प्रवेश अवश्य होगा । यह उत्तरगोल की स्थिति है ।

दक्षिणगोल में अहोरात्रवृत्त और सममण्डल का संपात क्षितिज के नीचे होने से, वहां सममण्डल प्रवेश दिखलाई न देगा । पर वहां भी जो समशङ्कु उत्पन्न होगा वह अनुपात के लिये उपयोगी होगा ॥ ६५ ॥

इदानीं छायातः कालज्ञानमाह ।

उदग्वृत्तकर्णाच्चरशिञ्जिनीघ्ना-

द्दिनार्धकर्णादथवान्त्यकघ्नात् ।

इष्टेन कर्णेन हृताद्यदाप्त-

मिष्टान्त्यका सैव पृथक् पृथक् स्यात् ॥ ६६ ॥

पलश्रुतिघ्नस्त्रिगुणस्य वर्गो

द्युज्येष्टकर्णाहतिहृद्भवेद्वा ।

इष्टान्त्यका तद्रहितान्त्यकाया

भवन्ति या उत्क्रमचापलिप्ताः ॥ ६७ ॥

नतासवस्ते स्युरहर्दलं तै-

रूनीकृतं चोन्नतकाल एवम् ॥

उन्मण्डलकर्णाच्चरज्यया गुणितादथवा मध्याह्नकर्णा-दन्त्यया गुणितादिष्टकर्णेन भक्ताद्यत् फलं लभ्यते से-ष्टान्त्या भवति । उभयत्र तुल्येत्यर्थः । अथ प्रकारान्त-रेणेष्टान्त्यामाह । फलश्रुतिघ्नस्त्रिगुणस्य वर्ग इत्यादि । त्रिज्यावर्गः पलकर्णेन गुण्यः । द्युज्यया इष्टकर्णस्य च घातेन भाज्यः । यत् फलं लभ्यते सेष्टान्त्यका । तयेष्टा-न्त्यया रहिताया अन्त्याया यच्छेषं तस्योत्क्रमेण धनुः कार्यम् । तस्य धनुषो यावत्यः कलास्तावन्तस्तस्मिन् काले नतासवो ज्ञेयाः । तैर्नतासुभिरूनीकृतादिनदलासवः उन्नतासवः स्युः ।

अत्रोपपत्तिर्व्यस्तत्रैराशिकेन । यद्युन्मण्डलकर्णेन चर-ज्येष्टान्त्यका लभ्यते तदेष्टकर्णेन किमिति । अथवा यदि मध्याह्नकर्णेनान्त्या लभ्यते तदेष्टच्छायाकर्णेन किमिति । एवमत्रोभयत्र फलमिष्टान्त्यका भवति । अथान्यस्मिन्

प्रकारान्तरे त्रैराशिकत्रयेणोपपत्तिः । यदीष्टच्छायाकर्णेन द्वादशाङ्गुलशङ्कुर्लभ्यते तदा त्रिज्याकर्णेन क इति । अत्र त्रिज्याया द्वादशगुण इष्टकर्णो हरः । फलं महाशङ्कुः । अथ तस्य हृतिकरणार्थमनुपातः । यदि द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्विषुवत्कर्णः कर्णस्तदास्य महाशङ्कोः क इति । पूर्वं त्रिज्याया द्वादशगुणः । इदानीं हरः । अतस्तुल्यत्वाद्द्वादशकयोर्गुणहरयोर्नाशे कृते सति त्रिज्यायाः पलकर्णो गुण इष्टच्छायाकर्णो हरः । फलमिष्टहृतिः । अथेष्टान्त्याकरणार्थानुपातः । यदि द्युज्यया त्रिज्या लभ्यते तदेष्टहृत्या किमिति । इदानीं त्रिज्यागुणो द्युज्याहरः । हरयोर्घातो हर इति द्युज्येष्टकर्णाहतिर्भवति । गुणयोर्घाते त्रिज्यावर्गः पलकर्णगुणितो भवति । एवं फलमिष्टान्त्यका । तया वर्जितायाः अन्त्याया यदवशेषं सा नतस्योत्क्रमज्या शरसंज्ञा । अतस्तस्या धनुरुत्क्रमेण स नतकालः स्यात् । नतकालो दिनार्धात् पतित उन्नतकालः स्यादित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

उन्मण्डलकर्ण को चरज्या और दिनार्धकर्ण को अन्त्या से गुणाकर; इष्टकर्ण का भाग देने से जो फल मिले, वह अलग अलग इष्टान्त्या होती है । पलकर्ण को त्रिज्यावर्ग से गुणाकर द्युज्या और इष्टकर्ण के गुणनफल का भाग देने से इष्टान्त्या होती है । अन्त्या में इष्टान्त्या को घटा देने से शेष उत्क्रमज्या रहती है । उसका धनु करने से नतासु होते हैं । उनको दिनार्ध में घटा देने से उन्नतकाल होता है ।

इदानीं विशेषमाह ।

त्रिज्याधिकस्य क्रमचापयुक्ताः

खखाङ्धिबाणा धनुरुत्क्रमात् स्यात् ॥ ६८ ॥

यदेष्टान्त्यकावर्जिताया अन्त्यायाः शेषं त्रिज्यातोऽधिकं भवति तदा तस्मात् त्रिज्या शोध्या । शेषस्य क्रमचापलिप्ताः खखाङ्धिबाणैर्युता उत्क्रमचापं भवति । ते तदा नतासवो भवन्तीत्यर्थः । अत्र यैवाधिकस्य क्रमज्याकरणे युक्तिः सैवाधिकस्य क्रमधनुःकरणे ।

भाषाभाष्य ।

यदि अन्त्या में इष्टान्त्या घटाने पर, शेष त्रिज्या से अधिक बचे तो उसमें त्रिज्याको घटाकर शेष की क्रमज्या करके उसको ५४०० कला में जोड़ देने से उत्क्रमचाप होता है । वही उस समय नतासु सिद्ध होते हैं ।

जिसप्रकार पहले क्रमज्या का साधन त्रिज्या के अधिक होनेपर हुआ है वैसे ही यहां भी समझना चाहिए । शेष स्पष्ट है ॥ ६८ ॥

इदानीमुन्नतकालस्य प्रकारान्तरमाह ।

इष्टान्त्यका स्वा चरजीवयोना
युक्ता च गोलक्रमतः क्रमोत्थाः ।
तच्चापलिप्ताश्चरयुक्तहीनाः
समुन्नतास्ते यदिवासवः स्युः ॥ ६९ ॥

अथवा सेष्टान्त्यकोत्तरगोले चरज्यया हीना दक्षिणे युता । ततस्तस्याः क्रमज्याभिश्चापम् । तदुत्तरगोले चरेण युतं दक्षिणे हीनं तत्काल उन्नतासवो भवन्ति । यदेष्टान्त्यकायाश्चरज्योत्तरगोले न शुध्यति तदा चरज्याया इष्टान्त्या शोध्या । शेषस्य चापं तत्र चरं क्षेप्यं तदिह न क्षिप्यते । व्यस्तशोधने कृते योगे वियोगः सुधिया विधेय इति वचनात् तच्चापं चराद्विशोध्यम् ।

शेषमुन्नतासवो भवन्ति । उन्नताद्दिनार्धाच्छोधितान्नता-सवो भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिः । इष्टान्त्यकाकरणे या क्षेत्रसंस्था कथिता सैवेह तथापीषत् कथ्यते । इष्टान्त्यकायाश्चरज्या यावदुत्तरगोले शोध्यते दक्षिणे तु क्षिप्यते तावदुन्मण्डला-दुपरितनकालस्य ज्या सूत्रसंज्ञा भवति । अतस्तस्या धनुरुत्तरगोले तून्मण्डलादधःस्थेन चरेण युतं दक्षिणे तूपरिस्थेन हीनं सत् क्षितिजादुन्नतकालो भवतीत्युपपन्नम् । यदा तूत्तरगोले चरज्या न शुध्यति तदा व्यस्त-शोधने कृत उन्मण्डलादधोमुखी ज्या सूत्रसंज्ञा भवति । अतस्तस्या धनुषि चराच्छोधिते सति क्षितिजादुन्नत-कालो भवतीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

इष्टान्त्या में उत्तरगोल में चरज्या को घटाना और दक्षिणगोल में जोड़ना । फिर उसका क्रमज्या की विधि से चाप करके, उत्तरगोल में चर में जोड़ने, और दक्षिणमें घटानेसे, तात्कालिक उन्नतासु होते हैं ॥६९॥

इदानीं छायातोऽर्कानयनमाह ।

दिनार्धद्युतेस्त्रिज्यकाघ्न्या हृतायाः
स्वकर्णेन चापांशकाः स्युर्नतांशाः ।
दिनार्धे वियुक्ता युतास्ते पलांशै-
रुदग् दक्षिणे भाग्रकेऽर्कापभः स्यात् ॥ ७० ॥
ततः क्रान्तितो वैपरीत्येन भानु-
र्भवेदेतदन्यच्च गोले प्रवक्ष्ये ॥

मध्याह्नच्छाया त्रिज्यया गुण्या । मध्याह्नच्छायाक-र्णेन भाज्या । यत्फलं लभ्यते तस्य चापांशा नतांशा

भवन्ति। यद्युत्तरं छायाग्रं तदा दक्षिणाः। यदि दक्षिणं तदोत्तराः। एवं दिनार्धे ये नतांशा भवन्ति ते यदि दक्षिणास्तदा पलांशैर्वियुक्ताः। यद्युत्तरास्तदा पलांशैर्युताः सन्तः क्रान्त्यंशा भवन्ति। ततः क्रान्तितो वैपरीत्येन रविर्भवतीति गोले वक्ष्ये। अन्यच्च बहु गोले वक्ष्ये।

अत्रोपपत्तिः। यदि मध्याह्नच्छायाकर्णेन मध्याह्नच्छायातुल्यो भुजो लभ्यते तदा त्रिज्याकर्णेन क इति। यदनेन त्रैराशिकेन फलमुत्पद्यते सा याम्योत्तरवृत्ते खमध्यार्कान्तरांशानां जीवा। अतस्तस्या धनुर्नतांशाः। ते च छायातो दिग्वैपरीत्येन भवन्तीति प्रसिद्धम्। यदि ते दक्षिणा जातास्तदा तेभ्योऽक्षांशाः शोध्याः। शेषं विषुवन्मण्डलाद्दक्षिणतः क्रान्त्यंशा भवन्ति। यदि तेभ्यः पलांशा न शुध्यन्ति तदा पलांशेभ्यो नतांशान् विशोध्य शेषं विषुवन्मण्डलादुत्तराः क्रान्त्यंशा ज्ञेयाः। यद्युत्तरा नतांशास्तदा पलांशैर्युताः सन्त उत्तराः क्रान्त्यंशा भवन्तीति सुधिया ज्ञातव्यम्।

भाषाभाष्य।

मध्याह्न की छाया को त्रिज्या से गुणाकर मध्याह्नछायाकर्ण का भाग देने से, जो फल मिले उसके चाप नतांश होते हैं। उनको उत्तर छाया होने पर, अक्षांश में जोड़ने और दक्षिण होने पर घटाने से, क्रान्त्यंश होते हैं। फिर क्रान्ति से विपरीत अनुपात से सूर्य ज्ञात होता है। यह विषय गोल में कहैंगे।

उपपत्ति।

$$\text{म क} : \text{म भु} :: \text{त्रिक} = \frac{\text{म भु} \times \text{त्रिक}}{\text{म क}} = \text{खमध्य से नतांशज्या}$$ ।

ज्या का धनु करने से छाया की दिशा से विपरीत दिशा में नतांश होते हैं ।

नतांश—अक्षांश=क्रान्त्यंश; यह दक्षिण नतांश में । उत्तर में योग । पलांश न घट सकें तो उनमें नतांश को घटा देना चाहिए । शेष विषुवन्मण्डल से उत्तर क्रान्त्यंश होते हैं । इस प्रकार सब स्पष्ट है ॥ ७० ॥

इदानीं क्रान्तिज्ञाने सति पलज्ञानमाह ।

नतांशापमांशान्तरं तुल्यदिक्त्वे
युतिर्भिन्नदिक्त्वे पलांशा भवेयुः ॥ ७१ ॥

एवं छायातो ये नतांशा ज्ञातास्तेषामपमांशानां च दिक्साम्येऽन्तरं दिग्भेदे योगः पलो भवति । पूर्वोपपत्तिकथनवैपरीत्येनास्योपपत्तिः कथिता भवति ।

भाषाभाष्य ।

एक दिशा में नतांश और क्रान्त्यंश का अन्तर और भिन्न दिशा में योग करने से, अक्षांश ज्ञात होते हैं ।

यहां उपपत्ति स्पष्ट ही है ॥ ७१ ॥

इदानीं छायातो भुजज्ञानमाह ।

त्रिभज्याहृतार्काग्रका कर्णनिघ्नी
भवेत्कर्णवृत्ताग्रका व्यस्तगोला ।
पलच्छायया सौम्यया संस्कृता स्या-
द्भुजोऽथोत्तरे भाग्रके सौम्यगोले ॥ ७२ ॥
भुजः कर्णवृत्ताग्रयाढ्योऽन्यदासौ
वियुक्तोऽक्षभा स्यात् तया वा वियुक्तः ।
भुजः सौम्यभाग्रेऽन्यदाढ्यास्त्रिभज्या-
हतः कर्णभक्तोऽग्रका चापमोऽतः ॥ ७३ ॥

अर्कस्याग्रेष्टच्छायाकर्णेन गुण्या त्रिभज्यया भाज्या

फलं कर्णवृत्ताग्रा स्यात् । सा च व्यस्तगोला । उत्तरगोले याम्या दक्षिणगोले सौम्या । सा पलच्छायया सौम्यया संस्कर्तव्या । पलच्छाया सदैव सौम्या ज्ञेया । तस्याः कर्णवृत्ताग्रायाश्चोत्तरगोलेऽन्तरं याम्ये योगो भुजः स्यात् । भुजो नाम छायाग्रपूर्वापररेखयोर्याम्योत्तरमन्तरम् ।

अथ भुजदर्शने कर्णवृत्ताग्रया पलभाज्ञानमाह । अथोत्तरे भाग्रक इति । यदोत्तरगोले सममण्डलाद्दक्षिणगते रवावुत्तरं भाग्रं भवति तदोत्तरभुजः कर्णवृत्ताग्रया युतः सन् पलभा भवति । अन्यदा तु भुजस्य कर्णवृत्ताग्रायाश्चान्तरं पलभा ।

अथ दृष्टे भुजे पलभया कर्णवृत्ताग्राज्ञानमाह । तया वा वियुक्त इत्यादि । यदा सौम्यो भुजस्तदा तस्याक्षभायाश्चान्तरमन्यथा योगः कर्णवृत्ताग्रा भवति । सा त्रिज्यागुणा कर्णभक्ताग्रा स्यात् । अग्रा पलक्षेत्रकोटिगुणिता तत्कर्णभक्ता क्रान्तिज्या स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । समायां भूमौ त्रिज्यावृत्तं विलिख्य दिगङ्कितं च कृत्वा तत्र पूर्वतः पश्चिमतश्च यथादिशमग्रां दत्वा तदग्रयोरुदयास्तसूत्ररेखां कुर्यात् । अथोत्तरगोल इष्टकाले सममण्डलादुत्तरतोऽहोरात्रवृत्तस्थाद्रवेरधोऽवलम्बस्तदा किल शङ्कुः । शङ्कुमूलस्य प्राच्यपरसूत्रेण सहान्तरं स शङ्कोरुत्तरो भुजः । उदयास्तसूत्रेण सहान्तरं तच्छङ्कुतलम् । अतः शङ्कुतलं यावदग्राया विशोध्यते तावद्भुजोऽवशिष्यते । यावद्भुजो विशोध्यते तावच्छङ्कुतलमवशिष्यते । शङ्कुतलभुजयोर्योगोऽग्रा

भवति । यदोत्तरगोले समवृत्ताद्दक्षिणतः शङ्कुस्तदा शङ्कुतलादग्रायां विशोधितायां भुजोऽवशिष्यते । भुजे विशोधितेऽग्रा । भुजाग्रयोर्योगस्तदा शङ्कुतलं भवतीत्यत्र योगवियोगे किं वासनावैचित्र्यम् । इदं महाशङ्कोस्त्रिज्यातुल्ये कर्णे दर्शितम् । महाशङ्कुरनियतः । इदानीं नियतस्य द्वादशाङ्गुलशङ्कोरुच्यते । महाशङ्कुर्द्वादशभिर्भाज्यः । यल्लब्धं तेन महाशङ्कुर्यावच्छिद्यते तावद् द्वादश लभ्यन्ते । यावत् त्रिज्या छिद्यते तावच्छायाकर्णो लभ्यते । यावदग्रा छिद्यते तावच्छायाकर्णवृत्ताग्रा स्यात् । यावच्छङ्कुतलं छिद्यते तावत् पलभा स्यात् । यावद्भुजश्छिद्यते तावद्भुजो लभ्यते । अथवा त्रैराशिकेन सर्वम् । यदि त्रिज्यावृत्त इदमग्रादिकं लभ्यते तदा कर्णवृत्ते किमिति । फलं तदेव । अतश्छायाकर्णवृत्ताग्रापलभयोर्योगवियोगाद्भुजः । ततः पलभा तत्राग्रेत्युपपन्नम् । किन्तु शङ्कुप्राच्यपरयोर्यावदन्तरं तावदेव छायाग्रप्राच्यपरयोः स्यात् । किन्तु दिग्वैपरीत्येन । अतस्तेन कर्णवृत्ताग्रा व्यस्तगोलेत्युपपन्नम् ।

अथ मन्दबोधार्थमुदाहरणम् । यत्र देशे पञ्चाङ्गुला विषुवती तत्रोत्तरगोले यदा पञ्चांशोनैः सप्तदशभिरधिका नवशत्यग्रा ९१६ । ४८ । तत्र दिन इष्टच्छायाकर्णस्त्रिंशदङ्गुलः ३० पञ्चदशाङ्गुलो वा । तत्र पृथक् पृथक् भुजं ब्रूहि भुजात् पलभां ताभ्यां चाग्रामिति । त्रिभज्याहृताऱ्काग्रकेत्यादिना त्रिंशदङ्गुले कर्णे ज्ञाता कर्णवृत्ताग्रा याम्या । इयं पलच्छायया सौम्यया ५ वियुक्ता जातो याम्यो भुजः ३ । अथ भुजे ज्ञाते तेन रहिता कर्ण-

वृत्ताग्रा जाता पलभा ५ । पलभाभुजयोर्ज्ञातयोर्योगे जाता कर्णवृत्ताग्रा ८ । इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ता जाताग्रा ६१६ । ४८ । एवं पञ्चदशाङ्गुले कर्णे कर्णवृत्ताग्रा चतुरङ्गुला ४ । सौम्यो भुजोऽङ्गुलम् १ । पलभा सैव ५ ।

भाषाभाष्य ।

अब छाया से भुज का ज्ञान कहते हैं;—सूर्य की अग्रा को इष्ट छायाकर्ण से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से फल कर्णावृत्ताग्रा होती है । वह उत्तरगोल में दक्षिण और दक्षिणगोल में उत्तर होती है । उसका पलभा में संस्कार करने से भुज होता है । पलच्छाया सदा उत्तर दिशा की होती है इसलिये उत्तरगोल में अन्तर और दक्षिण में योग करना चाहिये । अब उत्तर छायाग्र में, उत्तरगोल में, उत्तर भुजको कर्णावृत्ताग्रा में जोड़ने से पलभा होती है अन्यथा, अन्तर करने से । अथवा, उत्तरभुज और पलभा का अन्तर, दक्षिणगोल में योग कर्णावृत्ताग्रा होती है । उसको त्रिज्यासे गुणाकर कर्ण का भाग देने से अग्रा सिद्ध होती है । अग्रा से क्रान्तिज्ञान होता है ।

उपपत्ति ।

इष्ट अहोरात्रवृत्त में, वर्तमान ग्रहबिम्ब से लम्बरूप शङ्कु और प्राच्यपर सूत्र का याम्योत्तर अन्तर भुज होता है । वह अग्रा और शङ्कुतल के योग-वियोग से बनता है ।

महाशङ्कु के अनियत होने से नियत द्वादशाङ्गुल शङ्कु में साधनार्थ, महाशङ्कु के द्वादशांश का भुज में भाग देने से, भुज होगा । इसलिये महाशङ्कु के द्वादशांश से विभक्त अग्रा और शङ्कुतल के संस्कार से लघुभुज होता है ।

यदि त्रिज्यावृत्त में अग्रादि तो कर्णावृत्त में क्या ? इस अनुपात से त्रिज्यावृत्तीयं कर्णावृत्त में परिणामित सिद्ध होंगे । द्वादशाङ्गुल शङ्कु

की भी छाया पूर्वापरसूत्र से विपरीत दिशा की होती है। क्योंकि—पूर्वापर सूत्र से भुजान्तर में छाया का अग्र ग्रह से विपरीत दिशा में हुआ करता है ॥ ७२–७३ ॥

इदानीं प्रश्नाः सोत्तराः । तत्र छायाकर्णे भुजेऽर्के च ज्ञातेऽथवार्कज्ञाने भुजद्वये कर्णद्वये च ज्ञाते यः पलभां वेत्ति तस्योत्कर्षमाह ।

दृष्ट्वेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी
छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः ।
वेत्यक्षभामुद्धतदैववेदि-
दुर्दर्पसर्पप्रशमे स तार्क्ष्यः ॥ ७४ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

उद्धता उद्भटा ये दैववेदिनो गणितिकास्तेषां ये दुर्दर्पाः परोक्तिखण्डनादिना संजातगर्वास्त एव सर्पास्तेषां प्रशमे नाशे तार्क्ष्यो गरुडः 'गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यः' इत्यमरात् । सोऽस्तीत्यर्थः । शेषं स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

जो गणक, छायाकर्ण, भुज और सूर्य को जानकर, अथवा दो भुज और दो छाया कर्णों को जानकर, पलभा को जानता है वह उन्मत्त गणक के दुष्ट अभिमानरूप सर्प के नाश करने में, गरुड़ के समान है ॥ ७४ ॥

इदानीं प्रश्नमाह ।

भाकर्णे खगुणाङ्गुले ३० किल सखे याम्यो भुजस्त्र्यङ्गुलो-
ऽन्यस्मिन्पञ्चदशाङ्गुले १५ ऽङ्गुलमुदग्बाहुश्च यत्रेक्षितः ।
अक्षाभां वद तत्र षट्कृतगजै ८४६ र्यद्वापमज्यां समां
दृष्ट्वेष्टामनयोःश्रुतिं च सभुजां द्राग्ब्रूहि मेऽक्षप्रभाम् ॥७५॥

स्पष्टार्थं प्रश्नद्वयम् ।

भाषाभाष्य।

हे मित्र, जहां छायाकर्ण ३० अङ्गुल और दक्षिणभुज ३ अङ्गुल है और जहां छायाकर्ण १५ अङ्गुल और उत्तरभुज १ अङ्गुल है वहां पलभा बतलाओ। अथवा—क्रान्तिज्या ८४६ और उक्त दोनों कर्णों में से कोई एक कर्ण और भुज जानकर, पलभा शीघ्र बतलाओ॥ ७५॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह।

भाद्वयस्य भुजयोः समाशयो-
र्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा
जायते श्रुतिवियोगभाजितम्॥ ७६॥

अत्रैको बाहुर्याम्यस्त्रयम् ३। तत्र कर्णस्त्रिंशत् ३०। अन्यः सौम्यो रूपम् १। तत्र कर्णः पञ्चदश १५। अनयोर्भुजयोरन्योन्यकर्णहतयोर्भिन्नदिशोर्योगः ७५। अयं कर्णान्तरेण भक्तो जाता पलभा ५। एकदिशोस्त्वन्तरम्।

अस्योपपत्तिस्तावदुच्यते। सा चाव्यक्तक्रियया। तत्र पलभा प्रमाणं यावत्तावत् १। इयं दक्षिणेन भुजेन युता जाता कर्णवृत्ताग्रा या १ रु ३। इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ता जाताग्रा या. त्रि १ त्रि ३। एवमन्यभुजादपि
३०

पलभा या १। इयमुत्तरेण भुजेनोना कर्णवृत्ताग्रा भवति या १ रु १̇। इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ता जाताग्रा या. त्रि १ त्रि १̇। अनयोरन्योन्यच्छेदगुणयोश्छेदगमे सम-
१५

शोधनार्थं न्यासः या. त्रि १५ त्रि ४५̇ अनयोस्त्रिज्यया-
या. त्रि ३० त्रि ३०

पयस्तं कृत एकान्यक्तं शोधयेदन्यपक्षादित्यादिना यावत्तावच्छेषं कर्णान्तरतुल्यं हरो जातः १५ । रूपशेषमन्योन्यकर्णाहतभुजयोर्योगो जातो भाज्यः ७५ । अत उपपन्नं भाद्वयस्य भुजयोः समाशयोरित्यादि ।

भाषाभाष्य ।

दोनों छायाओं के भुजों को आपस में, एक के भुज दूसरे के कर्ण को, और दूसरे के भुजसे प्रथम के कर्ण को गुणाकर, दोनों फलों का, एक दिशा का भुज होने पर अन्तर अन्यथा योग करके उसमें छायाकर्णों के अन्तर का भाग देने से पलभा होती है ।

उपपत्ति

पलभा=य,

दक्षिणभुजको जोड़ने से प्रवृत्ताग्रा=य+प्रभु;

उत्तर भुज को घटाने कर्णवृत्ताग्रा=य—द्विभु;

यदि कर्णवृत्त में य फल तो त्रिज्यावृत्त में क्या ? इस अनुपात से अग्रा सिद्ध भई-

$$\frac{\text{या. त्रि} + \text{प्रभु. त्रि}}{\text{प्रक}} = \frac{\text{य. त्रि} - \text{द्विभु} - \text{त्रि}}{\text{द्विक}} \text{ ।}$$

समच्छेद करके समशोधनार्थ न्यास—

त्रि द्विक+प्रभु. त्रि. द्विक=य. त्रि. प्रक—द्विभु. त्रि. प्रक;

शोधन करने से—

य. त्रि (प्रक—द्विक)=त्रि (प्रभु. द्विक+द्विभु . प्रक);

त्रिज्या का अपवर्तन दिया—

$$\therefore \text{य} = \frac{\text{प्रभु.द्विक} \pm \text{द्विभु.प्रक}}{\text{प्रक} - \text{द्विक}} = \text{पलभा, सिद्ध हुई ॥ ७६ ॥}$$

अथ द्वितीयः प्रश्नः । अथवा षट्कृतगजै ८४६ स्तुल्यां क्रान्तिज्यां दृष्ट्वा तयोरेकं कर्णं भुजं च दृष्ट्वा पलभां ब्रूहीत्यस्योत्तरमाह ।

क्रान्तिज्याकर्णवधात् त्रिज्या-
सकृतिर्लघुः स दोः कृत्या ।
हीनोऽङ्घिमनु १४४ घ्नः स्या-
दाद्योऽथ परो भुजः कृतेन्द्र १४४ घ्नः ॥ ७७ ॥

तौ लघुवेदेन्द्र १४४ न्तरभक्तौ परवर्गतो यदाद्याढ्यात् ।
मूलं परयुतवियुतं सौम्ये याम्ये भुजे पलभा ॥ ७८ ॥

क्रान्तिज्योद्दिष्टच्छायाकर्णेन गुण्या त्रिज्यया भाज्या । फलस्य वर्गो लघुसंज्ञः पृथगनष्टः स्थाप्यः । स लघुर्भुज-वर्गेणोनो वेदेन्द्रै १४४ र्गुण्यः । स आद्यसंज्ञः स्यात् । अथ भुजो वेदेन्द्रै १४४ र्गुणितोऽन्यसंज्ञः स्यात् । तावा-द्यान्यौ तस्य लघोर्वेदेन्द्राणां १४४ चान्तरेणापवर्त्यौ । ततोऽन्यवर्गादाद्येन युताद्यन्मूलं तदुत्तरे भुजे सति परेण युतं याम्ये वर्जितं पलभा भवतीति सूत्रार्थः ।

अस्योपपत्तिर्मध्यमाहरणबीजेन । यदा त्रिंशदङ्गुलः कर्णः । यत्र त्र्यङ्गुलो ३ याम्यो भुजः । षट्कृतगजै-स्तुल्या ८४६ क्रान्तिज्या । तत्र तावदुच्यते । पलभा-प्रमाणं यावत्तावत् १ । इयं याम्येन भुजेन युता जाता कर्णवृत्ताग्रा या १ रु ३ । अथ प्रकारान्तरेण कर्णवृत्ताग्रा । तत्र क्रान्तिज्या पलकर्णगुणा द्वादश १२ भक्ता किलाग्रा स्यात् । तत्र पलकर्णो न ज्ञायते किन्त्वव्यक्तात्मकः पल-कर्णवर्गो ज्ञायते । स चैवम् । पलभावर्गो द्वादशवर्ग-युतः पलकर्णवर्गः स्यात् याव १ रु १४४ वर्गेण वर्ग

गुणयेद्वुजेचेति क्रान्तिज्यावर्गोऽनेन गुण्यो द्वादशवर्गेण भाज्यः फलमग्रावर्गः स्यात् याव. क्रां व १ क्रां व. १४४ ।
१४४

अथ त्रिभज्याहृतार्काग्रका कर्णनिघ्नीति कर्णवर्गेणायं गुण्यस्त्रिज्यावर्गेण भाज्यः । एवं कर्णवृत्ताग्रावर्गो भवति याव. क्रांव. कव १ क्रांव. कव १४४ अत्र भाज्यराशा-
त्रिव १४४

वव्यक्तस्थाने क्रान्तिज्यावर्गे ७१५७१६ कर्णवर्गगुणे त्रिज्यावर्गे ११८१६८४४ च्छिन्ने जातो लघुसंज्ञः । रूपस्थाने च क्रान्तिज्यावर्गे कर्णवर्गगुणे वेदेन्द्र १४४ गुणे च त्रिज्यावर्गच्छिन्ने जातो लघुर्वेदेन्द्रगुणाऽङ्गुलानि तदधो व्यङ्गुलानि च बालावबोधार्थं स्थापितानि । तस्य राशे-र्यश्छेदः सोऽपि त्रिज्यावर्गच्छिन्नस्तदधोन्यस्तस्तथा दर्शनम् । याव ५४ रू ७८५० य एव क्रान्तिज्यावर्गः
३१ २४

कर्णवर्गगुणस्त्रिज्यावर्गच्छिन्नः सैष छेदः १४४ क्रान्ति-ज्याकर्णवधात् त्रिज्यासकृतिः । अयं राशिः कर्णवृत्ताग्रा-वर्गः पूर्वकल्पितताया अस्याः कर्णवृत्ताग्रायाः या १ रू ३ । वर्गेणानेन याव १ या ६ रू ९ समः कार्यः । अयं सम-च्छेदकरणार्थं शङ्कुवर्गेण १४४ गुणितस्ततश्छेदगमे कृते शोधनार्थं न्यासः याव १४४ या ८६४ रू १२९६ सम-
याव ५४ या ० रू ७८५०
३१ ८४

शोधने कृते जातमुपरिपक्षे लघुवेदेन्द्रान्तरतुल्यो याव-राशिः । कृतेन्द्र १४४ घ्नो भुजो द्विगुणश्च या राशिः ।

द्वितीयपक्षे जातो लघुर्दोः कृत्या हीनोऽधिमनुघ्नश्च।
याव ८९ या ८६४। अयं रूपराशिराद्यसंज्ञः कल्पितः।

२९
रू ६५५४
२४

यो मध्यराशिरर्धितः स भुजः कृतेन्द्र १४४ घ्नो जातः।
सोऽन्यसंज्ञः कल्पितः। अथ पक्षौ लघुवेदेन्द्रान्तरेणा-
पवर्तितौ जातौ याव १ या ९ रू०। अनयोः पक्षयोरपव-

४०
याव० या० रू ७३।
१५

र्तितान्यवर्ग २३ तुल्यानि रूपाणि प्रक्षिप्य मूले गृहीते
२१
या १ रू ४ अनयोः पुनः साम्ये क्रियमाणे व्यक्तपक्षस्य
५०
या ० रू ९
५०

मूलमव्यक्तपक्षमूलस्य रूपैरन्यतुल्यैरूनमेकेन भक्तं स-
ञ्जाता पलभा ५। उत्तरे भुजे त्वन्यतुल्यरूपाणि ऋणं
भवन्ति तैः शोध्यत्वाद्युतं पलभा स्यादित्युपपन्नम्॥

भाषाभाष्य।

अब 'षट्कृतगजैर्यद्वापमज्यां समां—' इस दूसरे प्रश्न का उत्तर।
क्रान्तिज्या और छायाकर्ण के घात में त्रिज्या का भाग देने से जो
आवे उसके वर्ग की लघुसंज्ञा है। लघु और भुजवर्ग के अन्तर को
१४४ से गुणाने से आद्य होता है। भुजको १४४ से गुणाने से पर होता
है। आद्य और पर में लघु और १४४ के अन्तर का भाग देना। परवर्ग

में आद्य जोड़कर मूल लेना । मूलमें पर को जोड़ने घटाने से क्रम से उत्तर दक्षिण भुजमें पलभा होगी ।

उपपत्ति ।

विषुवती=य । दक्षिणभुज=भु । कर्णवृत्तीय अग्रा=य+भु । पलकर्णवर्ग=$\text{ये}^{2}+\text{द्वो}^{2}$ ।

$$\text{द्वो}^{2} : \text{ये}^{2}+\text{द्वो}^{2} :: \text{क्रां}^{2} : \frac{\text{ये}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}+\text{द्वो}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}.}{\text{द्वो}^{2}}=\text{अ्रे}^{2} \text{ ।}$$

$$\text{त्रि}^{2} : \frac{\text{ये}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}+\text{द्वो}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}}{\text{द्वो}^{2}} :: \text{के}^{2} : \frac{\text{ये}^{2}.\text{क्रां}^{2}.\text{के}^{2}+\text{द्वो}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}.\,\text{के}^{2}}{\text{त्रि}^{2}.\,\text{द्वो}^{2}}=\text{कवृअ्रे}^{2} \text{ ।}$$

यों कर्णवृत्तीय अग्रा के वर्गों से समीकरण उत्पन्न हुआ—

$$\frac{\text{ये}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}.\,\text{के}^{2}.}{\text{त्रि}^{2}.\,\text{द्वो}^{2}}+\frac{\text{द्वो}^{2}.\,\text{क्रां}^{2}.\,\text{के}^{2}}{\text{त्रि}^{2}.\,\text{द्वो}^{2}}=\text{ये}^{2}+\text{२ य. भु}+\text{भु}^{2}$$

छेदगम और लघु के ग्रहण से—

$$\text{ये}^{2}.\,\text{ल}+\text{द्वो}^{2}.\,\text{ल}=\text{ये}^{2}.\,\text{द्वो}^{2}+\text{२ य. भु. द्वो}^{2}+\text{भु}^{2}.\,\text{द्वो}^{2}$$

समशोधन आदि से—

$$\text{ये}^{2}+\text{२ य.}\,\frac{\text{भु. द्वो}^{2}}{\text{द्वो}^{2}-\text{ल}}=\text{द्वो}^{2}.\,\frac{\text{ल}-\text{भु}^{2}}{\text{द्वो}^{2}-\text{ल}}$$

पर, आद्य को लेकर वर्ग समीकरण विधि से—

$$\text{ये}^{2}+\text{२ य. प}+\text{पे}^{2}=\text{आ}+\text{पे}^{2}$$

$$\text{य}+\text{प}=\sqrt{\text{आ}+\text{पे}^{2}}$$

$$\therefore \text{य}=\sqrt{\text{आ}+\text{पे}^{2}}-\text{प}$$

इस से 'क्रान्तिज्याकर्णवधात्—' उपपन्न हुआ ॥ ७७–७८ ॥

इदानीं सममण्डलप्रश्नः ।

दिनकरे करिचैरिदल ४ । १५ स्थिते
नर १२ समा मरभापरदिङ्मुखी ।

भवति यत्र पटो पुटभेदने
कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम् ॥ ७९ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

करिवैरी सिंहस्तस्य दलमर्धं तत्र स्थिते वर्तमाने दिनकरे रवा-वित्यर्थः । पुटभेदनं नगरं 'पत्तनं पुटभेदनम्—' इत्यमरः ॥

भाषाभाष्य ।

हे सिद्धान्तज्ञ, जिस स्थान में, सिंहराशि के अर्ध में वर्तमान सूर्य की द्वादशाङ्गुलशङ्कु-छाया पश्चिमाभिमुख बारह अङ्गुल की होती है, वहां पलभा क्या होगी ? ॥ ७९ ॥

इदानीमस्योत्तरमाह ।

त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृन्नरः स्यात्
यत्क्रान्तिमौर्वीसमवृत्तशङ्कोः ।
वर्गान्तरान्मूलमनेन भक्ता
क्रान्तिज्यका सूर्य १२ हताक्षभा स्यात् ॥ ८० ॥

त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृन्नरः स्यादिति साधारणम् । त्रिज्याद्वादशघातस्य यस्याश्छायायाः कर्णेन भागो ह्रियते तस्याः सम्बन्धी महाशङ्कुर्लभ्यते । अत्रानुपातः । यद्यनेन कर्णेन द्वादशाङ्गुलशङ्कुस्तदा त्रिज्याकर्णेन क इति। एवमत्रोदाहरणे यो लभ्यते स समशङ्कुः । स कर्णः । सिंहार्धगतस्यार्कस्य क्रान्तिज्या भुजः । तद्वर्गान्तरपदं कुज्योनिता तद्धृतिः कोटिः । इदं पलक्षेत्रम् । यद्यनया कोट्या क्रान्तिज्याभुजो लभ्यते तदा द्वादशाङ्गुलमितया किमिति । फलं पलभेति त्रैराशिकेनोपपन्नम् । अत्र सममण्डलशङ्कुर्द्वादशीज्या २४३१ सिंहार्धे ४ । १५

क्रान्तिज्या पञ्चांशोना अष्टवसुनन्दाः ६८७ । ४८ । अनयोर्वर्गान्तरपदेन द्वादशगुणा क्रान्तिज्या भाज्या । तत्रास्या वर्गः ६७५७४६ । शङ्कुवर्गः ५६०६७६१ । अनयोरन्तरम् ४६३४०१२ मूलम् २२२१ । १५ अनेन भक्ता द्वादशगुणा क्रान्तिज्या ११८५३ । ३६ लब्धा तत्र देशे पलभा सत्र्यंशपञ्चाङ्गुला ५ । २० ।

भाषाभाष्य ।

त्रिज्या और द्वादश के गुणन में, कर्ण का भाग देने से समवृत्त-शङ्कु होता है । सिंहार्धगत सूर्य की क्रान्तिज्या और इस शङ्कु के वर्गान्तर मूल का द्वादशगुणित क्रान्तिज्या में भाग देने से फल पलभा होती है ।

उपपत्ति ।

त्रिज्या और द्वादश के घात में जिस छायासम्बन्धि कर्ण का भाग दिया जाय उसी सम्बन्ध का महाशङ्कु सिद्ध होता है यह प्रसिद्ध है । इसलिए—

$$\text{सक} : १२ :: \text{त्रि} = \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}} = \text{समशङ्कु} ।$$

और, $\sqrt{\left(\frac{\text{त्रि} \times १२}{\text{सक}}\right)^२ - \text{क्रां}^२} = \text{कुज्योनतद्धृति}$ ।

फिर, $\text{कुज्योत} : \text{क्रां} :: १२ = \frac{\text{क्रां} \times १२}{\text{कुज्योत}} = \text{पलभा}$ ।

$$\therefore \frac{\text{क्रा} \times १२}{\sqrt{\left(\frac{\text{त्रि} \times १२}{\text{सक}}\right)^२ - \text{क्रां}^२}} = \text{पलभा} ।$$

इस प्रकार ‘ त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृत्–’ इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ८० ॥

इदानीमन्यौ प्रश्नौ ।

मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे
 काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति ।
केनाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
 न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम् ॥८१॥

हे गणक केनचित् किलोज्जयिनीगतेन यदा दिनगते पञ्चघटीमिते काले मार्तण्डः सममण्डलं प्रविष्टो दृष्टस्तदा कियती क्रान्तिज्येत्येकः प्रश्नः । अथान्यः । तावति पञ्चघटीमिते नते वा काले सममण्डलं प्रविष्टो दृष्टस्तदा च या क्रान्तिज्या तां त्वं चेद्वेत्सि तदा सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशं निशाणोद्धूतं त्वामहं मन्ये । इति स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

हे मित्र ! किसी उज्जयिनीनिवासी ने पांच घड़ी दिन बीते सूर्य का सममण्डल प्रवेश देखा, उस समय क्रान्तिज्या क्या होगी ? अथवा पांचघड़ी–नतकाल हुए जब सममण्डल प्रवेश हो तब क्रान्तिज्या क्या होगी ? यदि तुम इन प्रश्नों के उत्तर कहो तो तुम्हें अभिमानी गणक-रूप हाथी के कुम्भ स्थान में, तीखे अङ्कुश के समान मानें ॥ ८१ ॥

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह ।

या स्याद्रवेरुन्नतकालजीवा-
 भीष्टा हृतिः सा प्रथमं प्रकल्प्या ।
अर्का १२ क्षभाघातहताक्षकर्ण-
 कृत्योद्धृता स्यादपमज्यकाऽस्याः ॥ ८२ ॥
चरादिकेनेष्टहृतिः प्रसाध्या
 क्षुण्णस्तया क्रान्तिगुणोऽसकृच्च ।

तदाद्यहृत्या विहृतः स्फुटः स्यात्
सहस्ररश्मौ सममण्डलस्थे ॥ ८३ ॥

रवेः सममण्डलप्रवेशे य उन्नतकाल उद्दिष्टस्तस्य जीवा सा तावत् प्रथममिष्टहृतिः कल्प्या। ततो द्वादशगुणयाक्षभया गुण्या पलकर्णवर्गेण भाज्या। सा किल स्थूला क्रान्तिज्या भवति। तस्याः क्रान्तिज्याया द्युज्यां कुज्यां चरज्यां चरं च कृत्वाथोन्नतादूनयुताच्चरेणेत्यादिनेष्टहृतिः साध्या। तया पूर्वमागता क्रान्तिज्या गुण्या। आद्यहृत्या कल्पितया भाज्या। फलं स्फुटासन्ना क्रान्तिज्या भवति।

अत्रोपपत्तिः। अत्रोन्नतकालजीवातुल्या प्रथमं तद्धृतिः कल्पिता। तस्या अनुपातेन शङ्कुः। यदि पलकर्णेन द्वादशकोटिस्तदा तद्धृतिकर्णेन किमिति। अत्र तद्धृतेर्द्वादशगुणः पलकर्णो हरः। फलं सममण्डलशङ्कुः। पुनरन्योनुपातः। यदि पलकर्णेनाक्षभाभुजो लभ्यते तदा सममण्डलशङ्कुतुल्येन कर्णेन किमिति। फलं क्रान्तिज्या स्थूला। अस्याः क्रान्तिज्यायाश्चरादिकेनाथोन्नतादूनयुताच्चरेणेत्यादिनेष्टहृतिः साध्या। तां तद्धृतिं प्रकल्प्य पुनः क्रान्तिज्या साध्या। एवमसकृद्यावदविशेषः। तत्रासकृत्कर्मणि त्रैराशिकेन। क्रियोपसंहारः कृतः। यदि कल्पितया हृत्येयं क्रान्तिज्या लभ्यते तदेदानीमानीतया किमिति। एवं क्रान्तिज्या स्फुटा स्यादित्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

रवि के समवृत्तप्रवेश काल में, जो उन्नतकालज्या हो उसकी

प्रथम इष्टहृति कल्पना करना। फिर उसको द्वादशगुणित पलभा से गुणाकर पलकर्ण के वर्ग का भाग देने से स्थूल क्रान्तिज्या होगी। उससे द्युज्या, कुज्या, चरज्या और चर साधन करके चर संस्कृत उन्नतकाल से इष्टहृति साधन करना। पूर्वसाधित क्रान्तिज्या को इस इष्टहृति से गुणाकर प्रथम इष्टहृति का भाग देने से सममण्डलगत सूर्य की स्पष्टक्रान्ति होती है। इसप्रकार असकृत्कर्म करने से स्पष्टक्रान्ति होगी।

उपपत्ति।

उन्नतकालज्या को तद्धृति के समान मानकर अनुपात किया—

$$\text{पक} : १२ :: \text{तद्धृ} = \frac{१२ \times \text{तद्धृ}}{\text{पक}} = \text{समशङ्कु}।$$

$$\text{फिर,}\quad \text{पक} : \text{पभा} :: \text{संश} = \frac{\text{पभा} \times \text{संश}}{\text{पक}} = \text{क्रान्तिज्या}।$$

$$\frac{\text{पभा} \times \text{सशं}}{\text{पक}} = \frac{\text{तद्धृ} \times १२ \times \text{पभा}}{\text{पक}^2} = \text{स्थूल क्रान्तिज्या}$$ । यहां

'अर्काक्षभाघातहृताक्षकर्णकृत्योद्धृता–' इत्यादि उपपन्न होता है। इस क्रान्तिज्या से 'अथोन्नतादूनयुताच्चरेण–' इत्यादि प्रकार से इष्टहृति बनाकर, उससे तद्धृति फिर क्रान्तिज्या साधना। यों असकृत्कर्म करने से स्पष्टक्रान्तिज्या सिद्ध होगी। अन्त में अनुपात करना—

कल्पित हृति में यह क्रान्तिज्या, तो साधित हृति में क्या? इस प्रकार सब स्पष्ट होगा॥ ८२–८३॥

इदानीं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमाह।

तदा नतज्यात्रिभजीवयोर्य–
द्वर्गान्तरं तत्पलभाकृतिघ्नम्।
तेनोद्धृतो व्यासदलस्य वर्गो
वेदेन्द्र १४४ निघ्नोऽथ सरूपलब्ध्या॥ ८४॥

व्यासार्धवर्गाद्विहृतात् पदं स्यात्
क्रान्तिज्यका सा त्रिभशिञ्जिनीघ्नी ।
जिनांशमौर्व्या विहृतास्यचापा-
दग्रे प्रवक्ष्ये च यदा रविः स्यात् ॥ ८५ ॥

यदा सममण्डलं प्रविष्टो दृष्टस्तदा या नतघटिकास्तासां जीवा । तस्या वर्गेण त्रिज्यावर्गो रहितः । ततः पलभावर्गेण गुण्यः । तेन भाज्यः । कस्त्रिज्यावर्गः । किंविशिष्टः । वेदेन्द्र १४४ गुणितः । तत्र यत्फलं लभ्यते तेन सैकेन त्रिज्यावर्गाङ्कस्याद्यन्मूलं लभ्यते सा क्रान्तिज्या स्यात् । सा क्रान्तिज्या त्रिज्यागुणा जिनांशज्यया भक्ता यत्फलं तस्य चापाद्यथा रविर्भवति तथाग्रे वक्ष्ये ।

अत्रोपपत्तिरव्यक्तकल्पनया । तत्र क्रान्तिज्याप्रमाणं यावत्तावत् १ क्रान्तिज्यावर्गोनस्त्रिज्यावर्गो द्युज्यावर्गः स्यात् । याव १ त्रिव १ । तदा नतज्यावर्गेणोनस्त्रिज्यावर्गः । सूत्रसंज्ञस्य वर्गः स्यात् । सूत्रं द्युज्यागुणं त्रिज्याहृतं कलासंज्ञं स्यात् । तत्र कला नाम कुज्योना तद्धृतिः । अत्र वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्चेति सूत्रसंज्ञस्य वर्गेण द्युज्यावर्गो गुण्यस्त्रिज्यावर्गेण भाज्यः । फलं कलावर्गो भवति । तत्र कला कोटिः । क्रान्तिज्या भुजः । समशङ्कुः कर्णः । इदं पलक्षेत्रम् । अतस्तेनानुपातः । यदि द्वादशकोटेः पलभाभुजस्तदा कुज्योनिततद्धृतेः कलासंज्ञायाः किमिति । एवमत्र कलावर्गस्य पलभावर्गो गुणः । द्वादशवर्गो हरः । फलं क्रान्तिज्यावर्गः । एवमत्र द्युज्यावर्गस्य सूत्रवर्गविषुवतीवर्गयोर्घातो गुणस्त्रिज्यावर्गद्वादशवर्गयोर्घातो १७०२०५७५३६ हरः । अत्र सूत्रवर्गेण पलभावर्गगुणेन

भाज्येऽपवर्तिते जातो द्युज्यावर्ग एव याव १ रु ११८१६८४४ । भाजके चापवर्तिते जाता अष्टौ वित्र्यंशाः ७ । ४० । अयं द्युज्यावर्गस्य छेदः । दर्शनम् ।
याव १ रु ११८१६८४४ अयं क्रान्तिज्यावर्गस्यास्य
छेदः ७ । ४० ।
याव १ सम इति समच्छेदीकृत्य छेदगमे पक्षयोः शोधनार्थं न्यासः याव १ रु ११८१६८४४ अत्र शोधने
याव ७ । ४० । रु ०
कृतेऽव्यक्ताङ्केनानेन ८ । ४० व्यासार्धवर्गाद्भक्तान्मूलं लब्धं यावत्तावन्मानम् । सैव क्रान्तिज्या ११६८ । एवं नतज्यात्रिभजीवयोर्यद्वर्गान्तरमित्यादि सर्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

सममण्डल प्रवेश में नतज्यावर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाकर, शेष को पलभावर्ग से गुणाकर, १४४ से गुणित त्रिज्यावर्ग का भाग देने से जो फल मिले उसमें एक जोड़ना । फिर उसका त्रिज्यावर्ग में भाग देकर मूल लेना फल क्रान्तिज्या होगी । क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणाकर परम क्रान्तिज्या का भाग देकर फल का चाप करने से जैसे सूर्यका ज्ञान होगा वह आगे कहा जायगा ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिज्या=य,

$त्रि^2 - य^2 = द्यु^2;$

$त्रि^2 - नज्या^2 = सू^2$

$\therefore \frac{सू \times द्यु}{त्रि}$=कला=समवृत्त प्रवेश में कुज्योनतद्धृति ।

$$\therefore \frac{(\text{त्रि}^2-\text{नज्यो}^2)\times(\text{त्रि}^2-\text{यं}^2)}{\text{त्रि}^2}=\text{कलो}^2 ।$$

कला कोटि, क्रान्तिज्याभुज और समशङ्कु कर्ण होता है । यह अक्षक्षेत्र है इससे अनुपात किया—

$$\text{द्वो}^2 : \text{पभो}^2 :: \text{कुज्योनं}^2=\frac{\text{पभो}^2\times\text{कुज्योनं}^2}{\text{द्वो}^2}=\text{क्रांज्यो}^2;$$

$$=\frac{(\text{त्रि}^2-\text{नज्यो}^2)\times(\text{त्रि}^2-\text{यं}^2)\times\text{पभो}^2}{\text{त्रि}^2\times\text{द्वो}^2}$$ । अपवर्तन देने से हुआ—

$$=\frac{\text{त्रि}^2-\text{यं}^2}{\dfrac{\text{त्रि}^2\times\text{द्वो}^2}{(\text{त्रि}^2-\text{नज्यो}^2)\times\text{पभो}^2}}=\text{यं}^2$$ समीकरण करने से पक्षों का समशोधन करने से हुआ—

$$\text{त्रि}^2=\left(\frac{\text{त्रि}^2\times\text{द्वो}^2}{(\text{त्रि}^2-\text{नज्यो}^2)\times\text{पभो}^2}\right)\times\text{यं}^2+\text{यं}^2$$ । यहां दोनों पक्षों में अपवर्तन और मूल लेने से हुआ—

$$\text{य}=\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\dfrac{\text{त्रि}^2\times\text{द्वो}^2}{(\text{त्रि}^2-\text{नज्या}^2)\times\text{पभो}^2}+1}}=\text{क्रान्तिज्या};$$ इसप्रकार, 'तदानतज्या—' इत्यादि प्रकार उपपन्न होता है ।

क्रान्तिज्या ज्ञात होने पर रविभुजांश के लिये अनुपात—

$$\text{पक्रां} : \text{त्रि} :: \text{इक्रा}=\frac{\text{त्रि}\times\text{इक्रां}}{\text{पक्रां}}=\text{रविभुजांश} ।$$

इसप्रकार सब उपपन्न भया ॥ ८४–८५ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह ।

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशतिच्छाया किलाष्टयङ्गुला

दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने ।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि ॥ ८६ ॥

भाषाभाष्य ।

किसी स्थान में किसी दिन आठ घड़ी दिन वीते सूर्य के सममण्डल प्रवेश में छाया १६ अङ्गुल देखी गई । उस समय क्रान्तिज्या और पलभा यदि कहो तो त्रिप्रश्न के बड़े भारी प्रपञ्च में चतुर तुम्हारे सिवा दूसरे को न मानें ॥ ८६ ॥

अस्योत्तरमाह ।

अत्रापि साध्योन्नतकालजीवा,
पूर्वं तु सैवेष्टहृतिः प्रकल्प्या ।
ततोऽर्कनिघ्नी समशङ्कुभक्ता,
पलश्रुतिः स्यात् पलभा ततश्च ॥ ८७ ॥
पलप्रभाघ्नः समशङ्कुरक्ष-
कर्णोद्धृतः स्यादपमज्यकातः ।
चरादिकेनेष्टहृतिस्ततोऽक्ष-
कर्णोऽसकृत् क्रान्तिगुणश्च तस्मात् ॥ ८८ ॥

अत्र किल षोडशाङ्गुला सममण्डलच्छाया । विंशत्यङ्गुलः कर्णः । यद्यनेन कर्णेन द्वादशाङ्गुलशङ्कुस्तदा त्रिज्याकर्णेन क इति फलं सममण्डलशङ्कुः । तथा च प्रागभिहितं त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृन्नरः स्यादिति । अतोऽत्र ज्ञातः समशङ्कुः पञ्चांशोनास्त्र्यङ्गनखाः २०६२ । ४८ अत्रापि साध्योन्नतकालजीवेति । यथा पूर्वप्रश्नभङ्ग उन्नतकालज्येष्टहृतिः प्रकल्पिता तथात्राप्युन्नतकालज्येष्टा हृतिः प्रथमं प्रकल्प्या । सार्क १२ गुणा सममण्डल-

शङ्कुना भाज्या । यत्फलं स स्थूलः पलकर्णः स्यात् । तस्मात्पलभा साध्या । तया पलभया सममण्डलशङ्कुगुण्यः पलकर्णेन भाज्यः । फलं स्थूला क्रान्तिज्या । तस्याः क्रान्तिज्याया द्युज्याकुज्यादिकं प्रसाध्याथोन्नतादूनयुताच्चरेणेत्यादिनेष्टहृतिः साध्या । तस्याः पुनरक्षकर्णस्ततः क्रान्तिश्च । एवमसकृद्यावदविशेषः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र योन्नतकालज्या सा तद्धृतिः कल्पिता । तयानुपातः । यदि समशङ्कोस्तद्धृतिः कर्णस्तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कोः क इति । फलं पलकर्णः । ततोऽन्योनुपातः । यदि पलकर्णस्य पलभा भुजस्तदा समशङ्कुतुल्यस्य कर्णस्य क इति । फलं क्रान्तिज्या । यतः समशङ्कुः कर्णः । क्रान्तिज्या भुजः । कुज्योनिता तद्धृतिः कोटिः । इदं पलक्षेत्रम् । एवमसकृत्कर्मणा पलभाक्रान्तिज्ये स्फुटे भवत इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

यहां भी पहले उन्नतकालज्या को इष्टहृति मानना । फिर उसको द्वादश से गुणाकर समशङ्कु का भाग देने से फल, पलकर्ण होता है । पलकर्ण से पलभा ज्ञात होती है । समशङ्कु को पलभा से गुणाकर पलकर्ण का भाग देने से क्रान्तिज्या होती है । क्रान्तिज्या से चर आदिसे इष्टहृति पूर्वरीति से सिद्ध करके, असकृत्कर्म से अक्षकर्ण और अन्त में क्रान्ति सिद्ध करना ।

उपपत्ति ।

उन्नतकालज्या=तद्धृति मानकर अनुपात किया—

$$\text{सशं} : \text{तद्धृ} : १२ = \frac{\text{तद्धृ} \times १२}{\text{सशं}} = \text{पलकर्ण} ।$$

पलकर्ण से पलभा साधकर अनुपात—

$$\text{पक : पभा :: सशं} = \frac{\text{पभा} \times \text{सशं}}{\text{पक}} = \text{क्रान्तिज्या ।}$$

इससे इष्टहृति लाकर, फिर क्रान्तिज्या असकृत्कर्म से सिद्ध करना। इसप्रकार 'अत्रापि साध्योन्नतकालजीवा—' उपपन्न होता है ॥८७–८८॥

इदानीमिष्टप्रभाप्रश्नमाह ।

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात्
तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु ।
इष्टा यदा वद तदा तरणिं तवास्ति
यद्यत्र कौशलमलं गणिते सगोले ॥ ८९ ॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

हे गणक, जिस देश में पलभा पाँच अङ्गुल है वहां दश घड़ी दिन बीते इष्टच्छाया नव अङ्गुल ज्ञात भई तब सूर्य क्या होगा ? यदि तुम गोल में खूब निपुण हो तो कहो ॥ ८९ ॥

अस्योत्तरमाह ।

इष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वी-
तुल्यां प्रकल्प्याथ तया विभक्तः ।
इष्टप्रभाशङ्कुहतोऽक्षकर्ण-
स्त्रिज्यागुणो द्वादशभाजितश्च ॥ ९० ॥
द्युज्या भवेत् तत्कृतिवर्जिताया-
स्त्रिज्याकृतेर्मूलमपक्रमज्या ।
इष्टान्त्यका प्राग्वदतोऽसकृच्च
द्युज्यापमज्या च ततः खरांशुः ॥ ९१ ॥

अत्र नवाङ्गुलेष्टभा । तत्कर्णः पञ्चदशाङ्गुलः १५ ।

त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृन्नरः स्यादिति जात इष्टभाया महाशङ्कुः खबाणाद्रिदस्राः कलाश्चतुर्विंशतिविकलाधिकाः २७५० । २४ । अथोन्नतकालस्य ज्या सा प्रथममिष्टान्त्यका कल्प्या । तयेष्टान्त्यकयेष्टच्छायामहाशङ्कुरक्षकर्णेन गुणितो भाज्यः । यत् फलं तत् त्रिज्यया गुणितं द्वादशभिश्च भाज्यम् । फलं स्थूला द्युज्या स्यात् । अथ त्रिज्याकृतेर्द्युज्याकृतिविवर्जिताया मूलं क्रान्तिज्या । ततः क्रान्तिज्यायाश्चरादिकं साध्यम् । ततोऽथोन्नतादूनयुताच्चरेणेत्यादिनेष्टान्त्यका साध्या । ननु प्रश्ने गोलस्यानिर्दिष्टत्वात् कथमन्त्यां साधयेत् । सत्यम् । तत्र युक्तिः । यस्मिन् गोले कल्पिते कल्पिताया इष्टान्त्यकाया आसन्ना साधितेष्टान्त्यका भवति स गोलः कल्प्यः । तस्या इष्टान्त्यकायाश्च पुनर्द्युज्या । ततः क्रान्तिज्या । तत इष्टान्त्यका । एवमसकृत् क्रान्तिज्या स्फुटा भवति । ततो रविर्व्यस्तविधिना ।

अत्रोपपत्तिर्विलोमगणितेन । अत्र महाशङ्कुर्ज्ञात एव । ततोऽनुपातः । यदि द्वादशाङ्गुलशङ्कोः पलकर्णः कर्णस्तदा महाशङ्कोः क इति । फलमिष्टहृतिः स्यात् । हृतिस्त्रिज्यागुणा यदि द्युज्यया ह्रियते तदेष्टान्त्या लभ्यते । यदीष्टान्त्यया ह्रियते तदा द्युज्या लभ्यते । अत इयमिष्टहृतिस्त्रिज्यागुणा कल्पितेष्टान्त्यया भक्ता फलं द्युज्या । अत उक्तमिष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वीतुल्यां प्रकल्प्याथ तया विभक्तः । इष्टप्रभाशङ्कुहतोऽक्षकर्णस्त्रिज्यागुणो द्वादशभाजितश्च द्युज्या भवेदिति । ततः क्रान्तिज्या । ततश्चरादिकेनेष्टान्त्येत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

उन्नतकालज्या को पहले इष्टान्त्या कल्पना करना । इष्टच्छाया महाशङ्कु को अक्षकर्ण से गुणाकर कल्पित इष्टान्त्या का भाग देना । फल को त्रिज्या से गुणाकर द्वादश का भाग देने से स्थूल द्युज्या होगी । त्रिज्यावर्ग में द्युज्यावर्ग को घटाकर मूल क्रान्तिज्या होगी । क्रान्तिज्या से असकृत्कर्म द्वारा इष्टान्त्या फिर द्युज्या, क्रान्तिज्या सिद्ध करके रवि ज्ञात होगा ।

उपपत्ति ।

उन्नतकालज्या = इष्टान्त्या । महाशङ्कु ज्ञात ही है। अनुपात किया-

$$\text{द्वा : पक :: मशं} = \frac{\text{पक} \times \text{मशं}}{\text{द्वा}} = \text{इष्टहृति ।}$$

$$\text{द्यु : इष्टहृ :: त्रि} = \frac{\text{इहृ} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{इष्टान्त्या ।}$$

$$\text{इन्त्या : इष्टहृ :: त्रि} = \frac{\text{इहृ} \times \text{त्रि}}{\text{इन्त्या}} = \text{द्युज्या ।}$$

अथवा, $\frac{\text{पक} \times \text{मशं} \times \text{त्रि}}{\text{द्वा} \times \text{इष्टान्त्या}}$ = द्युज्या ; इसप्रकार 'इष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वीतुल्याम्-' इत्यादि उपपन्न होता है ।

द्युज्या ज्ञात होने पर, $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ = क्रांज्यो = क्रान्ति; यों असकृत्कर्मसे इष्टान्त्या लाकर फिर द्युज्या, क्रान्तिज्या और सूर्य का ज्ञान करना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह ।

यत्र क्षितिज्या शरसिद्धतुल्या २४५
स्यात्तद्धृतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५ ।
तत्राक्षभार्कौ गणक प्रचक्ष्व
चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि ॥ ६२ ॥

भाषाभाष्य ।

जहां कुज्या २४५ और तद्धृति ३१२५ है वहां पलभा और सूर्य क्या होगा ? यदि अक्षक्षेत्र के विचार में चतुर हो तो उत्तर कहो ॥ ६२ ॥

अस्योत्तरमाह ।

कुज्योनतद्धृतिहृता कृतशक्रनिघ्नी
　कुज्यैव यत्फलपदं पलभा भवेत् सा ।
कुज्या हता रविभिरक्षभया विभक्ता
　क्रान्तिज्यका भवति भानुरतो विलोमम् ॥ ६३ ॥

स्पष्टार्थम् । अत्रोपपत्तिः । तत्र पलभाप्रमाणं यावत्तावत् १ अतोऽनुपातः । यदि पलभामिते भुजे द्वादशकोटिस्तदा कुज्यामिते केति । फलं क्रान्तिज्या । पुनर्द्वितीयं त्रैराशिकम् । यदि पलभामिते भुजे द्वादशकोटिस्तदा क्रान्तिज्यामिते केति फलं कुज्योनिता तद्धृतिर्भवति । एवमत्र कुज्या २४५ द्वादशवर्गो गुणः पलभावर्गो हरः । तथाकृते न्यासः रू ३५२८० । / छेदः याव१ । इदं कुज्योनतद्धृतिसममिति पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधनार्थं न्यासः
याव० रू ३५२८० ।
याव २८८० रू ० ।
पक्षौ नखशैलै ७२० रपवर्त्य पक्षयोर्मूले गृहीते जातं पलभामानं सार्धानि त्रीण्यङ्गुलानि ३ $\frac{१}{२}$ । यदि पलभया द्वादशकोटिस्तदा कुज्यया किमिति फलं क्रान्तिज्या २४० । एवं कुज्योना तद्धृतिरित्यादि सर्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य।

कुज्या को १४४ से गुणाकर कुज्योनतद्धृति का भाग देने से फल पलभा होती है। कुज्या को द्वादश से गुणाकर पलभा का भाग देने से क्रान्तिज्या होती है। उससे विलोमविधि से सूर्य का ज्ञान होता है।

उपपत्ति।

पलभा=य,

$$\text{य} : १२ :: \text{कुज्या} \quad \frac{\text{कु} \times १२}{\text{य}} = \text{क्रान्तिज्या}।$$

$$\text{य} : १२ :: \frac{\text{कु} \times १२}{\text{य}} \quad \frac{\text{कु} \times १२ \times १२}{\text{य}^२} = \text{कुज्योनतद्धृति}।$$

$\therefore \frac{\text{कुज्या} \times १२ \times १२}{\text{य}^२} = \text{कुज्योत}$; दोनों पक्षों का समीकरण करके छेदगम करने से हुआ—

$$\text{कुज्योत} \times \text{य}^२ = \text{कुज्या} \times १२ \times १२$$

$$\therefore \text{य} = \sqrt{\frac{\text{कुज्या} \times १४४}{\text{कुज्योत}}} = \text{पलभा}।$$

अब क्रान्तिज्या के लिए अनुपात किया—

$$\text{पभा} : १२ :: \text{कुज्या} \quad \frac{\text{कुज्या} \times १२}{\text{पभा}} = \text{क्रान्तिज्या}।$$

अथवा, $\frac{\text{कुज्या} \times १२}{\sqrt{\frac{\text{कुज्या} \times १४४}{\text{कुज्योत}}}} = \text{क्रान्तिज्या}$। इस प्रकार 'कुज्योनतद्धृति-हृता—' इत्यादि विधि उपपन्न हुई ॥ ६३ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह ।

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं
कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसै ६७२० मितामथ परां
षष्ट्यङ्कचन्द्रैर्मिताम् १९६० ।
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं
वेत्त्यक्षभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ
वन्दे परं भास्करम् ॥ ९४ ॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिज्या, समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या घटाकर शेष ६७२० जानकर और कुज्या, अग्रा और क्रान्तिज्या का योग १९६० जानकर, जो गणक, सूर्य और पलभा जानता है, उस गणकरूपी कमल को विकास करने में दूसरे सूर्य को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ९४ ॥

इदानीमस्योत्तरमाह ।

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः
कुज्योनिता या तया
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमितैः १२
क्षुण्णां पृथक्स्थां भजेत् ।
लब्धं स्यात् पलभा पलश्रुतिपल-
च्छायार्कयुत्या ततो
भाज्यान्याथ पृथक् स्थितासमपम-
ज्या स्यात् ततो भास्करः ॥ ९५ ॥

अत्र या क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिता विंशत्यश्वरसैर्मिता दृष्टा तया यान्या कुज्याग्रापमाशिञ्जिनीयुतिः षष्ट्यङ्कचन्द्रैर्मिता १९६० दृष्टा तां द्वादशभिः संगुण्य पृथक् स्थापयित्वा भजेत् । लब्धं पलभा स्यात् । ततः पलकर्णः कार्यः । पलकर्णस्य पलभाया द्वादशानां च योगेन तां पृथक् स्थापितां भजेत् । लब्धं क्रान्तिज्या स्यात् ८४० । अत्र पलभा ३ । ३० । पलकर्णः १२ । ३० अत्र समशङ्कुः ३००० । अग्रा ८७५ कुज्या २४५ । तद्धृतिः ३१२५ ।

अत्रोपपत्तिर्बीजक्रियया । तत्राज्ञातानां बहुत्वादनेकवर्णकल्पनया वर्गगतया क्रिया प्रसरति न निर्वहति च । अतोऽत्र सद्युक्तिः । क्रान्तिज्या तावत् पलक्षेत्रकोटिः । कुज्या भुजः । तथा समशङ्कुः कोटिः । अग्रा भुजः । तथा तद्धृतिः कुज्योनिता कोटिः । क्रान्तिज्या भुजः । अत्र यः प्रथमं दृष्टो योगः स कोटीनां योगः । द्वितीयो भुजानाम् । भुजकोटियोगौ भुजकोटियोगत्वं न त्यजतः । अतोऽनुपातः । यदि कोटियोगमित्या कोट्या भुजयोगमितो भुजो लभ्यते तदा द्वादशाङ्गुलमित्या कोट्या किमिति । फलं पलभा । अथ क्रान्तिज्याज्ञानार्थं युक्तिः । येयं कुज्याग्रापमाशिञ्जिनीयुतिः सा पलक्षेत्रभुजकोटिकर्णानां च भवति । तत्र कुज्या भुजः । अग्रा कर्णः । क्रान्तिज्या कोटिः । अतोऽत्रानुपातः । यदि पलभापलकर्णद्वादशानां योगेन द्वादशकोटिर्लभ्यते तदा कुज्याग्रापमशिञ्जिनीनां योगेन किमिति । एवमत्र कोटिः क्रान्तिज्या लभ्यते । अतो विलोमविधिना रविरित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य।

क्रान्तिज्या, समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या घटाकर शेषका द्वादशगुणित कुज्या, अग्रा और क्रान्तिज्या के योग में अलग भाग देने से फल पलभा होती है। उससे पलकर्ण का साधन करना। पलकर्ण, पलभा और द्वादश के योग से युक्त योगसंख्या में भाग देने से, फल क्रान्तिज्या होती है। उससे रवि का ज्ञान होगा।

उपपत्ति।

क्रान्तिज्या समशङ्कु कुज्योन तद्धृति	} = ६७२०	कुज्या अग्रा कुज्योन तद्धृति	} = १६६०
ये तीनों अक्षक्षेत्र की कोटि हैं।		ये भुज हैं।	

इससे अनुपात किया—

कोटियों के योग में भुजों का योग मिलता है तो द्वादश में क्या ?

$$६७२० : १६६० :: १२ : \frac{१६६०\times१२}{६७२०} = ३\frac{१}{२} =$$

पलभा।

$$\therefore \text{पलकर्ण} = \sqrt{(१२)^२ + (\frac{७}{२})^२} = \sqrt{\frac{६२५}{४}} = \frac{२५}{२}।$$

कुज्या, अग्रा और क्रान्तिज्या अक्षक्षेत्र के तीनों अवयव हैं। इससे अनुपात किया—

द्वादश पलभा आदि के योग में द्वादश कोटि तो कुज्या आदि के योग में क्या ?

२८ : १२ :: १६६० : ८४० = क्रान्तिज्या। इससे विलोमविधि से सूर्य ज्ञात होगा ॥ ६५ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह।

क्रान्तिज्या समशङ्कुतद्धृतियुतिं

कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां
खाभ्राष्टभूसंमिताम् ।
अग्राज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं
वेत्त्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ
वन्दे परं भास्करम् ॥ ९६ ॥

सुगमम् ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिज्या, समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या घटाकर शेष १४४० जानकर और अग्रा, समशङ्कु, तद्धृति का योग ८०० जानकर जो पलभा और सूर्य को कहे, उस गणकरूपी कमलों के प्रकाश करने में दूसरे सूर्य को, मैं नमस्कार करता हूं ॥ ९६ ॥

अस्योत्तरमाह ।

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः
कुज्योनिताद्यो हृता
तेनाग्रासमशङ्कुतद्धृतियुतिः
सूर्याहताक्षश्रुतिः ।
स्यात् तस्याः पलभा पलश्रुतिपल-
च्छायार्क १२ युत्योद्धृता-
दाद्यादक्षभयाहताच भवति
क्रान्तिज्यकातो रविः ॥ ९७ ॥

अत्रोपपत्तिः । अत्रापि सद्युक्तिः । अत्र क्रान्तिज्या कोटिः । अग्रा कर्णः । तथा समशङ्कुः कोटिः । तद्धृतिः कर्णः । कुज्योनिता तद्धृतिः कोटिः । समशङ्कुः कर्णः ।

एकः कोटीनां योगो दृष्टः। अन्यः कर्णानाम्। तत्र त्रैराशिकम्। यदि कोटियोगतुल्यकोटेः कर्णयोगतुल्यः कर्णो लभ्यते तदा द्वादशाङ्गुलकोटेः क इति। फलं पलकर्णः स्यात्। ततः पलभा। ततः पूर्ववत् क्रान्तिज्येत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

क्रान्तिज्या, समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या घटाकर शेष की आद्य संज्ञा है। उसका द्वादशगुणित अग्रा, समशङ्कु और तद्धृति के योग में भाग देने से फल पलकर्ण होता है। पलकर्ण से पलभा ज्ञात होती है। आद्य को पलभा से गुणाकर पलकर्ण, पलभा और द्वादश का भाग देने से फल क्रान्तिज्या होती है। उससे विलोम कर्म द्वारा सूर्य का ज्ञान होता है।

उपपत्ति।

यह प्रश्न पूर्व प्रश्न के समान है। पहला योग कोटियों का है दूसरा कर्णों का है। इससे अनुपात किया—

कोटि योग में कर्ण योग मिलता है तो द्वादश में क्या ? फल पलकर्ण।

अथवा;

१४४० : १८०० :: १२ : १५ ;

$\therefore$ पलभा $= \sqrt{(१५)^2 - (१२)^2} = \sqrt{८१} = ९$. पलभा से पूर्व रीति से क्रान्तिज्या और सूर्य ज्ञात सुगम है॥ ९७॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

यत्र त्रिवर्गेण मिता पलभा
तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन्
सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम्॥ ९८॥

भाषाभाष्य ।

जिस देश में, पलमा ६ है वहां जब ३ घड़ी चर प्रमाण है तब सूर्य क्या होगा ? यदि यह कहो तो तुम ज्योतिषियों में निश्चयरूप से श्रेष्ठ हो ॥ ६८ ॥

इदानीमस्योत्तरमाह ।

चरज्यकार्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या
भक्तासवर्गोऽक्षभया स्वनिघ्न्या ।
युतोऽथ तन्मूलहृता चरज्या
सूर्याहता क्रान्तिगुणस्ततोऽर्कः ॥ ६९ ॥

अत्रोपपत्तिः । क्रान्तिज्याप्रमाणं यावत्तावत् १ । इयमक्षप्रभागुणा द्वादश १२ भक्ता कुज्या स्यात् । या. वि $\frac{1}{12}$ । इदानीं प्रकारान्तरेण कुज्यावर्गः । तत्र यावत्तावद्वर्गोनस्त्रिज्यावर्गो द्युज्यावर्गः स्यात् । तेन गुणितश्चरज्यावर्गस्त्रिज्यावर्गभक्तः कुज्यावर्गः स्यात्

याव. त्रिव १ं त्रिव चव १
छेदः त्रिव १

अयं पूर्वकुज्यावर्गेणानेन याव- विव $\frac{1}{144}$ सम इति पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे कृते

शोधनार्थं न्यासः याव. विव. त्रिव. १ रु० ।
याव. चव. १४४ त्रिव. चव १४४

अनयोस्त्रिज्यावर्गेणापवर्तितयोः समीकरणे क्रियमाण एवं जातम् । अधस्तनपक्षे यावर्गेण चरज्यावर्गद्वादशवर्गयोर्घातसमेन त्रिज्यावर्गच्छिन्नेनर्णगतेन शोध्यत्वाद्धनगतेनोपरितनराशिर्यावर्गो विषुवतीवर्गतुल्यो युतः कृत-

स्तस्य मूलेनाधस्तनरूपराशेर्मूलं चरज्याद्वादशघाततुल्यं भक्तं फलं क्रान्तिज्येत्युपपन्नम् ।

अथवा तद्देशीयैश्चरखण्डकैश्चरज्यासाधनव्यस्तविधिना स्थूलो रविः स्यात् । अत्र चरं घटीत्रयम् ३ । अस्य ज्या १०६२ । अर्कगुणिता जाता १२७४४ । इयं त्रिज्या-भक्ता लब्धम् $\begin{array}{c}३\\४२\\२४\end{array}$ अस्य वर्गः । $\begin{array}{c}१३\\४३\\७\end{array}$ । अक्षभावर्गेणानेन $\begin{array}{c}६४\\८१\end{array}$ युतः $\begin{array}{c}४३\\७\end{array}$ । अस्य मूलम् $\begin{array}{c}६\\४३\\५१\end{array}$ । अनेन हृता चरज्या सूर्या १२ हृता लब्धं क्रान्तिज्या १३०६ । ३६ ।

भाषाभाष्य ।

चरज्या को द्वादश से गुणाकर त्रिज्या का भाग देकर जो फल मिले उसको अपने पलभावर्ग में जोड़देना । फिर उसका मूल लेकर द्वादश-गुणित चरज्या में भाग देने से फल क्रान्तिज्या होगी । उससे विलोम-विधि से सूर्य ज्ञात होगा ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिज्या = य,

$$१२ : पभा :: य : कुज्या = \frac{य \times पभा}{१२};$$

अथवा, $त्रि^2 - य^2 = द्यु^2$ ।

$$त्रि^2 : चज्या^2 :: द्यु^2 : कुज्या^2 = \frac{चज्या^2 \times द्यु^2}{त्रि^2}$$ । यहां

द्युज्या प्रकारान्तर से ग्रहण करने से हुआ—

$$\frac{त्रि^2 \times चज्या^2 - य^2 \times चज्या^2}{त्रि^2} = \frac{य^2 \times पभा^2}{द्वा^2}$$ । दोनों पक्षों

का छेदगम करने से हुआ—

$$\text{त्रि}^2 \times \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2 - \text{य}^2 \times \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2$$
$$= \text{य}^2 \times \text{पभा}^2 \times \text{त्रि}^2$$

समीकरण और समशोधन करने से दोनों पक्ष हुए—

$$\text{य}^2 (\text{पभा}^2 \times \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2) = \text{त्रि}^2 \times \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2$$

$$\therefore \text{य}^2 = \frac{\text{त्रि}^2 \times \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2}{\text{य व}^2 \times \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2}$$

त्रिज्यावर्ग का अपवर्तन देने से,

$$\frac{\text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2}{\text{पभा}^2 + \dfrac{\text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2}{\text{त्रि}^2}}$$ । मूल लेने से भया ।

$$\text{य} = \frac{\text{च} \times \text{द्वा}}{\sqrt{\text{पभा}^2 + \dfrac{\text{चज्या}^2 \times \text{द्वा}^2}{\text{त्रि}^2}}} = \text{क्रान्तिज्या}$$ । इसप्रकार 'चर-ज्यकार्काभिहतिः–' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ ९९ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह ।

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यका–
संयुतिं खखखबाण ५००० संमिताम् ।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं
मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम् ॥ १०० ॥

स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

द्युज्या, क्रान्तिज्या और रविदोर्ज्या का योग ५००० जानकर मध्यम सूर्य का मान बतलाओ । यदि मध्यमाहरण का गणित तुमने सीखा है ॥ १०० ॥

इदानीमस्योत्तरमाह ।

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुति-
स्तिथ्यु १५ द्धृताब्ध्या ४ हता
स्यादाद्यो युतिवर्गतो यम २ गुणात्
सप्तामरा ३३७ प्तोनिताः ।
नागाद्र्यङ्गदिगङ्ककाः ९१०६७८ पदमत-
स्तेनाद्य ऊनो भवेद्
व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावक ३४३८ मिते
क्रान्तिज्यकातो रविः ॥ १०१ ॥

योदिष्टा रविदोर्ज्याद्युज्याक्रान्तिज्यानां युतिः सा पृथक्स्था चतुर्भिर्गुण्या पञ्चदशभिर्भाज्या । फलमाद्यसंज्ञं स्यात् । अथ युतिकृतेः पृथक्स्थाया द्विगुणायाः सप्तामरै ३३७ र्भागे गृहीते यल्लभ्यते तेनोनिताः कार्याः । के । नागाद्र्यङ्गदिगङ्ककाः । अत एभ्यो यत्पदं तेनाद्य ऊनीकृतः सन् क्रान्तिज्या भवति । सा चक्रकलाव्यासार्धे । अस्या रविः साध्यः ।

अत्रोपपत्तिः । क्रान्तिज्याप्रमाणं यावत्तावत् १ । इयं त्रिज्यागुणा जिनांशज्यया भक्ता रविदोर्ज्या स्यात् ।

या $\frac{३४३८}{१३९७}$ । इयं क्रान्तिज्यायुक्ता । उद्दिष्टयुतेः शोध्या ।

शेषं द्युज्या भवति या $\frac{४८३५}{}$ रु $\frac{९९८५०००}{१३९७}$ अथ प्रका-
छेदः रु १३९७

रान्तरेण द्युज्यावर्गः याव १ त्रिव १ । अस्य पूर्वद्युज्यावर्गेण साम्यम् । तत्र पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधने च कृते मूलग्रहणार्थं यावत्तावद्वर्गाङ्केन पक्षयो-

शिछ्द्यमानयोर्भाज्यभाजकयोर्यथायोगमपवर्तने च क्रियमाण एवंविधा क्रियोपपद्यते । अत्र क्रान्तिज्या $\frac{४६०}{१५}$ ।

द्युज्या $\frac{३४०७}{५}$ । दोर्ज्या $\frac{११३२}{३६}$ । रविः १° १४ ३२ ।

भाषाभाष्य ।

द्युज्या, क्रान्तिज्या और रवि की भुजज्या के योग को चार से गुणाकर पन्द्रह का भाग देने से लब्धि की आद्यसंज्ञा है । द्युज्या आदि के योगवर्ग को द्विगुणा करके ३३७ का भाग देकर फल को ६१०६७८ में घटाकर शेष का मूल लेकर आद्य में घटा देने से, ३४३८ व्यासार्ध में, रवि की क्रान्तिज्या होगी । उससे रविज्ञान सुगम है ।

उपपत्ति ।

$$\text{क्रां} = \text{य} \text{ । रविदोर्ज्या} = \frac{\text{य. त्रि}}{\text{जि}} \text{ । द्यु} + \text{क्रां} + \text{रज्या} = \text{यो ।}$$

$$\text{क्रा} + \text{रज्या} = \text{य} + \frac{\text{य. त्रि}}{\text{जि}} \text{ ।}$$

$$\therefore \frac{\text{यो. जि} - \text{य. जि} - \text{य. त्रि}}{\text{जि}} = \text{द्यु ।}\ \text{य}^2 + \text{द्यु}^2 = \text{त्रि}^2 \text{ ।}$$

वर्ग, समच्छेद, छेदगम और समशोधन करने से—

$$\text{य}^2 (२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\ \text{त्रि. जि}) - २\ \text{य} (\text{यो. जि}^2 + \text{यो. जि. त्रि}) = \text{जि}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{यो}^2)$$

पक्षों में पहले कोष्ठगत का अपवर्तन और दूसरे कोष्ठगत के वर्ग को जोड़ने से—

$$\text{य}^2 - २\ \text{य}\left(\frac{\text{यो. जि}^2 + \text{यो. जि. त्रि}}{२\text{जि.}^2 + \text{त्रि}^2 + २\text{त्रि.जि}}\right) +$$

$$\frac{\text{यो.}^2\ \text{जि}^4 + २\ \text{यो}^2.\ \text{जि}^3.\ \text{त्रि.} + \text{यो}^2.\ \text{जि}^2.\ \text{त्रि}^2}{(२\ \text{जि}^2. + \text{त्रि}^2. + २\ \text{त्रि. जि})^2}$$

$$= \frac{\text{जि}^2.\ \text{त्रि}^2}{२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\ \text{त्रि. जि}} - \frac{\text{जि}^2.\ \text{यो}^2}{२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\ \text{त्रि. जि}} +$$

$$\frac{\text{यो}^2.\ \text{जि}^4 + २\ \text{यो}^2 + \text{जि}^3.\ \text{त्रि} + \text{यो}^2.\ \text{जि}^2.\ \text{त्रि}^2}{(२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\ \text{त्रि. जि})^2}\ ।$$

दूसरे पक्ष में दूसरे और तीसरे खण्ड का योग करने से—

$$= \frac{\text{जि}^2.\ \text{त्रि}^2}{२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2. + २\ \text{त्रि. जि}} - \frac{\text{यो}^2.\ \text{जि}^4}{(२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\text{त्रि. जि})^2}$$

यहां $\frac{\text{यो}\ (\text{जि}^2 + \text{जि. त्रि})}{२\ \text{जि}^2 + \text{त्रि}^2 + २\ \text{त्रि. जि}} = \frac{\text{यो}\ ४}{१५}$ इसका आद्य नाम रखा है। और जि^4 इसके आधे का दूसरे पक्ष में दूसरे खण्ड के अंश-छेद में अपवर्तन देने से $-\frac{२\ \text{यो}^2}{३३७}$ हुआ, और पहले खण्ड के छेद का अंश में भाग देने से ६१०७२६ हुआ । इसप्रकार दोनों पक्ष सिद्ध हुए

$$\text{य}^2 - २\ \text{य आद्य} + \text{आद्य}^2 = ६१०७२६ - \frac{२\ \text{यो}^2}{३३७}$$

मूल लेने से

$$\text{य} - \text{आद्य} = \sqrt{६१०७२६ - \frac{२\ \text{यो}^2}{३३७}} = \text{मूल}$$

समीकरण करने से

$$\text{य} = \text{आ} - \text{मू}\ ।$$

यहां ६१०७२६ = ६१०६७८ स्वल्पान्तर से

इससे 'द्युज्यापक्रम–' इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ १०१ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमही-
जीवाग्रकाणां युति-
र्दृष्टा खाम्बरपञ्चखेचर ९५०० मिता
पञ्चाङ्गुलाक्षप्रभे ।
देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता
गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समा-
चक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत् ॥ १०२ ॥

स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

हे विचक्षण, गणक, जिस देश में पलभा ५ अङ्गुल है, वहां क्रान्तिज्या, समशङ्कु, तद्धृति, कुज्या और अग्रा का योग ९५०० जानकर इन सबको अलग अलग कहो, यदि अक्षक्षेत्रसम्बन्धी गोल विचार में तुम खूब निपुण हो ॥ १०२ ॥

इदानीमस्योत्तरमाह ।

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहृते-
स्तुल्यां प्रकल्प्यापरा:
कृत्वाग्रासमशङ्कुतद्धृतिमही-
जीवा अभीष्टास्तत: ।
दृष्टाद्यास्तद्युतिभाजिता: पृथगथ
प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु तद्युति: पृथगिमा
व्यक्ता भवन्ति क्रमात् ॥ १०३ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र क्रान्तिज्येष्टा कल्प्या सात्र द्वादशगुणविषुवच्छायातुल्या कल्पिता यथेतरा निरग्रा लभ्यन्ते । क्रान्तिज्या ६० । समशङ्कुः १५६ । तद्धृतिः १६९ । कुज्या २५ । अग्रा ६५ । एवमस्याः क्रान्तिज्याया ६० एताः साधिताः । अतस्त्रैराशिकम् । अत्र यासां युतिरुदाहृता तासां युतिः कार्या । तथा कृता ४७५ । यद्यनया युत्यैताः क्रान्तिज्याद्याः पृथक् पृथक् पञ्चज्या लभ्यन्ते तदानया खाम्बरपञ्चखेचर ९५०० मितया किमिति । एवं लब्धा क्रान्तिज्या । १२०० । समशङ्कुः ३१२० । तद्धृतिः ३३८० । महीजीवा ५०० । अग्रका १३०० ॥

भाषाभाष्य ।

पहले क्रान्तिज्या को द्वादशगुणित पलभा के समान मानकर उसके अनुसार दूसरी अग्रा, समशङ्कु, तद्धृति और कुज्या का कल्पना करना । फिर उक्त योग में कल्पित योग का भाग देने से और उद्दिष्ट युति से गुणा करने से, अग्रा, समशङ्कु आदि अलग अलग सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

यहां पूरी लब्धि के लिए द्वा $\times$ पलभा $=$ क्रान्तिज्या के कल्पना करके उसी के अनुसार कल्पित क्रान्तिज्या आदि सिद्ध किया और उनका योग करके अनुपात किया कि—कल्पित युति में कल्पित क्रान्तिज्या आदि प्राप्त होते हैं तो उद्दिष्ट युति ९५०० में क्या ? फल अलग अलग क्रान्तिज्या आदि सिद्ध होंगे ॥ १०३ ॥

इदानीमस्यानयनस्य व्यासिदर्शनार्थमन्यं प्रश्नमाह ।

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां
योगं सहस्रद्वितयं २००० विदित्वा ।
पृथक् पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व
रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत् ॥ १०४ ॥

अत्रापि क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्येत्यादिना कल्पिता क्रान्तिज्या । ततोऽग्राकुज्ये च साधिते । क्रान्तिज्या ६० । अग्रा ६५ । कुज्या २५ । आसां युत्यानया १५० यद्येताः पृथक् पृथग् लभ्यन्ते तदा सहस्रद्वितयेन २००० किमिति लब्धा क्रान्तिज्या ८०० अग्रा $\frac{८६६}{४०}$ कुज्या $\frac{३३३}{२०}$ ।

भाषाभाष्य ।

हे गणक, अग्रा, क्रान्तिज्या, कुज्या का योग २००० जानकर उनको अलग अलग कहो । यदि तुम्हारी बुद्धि गोल और गणित में भली भांति फैली है ।

यहां पर 'क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्येत्यादि—' पूर्व-विधि से कल्पित क्रान्तिज्या से प्रत्येक अवयव पृथक् पृथक् सिद्ध होजाते हैं ॥ १०४ ॥

इदानीं नलकयन्त्रेण ग्रहविलोकनप्रकारमाह ।

विधाय बिन्दुं समभूमिभागे
ज्ञात्वा दिशः कोटिरतः प्रदेया ।
प्रत्यङ्मुखी पूर्वकपालसंस्थे
पूर्वामुखी पश्चिमगे ग्रहे सा ॥ १०५ ॥
कोट्यग्रतो दोरपि याम्यसौम्यो

बिन्दोश्च भा भाग्रभुजाग्रयोगात् ।
सूत्रं च बिन्दुस्थनराग्रसक्तं
प्रसार्य कर्णाकृतिसूत्रगत्या ॥ १०६ ॥
दृगुच्चमूलं नलकं निवेश्य
वंशद्वयाधारमथास्य रन्ध्रे ।
विलोकयेत् खे खचरं किलैवं
जले विलोमं तदपि प्रवक्ष्ये ॥ १०७ ॥

यस्मिन् दिने ग्रहं ग्रहणं ग्रहयुतिं शृङ्गोन्नतिं वा नलकयन्त्रेण दर्शयितुमिच्छति तस्मिन् दिने तस्मिन् काले तस्य ग्रहस्य ग्रहच्छायोक्तप्रकारेण छायां कर्णं भुजं कोटिं चानीय नलकयन्त्रं निवेशयेत् । तत्रायं सूत्रावतारः । विधाय बिन्दुं समभूमिभाग इति । जलसमीकृतायां भूमौ बिन्दुं कृत्वा ध्रुवादिना दिक्साधनं च कृत्वा बिन्दोरुपरि प्राच्यपरा रेखा कार्या । ततो यदि तदा ग्रहः पूर्वकपाले वर्तते तर्हि बिन्दोः सकाशात् कोटिः प्रत्यङ्मुखी देया । यदि पश्चिमकपाले ग्रहस्तदा पूर्वाभिमुखी । ततः कोट्यग्राद्भुजो याम्यः सौम्यो वा यथा दिग्दातव्यः । तथा बिन्दोः सकाशाच्छायाप्रमाणा शलाका भुजाग्राभिमुखी प्रसार्या । छायाभुजशलाकाग्रयोर्यत्रयोगस्तत्र सूत्रस्यैकमग्रं धृत्वा द्वितीयमग्रं बिन्दूपरिनिवेशितस्य शङ्कोरग्रसक्तं तिर्यक् कर्णगत्या प्रसार्य कस्मिन्नप्युच्चवंशे बध्नीयात् । ततस्तया सूत्रगत्या नलकं निवेशयेत् । एतदुक्तं भवति । नलकसुषिरगर्भे यथा तत् सूत्रं भवति तथा नलकः केनचिदाधारद्वयेन स्थिरः कार्यः । यथा नलकस्य मूलं दृगुच्चं भवति । एवं नलक-

मूलस्थितया दृष्ट्या नलकसुषिरेणादिष्टकाले ग्रहादिकं दर्शयेद्गगने ।

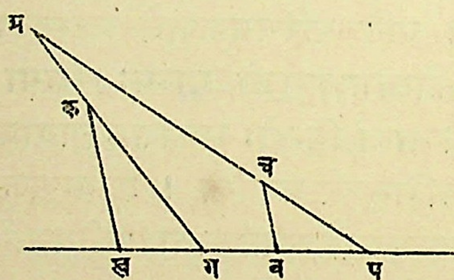
भाषाभाष्य ।

समतल भूमि में विन्दु करके ध्रुवादि से दिक् साधन करके बिन्दुगत प्राच्यपरा रेखा करना । फिर पूर्वकपाल में ग्रह हो तो बिन्दु से पश्चिमाभिमुख कोटि दान करना । और कोटि के अग्र से दिशा के अनुसार दक्षिण या उत्तर भुज का दान करना । छायाग्र और भुजाग्र के योग से बिन्दुगत शङ्कु तक कर्णाकार रेखा करनी । फिर दो बाँसों के आधार पर दृष्टि के ऊंचाई के समान नलिका रखनी और उसके छिद्र द्वारा आकाश में ग्रह का वेध करना । इसी प्रकार जल में भी वेध होता है वह आगे कहा जायगा ।

उपपत्ति ।

यहां आचार्य ने जो नलिकानिवेशन की स्थिति कही है उसका नीचे लिखे क्षेत्र में विवरण स्पष्ट है ।

क्षेत्र,



यहां 'म' यह केन्द्र है इसी के वश छाया की उत्पत्ति है । 'खग' और 'गप' एक ही दृक्सूत्ररूप रेखा कल्पना की गई । ख और व बिन्दु से खक, वप समान शङ्कु स्थापन किये जिनकी छाया खग और वप उत्पन्न हुई है ।

ग्रहबिम्ब के दूर होने से यदि स्वल्पान्तर से कग और चप छाया कर्णरूप रेखा समानान्तर मानी जायँ तो कगख और चपव कोण और ख, व कोण तुल्य होंगे इसलिए खक और वच रेखा समान होंगी । यों दोनों त्रिभुज समान सिद्ध हुए। इसप्रकार खग = वप ॥ १०५–१०७ ॥

इदानीं जले विलोकनार्थमाह ।

निवेश्य शङ्कुं भुजभाग्रयोगे
बिन्दोर्नराग्रानुगते च सूत्रे ।
तथैव धार्यो नलको विलोक्यो
बिन्दुस्थतोये सुषिरेण खेटः ॥ १०८ ॥

जले विलोममिति । भुजभाग्रयोर्योगे शङ्कुं निवेश्य बिन्दोः सकाशाच्छङ्क्वग्रसक्तं सूत्रं कर्णगत्या प्रसार्य सूत्रगत्या प्राग्वन्नलकं निवेश्य किन्तु दृगुच्चाग्रं नलकाग्रे दृष्टिं कृत्वाधःसुषिरेण बिन्दुस्थापितजलपात्रे ग्रहं विलोकयेदिति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र ग्रहाद्विपरीतदिशि छाया भ्रमति । यदि ग्रहप्राच्यपरयोरन्तरं दक्षिणं तदा छायाग्रप्राच्यपरयोरन्तरमुत्तरम् । यद्युत्तरं तदा दक्षिणम् । अतएव प्राच्यपरा कोटिर्विपरीता दत्ता । भुजस्तु यथा दिग्गतो दत्तः । यतोऽसौ छायाग्रस्य भुजः प्रागेव विपरीत आनीतः । अतश्छायाग्राच्छङ्क्वग्रगामि यत् सूत्रं ग्रहानुगतं भवति तद्गत्या निवेशितस्य नलकस्य सुषिरे ग्रहो दृश्यत इति तत्र किं चित्रम् । सुगमात्र वासनेत्यर्थः । अथ जले विलोममिति । जलाद्यस्यां दिशि यावति दूरे यावदुच्चं वेणवग्रादिकं वर्तते तत् तस्यां दिशि तावति दूरे तदुच्चप्रमाणं भुवः सकाशादधोमुखं कृतं सद्द्रष्ट्रा पुरुषेण

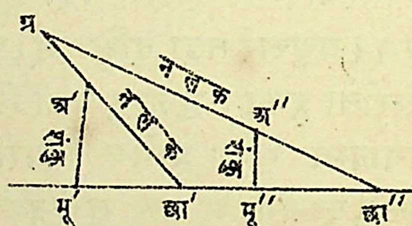
जले दृश्यत इति जलदृष्ट्योर्वस्तुशक्तिः । अधोमुखन्यस्त-
स्य वेणोरग्रे सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं पुरुषदृष्टि-
मानीयमानं यत्र भुवं भित्त्वा निर्गच्छति तद्बिन्दुस्था-
नम् । तत्र जलपात्रम् । पुरुषस्य दृगुच्छ्रयः शङ्कुः ।
पुरुषजलान्तरं छाया । दृक्सूत्रं कर्ण इति सर्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

छाया और भुज के योग में द्वादशाङ्गुल शङ्कु स्थापन करना । बिन्दु से शङ्कु के अग्रभाग तक कर्णगति से सूत्र करके वहां नलक को रखना । फिर बिन्दुगत जल में नलक छिद्र से ग्रह का वेध करना ।

उपपत्ति ।

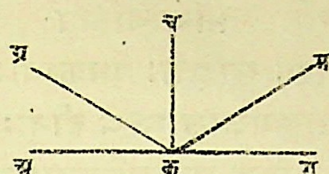
पूर्व रीति से दिक्साधन आदि करके केन्द्र में शङ्कु का स्थापन करना । शङ्कु के अग्रभाग से सूत्र छायाग्र तक ले जाना । उसी सूत्र के लगाव में नलक रखना और छायाग्र के स्थान में जलपूर्ण पात्र रखना । इस स्थिति में नलक छिद्र से नीचे जल में वेध करने से ग्रह का प्रतिबिम्ब दीखेगा ।



इसप्रकार आचार्योक्त वासना स्पष्ट ज्ञात होती है ।

यही विषय प्रकारान्तर से कहा जाता है—कल्पना किया अ क ग कोई जलधरातल है । यदि 'ग्र' बिन्दुगत ग्रह किरण क बिन्दु में पड़े तो क बिन्दु पलटकर 'म' बिन्दु में जाता है, उस स्थिति में

म क रेखागत दृष्टि से क विन्दुगत ग्रह प्रतिबिम्ब वेधकर्ता के देखने में आता है ।



क बिन्दु के ऊपर जलधरातल में क च लम्ब रेखा है । वह ग्रक और म क किरणरेखाओं से समानकोण उत्पन्न करती है । लम्ब-पतन और परावर्तन ये तीनों रेखा एकही धरातल में रहती हैं—यह ज्योतिर्विद्या का नवीन सिद्धान्त है ॥ १०८ ॥

इदानीमस्योपसंहारश्लोकमाह ।

दर्शयेद्दिविचरं दिवि के वानेहसि द्युचरदर्शनयोग्ये ।
पूर्वमेव विरचय्य यथोक्तं रञ्जनाय सुजनस्य नृपस्य ॥१०९॥

स्पष्टार्थम् ।

इति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे
त्रिप्रश्नाधिकारस्तृतीयः ।
अत्र ग्रन्थसंख्या सपादा नवशती ९२५ ।

प्रभा ।

के जले । अनेहसि समये ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहवेध के उपयुक्त समय में, आकाश में अथवा जल में, उक्त रीति से नलिका निवेश करके, राजाओं के मनोरञ्जन के लिए, ग्रह वेध विधि दिखलावे ॥ १०९ ॥

भाषाभाष्य में त्रिप्रश्नाधिकार समाप्त ।

अथ पर्वसंभवज्ञानमाह ।

कलेर्गताब्दा रवि १२ भिर्विनिघ्ना-

श्चैत्रादिमासैः सहिताः पृथक्स्थाः ।

द्विघ्नाः स्वनागाङ्कगजांश ८९८ हीनाः

पञ्चाङ्ग ६५ भक्ताः प्रथमान्विताः स्युः ॥ १ ॥

मासाः पृथक् ते द्विगुणास्त्रिपूर्ण-

बाणा ५०३ धिकाः स्वाङ्करूपांश १९९ युक्ताः ।

त्रिभि ३ र्विभक्ताः फलमंशपूर्वं

मासौघतुल्यैश्च गृहैर्युतं स्यात् ॥ २ ॥

सपातसूर्योऽस्य भुजांशका यदा

मनू १४ नकाः स्याद्ग्रहणस्य संभवः ॥

कलिमुखादेरारभ्य गताब्दा द्वादश १२ गुणाश्चैत्रादिगतमाससयुताः पृथक्स्था द्विघ्नाः स्वकीयेन गजाङ्काष्ट ८९८ भागेनोनाः पञ्चषष्ट्या ६५ भक्ताः फलमधिमासाः । तैः पृथक्स्था युताश्चान्द्रमासा भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि रवियुगमासै-५१८४०००० र्युगाधिमासा १५९३३०० लभ्यन्ते तदैभिः कलिगतैः किमिति । अत्राधिमासानामर्धेनानेन ७९६६५० गुणकभाजकावपवर्त्तितौ जातं गुणकस्थाने द्वयम् २ भागहारस्थाने पञ्चषष्टिः किंचिदभ्यधिका ६५।४।२१। अतः पञ्चषष्टिगुणानामधिमासानां १०३५६४५०० द्विगुणानां रविमासानां च १०३६८०००० यदन्तरं ११५५०० । तेन द्विगुणा रविमासा भक्ता लब्धमष्टाङ्कगजाः ८९८ । तैर्द्विगुणाः कलिगतमासा भाज्याः । यल्ल-

भ्यते तेन तान् वर्जितान् कृत्वा पञ्चषष्ठ्या ६५ भागे हृते-ऽधिमासा लभ्यन्त इत्युपपन्नम् ।

तैरधिमासैः पृथक्स्था युताश्चान्द्रमासाः स्युः । ते चान्द्रमासाः पृथग् द्विनिघ्नास्त्रिपूर्णबाणैः ५०३ सहिताः स्वीयेनाङ्कनृपांशेन १६९ युतास्त्रिभिर्भाज्याः । फलमंशाद्यं ग्राह्यम् । तानंशांस्त्रिंशता ३० विभज्य फलं राशयस्तदुपरि स्थाप्याः । राशिस्थाने मासौघतुल्या राशयश्च क्षेप्याः । एवमसौ सपातसूर्यो भवति । तस्य भुजांशा यदि चतुर्दशभ्य १४ ऊना भवन्ति तदा चन्द्रग्रहणस्य संभवो वेदितव्यः ।

अत्रोपपत्तिः । ग्रहणं हि मानैक्यार्धादूने विक्षेपे भवति । चन्द्रग्रहे मध्यमं मानैक्यार्धं षट्पञ्चाशत् कलाः ५६ । सूर्यग्रहे द्वात्रिंशत् ३२ । षट्पञ्चाशत् कलाः शरो द्वादशभिर्भुजभागैर्भवति । अतः स तु विक्षेपः सपातेन्दोःसाध्यते । दर्शान्ते यावान् विधुस्तावानेव रविर्भवति । पौर्णमास्यन्ते तु षड्भाधिकः स्यात् । षड्भाधिकस्यापि भुजस्तुल्य एव । अतः सपातार्काद्विक्षेपः कृतः । अतः सपातसूर्यसाधनेऽनुपातः । तत्रार्कपातयोः कल्पभगणानामैक्यं द्वादशभिः १२ संगुण्य राश्यात्मकं कार्यम् । यदि कल्पचान्द्रमासैरेभि ५३४३३३००००० रेते राशयो ५४६२७७३४०१६ लभ्यन्ते तदैकेन किमिति लब्धमेको राशिः १ । शेषं त्रिंशता ३० संगुण्य तेनैव हारेण भागे ह्रियमाणे लब्धं पूर्णम् ० । शेषं भागांशा अधश्छेदश्च $\frac{३५८३३०२०४८०}{५३४३३३०००००}$ । छेदत्र्यंशेन १७८१११००००० छेदेऽप

वर्तिते जातं त्रयम् । तेनैव छेदत्र्यंशेन भाज्यराशावपव-र्त्तिते जातं द्वयम् २ । शेषार्धेन शेषे २१०८२०४८०८प-वर्तिते जातं द्वयम् २ । पूर्वच्छेदस्य त्र्यंशे च शेषार्धेनाप-वर्तिते जाताः अङ्कनृपाः १६६ । अतो द्विगुणान्मासग-णात् स्वाङ्कनृपां १६६ शाधिकात् त्रिभिर्विभक्तात् फलं भागादि मासगणतुल्या राशयश्च तत्र क्षेप्याः । एवं सपातसूर्यो भवतीत्युपपन्नम् । यदुक्तं त्रिपूर्णबाणा ५०३ धिका इति । अयं कलियुगादौ पातस्य क्षेपस्तथा सपात-सूर्यमासार्धक्षेपश्चात्र योजितः । तथात्र मध्यमः सूर्यः सपात आगच्छति । तेन स्फुटेन भवितव्यम् । स्फुटम-ध्ययोरन्तरं स्थूलं किल भागद्वयम् २ । अत उक्तं मनू-नका इति । अन्यथा द्वादशभिरेव भुजभागैर्मानैक्यार्ध-तुल्यः शर उत्पद्यते । तथा गूढक्रियया फलमानीय स-पातसूर्य इति नामनिर्देशः कृतः । तेन तयोर्बीजकर्म सूचि-तम् । तदप्यत्र सपातार्के कार्यम् ।

भाषाभाष्य ।

कलि के आरम्भ से इष्टशक पर्यन्त गतवर्षों को बारह से गुणा कर उनमें चैत्रादि गत मासों को जोड़कर दो स्थान में रखो । दूसरे स्थान में उनको दूना करके अपने ८६८ भाग से युक्त करो और उनमें ६५ का भाग दो लब्धि अधिमास होंगे इनको पहिले स्थान में जोड़ने से चान्द्रमास होंगे । चान्द्रमासों को अलग दूना करके उनमें ५०२ जोड़ दो और उनको अपने १६६ भाग से युक्त करो बाद ३ का भाग दो इस प्रकार अंशादि लब्धि आवेगी उसको अंशों के स्थान में ३० का भाग देकर राश्यादि करो और राशि में मासों के समान राशियों को जोड़ दो वह सपात सूर्य होगा । उस सपात सूर्य के

भुजांश जब चौदह से न्यून होंगे उस समय ग्रहण का संभव होगा ।

उपपत्ति ।

युग के सौर मासों में युगाधिमास मिलते हैं तो कलिगत सौर मासों में क्या ? इस प्रकार अनुपात से कलिगत अधिमास आवेंगे ।

$$\frac{\text{युअधिमा} \times \text{इसौमा}}{\text{युसौमा}} \text{ इसमें } \frac{\text{युअधिमा}}{२} = ७६६६५० \text{ इसका}$$

$$\text{अपवर्तन देने से } \frac{२ \text{ इसौमा}}{\frac{२ \text{ यु सौमा}}{\text{यु अधिमा}}} \text{ हुआ । छेद} = \frac{२ \text{ यु सौमा}}{\text{यु अधिमा}}$$

$= ६५ । ४ । २१$

६५ । ४ । २१ हार में २ गुणक, तो ६५ में क्या ?

इस प्रकार संचार से कुछ कम दो गुणक प्राप्त होता है उसके स्थान में पूरे दो लिये । इस कारण दूने युग सौर मासों में पैंसठ गुण युगाधिमासों को घटाने से जो शेष बचै उसका दूने युगसौरमासों में भाग देने से जो फल आवे उसको पूर्व गुणक में घटाने से वास्तव

$$\text{गुणक होगा } \frac{२ \text{ यु सौमा}}{२ \text{ यु सौमा} - ६५ \text{ यु अधिमा}} = ८६८ ।$$

$$\therefore \frac{२ \text{ इसौमा} - \frac{२ \text{ इसौमा}}{८६८}}{६५}$$

छाद्य और छादक के बिम्बों के योगार्ध से जब शर न्यून होता है उस काल में ग्रहण होता है । आगे कही रीति से चन्द्रग्रहण में बिम्बों का योगार्ध छप्पन कला ५६, और सूर्यग्रहण में बत्तीस कला ३२ होता है । चन्द्र के बारह भुजांश पर से छप्पन कला और सात

भुजांश पर से बत्तीस कला शर सिद्ध होता है। वह शर सपात चन्द्र से आता है। अमान्त में चन्द्र और सूर्य समान होते हैं, बाद पूर्णान्त में सूर्य से चन्द्र छराशि अधिक होता है । परंतु उनके भुज तुल्यही होते हैं, इस कारण सपात सूर्य से ही शर का आनयन किया है।

रविभगण = ४३२००००००००
पातभगण = २३२३१११६८
४५५२३१११६८ × १२
राशि = ५४६२७७३४०१६

कल्प के चान्द्रमासों में सपात रविभगणों की राशि मिलती हैं तो एक चान्द्रमास में क्या ?

$$\frac{\text{सपातार्क रा} \times १}{\text{क चां मा}}$$

रा. ०
∴ ५३४३३२०००००)५४६२७७३४०१६(१।०
५३४३३३०००००
११६४४३४०१६
× ३०
अंशशे = ३५८३३०२०४८०
५३४३३३०००००

$$= \frac{२ \text{ मा} + \frac{२ \text{ मा}}{१६६}}{३}$$

छेद के तृतीयांश १७८१११००० का छेद में अपवर्तन देने से छेद के स्थान में ३ और इसी तृतीयांश का भाज्य में अपवर्तन देने से भाज्य के स्थान में २ हुए। शेष २१०८२०४८० रहा, इसमें इसी के

आधे का अपवर्तन देने से २ हुए और इसी आधे का १७८१११००० इस पहले छेद के तृतीयांश में अपवर्तन देने से १६६ हुए ।

कलि के प्रारम्भ में पातक्षेप = $\overset{\text{रा}}{५}$ । ३° । १३′ । और सपात सूर्य का मासार्ध क्षेप = $\overset{\text{रा}}{०}$ । १५° । २०′ इनका योग = $\overset{\text{रा}}{५}$ । १८° । ३३′ इस से विलोम विधि के अनुसार क्षेप साधन करते हैं—

$$\frac{२\text{ मा} + \frac{२\text{ मा}}{१६६}}{३} + \overset{\text{रा}}{५} । १८^{\circ} । ३३' = \frac{२\text{ मा} + \frac{२\text{ मा}}{१६६}}{३} +$$

$$\frac{३३७१^{\circ}}{२०} = \frac{२\text{ मा} + \frac{२\text{ मा}}{१६६} + \frac{१०११३}{२०}}{३} ।$$

$$\frac{१}{१६६}, \frac{१}{१७०} । १०११३ \times १६६ = १७०६०६७$$

$$१७ \times २० = ३४००$$

$$१७०६०६७ \div ३४०० = ५०३ \text{ क्षेप ।}$$

$$\therefore \frac{२\text{ मा} + ५०३ + \frac{२\text{ मा} + ५०३}{१६६}}{३} + \text{मा. तु. रा.}$$

= सपात सूर्य ।

इस प्रकार मध्यम सपात सूर्य सिद्ध होगा पर उसे स्पष्ट होना चाहिये और स्पष्ट मध्यम सूर्य का स्थूल अन्तर २° हैं इसलिये 'मनूनकाः' कहा है ॥ १–२ ॥

अथ सूर्यग्रहार्थं विशेषः ।

गृहार्धं १५ युक्तस्य सपातभास्वतो
भुजांशकान् गोलदिशोऽवगम्य च ॥ ३ ॥
ज्ञेयोऽर्को रविसंक्रमाद्गतदिनैर्दर्शान्तनाडीनता—
द्वेदां ४ शेन गृहादिनोनसहितः प्राक्पश्चिमेऽस्यापमः ।
अक्षांशैः खलु संस्कृतो रसलवेनास्याथ ते संस्कृताः
पाताकौढ्यभुजांशका यदि नगो ७ नाः स्युस्तदार्कग्रहः ॥४॥
रूपं १ वियत् ० पूर्णकृतान् ४० सपादान् १५
क्षिप्त्वा सपाते प्रतिमासमर्के ।
तत्संभवं प्रागवलोक्य धीमान्
ग्रहान् ग्रहार्थं विदधीत तत्र ॥ ५ ॥

अत्रोक्तवद्यः सपातसूर्यो ज्ञातः । असौ पञ्चदशभि १५ र्भागैरधिकः कार्यः । यदि सूर्यग्रहणसंभवो ज्ञातव्यः । ततस्तस्य भुजांशा यदि सपातः सूर्य उत्तरगोले तदोत्तरा यदि दक्षिणे तदा दक्षिणाः । तद्दिक्चिह्निता अनष्टाः स्थाप्याः । अथ रविसंक्रमात् सूर्यो ज्ञेयः । रविसंक्रमाद्यावन्तो दिवसा गतास्तावन्तो भागाः कल्प्याः । गतसंक्रान्तितुल्या राशयश्च । ततोऽमावास्यान्तकालस्य स्थूलस्य नतघटिकाः कार्याः । तासां चतुर्भि ४ र्भागे हृते यल्लभ्यते तद्राश्यादिकं फलं ग्राह्यम् । तेन राश्यादिना फलेन पूर्वाह्णे रविरूनः कार्योऽपराह्णे युतस्तस्य सायनांशस्य क्रान्तिः साध्या । क्रान्त्यक्षांशानां च तुल्यदिशां योगोऽन्यदिशामन्तरमेवं ते नतांशा भवन्ति । तेषां रसांशेन ६ तेऽनष्टस्थापिता भागाः संस्कृताः कार्याः । समदिशां योगो भिन्नदिशामन्तरमित्यर्थः । एवं ते भागा यदि

सप्तभ्य ऊना भवन्ति तदा सूर्यग्रहणसंभवो वेदितव्यः । अथ सपातसूर्यस्य प्रतिमासक्षेपः । यदि तस्मिन् मासे नार्कग्रहस्तदा सपातसूर्ये राशिस्थाने रूपम् १ । भागस्थाने पूर्णम्० । सपादाश्चत्वारिंशत्कलाश्च ४० । १५ । प्रतिमासं प्रक्षिप्य संभवो ज्ञेयः । ज्ञाते संभवे स्फुटार्थं तत्र ग्रहाः कार्याः ।

अत्रोपपत्तिः । ये सपातसूर्यस्य भुजांशास्ते शरार्थं पृथक् स्थापिताः । अथ च सूर्यग्रहे शरो नत्या संस्कृतः कार्यः । तदर्थं दर्शान्ते या नतघटिकास्ता लम्बनेनाधिकाः कार्याः । नतघटीनां चतुर्थांशः स्थूलं लम्बनम् । पञ्चभिः पञ्चभिर्घटिकाभिरेकैकः किल राशिः । याः किल नतघटिकास्ताश्चतुर्थांशेन लम्बनेनाधिकाः कार्याः । ततः पञ्चभिर्भाज्याः । एवं कृते पूर्वघटिकाश्चतुर्भिर्भक्ता भवन्ति । अतस्तेन राश्यादिनोनो रविः पूर्वाह्णे वित्रिभासन्नो भवति । पश्चिमकपाले तु युतः सन् । यतस्तत्रार्कादग्रतो वित्रिभं वर्तते । एवं वित्रिभलग्नस्य क्रान्तिरक्षांशैः संस्कृता नतांशा जाताः । ते यदा नतांशाः पञ्चचत्वारिंशद् ४५ भवन्ति तदा यदि त्रिज्यया परमावनति ४८ । ४६ लभ्यते तदा पञ्चचत्वारिंशदंशानां ज्यया २४३१ किमिति । फलं नतिः सार्धाश्चतुस्त्रिंशत् कलाः ३४ । ३० । एतावांश्छरो यैर्भुजभागैरुत्पद्यते ते ज्ञेयाः । यदि सप्तत्या कलानां पञ्चदश १५ भागा लभ्यन्ते तदाभिर्नतिकलाभिः ३४ । ३० किमिति लब्धा अंशाः सप्तचतुर्विंशतिः कलाश्च । एते तु नतलवानां षडंशेनोत्पद्यन्ते । अत उक्तं रसलवेनास्याथ ते संस्कृता इत्युपपन्नम् ।

प्रतिमासक्षेपे तु वासना सुगमा ।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये पर्वसंभवाधिकारः ।

भाषाभाष्य ।

पहले जो सपात सूर्य सिद्ध किया है उसको सूर्यग्रहण के संभव जानने के लिये पंद्रह अंशों से अधिक करो । यों इसके भुजांश सपात सूर्य के उत्तर गोल में होने से उत्तर दिशा के और दक्षिण में दक्षिण दिशा के होंगे । सूर्य संक्रान्ति से गत दिनों के समान अंश और गत संक्रान्ति के समान राशि कल्पना करो । और स्थूल अमान्तकाल की नत घटिकाओं में चार का भाग देने से जो राश्यादि फल प्राप्त हो उसको अलग स्थापन करो । उसको पूर्वाह्न में सूर्य में घटाओ और अपराह्न में सूर्य में जोड़ो बाद सायन बनाकर क्रान्ति का साधन करो । उक्त क्रान्ति के अंश और स्थानीय अक्षांश के समान दिशा में उनका योग भिन्न दिशा में अन्तर करके नतांश सिद्ध करो । नतांशों के छठे भाग को पहले सिद्ध किये सपात सूर्य के भुजांशों में एक दिशा होने पर जोड़ो और भिन्न दिशा होने पर घटाओ । इस प्रकार ये अंश यदि ७ से कम हों तो सूर्यग्रहण का संभव होगा ॥

सपात सूर्य का यह मासक्षेप है—रा. १ । ०° । ४०′ । १५″ इस को सूर्य में जोड़ कर ग्रहण का संभव जानना । यदि संभव हो तो आगे ग्रहण के लिये ग्रह साधन करना ॥

उपपत्ति ।

सूर्यग्रहण में शर में नति का संस्कार किया जाता है । इसलिए दर्शान्त की नत घटिकाओं में लम्बन जोड़ना चाहिए । लम्बन

$= \frac{\text{नघ}}{४}$ और पांच पांच घड़ियों की एक राशि होती है । दर्शान्त नत घटिकाओं को अपने चतुर्थांश से युक्त करके पांच का भाग देना होता है, दर्शघ $+ \frac{\text{नघ}}{४ \times ५}$ राश्यादि फल को पूर्व-पश्चिम कपाल में घटाने जोड़ने से सूर्य वित्रिभासन्न होता है । इस प्रकार वित्रिभक्रान्ति और अक्षांश के संस्कार से नतांश होते हैं । वे जब ४५ के तुल्य हों तो अनुपात करना—

$$३४३८ : ४८ । ४६ :: (\text{ज्या } ४५^{\circ}) = २४३१$$

त्रिज्या और नतिका सवर्णन करके अपवर्तन देने से—

$$\frac{१४६३ \times २४३१}{१०३१४०} = ३४ । ३० = \text{नति} ।$$

अब इतना शर जिन भुजांशों से होसके उनको जानना चाहिए । अनुपात किया—

$$७०' : १५^{\circ} :: ३४ । ३० :$$

सवर्णनादि करने से—

$$\frac{२०७० \times १५}{४२००} = ७^{\circ} । २४'' \text{ ये अंश } \frac{४५}{६} = ७$$ अर्थात् नतांश के छठे भाग के समान हैं । इसलिए ‘ रसलवेनास्याथ ते संस्कृताः—’ इत्यादि लिखा है । इस प्रकार सिद्ध होता है कि सायन सूर्य के भुजांश जब ७° से न्यून होंगे तभी सूर्यग्रहण का संभव होगा ॥ ३—५ ॥

भाषाभाष्य में पर्वसंभवाधिकार समाप्त ।

इदानीं ग्रहणं विवक्षुस्तदारम्भप्रयोजनमाह।

बहुफलं जपदानहुतादिके
स्मृतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगि जने सचमत्कृति
ग्रहणमिन्दिनयोः कथयाम्यतः॥ १॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

स्मृतिर्मन्वादि धर्मशास्त्रम्। पुराणं ब्राह्मादि। तद्विदस्तत्प्रणेतारः। इन्दिनयोः शशिसूर्ययोः।

भाषाभाष्य।

स्मृतिकार और पुराणकारों ने ग्रहण के समय में जप, दान और होम करने से बहुत फल कहा है—इसलिए, विद्वानों को प्रयोजनीय और चमत्कारदायक सूर्य-चन्द्र का ग्रहण साधन कहता हूं॥ १॥

इदानीं ग्रहणोपयोगिनीमितिकर्तव्यतामाह।

समगृहांशकला विकलौ स्फुटौ
रविविधू विदधीत रविग्रहम्।
समलवावयवौ तु विधुग्रहं
समवगन्तुमगुं च तदोक्तवत्॥ २॥

सति संभवे रविग्रहं ज्ञातुममावास्यायां रविविधू तमश्च कृत्वा ततोऽर्केन्दू देशान्तरादिस्पष्टीकरणैः स्फुटौ विधाय तिथिं च कृत्वा यथोक्तं नतकर्म च। तथा कृते सति तिथ्यन्तकालिकौ तौ कार्यौ तमश्च। एवं चन्द्रग्रहणं ज्ञातुं पौर्णमास्यां च। यतस्ततो ग्रहणक्रिया।

भाषाभाष्य।

सूर्यग्रहण के संभव में सूर्य, चन्द्र को राश्यादि अवयवों से समान

स्पष्ट करना । और चन्द्रग्रहण के प्रसंग में उन दोनों को अंशादि अवयवों से समान स्पष्ट करना । अर्थात् सूर्य और चन्द्र को तिथ्यन्त काल में स्पष्ट करना । और राहु को भी सिद्ध करना ॥ २ ॥

इदानीमर्केन्द्वोः कक्षाव्यासार्धे आह ।

नगनगाग्निनवाष्टरसा ६८९३७७ रवे
रसरसेषुमहीषु ५१५६६ मिता विधोः ।
निगदितावनिमध्यत उच्छ्रितिः
श्रुतिरियं किल योजनसंख्यया ॥ ३ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । कक्षाध्याये चन्द्रार्कयोः किल कक्षे कथिते । किन्तु व्यासौ न कथितौ । ताविदानीं त्रैराशिकेन । यदि भनन्दाग्निमित ३९२७ परिधेः खबाणसूर्य-१२५० मितो व्यासस्तदा सार्धाद्रिगोमनुसुराब्धिमिता ४३३१४९७ । ३० र्ककक्षायास्तथा सहस्रगुणितजिनराम-संख्याया ३२४००० श्चन्द्रकक्षायाः क इति । फलं व्यासौ । तयोरर्धे एते श्रुती । इयं भूमध्यात् कक्षाया उच्छ्रितिः ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य की भू केन्द्र से योजनात्मक उँचाई ६८९३७७ है। यही उसका कक्षाव्यासार्ध और मंदकर्ण है । और चन्द्र की ५१५६६ योजनात्मक उँचाई और कक्षा व्यासार्ध है । यही उसका मंदकर्ण है ॥ ३ ॥

इदानीमस्य योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणार्थं कलाकर्णं तावदाह—

मन्दश्रुतिर्द्राक्श्रुतिवत्प्रसाध्या
तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना ।
त्रिज्याकृतिः शेषहता स्फुटा स्या-

क्षिप्ताश्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च ॥ ४ ॥

यथा ग्रहस्य शीघ्रकर्मणि कर्णः साधितस्तथार्कस्य विधोश्च पृथक् पृथङ्मन्दकर्णः साध्यः। तं कर्णं द्विगुणायास्त्रिज्याया विशोध्य शेषेण त्रिज्याकृतिर्भाज्या। फलं स्फुटः कलाकर्णो भवति। एवं विधोश्च।

अत्रोपपत्तिः। इह स्पष्टीकरणे ये मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधिभागाः पठितास्ते त्रिज्यातुल्ये कक्षाव्यासार्धे। यदा ग्रहस्य कर्ण उत्पन्नस्तदा कर्णो व्यासार्धं ग्रहकक्षायाः। अतस्त्रैराशिकेन तत्परिणतास्ते कार्याः। यदि त्रिज्याव्यासार्धे एते मन्दपरिधिभागास्तदा कर्णव्यासार्धे क इति। एवं परिधेः स्फुटत्वं विधायासकृत्कर्णः कार्यः। स कलाकर्णः स्फुटो भवति। एतदसकृत्कर्मोपसंहृत्य सकृत्कर्मणा कर्णस्य स्फुटत्वं कृतम्। प्रथमं यः कर्ण आगतस्तमेव त्रिज्यारूपं प्रकल्प्य स्फुटः कर्णोऽत्र साध्यते। यदा किल कर्णस्त्रिज्यातो न्यूनो भवति यावता न्यूनस्तत् त्रिज्यया संयोज्य यद्यधिको वर्तते यावताधिकस्तत् त्रिज्यया विशोध्य शेषेणानुपातः। यद्यनेन त्रिज्या लभ्यते तदा त्रिज्यया किमिति। अनेनानुपातेन स्फुटः कर्णः सकृद्भवति। अत्र धूलीकर्मणा प्रत्यक्षप्रतीतिः।

भाषाभाष्य।

शीघ्रकर्ण साधन के अनुसार मन्दकर्ण का भी साधन करना। उसको दूनी त्रिज्या में घटाकर शेष के वर्ग का त्रिज्यावर्ग में भाग देना, फल स्पष्ट कला कर्ण होगा। इस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों के कला कर्ण होंगे।

उपपत्ति ।

जब ग्रह का कर्ण उत्पन्न होता है तब ग्रहकक्षा का व्यासार्ध कर्ण होता है अर्थात् ग्रह कर्ण त्रिज्या से उत्पन्न वृत्त में भ्रमण करता है। जो स्पष्टाधिकार में मन्दोच्च परिधियां मानी गई हैं वे सब त्रिज्याव्यासार्ध की हैं। उनको कर्णवृत्त में परिणत करने के लिए अनुपात—त्रिज्याव्यासार्ध में उक्त परिधिभाग तो कर्णव्यासार्ध में क्या ? यों कर्णवृत्त गत सिद्ध होती हैं। फिर असकृत्कर्म से कर्ण स्पष्ट किया जाता है। पर असकृत्कर्म न करके गणितागत प्रथम कर्ण को ही त्रिज्यारूप मानकर आगे की क्रिया यहां की गई है। जब कर्ण त्रिज्या से कम हो तो जितना कम हो वह त्रिज्या में जोड़ कर और अधिक हो वह घटाकर शेष के साथ अनुपात—इस शेष में त्रिज्या मिलती है तो त्रिज्या में क्या ? यों सकृत् कर्ण स्पष्ट होता है ॥ ४ ॥

इदानीं योजनात्मककर्णस्य स्फुटत्वमाह ।

लिप्ताश्रुतिघ्नस्त्रिगुणेन भक्तः
स्पष्टो भवेद्योजनकर्ण एवम् ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन। यदि त्रिज्या व्यासार्धे एतावान् स्फुटः कर्णस्तदा योजनात्मकव्यासार्धे किमिति। फलं भूमध्याद्ग्रहोच्छ्रितियोजनानि भवन्ति ।

भाषाभाष्य ।

योजनकर्ण को कलाकर्ण से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से स्पष्ट योजनकर्ण होता है ।

इसी कर्ण को स्पष्ट करनेके लिए कलाकर्ण को स्पष्ट किया गया है। भूमध्य से ग्रहबिम्ब तक योजन रूप उँचाई होती है, उसी के लिए

अनुपात किया—त्रिज्याव्यासार्ध में इतना स्पष्टकर्ण होता है तो योजनव्यास में क्या ? इसप्रकार सब उपपन्न होता है ॥

इदानीं योजनबिम्बान्याह ।

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु ६५२२ संख्या-
नीन्दोः खनागाम्बुधि ४८० योजनानि ॥ ५ ॥
भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दु-
कर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम् ।
भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना
भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे ॥ ६ ॥

रवेर्योजनात्मकं बिम्बं मध्यमं द्वियमबाणषट्कतुल्यानि ६५२२ योजनानि । इन्दोस्तु शून्यवसुवेद ४८० मितानि । अथ राहोरुच्यते । रविबिम्बं भूव्यासेन हीनं ४६४१ कृत्वेन्दुकर्णेन स्फुटेन योजनात्मकेन संगुण्य रविकर्णेन स्फुटेन भजेत् । फलेन भूव्यासो वर्जितश्चन्द्रकक्षायां भूभाव्यासो भवति । एतानि योजनबिम्बानि ।

अत्रोपपत्तिः । यस्मिन् दिनेऽर्कस्य मध्यतुल्यैव स्फुटा गतिः स्यात् तस्मिन् दिन उदयकाले चक्रकलाव्यासार्धमितेन यष्टिद्वितयेन मूलमिलितेन तत्रस्थदृष्ट्या तदग्राभ्यां बिम्बप्रान्तौ विध्येत् । या यष्ट्यग्रयोरन्तरकलास्ता रविबिम्बकला भवन्ति मध्यमाः । ताश्च द्वात्रिंशत् किञ्चिदधिकैकत्रिंशद्विकलाधिकाः ३२ । ३१ । ३३ ।

एवं विधोरपि पौर्णमास्यां यदा मध्यैव गतिः स्पष्टा तदा विध्येत् । तस्यैवं द्वात्रिंशत् ३२ । ० । ६ कला उत्पद्यन्ते । बिम्बकलानां योजनीकरणायानुपातः । यदि त्रिज्याव्यासार्ध एतावत्प्रमाणं बिम्बं तदा पठित-

श्रुतियोजनैः किमित्येवमुत्पद्यन्ते द्विद्विशरर्तु ६५२२ संख्यानि योजनानि । विधोस्तु खनागाम्बुधि ४८० मितानीति ।

अथ भूभाबिम्बस्योपपत्तिरुच्यते । अर्कबिम्बव्यासाद्भूव्यासो यतोऽल्पोऽतो भूभा सूच्यग्रा भवति दीर्घतया चन्द्रकक्षामतीत्य दूरं बहिर्गच्छति । अतो भूविस्तृतेः कियत्यपचये जाते चन्द्रकक्षायां भूभाविस्तृतिर्भवतीति ज्ञानायानुपातः । यदि रविकर्णेन सूर्यबिम्बभूव्यासान्तरयोजनानि ४६४१ लभ्यन्ते तदा चन्द्रकर्णेन किमिति । फलं भूव्यासस्यापचययोजनानि भवन्ति । अतस्तैर्भूव्यास ऊनीकृतश्चन्द्रकक्षायां भूभाव्यासो भवतीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य का योजनात्मक विम्ब ६५२२ और चन्द्र का ४८० योजन है । रविविम्बयोजन में, भूव्यासयोजन को घटाकर शेष को चन्द्रकर्ण से गुणाकर रविकर्ण का भाग देना । फलको भूविम्ब में घटादेने से, चन्द्रविम्ब में भूभाविम्ब का मान होता है ।

उपपत्ति ।

१—वेध से कलात्मक मध्यम रविविम्ब ३२′ । ३१″ । ३३‴ और चन्द्रविम्ब ३२′ । ०″ । ६‴ उपलब्ध हुए हैं । इनसे अनुपात किया—

त्रि : ३२′, ३१″, ३३‴ या, ३२′, ०″, ६‴ : : योजनकर्ण :

$$\therefore \text{रवियोजनविम्ब} = \frac{३२'।३१''।३३''' \times ६८६३७७}{३४३८} = ६५२२;$$

इसी प्रकार चन्द्रबिम्ब ४८० होता है ।

२—अब भूभाका साधन करते हैं । चन्द्रग्रहण में छाद्य वा, ग्राह्य

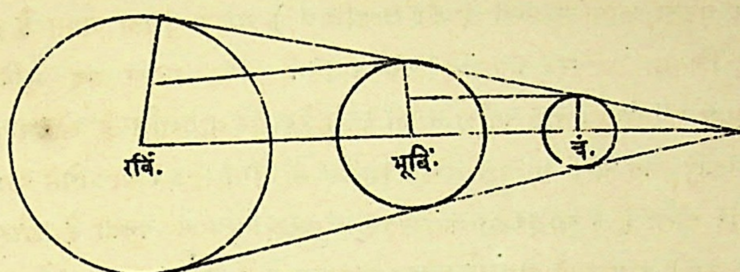
चन्द्र और छादक वा, ग्राहक भूभा होती है। पूर्णा को रवि से छ राशि के अन्तर पर चन्द्र और भूछायाकी स्थिति युक्तिसिद्ध है। ग्राह्य ग्राहक के पूर्वापर, अन्तर का अभाव होने पर और मानैक्यखण्ड से शर न्यून होने पर, दोनों का बिम्ब संयोगमात्र होता है। और जैसे शर घटता जाता है उसी क्रमसे ग्राह्यबिम्ब में ग्राहक घुसता जाता है। वह जितना भीतर जाता है वही ग्रास है। यह ग्रहण जब भूमि भ्रमण करती हुई सूर्य और चन्द्र के बीच में आजाती है अथवा, यों कहो जब चन्द्र छ राशि के अन्तर पर होता है—तब होने का संभव होता है। चन्द्रकक्षा क्रान्तिवृत्त धरातल के तरफ़ झुकी है और वह उसके संपात में एक ५° कोण उत्पन्न करती है। यदि चन्द्रकक्षा धरातल क्रान्तिवृत्तीय मान लियाजाय तो प्रत्येक पूर्णिमाको अर्थात् छ राशि के अन्तर पर ग्रहण संभव होगा। परन्तु क़क्षावृत्तीय नमन कोण के कारण, साधारणतः यह होता है कि चन्द्र जब छ राशि के अन्तर पर रहता है तब यातो क्रान्तिवृत्त धरातल से ऊपर या नीचे किसी स्थानविशेष में रहता है, जिससे भूछाया में प्रविष्ट नहीं हो सकता। इसलिए यह ज्ञात होता है कि जब चन्द्र क्रान्तिवृत्त के बहुत ही करीब अर्थात् अपने किसी एक पातस्थान—विक्षेप पात में हो तभी ग्रहण संभव होगा। उस स्थान में, शररूप याम्योत्तर अन्तर का अभाव होने से ग्राह्य और ग्राहक का योग होता है।

रविबिम्ब व्यास से भूव्यास छोटा है। इसलिए भूभा सूच्यग्र होकर चन्द्रकक्षा के बाहर चली जाती है। यह सब सविस्तर गोलाध्याय में लिखा गया है। यहां चन्द्रकक्षा में भूभाबिम्ब के साधनार्थ अनुपात किया—रविकर्ण में सूर्यबिम्ब और भूव्यास का अन्तर योजन मिलता है तो चन्द्रकर्ण में क्या ? फल भूव्यास योजन आता है उसको भूव्यास में घटाने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास का मान होता है।

यहां दोनों त्रिभुज क्षेत्रमिति (प्र. २६) से सजातीय हैं ।

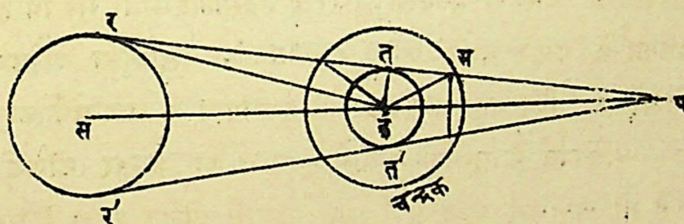
$$\therefore \text{भूभा} = \frac{\text{रवि—भूव्या} \times \text{चं क}}{\text{र क}} \text{।}$$

क्षेत्र,



३—यहां प्रकारान्तर से भूभाविम्ब की वासना दिखलाई जाती है। 'स' सूर्यविम्व, 'इ' भूविम्ब, रतप, र'त'प' दो रेखा रवि और भू-बिम्ब को स्पर्श करती हुई 'प' विन्दु पर मिलती है। स इ रेखा रवि और भू केन्द्र में होकर प बिन्दु में जा मिली। यह रेखा पर और प र' स्पर्श रेखाओं के योग से उत्पन्न कोण को अर्ध करेगी। इसी प्रकार इ केन्द्र से 'प' चिह्न पर मिलनेवाली रेखा प त और प त' स्पर्श रेखा से पैदा हुए कोण का अर्ध करेगी। इस प्रकार, ये स्पर्श रेखाएं एक ही होने से मिल जायँगी।

क्षेत्र,



इस क्षेत्र में म विन्दु चन्द्र के अन्तर में भूछा । त पर कल्पना किया । मइप कोण, इसलिए भूछाया के उस भाग का स्पष्टव्यासार्ध का मान होगा।

अब, म इ प=इ म त–इ प म
=इ म त–(र इ स–इ र त)
=इ म त + इ र त–र इ स.

र त म 'त' विन्दु पर भूमि की स्पर्श रेखा है। इसलिए 'त' स्थान गत द्रष्टा को सूर्य और म बिन्दु क्षितिज में होगा। इ र त कोण द्रष्टा और भूविम्ब के अन्तर मान के समान सूर्यविम्ब में बनता है। पर यह क्षितिज में होने से परमलम्बन के तुल्य है। और इ म त 'म' विन्दु वा चन्द्र का परमलम्बन, इसी रीति से सिद्ध होता है।

र इ स कोण सूर्य के स्पष्ट व्यासार्ध का मान है। इसलिए यदि रवि का परमलम्बन=प, चन्द्र का प′ और रवि का स्पष्टव्यासार्ध वा विम्बार्ध ब, कल्पना किया जाय तो यह समीकरण होता है—

प + प′–ब=भूभाव्यासार्ध, वा चन्द्रबिम्ब गत–भूभाबिम्ब।

इसी मूलसे

'दिवाकरनिशानाथपरलम्बनसंयुतिः।
सूर्यबिम्बार्धरहिता भूभाबिम्बदलं भवेत्॥'

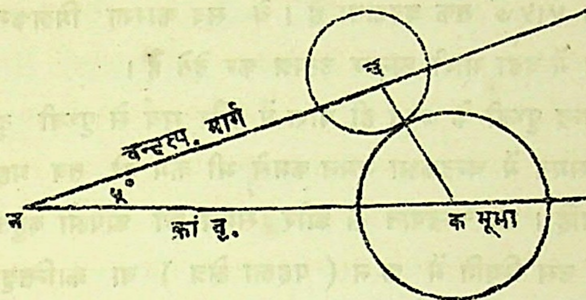
यह श्रीबापूदेवशास्त्री ने लिखा है।

४—यदि चन्द्रविम्बार्ध=च, तब चन्द्र का भूभा से स्पर्श में, भूछाया केन्द्र से चन्द्र केन्द्रान्तर अङ्गुलात्मक, उक्त भूभा बिम्बार्ध में चन्द्रविम्बार्ध जोड़ देने से सिद्ध होगा। अर्थात् मानैक्यार्ध होगा।

अर्थात् प + प′ + च–ब: इतने अन्तर में चन्द्र भूभा स्पर्श करेगा, अधिक में नहीं।

इसी विषय को नीचे के क्षेत्र से फिर स्पष्ट किया जाता है। 'क'

भूभाखण्ड का केन्द्र जो चन्द्रबिम्ब की दूरी पर है। 'च' चन्द्रकेन्द्र भूभा के बाहरी स्पर्शकाल में। च न चन्द्रस्पष्टमार्ग, न क क्रान्तिवृत्त और न चन्द्रपात स्थान है। अब यह देखना चाहिए कि चन्द्र और भूभा केन्द्र का अन्तर यदि चक से न्यून न होगा तो चन्द्र बिम्ब का स्पर्श भूभा से न होगा। कल्पना किया, स=रविबिम्बार्ध, म=चन्द्रबिम्बार्ध, अ=भूभाबिम्बार्ध है।



म च=(भूभाबिम्बार्ध)+(चन्द्रबिम्बार्ध)

=अ+म.

परन्तु अ=प′+प−स, (पूर्वरीति से)

∴ चक=प′+प−स+म,

यहां पर, प=८″, प′=५७″, स=१६′ (मध्यममान) और म=१५′ (मध्यमान)

∴ चक=५७′+८′−१६′+१५′=५६′ (स्थूलरूप से)

इसीप्रकार पूर्णग्रहण के लिए अर्थात् चन्द्रबिम्ब जब भूभा में प्रवेश करेगा, तब इसी समीकरण की स्थिति इसप्रकार होगी—

च क=(भूभाबिम्बार्ध)−(चन्द्रबिम्बार्ध)

=अ−म,

=प′+प−स=म=२६′ (स्थूल मान से)

इसप्रकार यह सिद्ध होता है चन्द्र और भूभा केन्द्र का अन्तर जब ५६′ बढ़ जायगा उस समय ग्रहण असम्भव होगा और पूर्ण-ग्रहण के लिए उक्त दोनों का अन्तर २६′ से बढ़ना नहीं चाहिए।

५—चन्द्रग्रहण की स्थिर अवधि कोई कायम नहीं हो सकती। क्योंकि चन्द्र और सूर्य दोनों के लम्बन और कलात्मक बिम्ब बदला करते हैं, एकरूप नहीं रहते। इसके सिवाय चन्द्रकक्षा का झुकाव ५°।२०′ से ४°।५७′ तक बदलता है। ये सब कारण मिलकर ग्रहण की अवधि में बड़ा भारी अन्तर उत्पन्न कर देते हैं।

जब चन्द्र पृथ्वी के बहुत ही पास में और सूर्य से पृथ्वी दूरी पर हो, उसी समय में चन्द्रकक्षा नमन कमसे भी कम हो, तब ग्रहण का सम्भव होताहै। वह चन्द्रपात से और समय की अपेक्षा बहुत दूरी पर होगा। उस स्थिति में क न (पहला क्षेत्र) वा क्रान्तिवृत्त गत रवि भुजांश का मान १२°।५′ निश्चित हुआ है।

इसी प्रकार जब चन्द्र पृथ्वी से बहुत दूरी पर है और पृथ्वी सूर्य के करीब में है, और न कोण बड़ा से बड़ा हो, तब ग्रहण का अवश्य सम्भव होगा। उस हालत में चन्द्र अपने पात स्थान के बहुतही करीब दूसरे काल की अपेक्षा रहेगा और कन=९°।३०′ निश्चित हुआ है। यों पात से छ राशि के अन्तर में होने पर भी जब चन्द्र १२°।५′ में रहेगा ग्रहण संभव होगा और जब ९°।३०′ इस भुजांश के भीतर रहेगा तब जरूर ग्रहण होना चाहिए। यों परमाधिक और परमन्यून दोनों स्थिति ग्रहण संभव के लिए विद्वानों ने सिद्ध की हैं।

इसी लिए 'मनूनकाश्चेद्ग्रहणस्य संभवः।' यह स्थूल रीति से आचार्य ने पर्वसंभवाधिकार में लिखा है। यहां हमने सूक्ष्मरूप से पाश्चात्य—सिद्धान्त के अनुसार यह सब लिखा है॥ ५—६॥

इदानीं योजनानां कलाकरणार्थमाह ।

सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानि
त्रिज्याहतान्यर्कशशीन्दुकर्णैः ।
भक्तानि तत्कार्मुकलिप्तिकास्ता-
स्तेषां क्रमान्मानकला भवन्ति ॥ ७ ॥

स्पष्टार्थम् । अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि योजनात्मकव्यासार्धे एतावन्ति बिम्बमानानि तदा त्रिज्याव्यासार्धे कियन्तीति फलानां चापानि लघुज्याभिप्रायेणोक्तानि ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य, चन्द्र और भूभा की योजन संख्याओं को त्रिज्या से गुणकर, क्रम से सूर्य, चन्द्र और चन्द्रकर्ण का भाग देने से जो फल मिले, उसका धनु करने से उनका कलात्मक मान होता है ।

उपपत्ति त्रैराशिक से स्पष्टही है ॥ ७ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण बिम्बकलानयनमाह ।

भानोर्गतिः स्वदशभागयुतार्धिता वा
बिम्बं विधोस्त्रि३गुणिता युगशैल७४भक्ता ।
तिथ्यद्रि७१५हीनशशिभुक्तिरिषुद्वि२५भक्ता
नन्दाक्षि२९युग्भवति वा विधुबिम्बमेवम् ॥८॥

रवेर्गतिः स्वदशांशेन १० युतार्धिता च रवेः कलाबिम्बं भवति। अथ चन्द्रगतिस्त्रि ३ गुणिता युगशैलभक्ता तद्विधुबिम्बं भवति। अथवा चन्द्रभुक्तिस्तिथ्यद्रिभि ७१५ र्हीना पञ्चविंशत्या २५ भक्ता फलमेकोनत्रिंशता २९ युक्तं चन्द्रबिम्बं भवति ।

अत्रोपपत्तिः। त्रिज्यातो महति कर्णे ग्रहबिम्बं लघु

भवति तथा गतिश्च लघ्वी भूमध्याद्दूरगतत्वाद्ग्रहस्य । अथाल्पे कर्णे बिम्बं पृथुगतिश्च महती । तत्रासन्नत्वात् । बिम्बगत्योरुपचयापचययोस्तुल्यत्वाद्गतेरपि बिम्बं साधयितुमुचितं भवति । तद्यथा । तत्र त्रैराशिकम् । यदि योजनात्मिकया गत्या पादोनगोऽक्षधृतिभूमितया द्विद्विशरर्तु ६५२२ संख्यं बिम्बं लभ्यते तदा कलागत्या किमिति । अत्र गुणकस्य द्विद्विशरर्तुसंख्यस्यैकादशभागेन ५९२ । ५५ गुणकभाजकावपवर्तितौ जाता गुणकस्थान एकादश ११ । भाजके विंशतिः २० । अतो रविगतिः सुखार्थं दशगुणा विंशत्या ह्रियते तावदर्धिता भवति यत एकादशभिर्गुण्याऽतो दशांशेनाधिका कृतेत्युपपन्नम् । एवं चन्द्रस्य खनागाम्बुधि ४८० मितो गुणो भागहारो योजनगतिरेव ११८५६ । एतौ खनृपै १६० रपवर्तितौ जातं गुणकस्थाने त्र्यं भागहारस्थाने चतुःसप्ततिः ७४ । अत्र परमं विकलात्रितयं यदन्तरं तत् सुखार्थमङ्गीकृतम् । अथ चन्द्रबिम्बानयने क्रियोपसंहारः सुखोपायार्थं कृतः । तत्र तिथ्यद्रि ७१५ तुल्यस्य गतिखण्डस्यैकोनत्रिंश २९ मितं बिम्बखण्डं लभ्यते । गतिशेषस्य पञ्चविंशत्या २५ भागे हृते बिम्बशेषं कलात्रयं ३ लभ्यते । अतस्तदैक्ये द्वात्रिंश ३२ न्मध्यमं चन्द्रबिम्बम् । गतेरुपचयापचयवशात् स्फुटत्वे बिम्बस्यापि स्फुटत्वमुपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अब प्रकारान्तर से बिम्बकला का साधन कहते हैं—सूर्य की गतिकला में उसका दशवाँ भाग जोड़कर आधा करने से रविबिम्बकला

होती है। चन्द्रमा की दैनिक गति को तीन से गुणाकर ७४ भाग देने से चन्द्रबिम्ब कला होती है। अथवा, चन्द्र की दैनिक गति में ७१५ घटाकर शेष में २५ भाग देने से जो फल मिले उसमें २६ जोड़ देने से चन्द्रबिम्ब कला होती है।

उपपत्ति।

जब ग्रह कर्ण त्रिज्यासे बड़ा होता है तब गति छोटी और बिम्ब छोटा होता है और छोटे कर्ण में बड़ा बिम्ब, गति बड़ी होती है, ऐसा मालुम होता है। इसलिए गति से बिम्ब का साधन किया है।

अनुपात--

योजनात्मक गति में ६५२२ बिम्ब तो कलागति में क्या ?

$$११८५६ : ६५२२ :: ५६' । ८'' := \frac{६५२२ \times ५६' । ८''}{११८५६}$$ यहां

$\frac{६५२२}{११} = ५९२ । ५५$ इससे गुणाक और भाजक में अपवर्तन देनेसे

हुआ—$\frac{रग \times ११}{२०}$; रविगति को दस से गुणाकर बीस का भाग देने से अर्ध हो जाती है, पर यहां एकादश से गुणा करना है इसलिए दशांश से अधिक हुई। यों प्रकार उपपन्न होता है।

इसी प्रकार चन्द्रगति $\frac{४८० \times ७९०' । ३५''}{११८५६}$ में १६० का अप-

वर्तन देने से $\frac{चंग \times ३}{७४}$ 'बिम्बं विधोस्त्रिगुणिता—'इत्यादि उपपन्न भया।

चन्द्र का मध्यम कलात्मक बिम्ब ३२'' होता है। चन्द्रगति का दो भाग किया ७१५' । ७५' यहां पहले खण्ड में २६ मध्यम बिम्ब और दूसरे में २५ का भाग देने से ३ बिम्ब शेष मिला दोनों का योग

२६′+३′=३२′ कलात्मक मध्यम चन्द्रविम्ब हुआ। यह क्रिया का उपसंहार गणित में सुख के लिए किया गया है॥ ८॥

इदानीं राहोः प्रकारान्तरेण कलाबिम्बमाह।

भानोर्गतिः शर ५ हता रविभि १२ र्विभक्ता
चन्द्रस्य लोचन २ गुणा तिथि १५ भाजिता च।
लब्धान्तरं भवति वावनिभाप्रमाणं
भूभा विधुं विधुरिनं ग्रहणे पिधत्ते॥ ९॥

रविगतिः पञ्चगुणा द्वादशभक्ता फलं कलात्मकमनष्टं स्थाप्यम्। अथ शशिगतिर्द्विगुणिता पञ्चदशभाजिता। इदमपि कलात्मकं फलम्। अनयोः फलयोरन्तरं भूभा-बिम्बप्रमाणं भवति। इदानीं ग्रहणे छाद्यच्छादकत्वं प्रतिपादयति। भूभा विधुग्रहणे विधुं छादयति रवि-ग्रहणे तु रविं विधुश्छादयति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र कर्कव्यासान्तरमितानां योज-नानां रविकक्षायां कलाकरणायानुपातः। यदि गति-योजनै ११८५९ गतिकला लभ्यन्ते तदा कर्कव्यासा-न्तरयोजनैः ४९४१ किमिति अत्र रविगतेः कर्कव्यासा-न्तरयोजनं गुणः गतियोजनानि हरः। एतौ वसुवसु-नवभिरपवर्तितौ जाता गुणकस्थाने पञ्च ५। हरस्थाने १२। फलं रविगतिसम्बन्धिन्योऽपचयलिप्ताः। अथ भूव्यासस्य चन्द्रकक्षायां लिप्ताकरणार्थमनुपातः। यदि गतियोजनै ११८५९ श्चन्द्रगतिकला लभ्यन्ते तदा भूव्या-सयोजनैः किमिति। अत्र गुणकार्धेन गुणकभाजकाव-पवर्तितौ जातं गुणकस्थाने द्वयम् २। भागहारस्थाने पञ्चदश १५। फलं भूव्यासकलाः। एताभ्यः पूर्वकलाः

शोध्याः । यत उपर्युपरि गच्छन्त्या भूभाया विस्तृतिरपचयिनी भवति । शेषोपपत्तिर्गोले सविस्तरा ।

भाषाभाष्य ।

अब प्रकारान्तर से भूभाविम्व का साधन करते हैं---रविगति को पाँच से गुणाकर, बारह का भाग देकर फलको रखना । फिर चन्द्र गति को दोसे गुणाकर पन्दरह का भाग देना, जो फल मिले उसका और पहले फल का अन्तर करने से भूभाविम्ब का मान होता है । चन्द्रग्रहण में, चन्द्र को भूभा और सूर्यग्रहण में सूर्य को चन्द्र आच्छादित करता है ।

उपपत्ति ।

यहां पहला भूभाक्षत्र जानना चाहिए । अनुपात किया---

गतियो : गतिक :: रविभूव्यासान्तरः$=\frac{\text{४९४१}\times\text{रग}}{\text{११८५९}}$ गुणाक और भाजक में ९८८ का अपवर्तन दिया $\frac{\text{५}\times\text{रग}}{\text{१२}}$ =रविकक्षा गत कलात्मक अन्तर । इसीप्रकार,

गतियो : गतिक :: भूव्यायोः$=\frac{\text{चंग}\times\text{१५८१}}{\text{११८५९}}$ ।

यहां भूव्यासयोजन के अर्ध का अपवर्तन दिया $\frac{\text{चंग}\times\text{२}}{\text{१५}}$ =भूव्यास कला । इस प्रकार 'भानोर्गतिः शरहता--' उपपन्न होता है । इन दोनों कलात्मक फलों का अन्तर, चन्द्रविम्ब में भूभाविम्ब का मान होता है । यह पूर्वक्षेत्र से स्पष्ट है ॥ ९ ॥

इदानीं चन्द्रविक्षेपानयनमाह ।

सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या

खभै २७० र्हता व्यासदलेन भक्ता ।
सपातशीतद्युतिगोलदिक् स्या-
द्विक्षेप इन्दोः स च बाणसंज्ञः ॥ १० ॥

यस्मिन् काले विक्षेपः साध्यस्तस्मिन् काले तात्कालिकयोश्चन्द्रपातयोर्योगः कर्तव्य इति साधारण्येनोक्तम्। इह चन्द्रग्रहणावगमे समकलस्यचन्द्रस्य तात्कालिकपातस्य च योगः कर्तव्यः । तस्य दोर्ज्या खभैर्गुण्या त्रिज्यया भाज्या फलं कलात्मकश्चन्द्रविक्षेपः । स च बाणसंज्ञः । यदि षड्भादूनः सपातश्चन्द्रस्तदोत्तरो ज्ञेयो यदा षड्भाधिकस्तदा दाक्षिणो ज्ञेयः ।

अत्रोपपत्तिः । चन्द्रो हि विमण्डले भ्रमति क्रान्तिमण्डलस्य विमण्डलस्य च यः संपातस्तस्य पातसंज्ञा । स पातो मीनान्ताद्विलोमं गच्छति । तस्मात् पातादग्रतस्त्रिभेऽन्तरे तद्विमण्डलं सार्धैश्चतुर्भि ४ । ३० र्भागैः क्रान्तिवृत्तादुत्तरतो भवति । पातात् पृष्ठतस्त्रिभेऽन्तरे तैरेव भागै ४ । ३० र्दक्षिणतो भवति । अथ विमण्डलगतस्य चन्द्रस्य क्रान्तिमण्डलेन सह यदन्तरं स याम्योत्तरो विक्षेपः । तज्ज्ञानार्थं चन्द्रपातयोरन्तरं ज्ञेयम् । तच्च चन्द्रपातयोर्योगे कृते भवति । पातस्य विलोमगत्वात् । तस्य सपातचन्द्रस्य दोर्ज्ययानुपातः । यदि त्रिज्या तुल्यया दोर्ज्यया परमः खमुनियम २७० कलातुल्यो विक्षेपस्तदानया कियानिति । फलमिन्दुविक्षेपः । यतः पातादग्रतः षड्भं क्रान्तिवृत्तादुत्तरतोऽन्यद्दक्षिणतोऽतः सपातशीतद्युतिगोलदिक् इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

सपात तात्कालिक स्पष्टचन्द्र की भुजज्या को २७० से गुणा कर, त्रिज्या का भाग देने से फल चन्द्र का शर होता है, उसका नाम बाण है । वह शर सपातचन्द्र जिस गोल का होता है उसी गोल का होता है ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिमण्डल और विमण्डल के संपात को विक्षेपपात कहते हैं । वहाँ से शर की प्रवृत्ति होकर तीन राशि के अन्तर पर परमशर ४° । ३०′ होता है । बीच में इष्टशर साधन के लिये चन्द्र और पात का योग करना चाहिये क्योंकि पात की विलोम गति है—इसलिए सपातचन्द्र साधन करके अनुपात किया—त्रिज्यातुल्य दोर्ज्या में परमशर कला २७०′ मिलती है तो इष्टदोर्ज्या में क्या ?

$$\frac{\text{२७०} \times \text{सपातइष्टदो}}{\text{त्रि}} = \text{चन्द्रशर} \text{ ।}$$

क्रान्तिवृत्त और विमण्डल का दक्षिणोत्तर अन्तरशर कहलाता है । शर का मूल क्रान्तिवृत्त में होता है और शराग्रमें चन्द्रबिम्ब विमण्डल में भ्रमण करता है । ऐसे ही दक्षिण और उत्तर ग्रह नक्षत्रों का शर होता है । पात चिह्न से छ राशि दक्षिण और छ उत्तर में, गोल में दिखलाई देती हैं इसलिए सपात चन्द्र जिस गोलका होता है उसी का शर भी गणित से सिद्ध होता है ॥ १० ॥

इदानीं ग्रहणे ग्रासप्रमाणमाह ।

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्य-
खण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम् ।
तच्छाद्यबिम्बादधिकं यदा स्याज्-
ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम् ॥ ११ ॥

स्पष्टार्थम् । अत्रोपपत्तिः । रवेरग्रतो भार्धान्तरे क्रान्तिवृत्ते भूभा भ्रमति । अतः पौर्णमास्यन्ते भूभाचन्द्रौ समौ भवतः । किन्तु याम्योत्तरमन्तरं विक्षेपतुल्यं भवति । स विक्षेपश्छाद्यच्छादकबिम्बमध्ययोरन्तरम् । तद्यदा बिम्बार्धैक्यसमं तदा बिम्बप्रान्तयोर्योगमात्रं स्यात् । यदा यावतामानैक्यार्धादूनं तावच्छाद्यबिम्बे छादकबिम्बं प्रविशति । अत उक्तं तत् स्थगितप्रमाणमिति । तत् स्थगितं छाद्यबिम्बादधिकं यदा भवति तदा सर्वग्रहणमित्यपि सुगमम् ।

भाषाभाष्य ।

छाद्य और छादक बिम्बों को योगार्ध में शर घटाने से स्थगित अर्थात् ग्रास का मान होता है । वह ग्रास जब छाद्यबिम्ब से अधिक होजाता है तब संपूर्ण ग्रहण होता है । अर्थात् छाद्यबिम्ब को छादकबिम्ब पूरा ढँक लेता है ।

उपपत्ति ।

रवि से छ राशिपर क्रान्तिवृत्त में भूभा भ्रमण करती है और पूर्णां को सूर्य चन्द्र का भी छ राशि का अन्तर होता है इसलिये भूभा और चन्द्र समान होते हैं । पात स्थान में, चन्द्र का शराभाव होने से चन्द्रबिम्ब क्रान्तिवृत्त में होजाता है इसलिए ग्राह्य और ग्राहक दोनों की कक्षा एक ही होती है ।

दोनों मण्डलों के योगार्ध से अधिक शर में ग्रहण का अभाव, तुल्य में नेमिस्पर्श और न्यून में ग्रास होता है । यह पूर्व भी लिखा है और स्पष्ट है ॥ ११ ॥

इदानीं स्थितिमर्दार्धयोरानयनमाह ।

मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यां

शरस्य वर्गेण विवर्जिताभ्याम् ।
मूले षषट्ट ६० संगुणिते विभक्ते
भुक्त्यन्तरेण स्थितिमर्दखण्डे ॥ १२ ॥

स्पष्टार्थम् । अत्रोपपत्तिः । स्पर्शकाले तु बिम्बगर्भयोरन्तरं मानैक्यार्धम् । तच्च कर्णरूपं भवति । तत्र यः शरः सा कोटिः । कर्णकोट्योर्वर्गान्तरपदं भुजः । तच्च ग्राहकमार्गखण्डम् । तत्क्रमणकालायानुपातः । तच्चन्द्रार्कयोः प्राग्गमनाद्भुक्त्यन्तरेण । यदि भुक्त्यन्तरतुल्यकलाभिः षष्टि ६० घटीरर्केन्दूक्रामतस्तदा लब्धाभिर्भुजकलाभिः कियत्य इति । फलं स्थित्यर्धघटिकाः । परं स्पर्शकालशराज्ञानान्मध्यग्रहणशरेणैतत् कर्म कृतमतः स्थूलं स्थित्यर्धं जातम् । अथ मर्दार्धमुच्यते । यदा छादकेन छाद्ये समग्रे छन्ने संमीलनमानं तदा बिम्बगर्भयोरन्तरे बिम्बार्धान्तरतुल्याः कला भवन्ति । ताश्च कर्णरूपाः । तस्मिन् काले यावान् विक्षेपस्तावती कोटिस्तयोर्वर्गान्तरपदं ग्राहकवर्त्मखण्डं भवति । तत्रापि पूर्ववदनुपातेन घटिकात्मकः कालो मर्दखण्डं भवति । सोऽपि स्थूलः ।

भाषाभाष्य ।

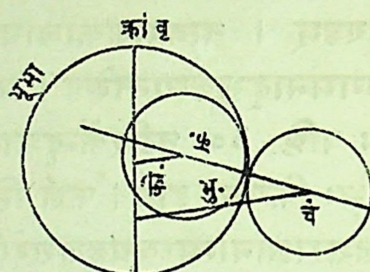
छाद्य और छादक के बिम्ब योगार्धों का योग और अन्तर करके, दोनों के वर्गों में, शर वर्ग को घटाकर, मूल लेना, फिर साठ से गुणाकर गत्यन्तर का भाग देने से क्रमसे स्थित्यर्ध और मर्दार्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

ग्राह्य और ग्राहक का जब बिम्ब स्पर्श होता है तब से मध्यग्रहण तक जिस मार्ग से ग्राहक बिम्ब जाता है उस मार्ग का ज्ञान करना

चाहिए। उस स्थिति में नीचे लिखा क्षेत्र बनता है। इसमें मानैक्यार्ध संमीलन काल में मानान्तरार्ध कर्ण, तात्कालिक शर कोटि, कर्ण कोटि का वर्गान्तर मूल भुज होता है। यही ग्राहकमार्गखण्ड है।

क्षेत्र,



उसको घटी मान में करने के लिए साठ से गुणाकर गत्यन्तर का भाग दिया—

$\therefore$ स्थितिखण्ड वा मर्दखण्ड $= \frac{\sqrt{\text{माखं}^2 - \text{शं}^2} \times ६०}{\text{रग} - \text{चंग}}$।

स्पर्शकाल से मध्य ग्रहण तक एक स्थितिखण्ड और मध्य से मोक्षकाल तक एक स्थितिखण्ड की कल्पना की गई है। इसीलिए स्थित्यर्ध का व्यवहार हुआ है।

इसीतरह ग्राहक बिम्ब जब ग्राह्य को पूरी तौर से ढँक लेता है तब संमीलन कहलाता है। वहां बिम्बान्तरार्ध के तुल्य दोनों का केन्द्रान्तर होता है, वह कर्णरूप। मध्यशर कोटि। कर्णकोटि का वर्गान्तर मूल भुज–ग्राहकमार्गखण्ड होता है। इस क्षेत्र स्थिति में भी पूर्वरीति से घटिकात्मक काल मर्दखण्ड संज्ञक होता है।

यह साधन स्पर्श और मोक्षकालिक शर के अज्ञान से मध्यकालिक शर से किया है इसलिए स्थित्यर्ध किंवा मर्दार्ध घटिका स्थूल सिद्ध हुई हैं । सूक्ष्मता के लिए आगे असकृत्कर्म लिखते हैं ॥ १२ ॥

इदानीं स्फुटीकरणमाह ।

स्थित्यर्धनाडीगुणिता स्वभुक्तिः
षष्टया ६० हृता तद्रहितौ युतौ च ।
कृत्वेन्दुपातावसकृच्छराभ्यां
स्थित्यर्धमाद्यं स्फुटमन्तिमं च ॥ १३ ॥

स्पष्टार्थम् । अत्र स्पर्शकालभवशरेण कोटिरूपेण कर्म कार्यम् । एवं स्थित्यर्धमसकृत्स्फुटं भवतीति सुगमा वासना ।

भाषाभाष्य ।

चन्द्रगति को स्थित्यर्ध घटिका से गुणाकर, साठ ६० का भाग देने से जो फल मिले उसको स्पर्श स्थित्यर्ध के लिये ग्रह में घटाना और मोक्ष के लिए जोड़ना । पुनः उससे शर आदि का साधन करके स्थिति खण्डों का साधन करना । उससे चन्द्र और पातका चालन करके स्थिति साधन असकृत् करना । इसप्रकार दोनों स्थित्यर्ध स्पष्ट होते हैं ।

यहां उपपत्ति स्पष्ट है ॥ १३ ॥

इदानीमेवं विमर्दार्धमपीत्यतिदिशति ।

एवं विमर्दार्धफलोनयुक्त-
सपातचन्द्रोद्भवसायकाभ्याम् ।
पृथक् पृथक् पूर्ववदेव सिद्धे
स्फुटे स्त आद्यान्त्यविमर्दखण्डे ॥ १४ ॥

स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

इसीप्रकार—मर्दार्ध घटिकाओं से, पूर्व विधि के अनुसार, फल साधन करके पात और चन्द्र में घटा और जोड़कर शर साधन करना । फिर, उससे अलग अलग आद्य और अन्त्य मर्दखण्ड असकृत् कर्मसे स्पष्ट होंगे ।

यहां भी उपपत्ति स्पष्ट है ॥ १४ ॥

इदानीमिष्टकाले भुजानयनमाह ।

स्पर्शाग्रतः स्पार्शिकमिष्टमुक्तं
प्राङ्मोक्षतो मौक्षिकमत्र पूर्वैः ।
वीष्टेन निघ्नाः स्थितिखण्डकेन
भुक्त्यन्तरांशा भुज इष्टकाले ॥ १५ ॥
एवं विमर्दार्धहताः पृथक् ते
संमीलनोन्मीलनयोर्भुजौ स्तः ।

पूर्वार्धं स्पष्टार्थम् । इष्टोनेन स्थितिखण्डेन गुणिता भुक्त्यन्तरभागाः कलात्मको भुजो भवति । एवं त एव भुक्त्यन्तरांशाः प्रथमविमर्दार्धगुणाः संमीलनभुजो भवति । द्वितीयगुणास्तदोन्मीलने ।

अत्रोपपत्तिः । इष्टकाले यत्र ग्राहकबिम्बमध्यचिह्नं यत्र च मध्यशराग्रचिह्नं तयोरन्तरं ग्राहकमार्गखण्डं भुज इहोच्यते । तस्यानयनं त्रैराशिकेन । यदि घटीषष्ट्या भुक्त्यन्तरकला लभ्यन्ते तदेष्टोनस्थितिदलेन किमिति । अत्र गुणकभाजकयोः षष्ट्यापवर्तने कृते जाता भुक्त्यन्तरांशा गुणकस्थाने । हरस्थाने रूपम् । एवं विमर्दार्धाभ्यां मर्दभुजौ ।

भाषाभाष्य ।

स्पर्श से आगे स्पार्शिक इष्ट और मोक्ष के पहले मौक्षिक इष्ट कहलाता है। स्थितिखण्ड में इष्ट घटाकर, शेष से भुक्त्यन्तर को गुणा करने से कलात्मक भुज होता है। और उन्हीं भुक्त्यन्तर के अंशों को अलग मर्दार्धों से गुणा करने से, संमीलन और उन्मीलन सम्बन्धी भुज होता है।

उपपत्ति ।

इष्टकाल में ग्राहकबिम्ब केन्द्र और मध्यशराग्रचिह्न का अन्तर, ग्राहकमार्गखण्डरूप भुज होता है। उसके साधनार्थ अनुपात—६० : रग—चंग :: स्थि—इ : फल कलात्मक भुज हुआ। अंशात्मक फल के लिये ६० का भाग दिया—

∴ इष्टभुजांश $= \frac{\text{स्थि—इ}}{\text{रग—चंग}}$ । इसीप्रकार मर्दार्धघटिका में इष्ट घटाकर संमीलन और उन्मीलन का भुज भी सिद्ध होता है॥ १५ ॥

इदानीं कर्णार्थमाह ।

कोटिश्च तत्कालशरोऽथ कोटी
दोर्वर्गयोगस्य पदं श्रुतिः स्यात् ॥ १६ ॥
मानैक्यखण्डं श्रुतिवर्जितं सद्-
ग्रासप्रमाणं भवतीष्टकाले ।

इष्टकाले यावाञ्छरः सा तत्र कोटिः । कोटिभुजवर्गयोगपदं कर्णः । कर्णोनं मानैक्यार्धमिष्टकाले ग्रासप्रमाणं भवति ।

अत्रोपपत्तिः । भुजोऽत्र क्रान्तिवृत्ते प्राच्यपरस्तस्माद्याम्योत्तरः शरोऽतः कोटिः । तद्वर्गयोगपदं कर्ण इत्युचितम् । कर्णोनाम बिम्बमध्ययोरन्तरम् । स यावता

मानैक्यार्धादूनो भवति तावद्ग्राहकबिम्बं ग्राह्ये प्रविष्टम् । अतस्तावानिष्टकाले ग्रास इत्युपपन्नम् ।

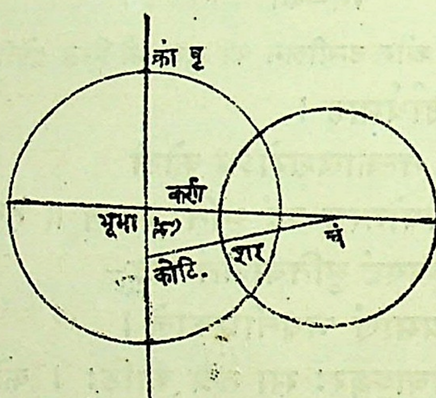
भाषाभाष्य ।

तात्कालिक शर कोटि होती है । कोटि और भुजके वर्गयोग का मूल कर्ण होता है । मानैक्यार्ध को कर्ण में घटाने से इष्ट ग्रास होता है ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिवृत्त में प्राच्यपर भुज, उससे दक्षिणोत्तर शर कोटि, दोनों का वर्गयोग मूल कर्ण—ग्राह्य और ग्राहक बिम्बों का केन्द्रान्तर होता हैं । वह जितना मानैक्यखण्ड से कम होगा उतनाही ग्राह्य में ग्राहक बिम्ब प्रवेश करेगा यह नीचे के क्षेत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

क्षेत्र,



इदानीं ग्रासात् तत्कालज्ञानमाह ।

ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्
विक्षेपकृत्या रहितात् पदं यत् ॥ १७ ॥
गत्यन्तरांशैर्विहृतं फलोनं
स्थित्यर्धकं स्वं भवतीष्टकालः ।

तत्कालबाणेन मुहुः स्फुटोऽग्रे
वक्ष्येऽन्यथा वा परिलेखतोऽमुम् ॥ १८ ॥

इष्टग्रासेनोनस्य मानैक्यार्धस्य वर्गात् तत्कालविक्षेपवर्गेणोनान्मूलं गत्यन्तरांशैर्विभजेत् । फलेन स्पर्शस्थित्यर्धं हीनं यदि स्पार्शिको ग्रासः । यदि मौक्षिकस्तदा मौक्षिकं हीनम् । शेषमिष्टकालो भवति । स च स्थूलः । अथ तत्कालशरेण य आनीयते स सूक्ष्मासन्नः । एवमसकृत्स्फुटः स्यात् । अमुमिष्टकालमग्रे परिलेखादेव वक्ष्ये ।

अत्रोपपत्तिर्विलोमगणितेन । ग्रासोनमानैक्यार्धं कर्णस्तत्कालशरः कोटिस्तद्वर्गान्तरपदं भुजः । स गत्यन्तरांशैर्विहृतः फलमिष्टकालस्य मध्यग्रहस्य च सावनान्तरमतः स्वस्थित्यर्धाच्छोधितमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

मानैक्यार्ध में इष्टग्रास को घटाकर शेष के वर्ग में, शरवर्ग को घटाकर मूल लेना । उसमें गत्यन्तर का भाग देने से जो फल मिले उसको स्थित्यर्ध में घटा देने से इष्टकाल का मान होता है । अर्थात् जो स्पार्शिक या मौक्षिक स्थित्यर्ध हो उसी में घटा देने से शेष इष्टकाल होता है । यह स्थूल होता है । जो तात्कालिक शर से इष्टकाल साधन किया जाता है वह सूक्ष्मासन्न होता है । इसलिए असकृत्कर्म से वास्तविक होता है । यह इष्टकाल आगे परिलेख द्वारा कहा जायगा ।

उपपत्ति ।

इष्टग्रा सोन मानैक्यखण्ड कर्ण, तत्काल शर कोटि, दोनों का वर्गान्तर मूल भुज यह क्षेत्र होता है । इस भुज में गत्यन्तर का भाग देने से इष्टकाल और मध्यग्रहण का सावनकालान्तर होता है । उसको स्थित्यर्ध में घटा देने से इष्टकाल होजाता है ॥ १७–१८ ॥

इदानीं स्पर्शादिव्यवस्थितिमाह ।

मध्यग्रहः पर्वविरामकाले
प्राक् प्रग्रहोऽस्मात् परतश्च मुक्तिः ।
स्थित्यर्धनाडीष्वथ मर्दजासु
संमीलनोन्मीलनके तथैव ॥ १६ ॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

पर्वान्त काल में मध्यग्रह—उसके पहले प्रग्रह—उसके बाद मोक्ष—यह स्थिति स्थित्यर्ध घटिकाओं में क्रम से होती है । इसीप्रकार मर्दघटिका में संमीलन उन्मीलन का व्यवहार होता है । यह एक प्रकार से संज्ञा निर्देश किया गया है ॥ १६ ॥

इदानीं वलनानयनमाह ।

खाङ्का ६० हतं स्वद्युदलेन भक्तं
स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः ।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी
भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम् ॥ २० ॥
प्रजायते प्रागपरे न ते क्रमा-
दुदग्यमाशं वलनं पलोद्भवम् ।

यस्मिन् काले वलनं साध्यं तस्मिन् काले या नतघटिकास्ताः खाङ्का ६० हताश्चन्द्रग्रहे रात्र्यर्धेन भक्ता अर्कग्रहे दिनार्धेन फलमंशाः स्युः । तेषां क्रमज्याक्षज्यया गुणया द्युजीवया भक्ता लब्धस्य चापं पलोद्भवं वलनं जायते । प्राङ्नते सौम्यं पश्चिमनते याम्यम् । वलनानयनमुत्क्रमज्यया कैश्चित् कृतं तन्निरासार्थमत्र क्रमज्येति विशेषणम् । न पुनरेतद्विशेषणबलादन्यत्र सर्वत्रोत्क-

मज्याः प्राप्नुवन्ति । इदं कुतः । यैरुत्क्रमज्याविधिनैत-दुक्तमिति ज्ञापकात् ।

अत्रोपपत्तिर्गोलाध्याये ।

भाषाभाष्य ।

अब वलनसाधन का प्रकार लिखते हैं—जिस समय स्पर्श हो उस काल की नत घटिकाओं को नब्बे ९० से गुणा कर चन्द्रग्रहण में रात्र्यर्ध और सूर्यग्रहण में दिनार्ध का भाग देने से फल अंश होते हैं। उन अंशों की ज्या करके अक्षांशज्या से गुणाकर द्युज्या का भाग देने से जो फल मिले उसका चाप, अक्षांशों से उत्पन्न आक्षवलन होता है। वह पूर्वनत में उत्तर और पश्चिमनत में दक्षिण होता है।

उपपत्ति ।

आक्षवलन की उपपत्ति और क्षेत्र आदि सविस्तर गोलाध्याय में यथास्थान लिखा गया है। तोभी यहाँ फिर संक्षेप से लिखते हैं।

वलन क्या है ? सममण्डल से नाडीमण्डल जितने अन्तर से इष्ट काल में चलित हो वही वलन है । नाडीमण्डल और सममण्डल का अन्तर अक्षांश होता है । इसलिए इसको आक्षवलन कहते हैं । ऐसे ही नाडीमण्डल से क्रान्तिमण्डल जितने अन्तर से वलित हो वह अयन सम्बन्ध से होने से आयनवलन होता है। क्षितिज में अक्षज्या तुल्य परमाक्षवलन और खमध्य में वलन का अभाव होता है। वहां नतशून्य होता है और क्षितिज में नत परम होता है। इस लिए नत से वलन का साधन किया गया है।

अनुपात किया—

$$\text{दिनार्ध} : ९० :: \text{इन} : = \frac{९० \times \text{इन}}{\text{दिना.}} = \text{इष्ट समवृत्तीय नतांश ।}$$

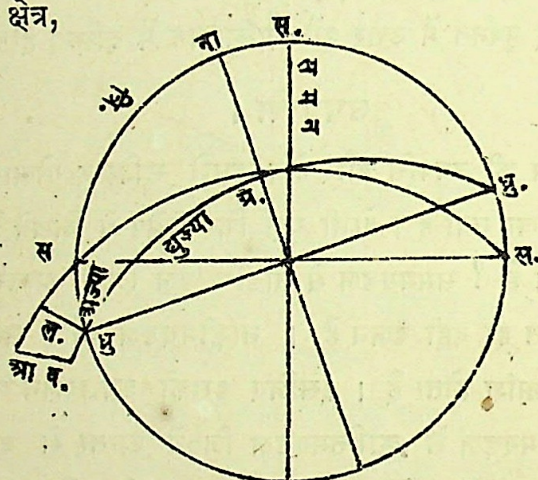
$$\text{त्रि} : \text{इन} :: \text{पज्या} : = \frac{\text{इन} \times \text{पज्या}}{\text{त्रि}};$$

$$= \frac{६० \times \text{इन} \times \text{पज्या}}{\text{दिना} \times \text{त्रि}},$$

$$\text{द्यु} : \frac{६० \times \text{इन} \times \text{पज्या}}{\text{दिना} \times \text{त्रि}} :: \text{त्रि} :$$

$$\therefore \text{आक्षवलनज्या} = \frac{६० \times \text{इन} \times \text{पज्या}}{\text{दिना} \times \text{द्यु}}$$ । 'खाङ्काहतं स्वद्युदलेन भक्तम्' इत्यादि उत्पन्न हुआ * ॥ २० ॥

यहां क्षेत्र,



* नीचे लिखे क्षेत्र में—

खध्रु = लम्बांश = एक भुज

रध्रु = द्युज्याचापांश = दूसरा भुज

खर = दृग्वृत्तनतांश = तीसरा भुज

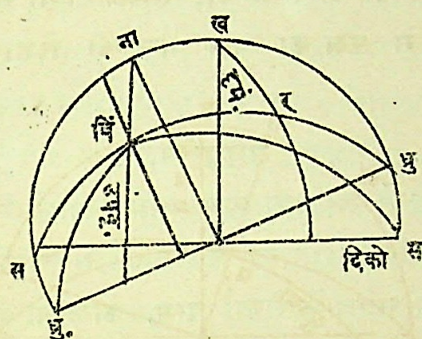
इसप्रकार खरध्रु विषम त्रिभुज बना ।

यहाँ पर रखध्रु = ∠ दिगंशकोटि और खध्रुर = ∠ नतकाल ।

इदानीमायनं वलनमाह ।

युतायनांशोडुपकोटिशिञ्जिनी
जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणिता विभाजिता ॥२१॥
द्युजीवया लब्धफलस्य कार्मुकं
भवेच्छशाङ्कायनदिक्कमायनम् ।

$\therefore$ नतकालज्या $= \frac{\text{दिकोज्या} \times \text{दृग्ज्या}}{\text{द्युज्या}}$ । यह नतकालज्या साधन की विधि है ।



अक्षवलन प्रकारान्तर से सिद्ध किया जाता है । बिंध्रुस त्रिभुज में बिंध्रु = द्युज्या, ध्रुस = अक्षज्या, बिंस = उपवृत्तव्यासार्ध है । यहां द्युज्या को भूमि मान कर श्रीबापूदेवशास्त्री के—

‘ त्रिज्यागुणाद्धरणिकोटिगुणाद्विहीनात्
कोटिद्वयोर्भुजसमुत्थितयोर्वधेन ।
त्रिज्यागुणाच्च भुजयोर्गुणयोर्वधेन
लब्धं भुजो धरणिसम्मुखकोणकोटेः ॥ ’

इस सिद्धान्त से आक्षवलनकोटिज्या $= \frac{\text{कोज्या} \times \text{त्रि}^2 - \text{लंज्या} \times \text{उपको} \times \text{त्रि}}{\text{अक्षज्या} \times \text{उपवृ.}}$ । कोटि को नब्बे ९०° में घटा देने से आक्षवलनज्या सिद्ध होती है । इस चापीयसिद्धान्त से अनेक प्रकार उपपन्न होते हैं ।

ग्रहस्य सायनांशस्य कोटिज्या जिनांशज्यया गुण्या द्युज्यया भक्ता फलस्य चापमायनं वलनं भवति। तच्च यस्मिन्नयने ग्रहो वर्तते तद्दिक् भवति।

अत्रोपपत्तिर्गोले।

प्रभा।

उडुपश्चन्द्रस्तस्य कोटिशिञ्जिनी कोटिज्या। युता अयनांशा यस्यां सायुतायनांशा सा चासाविति कर्मधारयः।

भाषाभाष्य।

सायन चन्द्र की कोटिज्या को, परमक्रान्तिज्या से गुणाकर द्युज्या का भाग देने से फल का चाप चन्द्र की दिशा का आयनवलन होता है।

उपपत्ति।

अयन सन्धि में वलन का अभाव और गोलसन्धि में वह परम होता है। गोलसन्धि में दोर्ज्या के अभाव से कोटिज्या परम होती है। और अयन सन्धि में दोर्ज्या परम, कोटिज्या शून्य होती है। जहां कोटिज्या परम वहां आयनवलन परम और जहां कोटिज्या का अभाव वहां आयन वलन का अभाव वा शून्य होता है। इसलिए कोटिज्या से आयनवलन का साधन किया है।

पहले क्षेत्र से अनुपात किया—

$$\text{त्रि} : \text{ग्रको} :: \text{जिज्या} = \frac{\text{ग्रको} \times \text{जिज्या}}{\text{त्रि}} = \text{द्युज्याग्रीय वलनज्या।}$$

$$\text{द्यु} : \frac{\text{ग्रको}\times\text{जिज्या}}{\text{त्रि}} :: \text{त्रि} = \frac{\text{ग्रको} \times \text{जिज्या} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु} \times \text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{ग्रको} \times \text{जिज्या}}{\text{द्यु}} = \text{फलचाप आयनवलन ॥ २१ ॥}$$

इदानीं स्फुटवलनार्थमाह ।

तयोः पलोत्थायनयोः समाशयो—
युतेर्वियुक्तेस्तु विभिन्नकाष्ठयोः ॥ २२ ॥
या शिञ्जिनी मानदलैक्यनिघ्नी
त्रिज्योद्धृता तद्वलनं स्फुटं स्यात् ।
यैरुत्क्रमज्याविधिनैतदुक्तं
सम्यङ् नते गोलगतिं विदन्ति ॥ २३ ॥

तयोः पलोद्भवायनयोर्वलनचापयोः समाशयोर्योगो भिन्नाशयोरन्तरं तस्य ज्या मानैक्यार्धगुणा त्रिज्यया भक्ता फलं स्फुटा वलनज्या भवति । यैरिदं वलनद्वयमुत्क्रमज्याविधिनोक्तं सम्यङ्नते गोलगतिं विदन्तीति गोलं परिभ्राम्य दिशां वलनस्योत्क्रमज्ययोपपत्तयः क्रमज्यया वेति तैः सम्यक् क्वापि नावलोकितमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिर्गोले सविस्तरा । इह सममण्डलं द्रष्टुः प्राचीसममण्डलादिष्टे नते काले विषुवन्मण्डलप्राची यावता यतश्चलिता तावत् तद्दिक्पलोद्भवं वलनं ज्ञेयम् । अथ विषुवन्मण्डलात् क्रान्तिवृत्तप्राची यावता यतश्चलिता तदायनं तद्दिग्ज्ञेयम् । तयोर्योगवियोगात् स्फुटमिति । सममण्डलात् क्रान्तिमण्डलप्राची यावता यतश्चलिता तत् स्फुटमित्यर्थः । एवं त्रिज्यापरिणतं तदत्रानुपातेन मानैक्यार्धपरिणतं कृतम् । यतोऽत्र मानैक्यार्धवृत्ते वलनं देयम् ।

भाषाभाष्य ।

इन आयन और आक्षवलनों का एक दिशा में योग और भिन्न दिशा में अन्तर करने से जो फलज्या हो, उसको मानैक्यार्ध से गुणा

कर त्रिज्याका भाग देने से, फल स्पष्टवलन होता है। जिन आचार्यों ने उत्क्रमज्या से वलन का साधन किया है वे गोलस्थिति को भली भांति नहीं जानते।

उपपत्ति।

आयन और आक्षवलन के संस्कार से स्पष्टवलन होता है। इष्टनतकाल में सममण्डल से क्रान्तिमण्डल जिस दिशा में वलित हो वही स्पष्टवलन का स्वरूप है। वलन का दान मानैक्यार्धवृत्त में होता है इसलिए अनुपात किया—

त्रिज्यावृत्त में यह वलन तो मानैक्यार्धवृत्त में क्या ? फल मानैक्यार्धवृत्त परिणत स्पष्टवलन होता है ॥ २२–२३ ॥

इदानीमङ्गुललिप्तार्थमाह।

त्रिज्योद्धृतस्तत्समयोत्थशङ्कुः
सार्धद्वि २। ३० युक्तोऽङ्गुललिप्तिकाः स्युः।
स्थूलाः सुखार्थं द्युदलेन भक्तं
समुन्नतं सार्धयमा २। ३० न्वितं वा ॥ २४ ॥

मध्यग्रहणकाले ग्रहस्य त्रिप्रश्नोक्त्या शङ्कुः साध्यः। स शङ्कुस्त्रिज्यया भक्तः। फलं सार्धद्वियुक्तमङ्गुललिप्तिका भवन्ति। अथवोन्नतघटिका ग्रहस्य दिनार्धघटीभिर्भक्ताः। फलं सार्धद्वियुक्तं सुखार्थं स्थूला अङ्गुललिप्तिका भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः। गगनमध्यस्थं यद्ग्रहबिम्बं तस्य निखिलकरनिकरापिहितपरिधित्वात् किंचित् सूक्ष्मं दृश्यते अथोदये क्षितिजस्थं भूव्यवहिततत्करनिकरं विशालमिव प्रतिभाति। तत् सूक्ष्मत्वं विशालत्वं चोपलब्ध्या बुद्धिमद्भिः कल्पितम्। तच्च गगनमध्ये सार्धत्रिकलं ३। ३० उदये सार्धद्विकलं २। ३० अङ्गुलं कल्पितम्। अत्रान्त-

रेऽनुपातेन । यदि त्रिज्यातुल्ये शङ्कावङ्गुललिप्तान्तरं रूपं १ लभ्यते तदेष्टेन किमिति । फलं सार्धद्वियुक्तमङ्गुललिप्तिकाः स्युरित्युपपन्नम् । अथवा स्थूलोऽनुपातः । यदि दिनार्धतुल्याभिरुन्नतघटिकाभी रूपं १ लभ्यते तदेष्टाभिः किमिति ।

भाषाभाष्य ।

मध्यग्रहण के समय का शङ्कु सिद्ध करके उसमें त्रिज्या का भाग देकर फल में अढ़ाई जोड़ने से ग्रहबिम्ब की अङ्गुलकला होती है। अथवा, उन्नतघटिका में ग्रहकी दिनार्धघटिका का भाग देने से जो फल मिले उसमें अढ़ाई जोड़ देने से, स्थूल अङ्गुलकला होती हैं।

उपपत्ति ।

उदयकाल में रविबिम्ब बड़ा देखने में आता है क्योंकि वहां उसके किरण भूमि से रुके रहते हैं और दोपहर में सूक्ष्म मालूम होता है क्योंकि वहां बिम्ब अपने किरणों से चारों तरफ से घिरा रहताहै *

यहां उदय और मध्याह्न काल में अङ्गुल बिम्ब २′ । ३०″ और ३′ । ३०″ कल्पना करके बीच के इष्ट समय में साधनार्थ अनुपात किया — त्रि : १ अन्तर : : इशं = $\frac{\text{१ अन्तर} \times \text{इशं}}{\text{त्रि}}$ = इष्टाङ्गुलकला ।

---

* इस बात को श्रीपति ने स्पष्ट लिखा है :—

'द्रष्टा महीव्यासदलेन यस्मात् समुच्छ्रितस्तिष्ठति भूमिपृष्ठे ।
नभस्थभानोर्निकटस्ततस्तं प्रभाकरं सूक्ष्ममवेक्षतेऽसौ ॥
पिधीयते भानुवपुर्मयूखैः समन्ततः पङ्कजकर्णिकेव ।
दलकेसरैरम्बरमध्यवर्ती निरीक्ष्यते तेन च सूक्ष्ममूर्तिः ॥
वसुन्धरागोलनिरुद्धधामा दूरस्थितोऽयं सुखदृश्यबिम्बः ।
महीजवृत्तोपगतो विवस्वानतो महान् भात्यरुणो विरश्मिः ॥'

इसको अढ़ाई में जोड़ दिया, $\frac{\text{इशं}}{\text{त्रि}}$ + २′ । ३०″ यों उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २४ ॥

इदानीं वलनादीनामङ्गुलीकरणमाह ।

आभिर्विभक्ता वलनेषुबिम्ब-
दोश्छन्नलिप्ताः स्युरथाङ्गुलानि ।
शरा यथाशा ग्रहणे खरांशो-
श्चन्द्रग्रहे व्यस्तदिशस्तु वेद्याः ॥ २५ ॥

आभिरङ्गुलकलाभिर्वलनविक्षेपबिम्बच्छन्नभुजकोटि-कर्णा भाज्याः । फलान्यङ्गुलानि भवन्ति । इह रविग्रहणे शरा यथागतदिश एव । चन्द्रग्रहणे तु व्यस्तदिशो ज्ञातव्याः ।

अत्रोपपत्तिः । अङ्गुलकरणे कथितैव । शराग्रे हि चन्द्रः शरमूले भूभाऽतश्चन्द्रविक्षेपादन्यदिशि भूभा वर्तते । तत् स्थानज्ञानार्थं चन्द्रग्रहणे व्यस्तदिशः शरा वेद्या इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

इन अङ्गुलकलाओं का वलन, शर, बिम्ब, ग्रास, भुज, कोटि और कर्ण में भाग देने से वे अङ्गुलात्मक सिद्ध होते हैं । सूर्यग्रहण में शर जिस दिशा का हो उसी दिशा का जानना चाहिये और चन्द्रग्रहण में विपरीत दिशा का जानना चाहिये ।

शरमूल अर्थात् क्रान्तिवृत्त में भूभा भ्रमण करती है और शराग्र में चन्द्रबिम्ब रहता है, इसलिये चन्द्रबिम्ब से भूभाज्ञान के लिये शर का दान विपरीत किया है ॥ २५ ॥

इदानीं परिलेखमाह।

ग्राह्यार्धसूत्रेण विधाय वृत्तं
मानैक्यखण्डेन च साधिताशम्।
बाह्येऽत्रवृत्ते वलनं ज्यकावत्
प्राक्चिह्नतः स्पर्शभवं हिमांशोः॥ २६॥
सव्यापसव्यं खलु याम्यसौम्यं
मौक्षं तदा पश्चिमतश्च देयम्।
रविग्रहे पश्चिमपूर्वतस्ते
विक्षेपदिक्चिह्नत एव माध्यम्॥ २७॥
सूत्राणि केन्द्राद्वलनाग्रसक्ता—
न्यङ्कयान्यतः स्पर्शविमुक्तिबाणौ।
ज्यावन्निजाभ्यां वलनाग्रकाभ्यां
देयौ यथाशावथ मध्यबाणः॥ २८॥
केन्द्रात् प्रदेयो वलनस्य सूत्रे
तेभ्यः पृथग्ग्राहकखण्डकेन।
वृत्तैः कृतैः स्पर्शविमुक्तिमध्य—
ग्रासाः क्रमेणैवमिहावगम्याः॥ २६॥

समायामवनौ ग्राह्यार्धप्रमाणेन सूत्रेणेष्टस्थानकल्पितबिन्दोर्वृत्तं लिखित्वा तस्मादेव बिन्दोर्मानैक्यखण्डप्रमाणेन सूत्रेणान्यद् वृत्तं कृत्वा तस्य बिन्दोरुपरि प्राच्यपरं याम्योत्तरं च सूत्रं खटिकया रजसोच्छाद्य रेखे कार्ये। अथ मानैक्यार्धवृत्ते वलनं देयम्। तत्र चन्द्रस्य स्पार्शिकं प्राचीचिह्नतो मौक्षिकं प्रतीचीचिह्नतः। रवेस्तु स्पार्शिकं प्रतीचीचिह्नान्मौक्षिकं प्राचीचिह्नतः। अथ मध्यवलनं यदि विक्षेपो दक्षिणतो देयस्तदा

दक्षिणचिह्नाद्यदोत्तरतस्तदोत्तरचिह्नात्। तत् कथं देय-
मित्याह। सव्यापसव्यं खलु याम्यसौम्यमिति। यदि
याम्यं वलनं तदा सव्यक्रमेण प्राचीचिह्नाद्याम्यं दक्षि-
णचिह्नात् पश्चिमं पश्चिमचिह्नादुत्तरमुत्तरचिह्नात्
पूर्वमिति सव्यम्। इतोऽन्यथापसव्यम्। तच्च वलनं
ज्यावद्देयं न धनुर्वत्। एवं वलनानि दत्त्वा केन्द्राद्वल-
नाग्रगतानि सूत्राण्यङ्क्यानि। अथ स्पर्शवलनाग्रात्
स्पार्शिको मोक्षवलनाग्रान्मौक्षिको विक्षेपो देयः। स च
ज्यावत्। अथ मध्यविक्षेपः केन्द्राद्वलनसूत्रे देयः।
तेभ्यः शराग्रचिह्नेभ्यो ग्राहकार्धप्रमाणेन सूत्रेण वृत्ता-
न्युत्पाद्य स्पर्शमुक्तिमध्यग्रासा वेदितव्याः।

अत्र वासना। मानैक्यार्धवृत्ते ग्राहकवृत्तस्य मध्यं यदा
भवति तदा ग्राह्यग्राहकयोर्बिम्बप्रान्तौ संलग्नौ भवतो-
ऽतो मानैक्यार्धवृत्तं बहिर्लिखितं तच्च दिगङ्कितं तत्र या
प्राची सा समस्खण्डलप्राची ततस्तस्या वलने दत्ते या
केन्द्राद्वलनाग्रगा रेखा सा क्रान्तिवृत्तप्राची। एवं सर्व-
दिशां वलनम्। अथ वलनसूत्राज्ज्यावद्विक्षेपः। यतः
क्रान्तिवृत्तप्राच्या विक्षेपो याम्योत्तरः। एवं स्पर्शमो-
क्षयोः किल। अथ मध्यशरः केन्द्राद्वलनसूत्रेऽतो दत्तो
यतो मध्यवलनं नाम तत्कालक्रान्तिवृत्तप्राच्या याम्यो-
त्तरा दिक्। विक्षेपाग्रे ग्राहकवृत्तमध्यमतस्तत्र कृतैर्वृत्तैः
स्पर्शमोक्षमध्या भवन्तीत्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

समभूमि में ग्राह्यार्ध मान के समान त्रिज्या से वृत्त बनाकर,
मानैक्यखण्ड के मानसे दूसरा वृत्त उसी बिन्दु से करना। फिर उस

बिन्दु के ऊपर पूर्वापर और याम्योत्तर रेखा करके दिक् साधन करना। इस मानैक्यार्धवृत्त में चन्द्र का वलन दान, पूर्व चिह्न से स्पर्श का और पश्चिम चिह्न से मोक्षका ज्याके समान करना। यदि वलन दक्षिण हो तो सव्य क्रम से अर्थात् प्राची चिह्न से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व दान करना चाहिए। और उत्तर दिशा का हो तो इससे उलटा परिलेख में दान करना। सूर्यग्रहण में पश्चिम चिह्न से स्पर्श का और पूर्वचिह्न से मोक्ष का वलन उक्त रीति से देना। फिर केन्द्र से वलनाग्रगामी रेखा अङ्कित करना। और स्पर्शवलन के अग्रसे स्पर्शकालिक, मोक्षवलनाग्र से मोक्षकालिक शर का अपने अपने वलनाग्र से, दिशा के अनुसार ज्याके समान दान करना। मध्यशर का दान केन्द्र से वलन सूत्र में करना। उन शराग्रचिह्नों से ग्राहकार्ध मान से वृत्त करने पर, स्पर्श, मध्य और मोक्ष ज्ञात होता है।

उपपत्ति।

ग्राहकवृत्त का केन्द्र जब मानैक्यार्धवृत्त में होता है उस समय ग्राह्य और ग्राहक दोनों के बिम्बप्रान्तों का योग होता है। इसलिए मानैक्यार्धवृत्त को बाहर लिखा है। उसमें दिशा अङ्कित करके सममण्डल प्राची से वलन का दान किया है। वृत्त केन्द्र से वलनाग्र में गई रेखा क्रान्तिवृत्त प्राचीसंज्ञक है। सममण्डल प्राची से क्रान्तिवृत्त प्राची का याम्योत्तर अन्तर शर होता है। शराग्र में ग्राहकबिम्ब रहता है इसलिए वहां वृत्त करने पर स्पर्श, मध्य, मोक्ष का मान जाना जाताहै।

मानैक्यखण्डवृत्त में जहां ग्राहकबिम्ब का केन्द्र हो उस चिह्न से ग्राहकार्ध मान से वृत्त करने पर वह जहां ग्राह्यवृत्त में लगे वहीं स्पर्श किंवा मोक्ष होता है। स्पार्शिक शराग्र सूत्र ग्राह्यवृत्त में जहां लगे वहां स्पर्श, मौक्षिक जहां लगे उस चिह्न में मोक्ष होता है।

क्षेत्र ।

इदानीं निमीलनोन्मीलनेष्टग्रासपरिलेखमाह ।

केन्द्राद् भुजं स्वे वलनस्य सूत्रे
शरं भुजाग्राच्छ्रवणं च केन्द्रात् ।
प्रसार्य कोटिश्रुतियोगचिह्नाद्—
वृत्ते कृते ग्राहकखण्डकेन ॥ ३० ॥
संमीलनोन्मीलनकेष्टकाल—
ग्रासाश्च वेद्या यदि वान्यथामी ।

संमीलनकाले वलनमानीय तत् प्राक्चिह्नतः प्राग्व- द्दत्वा केन्द्राद्वलनाग्रगां रेखां कृत्वा तस्यां रेखायां के- न्द्रात् पूर्वतो भुजो देयः । भुजाग्रात्तत्कालशरप्रमाणां श- लाकां तथा केन्द्रात् कर्णमितां च प्रसार्य शलाकाग्रयोर्युति- चिह्नाद्ग्राहकार्धेन वृत्तं विलिख्य संमीलनस्थानं ज्ञेयम् । एवमुन्मीलनवलनं पश्चिमतोदत्वोन्मीलनस्थानं ज्ञेयम् । एवमेव तत्कालवलनमिष्टवशेन प्राक्पश्चिमतो वा द- त्वोक्तवदिष्टग्रासो ज्ञेयः । यदि वान्यथामीत्यग्रे सम्बन्धः ।

अत्रोपपत्तिः। भुजो हि ग्राहकमार्गखण्डम्। तत्र शरः कोटिस्तद्वर्गयोगपदं कर्णः। कर्णाग्राद्ग्राहकबिम्बे लिखिते संमीलनादिकं भवतीति युक्तमुक्तम्। ननु ग्राह्यबिम्बमध्याद्वलनसूत्रे भुजो दत्तस्तत् कथं भुजो ग्राहक मार्गखण्डमित्युच्यते। सत्यम्। यत्र कुत्रचिद्भुजकोटिकर्णैस्त्र्यस्रमुत्पद्यते तदवश्यमायतचतुरस्रार्धं स्यात्। तदत्र भुजाग्राद्विक्षेपः कोटिः। एवं भुजमूलादपि। विक्षेपमूलयोरन्तरे यावान् भुजस्तावान् विक्षेपाग्रयोरपि। अतो ग्राहकमार्गखण्डं भुज इत्युच्यते तददुष्टम्।

भाषाभाष्य।

केन्द्र से वलनाग्र में रेखा करके, उस रेखा में केन्द्र से पूर्व दिशा में भुजदान करना। भुजाग्र से तत्काल शर का दान करके केन्द्र से कर्ण का भी दान करना। कोटि और कर्ण के योगचिह्न को केन्द्र मानकर, ग्राहकमानार्ध तुल्य व्यासार्ध से, वृत्त बनाकर संमीलन का मान जानना। इसीप्रकार, पश्चिम में, भुज दान करके उक्त रीति से उन्मीलन का और इष्टवश से पूर्व वा, पश्चिम में इष्टग्रास का मान जानना चाहिए।

उपपत्ति।

ग्राहक मार्गखण्ड भुज और तात्कालिक शर कोटि, दोनों का वर्गयोग मूल कर्ण होता है। संमीलन काल में, ग्राह्य और ग्राहकों का केन्द्रान्तर मानान्तरार्ध के तुल्य कर्ण होता है। ग्राह्य केन्द्र से, स्पर्श की दिशा में, कर्णाग्र में ग्राहक केन्द्र होता है। इष्टकाल में ग्राह्यविम्ब में ग्राहकबिम्ब प्रविष्ट होजाने पर संमीलन का मान होता है। परिलेख से यह स्पष्ट है॥ ३०॥

इदानीमन्यथा संमीलनादिपरिलेखमाह ।

ये स्पर्शमुक्त्योर्विशिखाग्रचिह्ने
ताभ्यां पृथङ्मध्यशराग्रयाते ॥ ३१ ॥
रेखे किल प्रग्रहमोक्षमार्गौ
तयोश्च माने विगणय्य वेद्ये ।
बिम्बान्तरार्धेन विधाय वृत्तं
केन्द्रेऽथ तन्मार्गयुतिद्वयेऽपि ॥ ३२ ॥
भूभार्धसूत्रेण विधाय वृत्ते
संमीलनोन्मीलनके च वेद्ये ।

स्पर्शशराग्रान्मध्यशराग्रयाता रेखा कार्या । स प्रग्रहमार्गो ज्ञेयः । अथ मध्यशराग्रान्मुक्तिशराग्रगा पृथगन्या रेखा कार्या । स मुक्तिमार्गो ज्ञेयः । तयोर्मार्गयोः प्रमाणे अङ्गुलशलाकया मित्वा पृथगनष्टे स्थाप्ये । अथ बिम्बान्तरार्धप्रमाणेन सूत्रेण केन्द्रे वृत्तमुत्पाद्य तस्य वृत्तस्य मार्गद्वयेन यौ योगौ तस्माद्योगद्वयाचिह्नात् भूभार्धसूत्रेण वृत्ते विधाय संमीलनोन्मीलने ज्ञातव्ये ।

अत्रोपपत्तिः । स्वमार्गेणागच्छतो ग्राहकमध्यस्य यत्र मानान्तरार्धतुल्यः कर्णो भवति तत्रस्थे तस्मिन् ग्राहके संमीलनमुन्मीलनं च यत उत्पद्यते ततो बिम्बान्तरार्धेन वृत्तं विलिख्य ते स्थाने ज्ञातव्ये ।

प्रभा ।

स्पर्शश्च मुक्तिश्च तयोर्ये विशिखाग्रस्य बाणाग्रस्य चिह्ने । प्रग्रहः स्पर्शः ।

भाषाभाष्य ।

जो स्पार्शिक और मौक्षिक शराग्र में गई रेखा हैं उनमें स्पर्श और

मोक्ष का मार्ग होता है। इन दोनों मार्गों का जो मान हो उस को जानना चाहिए। फिर ग्राह्य और ग्राहक के बिम्बान्तरार्ध के मान से वृत्त बनाने पर उस वृत्त का दो स्थानों में जो योग हो उस योग चिह्न से, भूभार्ध सूत्र व्यासार्ध से वृत्त बनाकर संमीलन और उन्मीलन का मान जानना चाहिए।

अपने मार्ग से आते हुए ग्राहकबिम्बका जहां मानान्तरार्ध के समान कर्ण हो, उस स्थान में जब ग्राहकबिम्ब हो तब संमीलन वा, उन्मीलन का मान होता है। इसलिए बिम्बान्तरार्ध मानसे वृत्त करने पर संमीलन और उन्मीलन का मान होता है। यही वासना परिलेख से स्पष्ट है॥ ३१–३२॥

इदानीमिष्टग्रासार्थमाह।

मार्गाङ्गुलघ्नं स्थितिखण्डभक्त—
मिष्टं स्युरिष्टाङ्गुलसंज्ञकानि॥ ३३॥
इष्टाङ्गुलानीष्टवशात्स्वमार्गे
दत्वात्र च ग्राहकखण्डवृत्तम्।
कृत्वेष्टखण्डं यदि वावगम्यं
स्थूलः सुखार्थं परिलेख एवम्॥ ३४॥

इष्टमितीष्टकालो घटिकादिरनष्टस्थापितैर्मार्गाङ्गुलैर्गुण्यः स्वस्थित्यर्धघटिकाभिर्भाज्यः। फलमिष्टाङ्गुलानि भवन्ति। तानिष्टाङ्गुलानि स्वमार्गे दत्वा। कथमिति चेत्। इष्टवशात्। यदि स्पर्शादग्रत इष्टं कल्पितं तदा स्पर्शशराग्रादग्रत इष्टाङ्गुलानि देयानि यदि मध्यात् पूर्वत इष्टं तदा मध्यशराग्रात् पूर्वतो देयानि। एवं मुक्तिमार्गेपीष्टवशादिष्टाङ्गुलाग्रे ग्राहकबिम्बार्धेन वृत्तं विलिख्येष्टग्रासो ज्ञेयः। एवं वा स्थूलः सुखार्थं परिलेखः।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि स्थित्यर्धघटीभिर्मार्गाङ्गुलानि लभ्यन्ते तदेष्टघटीभिः किमिति । फलमिष्टाङ्गुलानि । तदग्रे ग्राहकबिम्बमध्यमित्यर्थः । तत्र ग्राहकार्धेन वृत्ते कृत इष्टग्रासो भवतीति किं चित्रम् ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व साधित इष्टघटिका को मार्गाङ्गुल के मान से गुणाकर अपनी स्थित्यर्धघटिका का भाग देना । फल इष्टाङ्गुल होगा । उन अङ्गुलों को, इष्टवश अपने मार्ग में देकर, उसके आगे ग्राहकबिम्बार्ध से वृत्त बनाकर, इष्टग्रास का मान जानना । इस प्रकार स्थूल मान से परिलेख सिद्ध होता है ।

इष्टग्रास के लिए अनुपात—

$$\text{स्थिघ} : \text{मार्गअं} :: \text{इघ} = \frac{\text{मार्गअं} \times \text{इघ}}{\text{स्थिघ}} = \text{इअं} ।$$

इष्टाङ्गुल के आगे ग्राहकबिम्ब का मध्य है । वहां ग्राहकार्ध व्यासार्ध से वृत्त करने पर इष्टग्रास स्पष्ट ज्ञात होता है । यहां स्थिति यों है—इष्टग्रासोन मानैक्यखण्डकर्ण, ग्राह्य और ग्राहक का केन्द्रान्तर रूप है । क्योंकि ग्राह्य केन्द्र से पूर्व साधित ग्राहक मार्गरेखा में जहां अन्तर लगा हो वहीं ग्राहक केन्द्र है । वहां से ग्राहकवृत्त से ग्राह्यवृत्त जितना घिरा हो वही इष्टग्रास है ॥ ३४ ॥

इदानीं ग्रासात् कालानयनं परिलेखेनैवाह ।

ग्रासोनमानैक्यदलेन केन्द्रे
वृत्तात् कृतान्मार्गदले बहिर्ये ।
ते संगुणे स्वस्थितिखण्डकेन
मार्गाङ्गुलाप्ते पृथगिष्टकालौ ॥ ३५ ॥

मानैक्यार्धेन ग्रासोनेन केन्द्रे वृत्तं लिखेत् । तस्माद्वृ-

स्ताद्बहिरियं मार्गखण्डे भवतस्ते स्वस्थितिखण्डकेन गुणिते स्वमार्गाङ्गुलैर्भाज्ये । फलं स्पर्शादग्रत इष्टकालो भवति । मोक्षात् पृष्ठतश्च ।

अत्रोपपत्तिः । ग्रासोनमानैक्यदलमिष्टकाले ग्राह्यग्राहकबिम्बमध्ययोरन्तरं कर्ण इत्यर्थः । इदं पूर्वमेव कथितम् । तेन कर्णेन केन्द्रे वृत्तात् कृताद्ये मार्गखण्डे बहिर्भवतस्ताभ्यामिहानुपातः । यदि मार्गाङ्गुलैः स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा बहिर्भूतखण्डाङ्गुलैः किमिति फलमिष्टकाल इति सर्वं निरवद्यम् ।

भाषाभाष्य ।

मानैक्यार्ध में ग्रास को घटाकर शेष मान से, केन्द्र से वृत्त बनाना । उस वृत्तके बाहर जो मार्गखण्ड हों उनको अपने स्थितिखण्ड से गुणाकर मार्गाङ्गुल का भाग देना । फल स्पर्श के आगे और मोक्ष के पहले इष्टकाल का मान होता है ।

यहां उपपत्ति पूर्वरीति से स्पष्ट है ॥ ३५ ॥

इदानीं ग्रहणे वर्णमाह ।

स्वल्पे छन्ने धूम्रवर्णः सुधांशो-
र्रर्धे कृष्णः कृष्णरक्तोऽधिकेऽर्धात् ।
सर्वच्छन्ने वर्ण उक्तः पिशङ्गो
भानोश्छन्ने सर्वदा कृष्ण एव ॥ ३६ ॥

स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहण में चन्द्र का वर्ण कहते हैं—थोड़ा ग्रास होने पर चन्द्रका धूमिल रङ्ग होता है । आधा में काला और उस से अधिक में काला

और लाल मिलाहुआ वर्ण होता है। सर्व ग्रहण में कुछ पीला वर्ण होता है। और सूर्यग्रहण में सदा काला ही वर्ण रहता है।

इसका कारण यह है कि भूभाके तेज हीन होने से और चन्द्रमा के छादक होने से चन्द्रग्रहण में उक्त रूप देखने में आया करते हैं। और सूर्यग्रहण में जलगोल चन्द्र आच्छादक होने से, दर्शान्त में मनुष्य दृश्य अर्धभाग सदा काला रहने से, सूर्य का ग्रस्त अंश काला ही रहता है॥ ३६ ॥

इदानीमादेश्यानादेश्यानाह।

इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि
तेजःपुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो
नादेश्योऽतोऽल्पो ग्रहो बुद्धिमद्भिः॥ ३७॥

स्पष्टार्थम्।

भाषाभाष्य।

चन्द्रमा के दृश्यबिम्ब का सोलहवाँ भाग और सूर्य का बारहवाँ भाग ग्रस्त होने पर, अपने अपने तेज से छिप जाने से दिखलाई नहीं देता। इसलिए उस स्थिति में ग्रहण बतलाना न चाहिए॥ ३७॥

अथोत्क्रमज्यानिराकरणे दृष्टान्तद्वारेण गोलविदो गणकान् अतिसोपालम्भमाह।

यत्खस्वस्तिकगे रवौ भवलये दृग्वृत्तवत् संस्थिते
प्रत्यक्षं वलनं कुजे त्रिभयुतार्काग्रासमं दृश्यते।
त्वं चेदुत्क्रमजीवयानयसि तत्तादृक् सखे गोलविन्
मन्ये तर्ह्यमलं तदेव वलनं धीवृद्धिदाद्योदितम्॥३८॥

यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवा दिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो
मेषे वा वृषभेऽपि वाप्यनिमिषे कुम्भे स्थितस्यापि वा।

स्पर्शो दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत्स्यात् क्रान्तिवृत्तं यत-
स्तद्रूग्व्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्धतुल्यं कथम् ३९

एतच्छ्लोकद्वयं गोले सविस्तरं व्याख्यातम् ।

इति श्रीसिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे
चन्द्रग्रहणाधिकारः समाप्तः ।

अत्राधिकारे ग्रन्थसंख्या चत्वारिंशदधिकत्रिशती ॥

भाषाभाष्य ।

दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त में, सूर्य जब खस्वस्तिक में हो, उस समय क्षितिज में वलन, तीनराशि युत सूर्य की अग्राके समान होता है । यदि तुम वही वलन उत्क्रमज्या से सिद्ध कर दो तो धीवृद्धिद आदि ग्रन्थों में कहा हुआ वलन हम निर्दूषण मानें । ६६° अक्षांश वाले देश में मेष, वृष किंवा मिथुन में सूर्य के उदय में, शर के अभाव से सूर्य की दक्षिण दिशा में स्पर्श होता है । वहां क्रान्तिवृत्त क्षितिजाकार होताहै । और त्रिज्यातुल्य परम स्पष्टवलन होता है । पर वह उत्क्रमज्या से नहीं सिद्ध हो सकता । इसलिए वलन का साधन सदा क्रमज्या से ही करना चाहिए ।

इस विषय का विस्तार गोलाध्याय में होचुका है ॥ ३८-३९ ॥

चन्द्रग्रहणाधिकार पूरा हुआ ।

इदानीं सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते ।

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू
द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ ।
कर्ध्वोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे
तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि ॥ १ ॥

अमावास्यान्तकाले समकलावपि चन्द्रार्कौ नतौ खार्धादन्यत्र यतस्ततोऽपि वा स्थितौ भूम्यर्धेनोच्छ्रितो द्रष्टैकसूत्रे न पश्यति । येन कारणेन तौ विभिन्नकक्षौ । चन्द्रस्य कक्षा लघ्वी । अर्कस्य महती । यथा चन्द्रग्रहणे यैव चन्द्रस्य कक्षा सैव भूभाया अपि । तत्र तिथ्यन्ते समौ भूभेन्दू नतावपि कर्ध्वोच्छ्रितोऽपि द्रष्टैकसूत्रे पश्यति तथार्कग्रहणेऽर्केन्दू न पश्यति भिन्नकक्षत्वात् । तेन कारणेन तल्लम्बनाख्यमन्तरं नत्याख्यं च वच्मि ।

भाषाभाष्य ।

अमावास्या के अन्त में राश्यादि कलान्त अवयवों से समान सूर्य और चन्द्र, खमध्य से इधर उधर नत, भूव्यासार्ध मान से ऊंचा—भूपृष्ठवासी द्रष्टा—एक दृक्सूत्र में नहीं देखता, क्योंकि दोनों की कक्षा भिन्न भिन्न हैं । इसलिए लम्बन और नतिनामक अन्तर कहता हूं ॥१॥

इदानीं लम्बनस्य भावाभावं धनर्णत्वं च कथयितुमितिकर्तव्यतामाह ।

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय
न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये ।

रवौ तदूनेऽभ्यधिके च तत् स्या-
देवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम् ॥ २ ॥

अत्र लम्बनं ज्ञातुं दर्शान्तकाले लग्नं विधाय तत् त्रिभोनं कार्यम् । तेन त्रिभोनेन लग्नेन समे रवौ लम्बनं नास्ति । तदूनेऽभ्यधिके च स्यादिति वेदितव्यम् । तथा वित्रिभलग्नादूने रवौ यल्लम्बनमुत्पद्यते तद्धनसंज्ञं वेदितव्यम् । तिथ्यन्तघटिकासु योज्यमित्यर्थः । यदधिके तदृणं तिथ्यन्तघटिकाभ्यः शोध्यमित्यर्थः ।

अथ लम्बनस्योपपत्तिस्तावदुच्यते । इह किल सममण्डलयाम्योत्तरकोणवृत्तानामर्धच्छेदेन परिकरवद्यद्वृत्तं निबध्यते तत् क्षितिजम् । तत्रस्थं ग्रहं भूगर्भस्थो द्रष्टा पश्यति । भूपृष्ठगस्तु भूच्छन्नं तत् क्षितिजमपि न पश्यति । किन्तु भूव्यर्धयोजनैस्तस्मात् क्षितिजादुपरि समन्तादन्यत् क्षितिजं स मन्यते । यतस्तस्मादूर्ध्वं स पश्यति । तदधः क्षितिजं दृक्सूत्राल्लम्बितं न पश्यति । अतो ग्रहकक्षायां दृङ्मण्डले तेषां योजनानां सम्बन्धिन्यो या लिप्तास्ताः कुच्छन्नलिप्तास्ता एव परमलम्बनलिप्ताः परमावनतिलिप्ताश्च । तास्तु ग्रहभुक्तिपञ्चदशांशतुल्या भवन्ति । यतो गतियोजनानां पञ्चदशांशो भूव्यासार्धम् । यदा किल क्षितिजस्थस्तदा कुच्छन्नलिप्ताभिर्नतत्वं गतः । अथ यदा खमध्यस्थो रविस्तदा तं भूगर्भस्थो द्रष्टा भूपृष्ठस्थोऽपि खमध्यस्थमेव पश्यति । न कुतोऽपि नतमतस्तत्र लम्बनाभावः । क्षितिजे तु कुच्छन्नलिप्तातुल्यं परमं लम्बनम् । अतो ज्ञातं खार्धान्ते ग्रहे लम्बनमुत्पद्यते । एवं चन्द्रस्यापि । दर्शान्ते

चन्द्रलम्बनलिप्ताभ्योऽर्कलम्बनलिप्तासु शुद्धासु शेषं ४८।४६ रविदृक्सूत्रादधश्चन्द्रस्य परमा लम्बनलिप्ता। अथ यदा दृङ्मण्डलाकारं क्रान्तिवृत्तं भवति तदा परमलम्बन-लिप्तानां घटीकरणायानुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभि-र्घटीषष्टिर्लभ्यते तदा गत्यन्तरपञ्चदशांशतुल्याभिः किमिति। फलं घटिकाचतुष्टयं परमं लम्बनम्। अतो घटिकाचतुष्टयानुपातेन लम्बनं साधयितुं युज्यते परं यदि दृङ्मण्डलाकारं क्रान्तिवृत्तम्। यदा तदपि तिर-श्चीनं तदानुपातद्वयेन। लम्बनं हि दृङ्मण्डलसूत्रेणो-त्पद्यते तच्च मध्यमं लम्बनम्। तत् किल कर्णरूपम्। तत् क्रान्तिवृत्तप्राचीपरिणतं कोटिरूपं स्फुटं भवति। यदा दृङ्मण्डलमेव क्रान्तिवृत्तं तदा तदेव स्फुटम्। यतः क्रान्तिवृत्तप्राच्यपरया लम्बनस्य स्फुटत्वम्। अतः क्रान्तिवृत्तस्य परमनीचस्थाने लम्बनस्य परमत्वम्। परमोच्चस्थाने लम्बनाभावः। तच्च तस्य परमोच्चत्वं वित्रि-भलग्ने भवति यदा वित्रिभं खमध्ये भवति। तदा तच्छङ्कु-स्त्रिज्यातुल्यः स्यात्। तदा मध्यमेव स्फुटं लम्बनम्। यदा तद्वित्रिभं खमध्यान्नतं भवति तदा तच्छङ्कुस्त्रिज्यातो न्यूनो भवति तदा मध्यमलम्बनात् स्फुटं लम्बनं कोटि-रूपकरणेन तदल्पतां याति। अतो वित्रिभलग्नशङ्कोर-पचयवशेन लम्बनस्यापचयः। अतो वित्रिभलग्नशङ्कुना मध्यमलम्बनस्य स्फुटत्वकरणेऽनुपातः कर्तुं युज्यते।

भाषाभाष्य।

जब लम्बन जानना हो तब अमावास्या के अन्त में लग्न साधन करके उसको तीन राशि में घटाना। इस त्रिभोनलग्न के समान यदि

स्पष्टसूर्य हो तो लम्बन का अभाव होता है। यदि न्यून वा अधिक हो तो लम्बन उत्पन्न होता है। वित्रिभलग्न से न्यून सूर्य में लम्बन धन और अधिक में ऋणसंज्ञक होता है।

उपपत्ति।

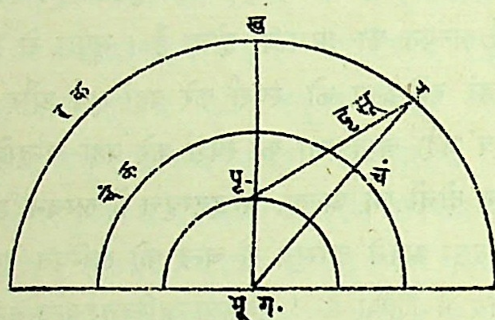
यहां आचार्य ने जो उपपत्ति लिखी है वही स्फुट करके लिखी जाती है। अमान्त में भूगर्भवासी द्रष्टा खमध्य से नत सूर्य को चन्द्रमा से ढँका हुआ देखता है, पर उस समय भूपृष्ठ द्रष्टा नहीं देखता, उसके दृक्सूत्र से चन्द्र लम्बित रहता है। क्योंकि चन्द्र और सूर्य की कक्षा भिन्न भिन्न हैं। गर्भस्थ और पृष्ठस्थ द्रष्टा खमध्य में सूर्य को एक काल में ही देखता है, क्योंकि वहां गर्भदृक्सूत्र और पृष्ठदृक्सूत्र एक ही है। इसलिए खमध्य में लम्बन का अभाव होता है। भूपृष्ठ से रविबिम्ब तक किया सूत्र जहां रविकक्षा को स्पर्श करे वहां सूर्य और भूगर्भ से सूर्य तक किया सूत्र जहां चन्द्रकक्षा को स्पर्श करे वहां चन्द्रबिम्ब समझना चाहिए। इन दोनों का अन्तर चन्द्रदृग्वृत्त में लम्बन होता है। क्योंकि—पृष्ठस्थ द्रष्टा अपने दृक्सूत्र से चन्द्र को लम्बित देखता है। इसीलिए गोलाध्याय में लिखा है 'दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्।' दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त में यही स्पष्टलम्बन होता है। यहां यह भी ज्ञात होता है कि भूगर्भवासियों को दृग्गर्भसूत्रों की एकता से सूर्यग्रहण में, लम्बन का अभाव होता है। यों सूर्यचन्द्र का कक्षाभेद और भूपृष्ठ द्रष्टा के कारण लम्बन उत्पन्न होता है। यह लम्बन स्थिति खमध्य से नत ग्रह में हुई।

गर्भक्षितिज गत ग्रह को गर्भद्रष्टा देखता है, पृष्ठद्रष्टा नहीं देखता, क्योंकि वह भूव्यासार्ध के मान से ऊपर रहता है, उसका दूसरा पृष्ठक्षितिज होता है। गर्भक्षितिज, दृक्सूत्र से भूव्यासार्ध योजन के तुल्य लम्बित रहता है। इसलिए इन योजनों की दृग्वृत्त में जो कला होती

है वही कुच्छन्नकला, वा, परमलम्बनकला कहलाती है । अर्थात् क्षितिज में दृग्गर्भसूत्रों का परम अन्तर होता है । वह अन्तर सूर्य चन्द्र के गत्यन्तर के पन्द्रहवें भाग के समान होता है । इसप्रकार ज्ञात हुआ कि खमध्य में लम्बनका अभाव, क्षितिज में परम और बीच में इष्ट वश घटा किंवा बढ़ा होता है । इसीतरह चन्द्र का भी लम्बन होता है ।

दर्शान्त में परमलम्बन कला ४८′ । ४६″

$$\therefore \frac{६० \times ४८' । ४६''}{७३१' । २७''} = ४$$ घटिकात्मक परमलम्बन । यों परमलम्बन से अनुपात द्वारा इष्टलम्बन साधन सुगम है ।



दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त में एक ही अनुपात से और उसके तिरछा होने पर दो अनुपातों से स्फुटलम्बन सिद्ध होत है वह कोटि-रूप और दृङ्मण्डलीय मध्यम कर्णरूप होता है । क्रान्तिवृत्त प्राची-परिणत ही स्पष्ट होता है । क्रान्तिवृत्त का परमोच्च स्थान वित्रिभ होता है, उसके खमध्य में होनेपर, त्रिज्यातुल्य वित्रिभलग्न शङ्कु होता है । खमध्य से नत होने पर शङ्कु का उपचयापचय होता है । इसलिए परमोच्च स्थान में लम्बन का अभाव होनेसे, वित्रिभशङ्कु के वश लम्बन का भी घटना, बढ़ना हुआ । इसप्रकार वित्रिभशङ्कु द्वारा मध्यमलम्बन का स्फुट होना सिद्ध हुआ । शेष उपपत्ति स्पष्ट है ॥ २ ॥

इदानीममुमेवार्थं संप्रधार्यानुपातद्वयेन लम्बनमाह ।

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य
तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः
शंक्वाद्यतस्तस्य चरान्त्यकाद्यैः ॥ ३ ॥
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिञ्जिनी
कृताहता व्यासदलेन भाजिता ।
हृतात्फलाद्वित्रिभलग्नशङ्कुना
त्रिजीवयाप्तं घटिकादि लम्बनम् ॥ ४ ॥

दर्शान्तकाले लग्नं विधाय मदनष्टं वित्रिभं च कृत्वा तयोर्वित्रिभस्य भोग्यं लग्नस्य भुक्तमनन्तरोदययुतं वित्रिभस्योदितः कालो भवति । तेन कालेन वित्रिभलग्नजनितकुज्याद्युज्यान्त्यादिभिश्च त्रिप्रश्नोक्त्या शङ्कुः साध्यः । शङ्कोश्च दृग्ज्या तच्छायाकर्णश्च साध्यः । अथ त्रिभोनलग्नार्कयोरन्तरस्य ज्या साध्या । अथ तया लम्बनार्थमनुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यया वित्रिभलग्नार्कान्तरज्यया चतस्रो घटिका लम्बनं तदानयाभीष्टया किमिति फलं मध्यमलम्बनम् । अथ तत्स्फुटीकरणार्थं द्वितीयोऽनुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यवित्रिभलग्नशङ्कावेतावल्लम्बनं लभ्यते तदास्मिन्ननन्तरानीते किमित्येवं लम्बनं स्फुटं भवति ।

प्रभा ।

तल्लग्नयोर्वित्रिभलग्नलग्नयोः । त्रिभोनलग्नं चार्कश्च तयोर्विशेषोऽन्तरं तस्य शिञ्जिनी ज्या ।

भाषाभाष्य ।

अब लम्बन साधन की विधि कहते हैं—दर्शान्त में त्रिभोनलग्न को सूर्य मानकर उसका और लग्न का अन्तर करने से त्रिभोनलग्न का भुक्तकाल होगा। उससे कुज्या, द्युज्या, चरज्या द्वारा त्रिप्रश्न की रीति से त्रिभोनलग्न का शङ्कु साधन करना। फिर वित्रिभलग्न और रवि की अन्तरज्या को चार से गुणकर, त्रिज्या का भाग देकर, फल को उक्त शङ्कु से गुणाकर, त्रिज्या का भाग देने से घटिकादि लम्बन सिद्ध होगा।

उपपत्ति ।

अनुपात किया—त्रिज्यातुल्य वित्रिभलग्न और रवि की अन्तरज्या में परमलम्बन मिलता है तो इष्टान्तरज्या में क्या ? फल मध्यम लम्बन। फिर कोटिरूप स्फुट लम्बनार्थ अनुपात—त्रिज्यातुल्य शङ्कु में यह लम्बन तो साधित शङ्कु में क्या ?

$$\therefore \text{लम्बन घटिका} = \frac{\text{४ ज्या (र} \backsim \text{वि)}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{विशं}}{\text{त्रि}} \quad ॥ ३-४ ॥$$

इदानीं प्रकारान्तरेण स्फुटीकरणमाह ।

फलाद्रविघ्नात् त्रिभहीनलग्न—
कर्णेन लब्धं खलु लम्बनं वा ।

फलाद्रविघ्नादिति । मध्यमलम्बनाद् द्वादशगुणाद्वित्रिभलग्नसंभूतच्छायाकर्णेन भक्ताद्यल्लब्धं तद्वा स्फुटं लम्बनं भवति। अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । तत्र वित्रिभलग्नशङ्कोर्द्वादशांशेन वित्रिभलग्नशङ्कुस्त्रिज्या चापवर्तिता जाता गुणकस्थाने द्वादश हरस्थाने वित्रिभलग्नकर्ण इत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

अथवा, पूर्व साधित मध्यमलम्बन को द्वादश से गुणकर, वित्रिभ लग्न के छायाकर्ण का भाग देने से, फल लम्बन होता है ।

$$\text{पूर्व फल} = \frac{४ \text{ ज्या} (र \sim वि)}{त्रि} \text{ इसमें } \frac{विशं}{१२} \text{ अपवर्तन दिया}$$

$$= \frac{१२ \times ४ \text{ज्या} (र \sim वि)}{\frac{१२ \text{ त्रि}}{विशं}} = \frac{१२ \times ४ \text{ ज्या} (र \sim वि)}{विछाक} = \text{लम्बन-}$$

घटिका ।

इदानीं प्रकारान्तरेण लम्बनमाह ।

त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शङ्को—
र्वा दृग्ज्ययोर्वर्गवियोगमूलम् ॥ ५ ॥
स्याद्दृङ्नतिर्वेद ४ गुणा त्रिमौर्व्या
भक्ताथवा लम्बननाडिकाः स्युः ।

त्रिभोनलग्नस्य यः शङ्कुः साधितस्तथा दर्शान्तकाले रवेः स्वोपकरणैर्यः शङ्कुरुत्पद्यते तावनष्टौ स्थापयित्वा तयोश्च दृग्ज्ये साध्ये । अथ तयोः शङ्क्वोर्यद्वर्गान्तरपदं तद्दृङ्नतिसंज्ञं भवति । प्रथमप्रकारोऽयम् । अथ दृङ्नतेर्द्वितीयः प्रकारः । तयोर्दृग्ज्ययोर्वर्गान्तरपदं दृङ्नतिसंज्ञं भवति । अथ दृङ्नतेर्लम्बनमुच्यते । दृङ्नतिश्चतुर्गुणा त्रिज्यया भक्ता फलं लम्बननाडिकाः स्युः ।

अत्रोपपत्तिः सैव । यदा वित्रिभलग्नं खमध्ये भवति तदा दृङ्मण्डलमेव क्रान्तिवृत्तम् । त्रिभोनलग्नार्कयोर्यान्तरज्या सैव तदार्कस्य दृग्ज्या सा चतुर्गुणा त्रिज्यया-

सा मध्यमं किल लम्बनं भवति। तदेव स्फुटम्। ऊर्ध्वे-स्थितत्वात् क्रान्तिवृत्तस्य। अथ यदा वित्रिभलग्नं खार्धोन्नतम्। तिर्यक्स्थितत्वात् क्रान्तिवृत्तस्य तदा तत् प्राच्यपरया स्फुटं लम्बनं कोटिरूपं भवति। तच्च वित्रिभलग्नशङ्क्वनुपातेन तथा स्फुटं कोटिरूपं कृतम्। तत् कथमिति चेत् तदर्थमुच्यते। मध्यलम्बना-नयने त्रिज्यैव वित्रिभलग्नशङ्कुः। ततः स्फुटत्वार्थं यः साधितो वित्रिभलग्नशङ्कुः स दृक्क्षेपमण्डले कोटिस्त-द्दृग्ज्याभुजस्त्रिज्याकर्णः वित्रिभलग्नस्य यद्दृङ्मण्डलं तद्दृक्क्षेपमण्डलमिति गोले कथितम्। अतस्त्रिज्यापरि-णतया नतज्यया यदानीतं तज्जातं कर्णरूपम्। तत्कोटि-रूपस्य वित्रिभलग्नशङ्कोरनुपातेन कोटित्वं नीतमि-त्युपपन्नम्।

यदेव स्फुटलम्बनस्य कोटिरूपत्वमुपपन्नं तदेव प्रका-रान्तरेणोपपादितम्। रवेर्दृङ्मण्डले या दृग्ज्या सा कर्ण-रूपिणी। वित्रिभलग्नस्य या दृग्ज्या स एव दृक्क्षेपः स भुजः। यतः क्रान्तिमण्डलप्राच्याः सम्यग्दक्षिणोत्तरं खार्धाद्वित्रिभलग्नोपरिगतं दृक्क्षेपमण्डलम्। तत्र वि-त्रिभलग्नस्य या दृग्ज्या स दृक्क्षेपः। तज्जनिता नति-कलाश्चन्द्रार्ककक्षयोर्याम्योत्तरमन्तरं सर्वत्र तुल्यमेव द्रष्टा पश्यति। यथोक्तं गोले।

कक्षयोरन्तरं यत्स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्। अतः-
नतिर्लिप्ता भुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः॥

यत इदं लम्बनक्षेत्रमतो दृक्क्षेपार्कदृग्ज्ययोर्वर्गान्तर

पदतुल्या दृङ्गतिर्भवितुमर्हति । परं यथा स्थिते गोले क्षेत्रोपरीत्थं न दृश्यते । यतो वित्रिभलग्नार्कयोरन्तरज्या वित्रिभलग्नशङ्कुव्यासार्धपरिणता सती दृङ्नतिर्भवति । अत एवानेनापि प्रकारेणक्षितिजस्थेऽर्के परमा दृङ्नतिर्वित्रिभलग्नशङ्कुतुल्या भवति । अतोऽयमपि प्रकारः पूर्वतुल्य एव । किन्तु दृक्क्षेपार्कदृग्ज्ययोस्तुल्ये शलाके भुजकर्णरूपे समायां भूमौ विन्यस्य तदन्तरे कोटिरूपां दृङ्नतिं दर्शयेत् । एवमनेकविधान्युपपत्त्यनुसारेण क्षेत्राणि परिकल्प्य धूलीकर्मोपसंहारमार्याः कुर्वते ।

अथ प्रस्तुतमुच्यते । अत्र किल वित्रिभलग्नस्य रवेश्च दृग्ज्ययोर्यद्वर्गान्तरपदं तावदेव तच्छङ्क्वोरपि भवति । तत् कथमिति चेत् तदुच्यते । अत्र स्वस्वशङ्कुवर्गोनौ त्रिज्यावर्गौ दृग्ज्यावर्गौ भवतः । तयोरन्तरे कृते त्रिज्यावर्गयोस्तुल्यत्वाद्गतयोः शङ्कुवर्गान्तरमेवावशिष्यते । एवं यत्र कुत्रचिद्व्यासार्धेऽपि भुजज्ययोर्वर्गान्तरतुल्यं तत्कोटिज्ययोर्वर्गान्तरं भवतीति । अत उक्तं त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शंकोर्वा दृग्ज्ययोरिति । दृङ्नतितस्त्रिज्यानुपातेन लम्बनस्य घटीकरणम् ।

प्रभा ।

दृग्ज्ययोस्त्रिभोनलग्नरविदृग्ज्ययोरित्यर्थः । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

त्रिभोनलग्नशङ्कु और रविशङ्कु के अथवा, दोनों की दृग्ज्याओं के वर्गान्तर मूल को, दृङ्नति कहते हैं । दृङ्नति को परमलम्बन से गुणा कर त्रिज्या का भाग देनेसे, प्रकारान्तर से, लम्बन घटिका होती है ।

उपपत्ति ।

खमध्य में वित्रिभ लग्न होने पर दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त होता है, इसलिए मध्यम लम्बनही स्पष्ट होता है । जब कि खमध्य से नत है उस स्थिति में लम्बनानयन प्रकारान्तर से करते हैं । वित्रिभ लग्न का दृङ्मण्डल दृक्क्षेपमण्डल और उसकी दृग्ज्याको दृक्क्षेप कहते हैं ।

नीचे लिखे क्षेत्र में, चन्द्रस्थान से विम्ब तक कदम्ब सूत्र में याम्योत्तर अन्तर नतिकला और वहांसे सूर्यविम्ब तक दृङ्मण्डल में मध्यम पूर्वापर अन्तर दृग्लम्बन कला होती है । इन दोनों का वर्गान्तर मूल क्रान्तिवृत्त में पूर्वापर अन्तर स्पष्टलम्बन होता है, यह प्राचीनों का मत है । वास्तव में यह लम्बन नतिकोटिव्यासार्ध से उत्पन्न क्रान्तिवृत्त के उपवृत्त में आता है । उसको 'नतिकोटिव्यासार्ध में इतना लम्बन तो त्रिज्याव्यासार्ध में क्या ?' इस अनुपात से क्रान्तिवृत्त परिणत स्फुटलम्बन होता है, यह नवीनों का मत है । यहाँ आचार्य ने दृङ्नति के साधन के लिए मूल में बहुत लिखा है । वह दृङ्नति दृक्क्षेप और रविदृग्ज्या के वर्गान्तरमूल के समान होती है । पर यथा-स्थित क्षेत्र में देखने में नहीं आती । वित्रिभलग्न और रविकी अन्तरज्या, वित्रिभलग्न शङ्कुव्यासार्ध में परिणत, दृङ्नति के स्वरूप को पाती है । इसको नाप कर जानना चाहिए । दृक्क्षेपभुज, रविदृग्ज्या कर्ण और दृङ्नति कोटि होती है ।

क्षेत्र ।

भुजज्याओं का वर्गान्तर उनकी कोटिज्याओं के वर्गान्तर के समान होता है, इसलिए—वित्रिभलग्न और रवि की दृग्ज्याओं का जो वर्गान्तर है वही उनके शङ्कुओं का भी है । इस नियम के अनुसार—

$$\text{रदृ}^2 - \text{दक्षे}^2 = \text{दन}^2 = \text{त्रिलशं}^2 - \text{रशं}^2 \text{ ।}$$

$$\therefore \text{त्रि}^2 - \text{त्रिलशं}^2 = \text{दक्षे}^2$$

$$\text{त्रि}^2 - \text{रशं}^2 = \text{रदृज्या}^2$$

$$\text{रदृ}^2 - \text{दक्षे}^2 = \text{त्रि}^2 - \text{रशं}^2 - \text{त्रि}^2 + \text{त्रिलशं}^2;$$

$$\therefore \text{दृङ्नति} = \text{त्रिलशं}^2 - \text{रशं}^2 \text{ ।}$$

दृङ्नति से त्रिज्यानुपात द्वारा घटिकात्मक लम्बन—

$$\text{लं} = \frac{४\,(\text{त्रिलश}^2 - \text{रश}^2)}{\text{त्रि}}$$ । इसप्रकार सब उपपन्न हुआ ॥५॥

इदानीं प्रकारान्तरेण लम्बनमाह ।

शङ्कोस्तयोर्दृग्गुणयोस्तयोर्वा
त्रिज्याचतुर्थांशविभक्तयोः स्यात् ॥ ६ ॥
यद्वर्गविश्लेषपदं द्विधैवं
विलम्बनं तद्घटिकादिकं वा ।

तयोरनन्तरकथितयोर्वित्रिभलग्नार्कशङ्कोस्त्रिज्याचतुर्थांशेनापवर्तितयोर्यद्वर्गान्तरपदं तल्लम्बनं वा भवति । अथ तयोः शङ्कोर्ये दृग्ज्ये तयोस्त्रिज्याचतुर्थांशभक्तयोर्वर्गान्तरपदं वा लम्बनं भवति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र निष्पन्नाया दृङ्नतेः कोटिरूपाया घटीचतुष्टयेन त्रिज्यया चानुपातः । स तदुपकरणभूतयोः शङ्कोस्तद्दृग्ज्ययोर्वा क्रियालाघवार्थं यदि क्रियते तदा घटिकात्मिकैव दृङ्नतिरुत्पद्यते । तदेव लम्बनम् । अतस्तथाकृते जातमन्यत् प्रकारद्वयम् ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व जो शङ्कु वा दृग्ज्या कहे हैं, उनमें त्रिज्याचतुर्थांश का अपवर्तन देकर वर्गान्तर मूल लेने से, प्रकारान्तर से, दो प्रकार लम्बन सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

'त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शङ्कोः' इत्यादि प्रकार से लम्बन—

$$\sqrt{\frac{(\text{विदृ}^2 - \text{रदृ}^2)\times ४}{\text{त्रि}}} = \sqrt{\frac{१६\ \text{विदृ}^2 - १६\ \text{रदृ}^2}{\text{त्रि}^2}} = \text{लम्बन ।}$$

मूल लेकर, त्रिज्याचतुर्थांश का अपवर्तन दिया—

$$\therefore \frac{४\ \text{विदृ} - ४\text{रदृ}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{विदृ} - \text{रदृ}}{\frac{\text{त्रि}}{४}} = \text{लम्बन ।}$$

इसीप्रकार शङ्कुओं से भी लम्बन सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

इदानीं लम्बनप्रयोजनमाह ।

तत्संस्कृतः पर्वविराम एवं
स्फुटोऽसकृत्स ग्रहमध्यकालः ॥ ७ ॥

एवं यद्दर्शान्तकाले लम्बनमुत्पन्नं तद्वित्रिभलग्नादूनेऽर्के धनमतो दर्शान्तघटिकासु क्षेप्यम् । यदि वित्रिभादधिकेऽर्के जातं तदृणं दर्शान्तघटीभ्यः शोध्यम् । एवमसकृल्लम्बनसंस्कृताद्दर्शान्तकालाल्लग्नमानीय वित्रिभं च कृत्वोक्तप्रकारेण लम्बनं साध्यम् । तेन गणितागतो दर्शान्तः पुनः संस्कार्यः । एवं मुहुर्यावदविशेषः । एवं संस्कृतो दर्शान्तो ग्रहणमध्यकालो भवति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र चन्द्रकक्षाया आसन्नत्वाद्रविकक्षाया दूरत्वात् कथंचिद्भूतलस्थाद् द्रष्टू रविमण्डलगामि

यत् सूत्रं तस्मादधश्चन्द्रोऽवलम्बितो दृश्यते तल्लम्बनम् । क्रान्तिवृत्ते परमोच्चस्थाने किल वित्रिभम् । तस्मादूनो यदा रविस्तदार्कादवलम्बितश्चन्द्रः पृष्ठतो भवति । चन्द्रो हि शीघ्रगतिः । शीघ्रे पृष्ठगते युतिरेष्या । अतो लम्बनं तिथौ धनम् । यदा वित्रिभलग्नादधिकोऽर्कस्तदा चन्द्रोऽवलम्बितोऽर्कादग्रतो भवति । शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता लम्बनतुल्येन कालेनातस्तत्र लम्बनमृणम् । एवं लम्बनसंस्कृतो दर्शान्तो ग्रहणमध्यकालः स्यादित्युपपन्नम् । यदि त्रिज्यातुल्ययार्कदृग्ज्यया परमाभुक्त्यन्तरपञ्चदशांशतुल्या लम्बनलिप्ता ४८ । ४६ लभ्यन्ते तदेष्टयार्कदृग्ज्यया किमिति । फलं दृग्लम्बनकलाः । एवमनेनैवानुपातेन दृक्क्षेपाद्या लम्बनलिप्ता उत्पद्यन्ते ता अवनतिलिप्ताः । ता भुजरूपाः । दृग्लम्बनकलाः कर्णः । तयोर्वर्गान्तरपदं स्फुटलम्बनलिप्ताः । यतो दृङ्नत्यानयनेऽर्कदृग्ज्या कर्णो दृक्क्षेपो भुजः । अतो दृक्क्षेपाज्जनितावनतिर्भुजः । स्फुटलम्बनलिप्ताः कोटिः । इदमखिलं गोले लम्बनोपपत्तौ कथितम् । तद्यथा ।

यतः कर्धोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रं पश्यति लम्बितम् ।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा ॥
इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्ययोः ।
भित्तौ विलिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखां तथोर्ध्वगाम् ॥
तिर्यग्रेखायुतौ कल्प्यं कक्षायां क्षितिजं तथा ।
ऊर्ध्वरेखायुतौ खार्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ ॥
कृत्वार्केन्दू समुत्पत्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत् ।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम् ॥

द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यद्दृष्टिसूत्रं तदुच्यते ।
कक्षायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः ॥
गर्भसूत्रे सदा स्यातां चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ ।
दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम् ॥
दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम् ।
अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत् ॥
ये कक्षामण्डले ते तु ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले ।
त्रिभोनलग्नदृज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि ॥
तच्चापांशैर्नतौ बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ ।
प्राग्वद्दृक्सूत्रतश्चन्द्रवित्रिभस्य नतिर्नतिः ॥
कक्षयोरन्तरं यत्स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत् ।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात्साध्यते ततः ॥
यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम् ।
तद्दृग्वृत्तेन्तरं चन्द्रभान्वोः पूर्वापरं तु तत् ॥
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम् ।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्यग्दक्षिणोत्तरा ॥
यत्पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम् ।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते ॥
नतिलिप्ताभुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः ।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः ॥
परलम्बनलिप्ता४८घ्नी त्रिज्या ३४३८ प्ता रविदृग्ज्यका ।

४६

दृग्लम्बनकलास्ताः स्युरेवं दृक्क्षेपतो नतिः ॥
गत्यन्तरस्य७३१तिथ्यंशः४८ । ४६परलम्बनलिप्तिकाः ।

४६

गतियोजन ११८५ दतिथ्यंशः ७६० कुदलस्य यतो मितिः ॥
४५ ३५

स्युर्लम्बनकला नाड्यो गत्यन्तरलवोद्धृताः ।
प्रागग्रतो रवेश्चन्द्रः पश्चात्पृष्ठेऽवलम्बितः ॥
शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता गम्या पृष्ठगते यतः ।
प्रागृणं तद्धनं पश्चात् क्रियते लम्बनं तिथौ ॥
याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं शशिसूर्ययोः ।
नतिस्तथा तया तस्मात्संस्कृतः स्यात्स्फुटः शरः ॥

भाषाभाष्य ।

इसप्रकार, जो दर्शान्तकाल में लम्बन सिद्ध हो, उसको वित्रिभ-लग्न से न्यून रवि होने पर धन अधिक में ऋण दर्शान्तघटिकाओं में असकृत् करने से, स्फुट ग्रहणमध्यकाल होता है ।

उपपत्ति ।

दर्शान्तकाल में, रविगत भूपृष्ठसूत्र से चन्द्र लम्बित होता है । वित्रिभ से न्यून रवि में, लम्बितचन्द्र-सूर्य से पीछे रहता है—इसलिए, दर्शान्त घटिका में लम्बन धन होता है । और जब वित्रिभ से सूर्य अधिक है तब सूर्य से चन्द्र लम्बन तुल्य काल से आगे रहने से लम्बन ऋण करने पर ग्रहणमध्यकाल होता है ।

परन्तु लम्बन काल में, सूर्य भी क्रान्तिवृत्त में चलता है—इसलिए, लम्बन संस्कृत दर्शान्तकाल में रविगत भूपृष्ठ सूत्र से चन्द्र अवश्य लम्बित रहेगा । यों मध्यग्रहण काल स्थूल सिद्ध होगा । क्योंकि दर्शान्तकाल में सूर्य, चन्द्र स्थिर न होने से युतिकाल सूक्ष्म नहीं होता । इसलिए संस्कृतकाल से फिर तात्कालिक लम्बन साधकर, दर्शान्त में असकृत् संस्कार करने से सूक्ष्म मध्यकाल होता है । यहाँ वासनाभाष्य

में जो उपपत्ति रूप श्लोक लिखे हैं, उनका अर्थ गोलाध्याय में सविस्तर लिखा है ॥ ७ ॥

इदानीं सकृत्प्रकारेण लम्बनमाह ।

त्रिभोनलग्नस्य नरस्त्रिभू १३ घ्नो
दन्तै३२र्विभक्तः परसंज्ञकः स्यात् ।
लग्नार्कयोरन्तरकोटिदोर्ज्ये
विधाय दोर्ज्यापरयोर्वियोगात् ॥ ८ ॥
स्वघ्नाद्युतात्कोटिगुणस्य कृत्या
मूलं श्रुतिः कोटिगुणात्परघ्नात् ।
श्रुत्या हृताल्लब्धधनुःकलाया-
स्ते वासवो लम्बनजाः सकृत्स्युः ॥ ९ ॥

त्रिभोनलग्नस्य यः शङ्कुः स त्रयोदशगुणो द्वात्रिंशद्भक्तः फलं परसंज्ञं भवति । दर्शान्तकाले यल्लग्नं तस्मादर्कोनाद्भुजकोटिज्ये साध्ये तत्र दोर्ज्याया अनन्तरानीतस्य च परस्य यो वियोगस्तस्माद्वर्गीकृतात् कोटिज्यावर्गेण युताद्यत् पदं स कर्णः । कोटिज्यापरयोर्घातात् तेन कर्णेन भक्ताद्यत् फलं तस्य चापे यावत्यः कलास्तावन्तो लम्बनासवः सकृदेव भवेयुः ।

अत्रोपपत्तिः । यदि त्रिज्यातुल्ये वित्रिभलग्नशङ्कौ परमलम्बनज्या लभ्यते तदेष्टशङ्कौ का इति । तत्र संचारः । यदि परमलम्बनज्यातुल्यगुणकेन त्रिज्याहरस्तदा त्रयोदशगुणकेन कः । फलं द्वात्रिंशत् । तस्य परसंज्ञा कृता । अधोऽधस्थयोरपि चन्द्रार्कयोः क्रियोपसंहारार्थमन्यथा कल्पितं लम्बनक्षेत्रम् । तत्र तावत् परमं लम्बनमुच्यते । चतस्रो घटिकाः किल परमं

लम्बनम् । तत् तु त्रिज्यातुल्ये वित्रिभलग्नशङ्कौ । तासां घटीनां यावन्तोऽसवस्तावत्य एव चतुर्विंशति-भागानां कला भवन्ति । अतस्त्रिज्यासंभूतक्रान्तेः कलानां तुल्यास्तदा परमलम्बनासवो भवन्ति । यदा पुनर्वित्रिभलग्नशङ्कुस्त्रिज्यातोऽल्पो भवति तदा तज्ज-नितक्रान्तेः कलानां तुल्या भवन्ति । अतो वित्रिभ-लग्नशङ्कुजनिता क्रान्तिज्या तदा परमलम्बनासूनां ज्या भवतीत्यवगन्तव्यम् । अथ पूर्वापरायताया भित्तेरुत्तर-पार्श्वे त्रिज्यामिताङ्गुलकर्कटेन वृत्तमालिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखामूर्ध्वरेखां च कुर्यात् । तत् किल चन्द्रकक्षावृत्तं कल्प्यम् । तन्मध्यादुपरि परमलम्बनासुज्यान्तरे भूसं-ज्ञितं बिन्दुं कृत्वा तत्र तेनैव कर्कटेनान्यद् वृत्तं विलिखेत् । तन्मध्येऽप्यन्या तिर्यग्रेखा कार्या । ऊर्ध्वरेखा सैवोपरितो नेया । तत् किलार्ककक्षावृत्तम् । ते वृत्ते चक्रांशैर्घटिका-षष्ट्या चाङ्क्ये । ऊर्ध्वरेखायुतौ द्वयोरपि वित्रिभलग्न-संज्ञौ बिन्दू कार्यौ ततो वित्रिभलग्नार्कान्तरभागै रवि-कक्षायां वित्रिभलग्नान्नतं रविसंज्ञकं बिन्दुं कुर्यात् । एवं चन्द्रवित्रिभाच्चन्द्रकक्षायां तैरेव भागैर्नतं चन्द्र-बिन्दुं च । ततो भूबिन्दोः सकाशाच्चन्द्रबिन्दूपरिगतं सूत्रं प्रसार्यम् । तत् सूत्रं यत्र रविकक्षायां लगति तत्सू-र्यबिन्द्वोरन्तरे यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तस्मिन् काले लम्बनघटिका ज्ञेयाः । एवंविधे क्षेत्रेऽस्य लम्बनस्य साधनोपपत्तिर्ग्रहशीघ्रफलवदुत्पद्यते । तत्र रविकक्षायां कक्षामण्डलं चन्द्रकक्षां प्रतिमण्डलं परमलम्बना-सुज्यामन्त्यफलज्यां वित्रिभलग्नं सषड्भं शीघ्रोच्चं

प्रकल्प्य शेषा क्रियोह्या । एतदानयनं किंचित्स्थूलम् ।

भाषाभाष्य ।

त्रिभोनलग्न के शङ्कु को तेरह से गुणाकर, बत्तीस का भाग देकर फल की परसंज्ञा रखना । फिर दर्शान्तकाल में, लग्न साधन करके, उसकी और रवि की अन्तरज्या, कोटिज्या सिद्ध करके, दोर्ज्या और पूर्व साधित पर का अन्तर करना । फल के वर्ग में कोटिज्या का वर्ग जोड़कर, मूल कर्ण होता है । कोटिज्या और पर के घात में इस कर्ण का भाग देने से, फल चापकला, लम्बनासु सकृत्प्रकार से सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

यहां लम्बन की क्षेत्रस्थिति पूर्व लिखित स्थिति के सदृश है । केवल संचार से प्रकारान्तर की कल्पना है ।

अनुपात—

त्रि : पलं : : त्रिभोलशं :

$$\text{शङ्कुपरिणात लम्बन} = \frac{\text{पलं} \times \text{त्रिभोशं}}{\text{त्रि}} ।$$

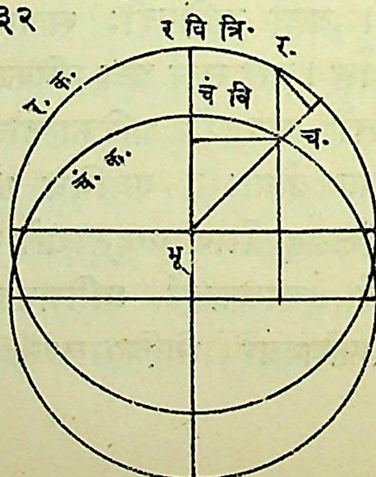
संचार किया—

पलं : त्रि : : १३ : ३२

$\therefore$ पलंज्या = १३ और त्रि = ३२ ।

$$\therefore \text{पर} = \frac{१३ \times \text{त्रिभोशं}}{३२} ।$$

क्षेत्र ।



परमलम्बन=४ इसका असु=४×६०×६०=१४४० ।

परमक्रान्ति=२४×६०=१४४० । दोनों समान होते हैं । इसलिए वित्रिभलग्नशङ्कु से उत्पन्न क्रान्ति के उपचय और अपचय के अनुसार, लम्बन का भी उपचयापचय सिद्ध होता है । इसप्रकार, वासनाभाष्य की क्षेत्रस्थिति के अनुसार,

$$\sqrt{(\text{दोर्ज्या}-\text{पर}^2)+\text{कोज्या}^2}=\text{भूच}=\text{कर्ण} ।$$

कर्ण : कोज्या : : पलम्ब : लम्बन ।

∴ भूच : कोज्या : : चर : लम्बन । इसप्रकार उपपन्न होता है ॥ ८–६ ॥

अथ नत्यर्थमर्केन्द्वोर्दृक्क्षेपावाह ।

दृग्ज्यैव या वित्रिभलग्नशङ्कोः
स एव दृक्क्षेप इनस्य तावत् ।
सौम्येऽपमे वित्रिभजेऽधिकेऽक्षात्
सौम्योऽन्यथा दक्षिण एव वेद्यः ॥ १० ॥
चापीकृतस्यास्य तु संस्कृतस्य
त्रिभोनलग्नोत्थशरेण जीवा ।

पूर्वार्धं सुगमं प्रागेव व्याख्यातम् । सोऽर्कदृक्क्षेपः सौम्यो याम्यो वेति ज्ञानायोच्यते । तत्र वित्रिभलग्नस्यापमे सौम्येऽक्षांशेभ्योऽधिके सति सौम्यो ज्ञेयः । इतोऽन्यथा याम्यः । अथ तस्य दृक्क्षेपस्य धनुः कार्यम् । वित्रिभलग्नं चन्द्रं प्रकल्प्य सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्यैत्येवं विक्षेपः साध्यः । तेन वित्रिभलग्नविक्षेपेण तद्दृक्क्षेपधनुः संस्कार्यम् । एकदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमित्यर्थः । संस्कृतिवशाच्चन्द्रदृक्क्षेपस्य दिक् । तस्य जीवा दृक्क्षेप इन्दोरित्यग्रे सम्बन्धः ।

अत्रोपपत्तिः। वित्रिभलग्नं क्रान्तिवृत्ते तद्भ्रमवशात् कदाचिद्दक्षिणोत्तरवृत्तात् पूर्वतः कदाचित् पश्चिमतो भवति। यद्युदयलग्नमुत्तरगोले तदा पूर्वतो भवति। तदन्यथा पश्चिमत इत्यर्थः। खार्धाद्वित्रिभलग्नोपरिगतं दृक्क्षेपमण्डलं यत्र वित्रिभे लगति तत्खार्धान्तरेऽर्कदृक्क्षेपचापांशाः। यत्र विमण्डले लगति तत्खार्धान्तरे चन्द्रदृक्क्षेपचापांशाः। तज्ज्ये तयोर्दृक्क्षेपौ। यथाह श्रीमान् ब्रह्मगुप्तः।

दृक्क्षेपमण्डले युक्ते। अपमण्डलेनभानोश्चन्द्रस्य विमण्डलेन युते। इति।

यदा कक्षामण्डलं खमध्ये भवति तदा तस्य दृङ्मण्डलाकारत्वाद्यत्र कुत्र स्थितोऽपि ग्रहो लम्बितोऽपि कक्षामण्डलं न त्यजति। अतोऽत्रावनतेरभावः। यदा खार्धान्नतं वित्रिभलग्नं दक्षिणतः तदा तिरश्चीनत्वात् क्रान्तिवृत्तस्य तत्रस्थो रविर्दृङ्मण्डलगत्यावलम्बितः क्रान्तिवृत्ताद्दक्षिणतो यावतान्तरेण दृश्यते तावती तस्य नतिः। एवं वित्रिभलग्नं यदि खार्धान्नतमुत्तरतस्तदोत्तरा नतिः। एवं चन्द्रस्यापि नतिः। किन्तु चन्द्रकक्षामण्डलं विमण्डलमेव कल्प्यम्। यतश्चन्द्रो विमण्डले भ्रमति। अतः खार्धाद्विमण्डलं यावता नतं तावच्चन्द्रदृक्क्षेपस्य चापम्। तज्ज्या तद्दृक्क्षेपः। एवं दृक्क्षेपवशात् तिरश्चीने स्थिते विमण्डले सति दृङ्मण्डलगत्या विलम्बितस्य चन्द्रस्य विमण्डलेन सह यदन्तरं

---

१ 'वित्रिभलग्नादुत्तरदक्षिणविक्षेपहीनसंयुक्तम्। शङ्कुधनुरुत्तरायामधिकोनं दक्षिणावनतौ॥ तज्ज्येन्दुशङ्कुराद्यः सवितुः—'शेष भाष्य में लिखाही है।

दक्षिणोत्तरं सा चन्द्रनतिस्तस्य दृक्क्षेपादागच्छति ।

प्रभा ।

वित्रिभजेऽपमे वित्रिभलग्नक्रान्तौ सौम्येऽक्षादधिकायां सत्यां सौम्यो दृक्क्षेपः । त्रिभोनलग्नोत्थशरेण वित्रिभलग्नविक्षेपेणेत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

वित्रिभलग्नशङ्कु की जो दृग्ज्या है वही सूर्य का दृक्क्षेप है । उत्तर वित्रिभलग्नक्रान्ति, यदि अक्षांश से अधिक हो तो, दृक्क्षेप उत्तर होता है अन्यथा, दक्षिण होता है । इस दृक्क्षेप का धनु करके, वित्रिभलग्न को चन्द्र मानकर, शर साधन करना । उसका उक्त दृक्क्षेप में संस्कार करने से, चन्द्रदृक्क्षेप होता है ।

उपपत्ति ।

खमध्य से वित्रिभलग्न में होकर गया दृङ्मण्डल, जहां वित्रिभ में लगे, वहां से खमध्य तक रवि का दृक्क्षेप और जहां विमण्डल में लगे, वहां से चन्द्रदृक्क्षेपांश होता है । दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त में, नति का अभाव और खमध्य से दक्षिण, उत्तर नत होनेपर, उसी दिशा की नति होती है । इसीप्रकार विमण्डल के नत होने पर, उस दिशा की चन्द्रनति होती है ।

क्रान्तिवृत्त में जहां दृक्क्षेपमण्डल लगा हो, वहां से विमण्डल तक दृक्क्षेपमण्डल में वित्रिभलग्नशरचापांश होते हैं । नति और शर दोनों उत्तर होने पर योग से अन्यथा अन्तर से, चन्द्रदृक्क्षेप होता है ।

∴ चन्द्रदृक्क्षेप = विन + विशं, या, विन−विशं ।

दृक्क्षेपमण्डल क्रान्तिवृत्त पर लम्बरूप होता है विमण्डल पर नहीं । इसलिए, चन्द्रदृक्क्षेप से सिद्ध नति कदम्बप्रोत वृत्त में न होने से स्पष्ट नति नहीं होती । इसीलिए आचार्य ने इस अधिकार के अन्त में 'शशिदृक्क्षेपार्थं यत्—'इत्यादि ब्रह्मगुप्तके मत का खण्डन कियाहै॥१०॥

इदानीं दृक्क्षेपान्नतिसाधनमाह ।

दृक्क्षेप इन्दोर्निजमध्यभुक्ति-
तिथ्यंशनिघ्नौ त्रिगुणोद्धृतौ तौ ॥ ११ ॥
नती रवीन्द्वोः समभिन्नदिक्त्वे
तदन्तरैक्यं तु नतिः स्फुटात्र ।

तौ चन्द्रार्कयोर्दृक्क्षेपौ स्वस्वमध्यभुक्तिपञ्चदशांशेन गुणितौ त्रिज्याभक्तौ फले तयोर्नती भवतः । तयोर्नत्योः समदिशोरन्तरं भिन्नदिशोर्योगो रविग्रहे स्फुटा नतिर्भवति ।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन । यदि त्रिज्यातुल्येन दृक्क्षेपेण परमा भुक्तिपञ्चदशांशतुल्या नतिर्लभ्यते तदेष्टेन किम् । फलं नतिकलाः । अथ तयोर्नत्योर्योगवियोगकारणमुच्यते । यस्यां दिशि चन्द्रो नतस्तस्यां दिशि यदि रविस्तदा नत्योरन्तरेण चन्द्रार्कयोरन्तरं ज्ञातं भवति यदा भिन्नदिशौ नती तदा तयोर्योगेन चन्द्रार्कयोरन्तरमुत्पद्यते ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य और चन्द्र के दृक्क्षेपों को अपने भुक्त्यन्तर पञ्चदशांश से गुणाकर, त्रिज्या का भाग देने से, फल सूर्य, चन्द्र की नति होती है । दोनों का समदिशा में अन्तर, भिन्नदिशा में योग करने से, सूर्यग्रहण में स्पष्टनति होती है ।

उपपत्ति ।

दृग्वृत्ताकार क्रान्तिवृत्त में, दृक्क्षेप के अभाव से नतिका अभाव होता है, यह पूर्व आचुका है । क्षितिज में गत्यन्तर पञ्चदशांश के तुल्य परम नति कला होती है । त्रिज्या तुल्य दृक्क्षेप में सूर्यगत

भूपृष्ठसूत्र से चन्द्र परमनतिकला के तुल्य, दक्षिणोत्तर लम्बित रहता है। इससे अनुपात द्वारा इष्टनति ज्ञात होती है।

$$\therefore \text{नति} = \frac{\left(\frac{\text{ग अ}}{१५}\right) \times \text{दृक्षे}}{\text{त्रि}}$$

। ऐसे ही चन्द्रदृक्क्षेप से चन्द्रनति साधकर दोनों के संस्कार से रविचन्द्र का याम्योत्तर अन्तर ज्ञात होता है ॥ ११ ॥

इदानीं स्फुटनतेरेवानयनमाह ।

दृक्क्षेप इन्दोर्द्विगुणो विभक्तः
किन्द्वैः १४१ स्फुटैवावनतिर्भवेद्वा ॥ १२ ॥
लघुज्यकोत्थो द्विगुणोऽक्षभक्तः
षष्ट्यंशयुक्तोऽवनतिः स्फुटा वा ।

चन्द्रस्य दृक्क्षेपो द्विगुणो भूशक्रै १४१ र्भाजितः फलं स्फुटैवावनतिः । यदि लघुज्यकोत्थो विधुदृक्क्षेपस्तदा द्विगुणः पञ्चभक्तः फलं स्वषष्ट्यंशयुक्तं स्फुटैवावनतिर्भवेत् ।

अत्रोपपत्तिः । तत्र स्वल्पान्तरत्वाच्छशिदृक्क्षेपतुल्यमर्कदृक्क्षेपं परिकल्प्य भुक्त्यन्तरपञ्चदशांशेनानुपातः । यदि त्रिज्यातुल्ये दृक्क्षेपे भुक्त्यन्तरपञ्चदशांशमिता स्फुटा नतिर्लभ्यते तदाभीष्टेऽस्मिन् किमिति । अत्र भुक्त्यन्तरपञ्चदशांशो गुणस्त्रिज्या हरः । गुणकहरौ गुणकार्धेनापवर्तितौ । जातं गुणकस्थाने द्वयं २ हरस्थाने किन्द्राः १४१ । एवं बृहज्ज्यकाभिः । लघुज्यकाभिस्तु गुणकस्थाने द्वयं २ हरस्थाने किंचिन्न्यूनाः पञ्च ४ । ५५ ते सुखार्थं पञ्चकृताः ५ । अतस्तत्फलं स्वषष्ट्यंशयुतं कृतम् ।

भाषाभाष्य ।

चन्द्र के दृक्क्षेप को दो से गुण कर, १४१ का भाग देने से, स्पष्टनति होती है । यदि दृक्क्षेप लघुज्या से सिद्ध किया हो तो, दो से गुणाकर पाँच का भाग देना और फल में उसका साठवाँ भाग जोड़ देना; फल, स्फुटनति होती है ॥

उपपत्ति ।

स्वल्पान्तर से चन्द्रदृक्क्षेप को रविदृक्क्षेप मानकर अनुपात किया—

$\frac{४८' । ४६'' \times दृक्षे}{३४३८}$; इसमें गुणकार्ध २४' । २६'' का अपवर्तन दिया । २०६२८०÷१४६३=१४१ भाजक हुआ ।

$\therefore$ नति= $\frac{२ \times दृक्षे}{१४१}$ । लघुज्या पक्ष में त्रिज्या=१२०, स्वल्पान्तर से भाजक=५

$\therefore \left(\frac{२ \times दृक्षे}{५}\right) + \frac{१}{६०}$ =नति । इसप्रकार उपपन्न हुआ ॥१२॥

इदानीं स्थूले लम्बनावनती सुखार्थमाह ।

त्रिभोनलग्नस्य दिनार्धजाते
नतोन्नतज्ये यदि वा सुखार्थम् ॥ १३ ॥
दृक्क्षेपशङ्कू परिकल्प्य साध्यं
स्वल्पान्तरं लम्बनकं नतिश्च ।

त्रिभोनलग्नं चन्द्रं प्रकल्प्य तस्य क्रान्तिः शरश्च साध्यः । तेन शरेण क्रान्तिः संस्कार्या । सा तस्य स्फुटा क्रान्तिः । पलावलम्बावपमेन संस्कृतावित्यादिना नतांशा उन्नतांशाश्च कार्याः । तज्ज्ये वित्रिभलग्नस्य दिनार्धजाते नतोन्नतज्ये । यथाह श्रीब्रह्मगुप्तः ।

वित्रिभलग्नापक्रमविक्षेपाक्षांशयुतिवियुतेः ।

इत्यादि । अत्रोन्नतज्यां वित्रिभलग्नशङ्कुं नतज्यां चन्द्रदृक्क्षेपं च परिकल्प्योक्तवल्लम्बनं स्वल्पान्तरमवनतिश्च सुखार्थं साध्या ।

अत्रोपपत्तिः । वित्रिभलग्नशङ्कोरासन्न एव दिनार्धशङ्कुस्तद्दृग्ज्यासन्नो दृक्क्षेप इति भावः । शेषोपपत्तिः कथितैव ।

भाषाभाष्य ।

अब प्रकारान्तर से लम्बन और नति कहते हैं—दिनार्ध में त्रिभोनलग्न की नतज्या और उन्नतज्या अर्थात् दृक्क्षेप और शङ्कु साधन करना । फिर उनसे स्वल्पान्तर से लम्बन और नति का साधन करना चाहिए ।

याम्योत्तरवृत्त में ही सुखार्थ वित्रिभ की कल्पना करके दिनार्ध के समान, वित्रिभ का उन्नतांश शङ्कु और चन्द्रदृक्क्षेप साधन के, पूर्वप्रकार से लम्बन घटिका सिद्ध होंगी ।

$$\therefore \text{लम्बन} = \frac{\text{४ ज्या}\,(\text{र} \backsim \text{वि})}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{विशं}}{\text{त्रि}} \quad \text{॥ १३ ॥}$$

इदानीं नतेः प्रयोजनमाह ।

स्पष्टोऽत्र बाणो नतिसंस्कृतोऽस्मात्
प्राग्वत् प्रसाध्ये स्थितिमर्दखण्डे ॥ १४ ॥

अत्र सूर्यग्रहणे यः पूर्ववच्छर आगच्छति । असौ नत्या संस्कृतः सन् स्फुटो भवति । अत्रैतदुक्तं भवति । गणितागतो दर्शान्तकालो लम्बनेनासकृत् स्फुटीकृतः स किल ग्रहमध्यकालः । तत्र तात्कालिकं सपातं चन्द्रं

१—जीवा शशाङ्कभास्करमध्यमभुक्त्यन्तरेण संगुणिता ।
पञ्चदशभिर्गुणितया विभाजिता त्रिज्ययावनतिः ॥

कृत्वा विक्षेपः साध्यः। अथ स्थिरलम्बनकाले यद्वित्रिभलग्नं तस्माद्वनतिः साध्या। तया स विक्षेपः संस्कृतः। स मध्यग्रहणविक्षेपः स्फुटो भवतीत्यवगन्तव्यम्। ततो मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यामित्यादिना स्थितिमर्दखण्डे साध्ये।

अत्रोपपत्तिः। चन्द्रस्थाने क्रान्तिमण्डलविमण्डलयोरन्तरालं विक्षेपः। चन्द्रो विमण्डले रविः क्रान्तिमण्डलेऽतस्तयोर्विक्षेपो याम्योत्तरमन्तरम्। परं यदि भूगर्भस्थो द्रष्टा। यदा तु कर्धेनोच्छ्रितो भूपृष्ठस्थस्तदा रविकक्षामण्डलाचन्द्रकक्षामण्डलमधो दृक्क्षेपवशाल्लम्बितं भवति। तद्याम्योत्तरभावेन यावता लम्बितं तावती नतिस्तदग्राच्छरोऽतस्तया शरे संस्कृते स्फुटमर्केन्द्वोरन्तरं भवति। स एव स्फुटशरः। यथोक्तं गोले।

याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं शशिसूर्ययोः।
नतिस्तथा तया तस्मात् संस्कृतः स्यात् स्फुटः शरः।
इति। स्थित्यर्धमर्दार्धवासना प्रागुक्तैव।

भाषाभाष्य।

पूर्व रीति से जो शर सिद्ध होता है उसमें नति का संस्कार करने से, सूर्यग्रहण में स्पष्टशर होता है। फिर 'मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यां' इत्यादि विधि से स्थिति और मर्द खण्ड साधन करना चाहिए।

पृष्ठ दृक्सूत्र के वश रविकक्षामण्डल से चन्द्रकक्षा लम्बित रहती है। वह याम्योत्तर भाव से जितना लम्बित हो वही नति है। नति के आगे शर रहता है इसलिए नति और शर का एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर करने से स्पष्ट शर, सूर्यचन्द्र का स्पष्टान्तर रूप

होता है । यहां उपपत्ति सब भाष्य में खुलासा लिखी है ॥ १४ ॥

इदानीं स्पर्शमुक्तिसंमीलनोन्मीलनकालार्थमाह ।

तिथ्यन्ताद्गणितागतात् स्थितिदलेनोनाधिकाल्लम्बनं
तत्कालोत्थनतीषु संस्कृति भवस्थित्यर्धहीनाधिके ।
दर्शान्ते गणितागते धनमृणं वा तद्विधायासकृज्
ज्ञेयौ प्रग्रहमोक्षसंज्ञसमयावेवं क्रमात् प्रस्फुटौ ॥ १५ ॥

तन्मध्यकालान्तरयोः समाने
स्पष्टे भवेतां स्थितिखण्डके च ।
दर्शान्ततो मर्द्दलोनयुक्तात्
संमीलनोन्मीलनकाल एवम् ॥ १६ ॥

सकृत्प्रकारेण विलम्बनं चेत्
सकृत् स्फुटौ प्रग्रहमोक्षकालौ ।
किं त्वत्र बाणावनती पुनश्च
तात्कालिकाभ्यां विधुवित्रिभाभ्याम् ॥ १७ ॥

प्रथमं यो गणितागतस्तिथ्यन्तस्तस्मात् स्थितिदले-नोनाधिकाल्लम्बनं साध्यम् । स्पर्शे स्थितिदलेनोना-न्मोक्षेऽधिकादित्यर्थः । अत्र किल स्पर्शकालः साध्यते । तत्र गणितागततिथ्यन्तात् स्थित्यर्धोनात् प्राग्वल्लम्ब-नमानीय तदनष्टं स्थापयित्वा तद्गणितागते तिथ्यन्ते स्थितिदलेनोने धनमृणं वा कार्यम् । स स्थूलः स्पर्श-कालः । तन्मध्यकालयोरन्तरं स्थूलं स्थित्यर्धम् । तज्ज-नितफलोनात् समकलेन्दोः शरस्तत्कालवित्रिभजनि-तया नत्या संस्कृतस्तस्मात् स्फुटविक्षेपात् पुनः स्थित्य-र्धम् । तेन स्थित्यर्धेन गणितागते दर्शान्त ऊने तल्लम्बनं धनमृणं वा कार्यम् । एवं कृते सति यावान् कालस्ता-

वान् स्पर्शकालः। एवमसकृदिति। स्पर्शमध्यग्रहकालयोरन्तरं स्पार्शिकं स्थित्यर्धं ज्ञेयम्। स्पर्शकालात् पुनर्लम्बनमानीयानष्टं स्थाप्यम्। अथ स्पार्शिकस्थित्यर्धघटीफलेन चन्द्रमूनीकृत्य शरः साध्यः। अनन्तरानीतवित्रिभलग्नान्नतिश्च। तया स्फुटीकृताच्छरात् पुनःस्थित्यर्धम्। तेनोनिते गणितागते दर्शान्ते तल्लम्बनं धनमृणं वा कार्यम्। एवं स्फुटः स्पर्शकालः। असकृदिति यावदविशेषः।

एवं स्थितिदलेनाढ्याद्गणितागतान्मोक्षकालोऽपि। तत्र चन्द्रपाततात्कालिकीकरणे फलं धनम्। एवं मोक्षमध्यग्रहकालयोरन्तरं मौक्षिकं स्थित्यर्धम्। एवं मर्ददलेनोनाद्गणितागतात् संमीलनकालः। मर्ददलेन युक्तादुन्मीलनकालः। संमीलनमध्यग्रहकालयोरन्तरं प्रथमं स्फुटं मर्दार्धम्। उन्मीलनमध्यग्रहकालयोरन्तरं द्वितीयम्। यद्यसकृद्विधिना लम्बनं क्रियते तदैवम्। यदा पुनः सकृद्विधिना लम्बनं तदा स्पर्शकालो मोक्षकालोऽपि सकृदेव स्फुटो भवति। किन्तु तत्रायं विशेषः। स्पर्शकाले मोक्षकाले वा पुनर्वित्रिभलग्नं कृत्वा तस्मान्नतिः साध्या। तया तत्कालभवो विक्षेपः संस्कृतः सन् स्फुटः स्पार्शिकः। मौक्षिको वा स्फुटो भवति। न चेदेवं तदा स्थूलः।

अत्रोपपत्तिः। स्थित्यर्धानयने पूर्वोक्तैव। तत्स्फुटीकरणे प्रोच्यते। गणितागतोहि दर्शान्तकालो मध्यग्रहकालो भवितुमर्हति। चन्द्रार्कयोस्तत्र तुल्यत्वात्। स्थित्यर्धेनोनो दर्शान्तकालः स्पर्शकालो भवति। युतो

मोक्षकालः । अथ च द्रष्टुः कर्ध्वोच्छ्रितत्वाल्लम्बनमुत्पन्नम् । अतस्तेन संस्कृतो दर्शान्तो मध्यग्रहकालः स्फुटो भवति । एवं स्पर्शकालोऽपि तत्कालजनितलम्बनेन संस्कृतः स्फुटो भवितुमर्हति । या युक्तिर्मध्यग्रहणकालस्य लम्बनसंस्कारे सैव स्पर्शमोक्षसंमीलनोन्मीलनकालानाम् । किन्तु स्पर्शकालस्य लम्बनसंस्कारे क्रियमाणे कालान्यत्वाच्छरः किंचिदन्यथा भवति । नतिश्च किंचिदन्यादृशी । तत्संस्कृतिभवं स्थित्यर्धमपि किंचिदन्यादृशम् । अतस्तेनोने गणितागते दर्शान्ते तल्लम्बनं धनमृणं वा कर्तुं युज्यते । अत उक्तं तत्कालोत्थनतीषु संस्कृतिभवस्थित्यर्धहीनाधिक इत्यादि । यद्यसकृद्विधिनालम्बनं तदा पुनः पुनर्लम्बनं नतिश्च । तया तत्कालशरः स्फुटः स्थित्यर्धार्थं किल क्रियते । तदा स्थित्यर्धं स्फुटं भवति । तदा तत्कालशरोऽपि स्फुटो भवति । स एव स्पार्शिकः शर इति वेदितव्यम् । यदा पुनः सकृद्विधिना लम्बनं तदा पुनः पुनः शरस्य नतेश्चाकरणात् स्पार्शिकः शरः पुनः कर्तुं युज्यते । अत उक्तं किन्त्वत्रबाणावनती पुनश्च तात्कालिकाभ्यां विधुवित्रिभाभ्यामिति ।

भाषाभाष्य ।

जो गणितागत तिथ्यन्तकाल सिद्ध हो, उसमें स्पार्शिक स्थित्यर्ध घटाकर और मौक्षिक जोड़कर लम्बन साधन करना । उसका तिथ्यन्त में, धन किंवा ऋण संस्कार करने से स्थूल स्पर्शकाल होगा । उस स्पर्शकाल और मध्यकाल का अन्तर स्थूल स्थित्यर्ध होगा । उससे स्पष्टशर वश स्थित्यर्ध को धन किंवा, ऋण तिथ्यन्त में करके लम्बन

साधन करना। यों असकृत्कर्म करना। तात्पर्य यह है कि पहले मध्यकालिक स्पष्टशर के वश स्थित्यर्ध का साधन करके, उसको स्फुट तिथ्यन्त में घटाकर, लम्बन और नति का साधन करना। और तात्कालिक सपातचन्द्र से शर साधना, नति और शर के संस्कार से स्पष्टशर लाना। उससे चन्द्रग्रहण के अनुसार स्थित्यर्ध लाकर गणितागत तिथ्यन्त में, घटाकर फिर लम्बन, नति स्फुट स्थित्यर्ध सिद्ध करना। इसप्रकार—असकृत्कर्म से लम्बन साधन करके, तात्कालिक स्पष्टशर सिद्ध स्थित्यर्ध से विहीन गणितागत दर्शान्त में, यथागत धन वा, ऋण संस्कार करने से स्फुट स्पर्शकाल होता है। ऐसे ही स्थित्यर्धयुक्त तिथ्यन्त से मोक्षकाल होता है।

इसप्रकार, स्फुट स्पर्शकाल और मोक्षकाल का जो मध्यग्रहकाल अर्थात् स्पष्टदर्शान्तकाल से अन्तर है, वह स्पार्शिक और मौक्षिक स्पष्ट स्थितिखण्ड होता है। इसीतरह, असकृत्कर्म से, स्फुट संमीलन और उन्मीलन काल साधकर, उसका और मध्यकाल का अन्तर रूप स्पष्ट मर्दखण्ड सिद्ध होता है।

जब असकृत्प्रकार से, लम्बन सिद्ध भया हो तभी यह विधि है। यदि सकृद्विधि से लम्बन साधन किया हो तब स्पर्शकाल और मोक्षकाल भी सकृत् सिद्ध होते हैं। विशेष यही है कि, स्पर्शकाल वा, मोक्षकाल में, वित्रिभ लग्न से नति साधन करके, तात्कालिक शर में संस्कार करके स्पार्शिक वा, मौक्षिक शर स्फुट करना चाहिये।

उपपत्ति।

भूगर्भवासियों को, गणितागत दर्शान्तकाल ही ग्रहण का मध्यकाल होता है। उसी को मध्यकाल किंवा, मध्यदर्शान्त कहते हैं। दर्शान्तकाल में जो त्रिभोनलग्न सिद्ध हो, उससे 'त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिञ्जिनी—' इत्यादि विधि से जो धन या, ऋण लम्बन सिद्ध हो उसका

गणितागत-दर्शान्तकाल में संस्कार करने से, स्थूल मध्यकाल होता है। उसके बाद, तात्कालिक सूर्य से त्रिभोनलग्न साधन करना। फिर लम्बन लाकर उसका गणितागत-दर्शान्त म संस्कार करना। इसप्रकार, असकृत्कर्म से जो स्पष्ट मध्यकाल सिद्ध हो वह स्पष्ट ग्रहणमध्यकाल, भूपृष्ठवासियों का होता है। अर्थात् जिस इष्टकाल सम्बन्धी सूर्य से, त्रिभोनलग्न और उससे लम्बन लाकर स्पष्टदर्शान्त सिद्ध कियाजाता है, उसी कालसम्बन्धी भूपृष्ठवासियों का ग्रहणमध्यकाल होता है।

इसप्रकार, जिस इष्टकाल में, सूर्य, चन्द्र और पात का साधन किया है और पात, चन्द्र से शर साधन और रवि का त्रिभोनलग्न साधन किया है, और सूर्य चन्द्र के दृक्क्षेपों से 'निजमध्यभुक्तिथ्यंश-निघ्नो–' इत्यादि से नति साधकर शर और नति के संस्कार से स्पष्ट शर साधन किया है। और उस स्पष्टशर से 'मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यां–' इत्यादि से जो स्थितिखण्ड उत्पन्न होगा उसको मध्यदर्शान्त में घटा दो, उसमें पूर्व इष्टकालिक संबन्धी लम्बन का संस्कार दो वह स्फुट स्पर्शकाल होगा। उसका और स्पष्टदर्शान्तकाल का अन्तर, स्पार्शिक स्फुट स्थित्यर्ध होता है। इसीप्रकार संमीलन, मर्दार्ध की स्थिति होती है।

इदानीं विशेषमाह।

शेषं शशाङ्कग्रहणोक्तमत्र
स्फुटेषुजेन स्थितिखण्डकेन।
हतोऽथ तेनैव हृतः स्फुटेन
बाहुः स्फुटः स्याद्ग्रहणेऽत्र भानोः॥ १८॥

ग्रासाच्च कालानयने फलं यत्
स्फुटेन निघ्नं स्थितिखण्डकेन।
स्फुटेषुजेनासकृदुद्धृतं तत्
स्थित्यर्धशुद्धं भवतीष्टकालः॥ १९॥

अत्र रविग्रहणे बिम्बलम्बनभुजकोट्यादीनामानयनं शशाङ्कग्रहणोक्तं वेदितव्यम्। किं त्वत्र भुजसाधने विशेषः। अत्र पूर्वानयनेन यो भुज आगच्छति। असौ तत्कालस्फुटशरजनितेन स्थित्यर्धेन गुण्यः, स्फुटेन स्थितिखण्डकेन भाज्यः। स्पर्शमध्यकालयोरन्तरेण भाज्य इत्यर्थः। फलं स्फुटो भुजो भवति। अथ ग्रासाच्च कालानयने फलं यदिति। ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्विक्षेपकृत्या रहितात् पदं यत्। गत्यन्तरांशैर्विहृतमिति यत् फलं लभ्यते तस्य स्फुटीकरणम्। तत्फलं स्फुटेन स्थित्यर्धेन स्पर्शमध्यकालयोरन्तरेण गुणितं तत्कालस्फुटशरजनितेन स्थित्यर्धेन भक्तं स्फुटं भवति। तत्स्वस्थित्यर्द्धाच्छुद्धमिष्टकालो भवति। स च स्पर्शादग्रतो मोक्षात् पृष्ठतः। तस्मिन् काले नतिसंस्कृतं शरं पुनः कृत्वा ग्रासोनमानैक्यदलस्यवर्गाद्विक्षेपकृत्येत्यादिना फलं साध्यम्। तत्फलं पुनः स्फुटं कर्तव्यम्। एवं यावदिष्टकालः स्फुटो भवति तावदसकृत्कर्म।

अत्रोपपत्तिः। भुजानयने पूर्वोक्तैव। तत्स्फुटीकरणे प्रोच्यते। यथा चन्द्रग्रहणे स्थित्यर्धं शरमानैक्यार्धयोर्वर्गान्तरादुद्भूतं तथेहाप्यानीतम्। तदस्फुटम्। लम्बनसंस्कारे कृते स्पर्शमध्यग्रहकालयोरन्तरं तत्स्फुटं स्थित्यर्धम्। लम्बनान्तरसंस्कृतमित्यर्थः। भुजो हि स्थित्यर्धसम्बन्धेनागच्छति। यथा चन्द्रग्रहे मध्यममेव स्थित्यर्धम्। तत्सम्बन्धेन यादृशो भुजस्तत्रागच्छति तादृशेनेहापि भवितव्यम्। वासनायास्तुल्यत्वात्। अथ च वीष्टेन निघ्नाः स्थितिखण्डकेनेत्येवं यदानीयते तदा स्फुट-

स्थित्यर्धं वीष्टं कृत्वा गणक आनयति तदा स्फुटस्थित्यर्ध-सम्बन्धी भुजः स्यात् । असावसम्यक् । अतस्तस्य तत्कालस्फुटशरजनितस्थित्यर्धसम्बन्धीकरणायानुपातः । यदि स्फुटस्थित्यर्धेनैतावान् भुजस्तदा तत्कालजनितस्फुटशरभवस्थित्यर्धेन किमिति । फलं स्फुटो भुजो भवति । एतदेव विपरीतं कर्म ग्रासात्कालानयने । यतो ग्रासोन-मानैक्यदलस्य वर्गादित्यादिना यत्फलमागच्छति तन्म-ध्यमं स्थित्यर्धं वीष्टम् । तत्स्फुटस्थित्यर्धाद्यावच्छिशोध्यते तावदसम्यगिष्टं भवति । अतस्तस्य फलस्य स्फुटस्थित्य-र्धपरिणामायानुपातः । यदि मध्यमस्थित्यर्धेनैतावत् फलं तदा स्फुटस्थित्यर्धेन कियदिति । अत्र यल्लभ्यते स्फुटं फलं तस्मिन् स्फुटस्थित्यर्धाच्छोधिते स्फुटमिष्टमव-शिष्यत इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

इस अधिकार में शेष बिम्ब, भुज, कोटि आदि का साधन चन्द्र-ग्रहण के अनुसार करना चाहिए । विशेष केवल इसप्रकार है—पूर्व विधि से जो भुज सिद्ध हो उसको तात्कालिक स्पष्टशरोत्पन्न स्थित्यर्ध से गुणाकर स्पष्ट स्थितिखण्ड काही भाग देना, फल स्पष्टभुज होता है । 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गात्—' इत्यादि प्रकार से ग्रास से जो इष्टकाल आता है उसको स्फुट स्थित्यर्ध से गुणाकर, तात्कालिक स्पष्ट-शरोत्पन्न स्थित्यर्ध का भाग देने से स्पष्ट होता है । उसको अपने स्थित्यर्ध से घटादेने से शेष, स्पर्श से पूर्व और मोक्ष से पीछे इष्टकाल होता है । इससे तात्कालिक स्पष्टशर लाकर फिर 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गात्—' इत्यादि विधि से असकृत्कर्म द्वारा स्पष्ट इष्टकाल सिद्ध करना ।

उपपत्ति ।

भुजसाधन की उपपत्ति पहले कही है अब उसके स्पष्ट करने की रीति कहते हैं। चन्द्रग्रहण की रीति से जो मध्यम-स्थित्यर्ध है वही लम्बन के संस्कार से स्पष्ट-स्थित्यर्ध बनता है। अब 'वीष्टेन निघ्नाः स्थितिखण्डकेन भुक्त्यन्तरांशा भुजः–' इस प्रकार से यहां स्पष्ट-स्थित्यर्ध में इष्टकाल घटाकर जो भुज सिद्ध किया जाता है उसको इष्टकालिक बनाने के लिये अनुपात। यदि स्पष्ट-स्थित्यर्ध में यह साधित भुज प्राप्त होता है तो इष्टकालिक स्पष्टशरोत्पन्न-स्थित्यर्ध में क्या? यों स्पष्ट भुज होगा। और 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गात्–' इस प्रकार से जो मध्यम स्थित्यर्ध इष्टकालोन सिद्ध होता है उसको स्पष्ट-स्थित्यर्ध में परिणामन करने के लिये अनुपात। यदि मध्यम-स्थित्यर्ध में यह साधित फल प्राप्त होता है तो स्पष्ट-स्थित्यर्ध में क्या? यों आगत फल को स्पष्ट-स्थित्यर्ध में घटा देने से स्पष्ट इष्टकाल शेष रहता है ॥१८-१९॥

इदानीं चाद्योक्तद्वारेण विशेषोऽभिधीयते व्याख्यायते च।

शशिदृक्क्षेपार्थं यद्वित्रिभलग्नेषुणात्र संस्करणम्।
जिष्णुजमतं तदुक्तं न तन्मतं वच्मि युक्तिमिह ॥ १ ॥
यत्राक्षोजिनभागास्तत्रार्केन्दू तुलादिगावुदये।
पातः किल गृहषट्कं सममण्डलवत् तदापवृत्तं स्यात् २॥
अर्काल्लम्बितचन्द्रो न जहात्यपमण्डलं हि विक्षिप्तः।
वित्रिभशरसंस्कारान्नतिरत्रायाति सा व्यर्था ॥ ३ ॥

अत्र रविदृक्क्षेपधनुर्वित्रिभलग्नोत्थशरेण संस्कृतं शशिदृक्क्षेपधनुर्भवतीति यदुक्तं तद्ब्रह्मगुप्तस्य मतं न मन्मतम्। तदयुक्तमिव प्रतिभातीति भावः। तत् कथमयुक्तमिति तदर्थमाह। वच्मि युक्तिमिहेति। अत्र रविग्रहेऽर्कचन्द्रयोर्याम्योत्तरमन्तरं विक्षेपः। विक्षेपो नाम

कक्षामण्डलविमण्डलयोर्यास्योत्तरमन्तरम् । अथ यदा दृङ्मण्डलगत्याधोलम्बितश्चन्द्रस्तदा तस्य चन्द्रस्य रविकक्षया सह यावदन्तरं तच्चन्द्रार्कयोर्याम्योत्तरमन्तरं स स्फुटविक्षेप इत्यर्थः । तस्य पूर्वविक्षेपेण सह यदन्तरं तावतीनतिरित्यर्थः । इति किल रविग्रहे नतिस्वरूपम् ।

अथ युक्तिरुच्यते । यत्र देशे चतुर्विंशतिरक्षांशाः । यदा किलार्को राशिषट्कं तावांश्च चन्द्रस्तावांश्च पातः शशिशरः शून्यम् । तदा तस्मिन् देशे रवेरुदयकाले रविरेव लग्नम् । तद्वित्रिभलग्नं राशित्रयं भवति । रविः ६ । ० । चन्द्रः ६ । ० । पातः ६ । ० । लग्नम् ६ । ० । वित्रिभम् ३ । ० । तस्य क्रान्तिरुत्तराचतुर्विंशतिर्भागास्तैरक्षे संस्कृते नतांशानामभावः । अतो वित्रिभलग्नं खस्वस्तिके प्राक्स्वस्तिके रविः । सममण्डलमेव तदा क्रान्तिमण्डलम् । तदेव दृङ्मण्डलम् । दृङ्मण्डलगत्याधो लम्बितश्चन्द्रस्तत्कक्षामण्डलं न त्यजति । अतोऽत्र स्फुटविक्षेपोऽपि शून्यम् । अतोऽत्र नतेरभावः । वित्रिभलग्नशरसंस्कारेणात्र कलाचतुष्टयं नतिरुत्पद्यते सा व्यर्था ।

यद्ब्रह्मगुप्तेन विमण्डलमेव कक्षामण्डलं परिकल्प्य नतिरानीता सापि युक्तियुक्ता । किन्तु सा विमण्डलावधिरायाता न कक्षामण्डलावधिः । अतो लम्बनकालेन चालितस्य विधोर्यावान् विक्षेपो यावांश्च प्रथमस्तयोरन्तरं तस्या नतेर्व्यस्तं कार्यम् । रविदृक्क्षेपधनुषि यदि वित्रिभलग्नशरोयुक्तस्तदेदमन्तरं नतेः शोध्यम् । यदा रहितस्तदा युक्तं कार्यमित्यर्थः । एवं कृते सति सा

नतिः स्फुटा भवितुमर्हति । अथवा रविदृक्क्षेपधनुश्चन्द्रशरेण संस्कृतं कृत्वा नतिः साध्यते सापि स्फुटासन्ना भवति । किंतु ग्रहणे चन्द्रशरोऽल्पो भवति । संस्कारे कृतेऽपि स्वल्पान्तरा नतिः । अत एवाद्यैराचार्यैः स्वल्पान्तरत्वादिदं कर्मोपेक्षितमिति मम मतम् । अथवा किं जगद्विरोधेन यत् तेन कृतं तदपि युक्तम् ।

लम्बनकालशरान्तरमस्यां व्यस्तं नतौ यदि क्रियते ।
स्पष्टैवं स्यादथवा चन्द्रस्य शरेण संस्कृत्य ॥ ४ ॥
भानोर्दृक्क्षेपधनुः साध्या स्वल्पान्तरा नतिस्तस्मात् ।
ग्रहणे स्वल्पशरत्वात् स्वल्पान्तरता नतेर्यस्मात् ॥ ५ ॥
तस्मान्नेदं पूर्वैरकांशाद्यैस्तथा कृतं कर्म ।
आत्मप्रतिभासो वा मयोदितः किं जगद्विरोधेन ॥६॥

इति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे
सूर्यग्रहणाधिकारः ।
ग्रन्थसंख्या ३२५ ॥

भाषाभाष्य ।

चन्द्रदृक्क्षेप साधनार्थ जो वित्रिभशर का संस्कार कहा गया है वह ब्रह्मगुप्त का मत है, मेरा मत नहीं है । इसमें युक्ति यों है—जिस देश में अक्षांश २४° हैं वहां तुलादि में सूर्य और चन्द्र की उदय कल्पना करने पर पात भी छ राशि होगा और क्रान्तिवृत्त सममण्डलाकार होगा । उस समय, सूर्य से लम्बित चन्द्र अपने शरवश क्रान्तिवृत्त को न छोड़ेगा, इसलिए वहां वित्रिभ शर के संस्कार से जो नति उत्पन्न होती है वह व्यर्थ है ॥ १-३ ॥

लम्बन घटिका से चालित चन्द्र का शर और पूर्व सिद्ध शर का अन्तर नति में उलटा संस्कार करने से स्पष्टनति होती है । अर्थात्

रविदृक्क्षेप में वित्रिभ शर धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन करना चाहिए । अथवा, रविदृक्क्षेप धनु में चन्द्रशर के संस्कार से नति लाने पर स्पष्ट के आसन्न होती है । ग्रहण में चन्द्रशर स्वल्प होने से संस्कार करने पर स्वल्पान्तर से स्पष्ट नति होती है । इसीलिए सूर्य-सिद्धान्त आदि आर्षग्रन्थों में इस संस्कार को छोड़ दिया है ॥ ४—६ ॥

उपपत्ति ।

यहां आचार्य ने ब्रह्मगुप्त के मत का दूषण उदाहरण से दिखलाया है । कक्षा मण्डल और विमण्डल का याम्योत्तर अन्तर शर है । दृङ्-मण्डल में लम्बित चन्द्र का और रवि का अन्तर याम्योत्तर स्पष्टशर है । इसका पूर्व शर के साथ अन्तर नति होती है । चौबीस अक्षांश में परमक्रान्ति के दिन नतांश का अभाव होने से वित्रिभलग्न खमध्य में और रवि प्राक्स्वस्तिक में होता है । इसलिए सममण्डलाकार क्रान्ति-वृत्त और वही दृङ्मण्डल होने से, लम्बित चन्द्र कक्षामण्डल नहीं छोड़ता यों स्पष्टशर शून्य होने से नति का भी अभाव होता है । पर वहां ब्रह्मगुप्त के मत से, वित्रिभशर-संस्कार से नति उत्पन्न होती है वह अशुद्ध है ।

आगे 'लम्बनकालशरान्तरमस्याम्—' इत्यादि से ब्रह्मगुप्त की नति का, स्वल्पान्तर से समाधान दिखलाया है । वह स्पष्ट है ॥१—६॥

भाषाभाष्य में सूर्यग्रहणाधिकार समाप्त ॥

अथ ग्रहच्छायाधिकारो व्याख्यायते । तत्रादौ तावद् ग्रहविक्षेपान् मध्यमानाह ।

विक्षेपलिप्ताः क्षितिजादिकानां
खेशा ११० द्विबाणेन्दुमिता १५२ रसाश्वाः ७६ ।
षट्त्रीन्दवः १३६ खाग्निभुवः १३० सितज्ञ-
पातौ स्फुटौ स्तश्चलकेन्द्रयुक्तौ ॥ १ ॥

क्षितिजस्य खरुद्रमिता ११० मध्यमा विक्षेपलिप्ताः । बुधस्य द्विबाणेन्दुमिताः १५२ । गुरोः षट्सप्ततिः ७६ शुक्रस्य षड्विश्व १३६ तुल्याः । शनेः खत्रीन्दु १३० मिता वेदितव्याः । तथा बुधशुक्रयोर्यौ गणितागतौ पातौ तौ स्वस्वशीघ्रकेन्द्रेण युक्तौ कार्यौ । एवं स्फुटौ स्तः ।

अत्रोपपत्तिः । मध्यमगतिवासनायां वेधप्रकारेण वेधवलये ग्रहविक्षेपोपपत्तिर्दर्शितैव । किन्त्वन्त्यफल-ज्यार्धधनुषा सन्निगृहेण तुल्यं यदा शीघ्रकेन्द्रं भवति तदा त्रिज्यातुल्यः शीघ्रकर्णो भवति । तस्मिन् दिने वेधवलये यावान् परमो विक्षेप उपलभ्यते तावान् ग्रहस्य परमो मध्यमविक्षेपः । एवमेते भौमादीनामुपलब्धाः पठिताः । अथ ज्ञशुक्रयोः पातस्य स्फुटत्वमुच्यते । भगणाध्याये ये बुधशुक्रयोः पातभगणा पठितास्ते स्वशीघ्रकेन्द्रभगणैरधिकाः सन्तो वास्तवा भवन्ति । ये पठितास्ते स्वल्पाः कर्मलाघवेन सुखार्थम् । अतः पठितचक्रभवौ स्वशीघ्रकेन्द्रयुतौ वास्तवभगणनिष्पन्नौ स्फुटौ भवतः । तथा चोक्तं गोले । ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरित्यादि ।

भाषाभाष्य।

भौम आदि ग्रहों की मध्यम शरकला वेध सिद्ध इस प्रकार हैं—
भौ. ११०′। बु. १५२′। गु. ७६′। शु. १३६′। श. १३०′।
बुध और शुक्र के गणितागत पात में उनका शीघ्र केन्द्र जोड़ देने से स्पष्ट पात होता है।

उपपत्ति।

त्रिज्यातुल्य शीघ्र कर्ण में, वेधोपलब्ध मध्यम शर कला लिखी हैं। बुध शुक्र के पातभगण का विशेष गोलाध्याय में सविस्तर लिखा है ॥१॥

इदानीं ग्रहविक्षेपानयनमाह।

मन्दस्फुटात्खेचरतः स्वपात-
युक्ताद्भुजज्या पठितेषुनिघ्नी।
स्वशीघ्रकर्णेन हृता शरः स्यात्
सपातमन्दस्फुटगोलदिक्कः ॥ २ ॥

मन्दस्फुटाद्ग्रहात्स्वपातयुक्ताद्भुजज्या साध्या। सा ग्रहस्य पठितेन शरेण गुण्या स्वशीघ्रकर्णेन भाज्या। फलं स्फुटविक्षेपः स्यात्। सपातो मन्दस्फुटो ग्रहो यदि राशिषट्कादूनस्तदोत्तरो विक्षेपोऽन्यथा दक्षिणः।

अत्रोपपत्तिः। मन्दस्फुटो ग्रहः स्वशीघ्रप्रतिमण्डले भ्रमति। तत्र च तस्य पातोऽपि। पातो नाम प्रतिमण्डलविमण्डलयोःसंपातः। तस्मादारभ्य विक्षेपप्रवृत्तिः। इह सुसरलवंशशलाकया कक्षामण्डलं तत्प्रतिमण्डलं च छेद्यकोक्तविधिना विरचय्य तत्र शीघ्रप्रतिमण्डले मेषादेःप्रतिलोमं पातस्थानं च चिह्नयित्वा तत्र विमण्डलं निवेश्यम्। पातचिह्नाद्राशिषट्कान्तरे विमण्डलप्रतिमण्डलयोरन्यं संपातं कृत्वा पातात् पूर्वतस्त्रिभेऽन्तरे प-

ठितविक्षेपप्रमाणेन प्रतिमण्डलादुत्तरतो विमण्डलं केनचिदाधारेण स्थिरं कृत्वा मेषादेरनुलोमं मन्दस्फुटं ग्रहं प्रतिमण्डले विमण्डले च दत्त्वा विक्षेपोपपत्तिं दर्शयेत्। तत्र तयोर्ग्रहयोर्यावान् विप्रकर्षस्तावांस्तत्र प्रदेशे विक्षेपः। अथ तस्यानयनम्। पातस्थाने हि विक्षेपाभावः। ततस्त्रिभेऽन्तरे परमो विक्षेपः। अन्तरेऽनुपातेन। अतः पातग्रहचिह्नयोरन्तरं तावज्ज्ञेयम्। तच्च तयोर्योगे कृते भवति। यतो मेषादेरनुलोमं ग्रहो दत्तः। पातस्तु प्रतिलोमम्। अतस्तयोर्योगः शरार्थं किल केन्द्रम्। तस्य दोर्ज्या साध्या। यदि त्रिज्यातुल्यदोर्ज्यया पठितविक्षेपतुल्यं प्रतिमण्डलविमण्डलयोरन्तरं लभ्यते तदाभीष्टया ग्रहस्थानभवया दोर्ज्यया किमिति। फलं शीघ्रकर्णाग्रे विक्षेपः। अथ द्वितीयोऽनुपातः। यदि शीघ्रकर्णाग्रे एतावान् विक्षेपस्तदा त्रिज्याग्रे क इति। अत्र गुणकभाजकयोस्त्रिज्यातुल्ययोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते सति दोर्ज्यायाः पठितविक्षेपो गुणः शीघ्रकर्णो हरः। फलं कक्षाप्रदेशे विक्षेपो ज्यारूपस्तस्य चापं स्फुटविक्षेप इत्यर्थः। भूचिह्ने सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं विमण्डले ग्रहस्थाने निबद्धं सूत्रं कर्णः। सूत्रकक्षामण्डलयोरन्तरं स्फुटः शर इत्यादि सर्वं छात्राय दर्शनीयम्।

भाषाभाष्य।

मन्दस्पष्ट ग्रह में, उसका पात जोड़कर भुजज्या साधन करना। उसको ग्रह के पठित शर से गुणाकर, उसके शीघ्रकर्ण का भाग देना, फल स्पष्टशर होगा। सपात मन्दस्पष्ट ग्रह यदि छ राशि से कम हो तो उत्तर विक्षेप और अधिक हो तो दक्षिण विक्षेप होता है।

उपपत्ति ।

मन्दस्पष्ट ग्रह अपने शीघ्रप्रतिवृत्त में भ्रमण करता है और वहीं उसका पात भी । प्रतिवृत्त और विमण्डल के संपात की पात संज्ञा है । संपात में शर शून्य और तीन राशि में वह परम होता है । पात की विपरीत गति से ग्रह और पात का योग करने से दोनों का अन्तर विक्षेपकेन्द्रदोर्ज्या होती है ।

इष्टशर के लिए अनुपात—

त्रि : पश : : इदोः $\frac{\text{पश} \times \text{इदो}}{\text{त्रि}}$ = शीघ्रकर्णाग्र में शर ।

शीक : $\frac{\text{पश} \times \text{इदो}}{\text{त्रि}}$: : त्रि : $\frac{\text{पश} \times \text{इदो} \times \text{त्रि}}{\text{शीक} \times \text{त्रि}}$ = कक्षा प्रदेश में शर ।

∴ स्पष्टशर = $\frac{\text{पश} \times \text{इदो}}{\text{शीक}}$ । इसप्रकार भौमादि ग्रहों का शर सिद्ध होता है । विशेष गोलाध्याय में 'शीघ्रकर्णेन भक्ताः—' की उपपत्ति में हमने विस्तारपूर्वक लिखा है ॥ २ ॥

इदानीं विक्षेपस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यतालक्षणमन्यत् स्फुटीकरणमाह ।

त्रिज्यावर्गाद्यनवलनज्याकृतिं प्रोज्झ्य मूलं
यष्टिर्यष्ट्या द्युचरविशिखस्ताडितस्त्रिज्ययाप्तः ।
यद्वा राशित्रययुतखगद्युज्यकाघ्नस्त्रिमौर्व्या
भक्तः स्पष्टो भवति नियतं क्रान्तिसंस्कारयोग्यः ॥ ३ ॥

ग्रहस्य युतायनांशोडुपकोटिशिञ्जिनीत्यादिनायनं वलनं साध्यम् । अत्र वलनशब्देन वलनज्या ग्राह्या न धनुः । तथा इतःप्रभृति बृहज्ज्याभिः कर्म कर्तव्यम् ।

यतो बृहज्ज्याभिः शरज्या शरकलातुल्यैव भवति । तस्यानयनम् । वलनस्य वर्गं त्रिज्यावर्गादपास्य यन्मूलं लभ्यते तद्यष्टिसंज्ञं ज्ञेयम् । तया यष्ट्या ग्रहविक्षेपो गुणितस्त्रिज्यया भक्तः स्फुटः क्रान्तिसंस्कारयोग्यो भवति । अथानुकल्प उच्यते । यद्वा राशित्रययुतखगद्युज्यकाघ्न इति । राशित्रययुतस्य ग्रहस्य यावती द्युज्या तया वा गुणस्त्रिज्यया भक्तः स्फुटो भवति । अत्र भाजकस्यैकत्वाद्गुणकस्याल्पत्वात् फलं स्वल्पान्तरमित्यतोऽनुकल्पेनोक्तम् ।

अत्रोपपत्तिः । क्रान्त्यग्रात् किल शरो भवति । शराग्रे ग्रहः । क्रान्तिः शरेण संस्कृता स्फुटा भवति । अत्र गणितागतेनैव शरेण क्रान्तिस्फुटा क्रियते तदयुक्तम् । यतः क्रान्तिर्विषुवन्मण्डलात् तिर्यग्ध्रुवाभिमुखी । विक्षेपस्तु क्रान्तिमण्डलात् तिर्यग्रूपः कदम्बाभिमुखः । यथोक्तं गोले ।

सर्वतः क्रान्तिसूत्राणां ध्रुवे योगो भवेद्यतः ।
विषुवन्मण्डलप्राच्या ध्रुवे याम्या तथोत्तरा ॥
सर्वतः क्षेपसूत्राणां ध्रुवाज्जिनलवान्तरे ।
योगः कदम्बसंज्ञोऽयं ज्ञेयो वलनबोधकृत् ॥
तत्रापमण्डलप्राच्या याम्या सौम्या च दिक् सदा ।
कदम्बभ्रमवृत्तं चेति ।

अतो विक्षेपः कदम्बाभिमुखो भवति । ध्रुवाभिमुख्यां क्रान्त्या सह कथं तस्य भिन्नदिक्कस्य योगवियोगावुचितौ । तयोर्यद्भिन्नदिक्त्वं तदायनवलनवशात् । अथ तद्गोलोपरि प्रदर्श्यते । यथोदितं गोलं विरचय्य

क्रान्तिवृत्ते यद्ग्रहचिह्नं तस्मात् परितो नवतिभागान्तरेऽन्यत् त्रिज्यावृत्तं निवेश्यम् । अथ ग्रहचिह्नाद्ध्रुवोपरिगामि सूत्रं तस्मिन् वृत्ते यत्र लगति तत्कदम्बयोरन्तरमायनं वलनमतस्तस्य ज्या भुजः । ग्रहचिह्नकदम्बयोरन्तरस्य ज्या त्रिज्या सकर्णः । तयोर्वर्गान्तरपदं कोटिः । सा च यष्टिसंज्ञा । क्रान्त्यग्राद्विक्षेपः कदम्बाभिमुखः कर्णरूपः । तस्य कोटिरूपकरणायानुपातः । यदि त्रिज्याकर्णे यष्टिः कोटिस्तदा शरकर्णे का । फलं क्रान्तिसंस्कारयोग्यो विक्षेपो भवति । तेन संस्कृता क्रान्तिः स्फुटा । विक्षेपाग्रस्थस्य ग्रहस्य विषुवन्मण्डलस्य च यद्याम्योत्तरमन्तरं सा स्फुटा क्रान्तिरुच्यते । अथानुकल्पेपीयमेव वासना । अत्र सत्रिराशिग्रहक्रान्तिज्या भुजस्थाने कल्पिता स भुजः । तद्द्युज्या यष्टिस्थाने कल्पिता सा कोटिः । तत्रापि त्रिज्याकर्ण इति सर्वमुपपन्नम् ।

प्रभा ।

द्युचरविशिखो ग्रहशरः, राशित्रययुतो यो खगस्तस्य द्युज्यकयाघ्नो गुणितः ।

भाषाभाष्य ।

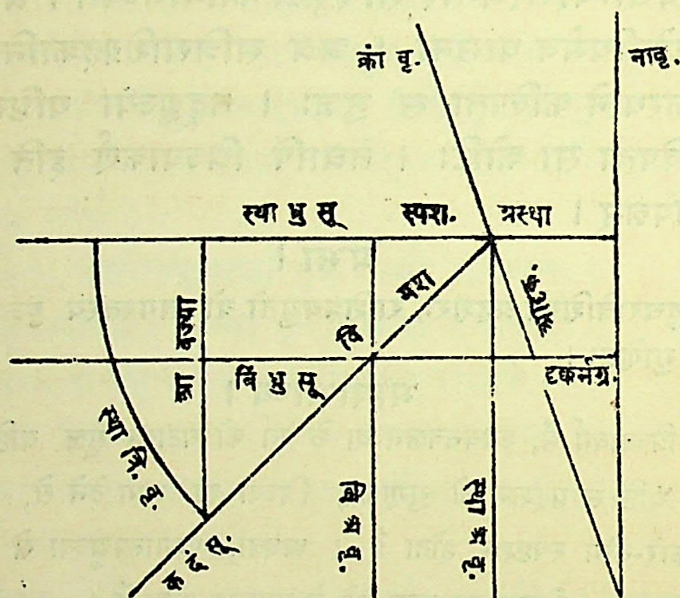
त्रिज्यावर्ग में, आयनवलनज्या के वर्ग को घटाकर मूल यष्टि होती है । यष्टि से ग्रहशर को गुणाकर, त्रिज्या का भाग देने से, क्रान्ति संस्कार-योग स्पष्टशर होता है । अथवा, परमाल्पद्युज्या से ग्रहशर को गुणाकर, त्रिज्या का भाग देने से स्पष्टशर होता है ।

उपपत्ति ।

१—क्रान्ति के आगे शर और शराग्र में ग्रह रहता है । इसलिए क्रान्ति में शर का संस्कार करने से स्पष्टक्रान्ति होती है । परन्तु शर

कदम्बवृत्त में होने से उसका ध्रुववृत्तीय क्रान्ति में संस्कार अयुक्त है। इसलिए शर का ध्रुववृत्त में परिणामन आवश्यक है। नीचे के क्षेत्र में स्थिति यों है—ग्रहस्थान से कदम्ब तक कदम्बसूत्र में त्रिज्याकर्ण, स्थानीय त्रिज्यावृत्त में आयनवलनज्या भुज। दोनों का वर्गान्तरमूल स्थानीय ध्रुवसूत्र में यष्टि कोटि। दूसरा क्षेत्र, स्थान से बिम्ब तक कदम्बसूत्र में मध्यमशर कर्ण, बिम्बीयाहोरात्रवृत्त में भुज, स्थानीय ध्रुवसूत्र में स्पष्टशर कोटि।

क्षेत्र।



स्पष्टशरार्थ अनुपात—प=स्पष्टशर, य=यष्टि, आ=आयनवलनज्या, म=मध्यम शर ।

$$\text{त्रि} : \text{य} :: \text{म} : \frac{\text{म} \times \text{य}}{\text{त्रि}} = \text{प};$$

सत्रिभग्रह की क्रान्तिज्या स्वल्पान्तर से आयनवलनज्या के समान होती है, उसको भुज और उसकी द्युज्या को यष्टि मानकर,

$$\text{त्रि} : \text{सक्रांद्यु} :: \text{म} : \frac{\text{सक्रांद्यु} \times \text{म}}{\text{त्रि}} = \text{प},$$ इस तरह दोनों प्रकार उपपन्न हुए ।

२—आचार्य के मत से पहला प्रकार सूक्ष्म और दूसरा स्थूल है । परन्तु दोनों प्रकार स्थूल हैं; सूक्ष्मता के लिये उपपत्ति यों है— ऊपर के क्षेत्र में, यष्टिकोटि, आयनवलनज्या भुज, त्रिज्याकर्ण, यह एक जात्य है । दूसरा, स्पष्टशरज्या कोटि, आयनदृक्कर्मकालज्या भुज, शरज्या कर्ण; ये दोनों क्षेत्र सजातीय हैं । अनुपात किया—

$$\text{द्यु} : \text{पद्यु} :: \text{शज्या} : \frac{\text{श} \times \text{पद्यु}}{\text{द्यु}} = \text{स्पष्टशरज्या}$$ । इसकी कोटिज्या=स्पशको; दोनों की क्रान्तिज्या और द्युज्या के साथ भावना करने से हुआ— $\frac{\text{श} \times \text{पद्यु}}{\text{त्रि}}$; $\frac{\text{स्पशको} \times \text{क्रां}}{\text{त्रि}}$, इन फलों का योगान्तर आचार्य संमत स्पष्टक्रान्तिज्या होती है । स्पष्टशरज्या का अनुपात यही सूक्ष्म है * ।

---

* ब्रह्मगुप्त ने, कदम्बवृत्तीय शर को ही स्वल्पान्तर से ध्रुववृत्तीय, ग्रहशरों के अल्प होनेसे मान लिया है, और उसी के संस्कार से स्पष्टक्रान्तिज्या का साधन किया है । यही अन्तर आचार्य ने मिटाया है । पर वह भी स्पष्टशर, बिम्बीय—स्थानीय अहोरात्रवृत्तान्तर चाप के समान गोलयुक्ति से नहीं होता । इसलिये यह उपपत्ति लिखी है।

३—कमलाकर ने तत्त्वविवेक के उदयास्ताधिकार में 'त्यक्त्वा गोलायनादिं वा (श्लो० ३९) इत्यादि उदाहरण दिखलाकर आचार्य के साधित स्पष्टक्रान्ति का व्यभिचार दिखलाया है कि गोलसन्धि और अयनसन्धि को छोड़कर, गोल में इष्टदिशा में, ९०° अंश शर में कदम्ब तारा होने पर उसकी क्रान्तिज्या परमाल्पद्युज्या के समान होती है। पर इस साधन से नहीं सिद्ध होती।

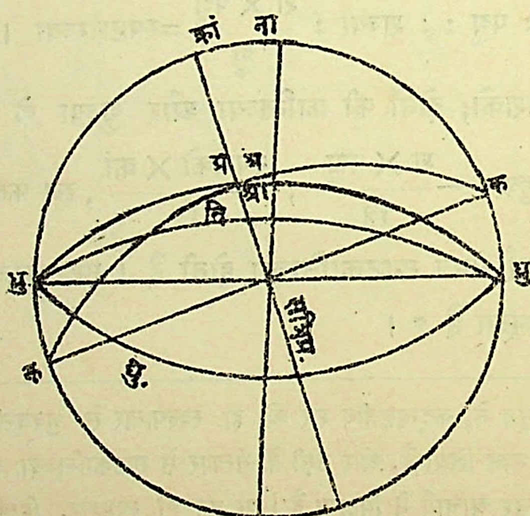
तत्त्वविवेक में ध्रुववृत्तीय क्रान्ति की आद्य और कदम्बवृत्तीय की अन्य संज्ञा करके, दोनों का साधन किया है। फिर शर संस्कार से स्पष्टान्यक्रान्ति साधन करके, स्पष्टक्रान्तिज्या का साधन किया है। चमत्कृत होने से यहां लिखा जाता है।

नीचे लिखे क्षेत्र में—

अन्यक्रान्ति=ग्र अ, शर=ग्रविं।

ग्र अ ± ग्रविं=स्पष्टान्यक्रान्ति।

क्षेत्र।



अविं=कर्ण, विंआ=स्पष्टक्रान्ति=एकभुज, अआ=द्वितीयभुज ।
इसप्रकार अविंआ=प्रथमचापजात्य ।

अग्र=अन्यक्रान्ति=कर्ण, आंग्र=आद्यक्रान्ति=एकभुज, अआं,
दूसरा भुज । अग्रआं दूसरा चापजात्य ।

दूसरे क्षेत्र से अनुपात किया—

ग्र अ : त्रि : : ग्र आं : अकोणज्या=सत्रिभग्रहद्युज्या ।

प्रथमक्षेत्र से अनुपात किया—

त्रि : अविं : : अकोणज्या=विंआ=स्पष्टक्रान्ति ।

$$\frac{\text{अविं} \times \text{त्रि} \times \text{ग्रआं}}{\text{त्रि} \times \text{ग्रअ}} = \frac{\text{अविं} \times \text{ग्रआं}}{\text{ग्र अ}}$$

अर्थात्— $\frac{\text{स्पष्टान्यक्रान्तिज्या} \times \text{आद्यक्रान्तिज्या}}{\text{अन्यक्रान्तिज्या}}$ =स्पक्रांज्या ।

इसी चापक्षेत्र में—

त्रि : अविं : : अकोज्या : विंआ

$$\therefore \text{स्पक्रांज्या} = \frac{\text{स्पष्टान्यक्रान्तिज्या} \times \text{सत्रिभग्रहद्युज्या}}{\text{त्रि}} ।$$

इस प्रकार सब उपपन्न होता है ॥ ३ ॥

इदानीमायनं दृक्कर्माह ।

आयनं वलनमस्फुटेषुणा
संगुणं द्युगुणभाजितं हृतम् ।
पूर्णपूर्णधृतिभिर्ग्रहाश्रित-
व्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ॥ ४ ॥
अस्फुटेषुवलनाहतिस्तु वा
यद्विहृत् फलकलाः स्युरायनाः ।
ता ग्रहेऽयनपृषत्कयोः क्रमा-
देकभिन्नककुभोर्ऋणं धनम् ॥ ५ ॥

ग्रहस्य यदायनं वलनं तदस्फुटेन संगुण्य तद्द्युज्यया भजेत्। फलमष्टादशशतैः १८०० संगुण्य यस्मिन् राशौ ग्रहो वर्तते तस्य निरक्षोदयासुभिर्विभजेत्। फलमायनकला भवन्ति। अथवायनवलनकला अस्फुटेन शरेण संगुण्य षष्ट्या विभजेत्। फलमायनकलाः स्वल्पान्तरा भवन्तीत्यनुकल्पः। ग्रहो यस्मिन्नयने वर्तते तस्यायनस्य ग्रहशरस्य च यद्येका दिक् तदा ता आयनकला ग्रहे ऋणं कार्याः। यदि तयोर्भिन्ना दिक् तदा धनं कार्याः। एवं कृतायनदृक्कर्मको ग्रहो भवति।

अत्रोपपत्तिर्गोले सविस्तराभिहिता। अथेहापि किंचिदुच्यते। क्रान्तिवृत्ते यद्ग्रहस्थानचिह्नं तद्यदा क्षितिजे लगति न तदा ग्रहः। यतोऽसौ शराग्रे। शराग्रं हि कदम्बाभिमुखम्। यदोत्तरकदम्बः क्षितिजादुपरि भवति तदा तदुन्मुखेन शरेण ग्रहः क्षितिजादुन्नाम्यते। क्षितिजकदम्बयोरन्तरं तदैवोत्तरमायनं वलनम्। यदा क्षितिजादधः कदम्बस्तदा शरेण ग्रहो नाम्यते क्षितिजकदम्बयोरन्तरे तदा दक्षिणं वलनम्। अतो वलनवशेन ग्रहस्योन्नामनं नामनं च। उन्नामितो ग्रह आदावेवोदितः। नामितः पश्चादुदेष्यति। स च कियता कालेनेति तदानयनं त्रैराशिकेन। यदि त्रिज्यातुल्ये कर्णे कदम्बक्षितिजयोरन्तरकलावलनसंज्ञा लभ्यन्ते तदा अस्फुटशरतुल्ये किमिति। फलं ग्रहादधोऽवलम्बरूपाः कला भवन्ति। ग्रहस्थाने यद् द्युज्यावृत्तं तत्र ता जीवा रूपाः। तासां त्रिज्यावृत्तपरिणामायान्योऽनुपातः। यदि द्युज्यावृत्त एतावती ज्या तदा त्रिज्यावृत्ते कियतीत्येवं याः फलकला-

स्ता एवासवः। फलस्य धनुः स्वल्पत्वान्नोत्पाद्यत इति न कृतम्। तैः क्रान्तिवृत्ते परिणामायान्योऽनुपातः। यदि निरक्षोदयासुभी राशिकला अष्टादशशतानि लभ्यन्ते तदैभिरसुभिः किमिति। फलं क्रान्तिवृत्तपरिणताः कला भवन्ति। यदोत्तरं किल वलनमुत्तरश्च किल विक्षेपस्तदा तेन विक्षेपेणोन्नामितो ग्रहो यावत् क्षितिजं नीयते तावत्क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानात् पृष्ठतः क्रान्तिवृत्तं क्षितिजे लगति तदेव स्थानं कृतदृक्कर्मको ग्रहः। किं बहुना। गोले क्रान्तिमण्डले यथास्थानं विमण्डलं विन्यस्य तत्र ग्रहं च दत्वा चिह्नं कार्यम्। अथ ध्रुवाद्ग्रहोपरिनीयमानं वृत्ताकारं सूत्रं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तत्र कृतदृक्कर्मको ग्रहः। एवं ध्रुवान्नीयमानेन सूत्रेण शरकृतं त्र्यस्रं भवति। क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानादग्रतः पृष्ठतो वा आयनकलातुल्येन्तरे तत् सूत्रं क्रान्तिवृत्ते लगति। अत आयनकलाभुजः। अस्फुटविक्षेपः कोटिः। शराग्रक्रान्तिवृत्तयोरन्तरे यावत् सूत्रखण्डं स तत्र कर्णः। एतत् त्र्यस्रं वलनत्र्यस्रसम्भवम्। अतस्त्रैराशिकेनायनकलानामानयनम्। यदि यष्टिकोट्या वलनकलाभुजो लभ्यते तदा अस्फुटविक्षेपकोट्या किमिति। फलमायनकला इति सर्वमुपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

ग्रह के आयनवलन को, उसके मध्यमशर से गुणाकर उस की द्युज्या का भाग देकर, फलको, १८०० से गुणाकर, जिस राशि में ग्रह हो उसके, निरक्षोदयासुका भाग देने से फल आयनकला होती है। अथवा,—आयनवलन कला को मध्यमशर से गुणाकर, यष्टि का भाग देने से, फल स्वल्पान्तर से, आयनकला होती है। ग्रहायन और

शर की एक दिशा में, ग्रह में आयनकला ऋण, भिन्नदिशा में धन करने से आयनदृक्कर्म संस्कृत—ग्रह सिद्ध होता है।

उपपत्ति।

१—यहां क्षेत्र पूर्व लिखित जानना चाहिए।

शरवश ग्रहका नामन और उन्नामन आदि गोलाध्याय में सविस्तर लिखा है।

अनुपात—

$$\text{त्रि} : \text{आवज्या} :: \text{मश} : = \frac{\text{आवज्या} \times \text{मश}}{\text{त्रि}}$$; फलस्थानीय

द्युज्यावृत्त में हुआ।

$$\text{द्यु} : \frac{\text{आवज्या} \times \text{मश}}{\text{त्रि}} :: \text{त्रि} : = \frac{\text{आवज्या} \times \text{मश}}{\text{द्यु}} = \text{दृक्कर्मांसु}।$$

आयनकलार्थ अनुपात—

स्व=स्वोदयासु; र=राशिकला।

$$\text{स्व} : \text{र} :: \frac{\text{आवज्या} \times \text{मश}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{र} \times \text{आवज्या} \times \text{मश}}{\text{स्व} \times \text{द्यु}},$$

$$\therefore \text{आयनकला} = \frac{\text{आवज्या} \times \text{श} \times १८००}{\text{द्यु} \times \text{स्व}}।$$

ध्रुवचिह्न से ग्रहगत वृत्ताकार सूत्र जहां क्रान्तिवृत्त में लगें वहां आयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रहस्थान होता है। वहां, आयनकलाभुज, अस्फुट-शर कोटि, शराग्र—क्रान्तिवृत्त के बीच में कर्ण, यह क्षेत्र बनता है। इस से अनुपात किया।

$$\text{य} : \text{वकला} :: \text{मश} : = \frac{\text{वकला} \times \text{मश}}{\text{य}} = \text{आयनकला}।$$

इस प्रकार सब उपपन्न हुआ।

२—वास्तव में विम्बीयद्युज्या से आयनदृक्कर्म सूक्ष्म होता है, सो इस प्रकार—

नीचे लिखे क्षेत्र में—

ग्रहगत कदम्बसूत्र में ग्रविं=शर=कोटि ।

विम्बीयध्रुवसूत्र में विं अ=कर्ण ।

क्रान्तिमण्डल में ग्र अ=भुज ।

यों ग्र अविं चापजात्य हुआ । यहां अ चिह्न आयनदृग्ग्रहका है ।

विंग्रअ कोण=९०°, विंअग्र कोण=आयनग्रहयष्टिचाप ।

इसलिए—

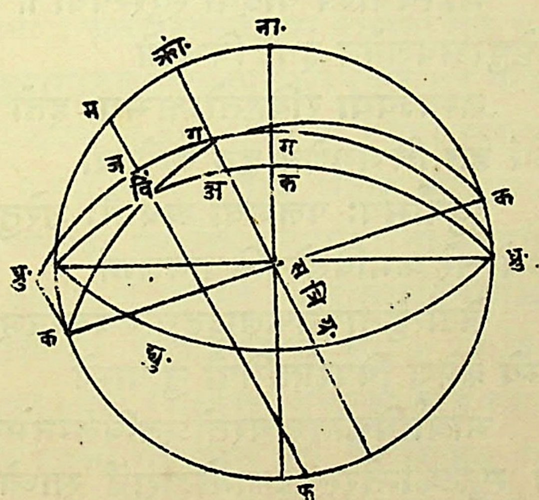
त्रि : यष्टि : : कर्णज्या : शरज्या ।

ग्रय = यष्टि = कोटि, कय = आयनवलनज्या = भुज ।

ग्रक = त्रिज्या = कर्ण ।

यों ग्रयक, यह पहला चापजात्य है ।

क्षेत्र,



शरज्या = कोटि = अबिंज्या ।

कर्णज्या = कर्ण = विंअज्या ।

इनका वर्गान्तरमूल = भुज । यह दूसरा चापजात्य है ।

अयनग्रहयष्टि : आवज्या : : शज्या : दूसरे जात्यकी भुजज्या ।

यहां दूसरा जात्यभुज कदम्ब से शरकोटिज्या व्यासार्ध से वृत्त मबिंफ में, बिम्ब से अयनग्रह और कदम्बसूत्र के अन्तर में ज्यारूप है । त्रिज्याव्यासार्ध में परिणामन के लिए अनुपात——

शरकोज्या : साधितभुज : : त्रिज्या : अ अ ज्या ।

फलका चाप क्रान्तिवृत्त में आयनदृक्कर्मकला रूप चापजात्य का भुज सिद्ध हुआ । इस प्रकार सब उपपत्ति स्पष्ट होती है ॥ ४– ५ ॥

इदानीमक्षजं दृक्कर्माह ।

स्फुटास्फुटक्रान्तिजयोश्चरार्धयोः
समान्यदिक्त्वेन्तरयोगजासवः ।
पलोद्भवाख्या भलभः सदा शरे
महत्यथाल्पे यदिवा स्युरन्यथा ॥ ६ ॥

स्पष्टेषुरक्षवलनेन हतो विभक्तो
लम्बज्यया रविहृतोऽक्षभया हतो वा ।
लब्धं हतं त्रिभगुणेन हृतं द्युमौर्व्या
स्युर्वासवः पलभवा अथ तैः शरेतु ॥ ७ ॥

याम्योत्तरे क्रमविलोमविधानलग्नं
खेटात्कृतायनफलादुदयाख्यलग्नम् ।
सौम्ये क्रमेण विपरीतमिषौ तु याम्ये
भार्धाधिकात्खचरतोऽस्तविलग्नमेवम् ॥ ८ ॥

ग्रहस्य स्फुटक्रान्तेरस्फुटक्रान्तेश्चरार्धे साध्ये । यदि स्फुटास्फुटक्रान्ती तुल्यदिक्त्वे तदा चरार्धयोरन्तरं कार्यम् ।

यदि भिन्नदिक्त्वे तदा योगः। एवं येऽसवो भवेयुस्ते पलो-
द्भवा ज्ञेयाः। ग्रहस्य भस्य वा यदा महांश्छरस्तदैवम्।
यदाल्पस्तदान्यथा वा पलोद्भवासवः साध्याः। ग्रहस्य
स्पष्टः शरोऽक्षजवलनेन गुणयो लम्बज्यया भाज्यः।
अथवा विषुवत्या गुणितो द्वादशभिर्भाज्यः। यल्लब्धं
तत् त्रिज्यया गुण्यं द्युज्यया भाज्यं फलं पलोद्भवा असवो
भवन्तीत्यनुकल्पः। अथ कृतायनदृक्कर्मकं ग्रहं रविं प्रक-
ल्प्य तैः पलोद्भवासुभिर्लग्नं साध्यम्। यदि ग्रहस्य याम्यः
शरस्तदा क्रमविलग्नम्। यदि सौम्यस्तदा विलोम-
लग्नम्। एवं कृते सति ग्रहस्योदयलग्नं भवति। अथ
तमेव ग्रहं सभार्धं रविं प्रकल्प्य तैरेवासुभिरुत्तरे शरे यत्
क्रमलग्नं याम्ये विलोमं क्रियते तद्ग्रहस्यास्तलग्नम्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र गोले विषुवन्मण्डलं स्वाक्षांशै-
र्यावन्नामितं तावदुन्मण्डलमुत्तरगोले क्षितिजादुपरिल-
गति याम्येऽधः। यतस्तत्रस्थो ग्रहः स्वचरार्धासुभिरुन्नतिं
नतिं च गतः। अतश्चरार्धस्य या वासना सैव पलोद्भवा-
सूनाम्। स्फुटास्फुटक्रान्तिजयोश्चरार्धयोरन्तरे यावन्तोऽस-
वस्तावन्तः शरभवा इत्यर्थाज्ज्ञातम्। यतस्तयोरन्तरं शर
एव। एवं तुल्यदिक्त्वे। यदा महता शरेणान्यदिक्त्वं
नीता क्रान्तिस्तदा शरस्यैकं खण्डमुत्तरतोऽन्यद्दक्षिणतः।
तयोर्योगे यतः शरो भवति। अतस्तज्जनितयोश्चरार्धयो-
र्योगे शरजनिताः पलोद्भवासवः स्युः। एवं हि महति
शरे। अथाल्पे। ग्रहः किलोत्तर उत्तरश्च तस्य शरस्तदाक्ष-
वशाच्छरेण ग्रहस्य यदुन्नमनं तत् त्रैराशिकेन साध्यते।
यदि लम्बज्यया कोट्याक्षवलनतुल्यो भुजस्तदा स्फुटश-

रतुल्यया किमिति। अत्र यत्फलं तद् ग्रहद्युज्यावृत्ते ज्या-
रूपं भवति। अथवा लघुना क्षेत्रेणानुपातः। यदि द्वादशा-
ङ्गुलकोट्या पलभाभुजस्तदा स्फुटशरतुल्यया किमिति।
फलं तुल्यमेव। अथ त्रिज्यावृत्ते परिणामायानुपातः।
यदि द्युज्यावृत्त एतावती ज्या तदा त्रिज्यावृत्ते कियतीति। फलस्य धनुः कर्तुं युज्यते। तच्छरस्याल्पत्वान्नो-
पपद्यत इति न कृतम्। आयनदृक्कर्मण्यस्फुटविक्षेपादसवः साधिताः। इह तु स्फुटात्। तत्र कारणमुच्यते।
तेन दृक्कर्मणा निरक्षदेशक्षितिजस्थो ग्रहः कृतः। तत् क्षि-
तिजमन्यदेश उन्मण्डलम्। शरमूले यद् द्युज्यावृत्तं शराग्रे
च यत् तयोर्वृत्तयोरुन्मण्डले यावदन्तरं तावान् स्फुटः
शरः। स तु कोटिरूपः। अस्फुटः कर्णरूपः। अतोऽत्र
कोटिरूपेण पलोद्भवा असवः साधिताः। कृतायनदृक्-
र्मको ग्रहोऽक्षवशात् प्रागुदित उदेष्यति वा यैरसुभिस्ते-
ऽत्र पलोद्भवाख्याः। अथ याम्ये शरे तैरसुभिः क्षितिजा-
दुपरिस्थो ग्रह यावदुपरि क्षितिजं नीयते तावत् कृतायन-
दृक्कर्मकग्रहादग्रतः क्रान्तिवृत्तं क्षितिजे लगति। यदि सौम्यः
शरस्तदा तैरसुभिः क्षितिजादुपरिस्थो ग्रहः क्षितिजं याव-
दधो नीयते तावत् कृतायनदृक्कर्मकाद् ग्रहात् पृष्ठतः क्रा-
न्तिवृत्तं क्षितिजे लगति। अत उक्तं शरे याम्योत्तरे क्रमवि-
लोमविधानलग्नमित्यादि। एवं कृत उदयलग्नं जातम्।
अस्मादुदयलग्नसाधनाद् व्यस्तमस्तलग्नसाधनम्। अतो
यैरसुभिर्विक्षेपेण प्राच्यां ग्रहः क्षितिजादुन्नाम्यते तैरेव
प्रतीच्यां नाम्यते। यैर्नाम्यते तैरेवोन्नाम्यते। अथ प्रतीच्यां
ग्रहेऽस्तं गच्छति प्राच्यां यल्लग्नमुदेति तदस्तलग्नम्।

अतो भार्धाधिकात् खचरत इत्युक्तम्। इदं सर्वं गोलोपरि सम्यग्दृश्यते ।

भाषाभाष्य ।

ग्रह की स्पष्ट और मध्यम क्रान्ति सम्बंधी चरार्ध साधन करके, क्रान्तियों की तुल्यदिशा में चरार्धों का अन्तर, और भिन्न दिशा में योग करने से जो असु हों, वे पलोद्भवासु होते हैं । ग्रह किंवा, नक्षत्र के बड़े शर में, इस प्रकार पलोद्भवासुओं का साधन होताहै । छोटे शर में दूसरी विधि से होता है–ग्रह के स्पष्ट शर को अक्षवलन से गुणाकर, लम्बज्या का भाग देना, अथवा—त्रिज्या से गुणाकर द्वादश का भागदेना, फलको त्रिज्या से गुणाकर द्युज्या का भाग देने से लब्धफल पलोद्भवासु होते हैं ।

आयनदृक्कर्म-संस्कृतग्रह को सूर्य कल्पना करके, उक्त पलोद्भवासुओं से लग्न साधन करना । ग्रह के दक्षिणशर में क्रमलग्न, उत्तरशर में विलोमलग्न करने से ग्रह का उदयलग्न होता है । और उक्त ग्रह को ही सषड्भ सूर्य मानकर, पलासुओं से, उत्तर शर में क्रम, दक्षिण में विलोमलग्न साधन करने से, ग्रह का अस्तलग्न होता है ।

उपपत्ति ।

स्फुट और अस्फुटक्रान्तिके चरान्तरासु शरोत्पन्न हैं क्योंकि दोनों का अन्तर शर ही है । शरवश ग्रह का जो उन्नमन नमन होता है, उसके साधनार्थ अनुपात—

$$\text{लंज्या : आक्षव : : स्पश :} = \frac{\text{आक्षव} \times \text{स्पश}}{\text{लंज्या}};$$

$$\text{अथवा, द्वा : पभा : : स्पश :} = \frac{\text{प्रभा} \times \text{स्पश}}{\text{द्वा}};$$ दोनों फल ग्रहगत द्युज्यावृत्त में ज्यारूप होते हैं ।

$$\text{द्यु : यह फल : : त्रि} = \frac{\text{आक्षव} \times \text{स्पश} \times \text{त्रि}}{\text{लंज्या} \times \text{द्यु}} = \text{पलासु ।}$$

आयनदृक्कर्म-संस्कृत ग्रह अक्षांशवश, जिन असुओं से उदित हुआ है या होगा, वही पलासु हैं। यह फल कोटिरूप स्पष्टशर से सिद्ध हुआ है। स्पष्टशर कोटि, मध्यमशर कर्ण।

याम्यशर में, इस असुकाल से जब क्षितिज में ग्रह आता है तब आयनदृक्कर्म-संस्कृत ग्रह से आगे क्रान्तिवृत्त का प्रदेश क्षितिज में लगता है। उत्तरशर में, पीछे लगता है। इस प्रकार वह उदयलग्न होता है। उससे उलटा अस्तलग्न साधन होताहै। पश्चिम में ग्रहास्त होते समय जो पूर्व में लग्न उदित होता है, वह अस्तलग्न कहा जाता है। इसलिए उसमें छराशि जोड़ते हैं। इस प्रकार सब उपपन्न होताहै॥ ६-८॥

इदानीमुदयास्तलग्नयोः स्वरूपं प्रयोजनं चाह।

निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे

समुदयोऽपि भवेद्भनभःसदाम्।

भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे

प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्॥ ९॥

स्पष्टार्थम्।

भाषाभाष्य।

अपने अपने उदयलग्न के उदय में, उस ग्रह नक्षत्र का उदय और अस्तलग्न के उदय में अस्त, प्रवहवश प्रतिदिन होता है॥ ९॥

इदानीं ग्रहस्य दृश्यादृश्यत्वलक्षणमाह।

निशीष्टलग्नादुदयास्तलग्ने

न्यूनाधिके यस्य खगः स दृश्यः।

दिनेऽपि चन्द्रो रविसन्निधाना-

न्नास्तं गतश्चेत् सति दर्शने भा॥ १०॥

दिनकरेऽस्तं गते यदिष्टकाले लग्नं तदिष्टलग्नम्। त-स्माद्ग्रहस्योदयाख्यलग्नं न्यूनमस्ताख्यं चाधिकं यदि

भवति तदा ग्रहो दृश्यः । इतोऽन्यथा चेददृश्यः । एवं लक्षणे सति चन्द्रो दिवसेऽपि दृश्यः । यदि ग्रहो दृश्यस्तदा ग्रहस्य छाया साध्या ।

भाषाभाष्य ।

रात्रि में, इष्टलग्न से, ग्रह का उदयलग्न कम और अस्तलग्न अधिक होने पर ग्रह का उदय, और इससे विपरीत में अस्त होता है । दिन में भी यदि चन्द्र रवि सान्निध्य से अस्त न भया हो तो देखने पर उसका छायासाधन होता है ।

उपपत्ति ।

उदयलग्न के समान लग्न में पूर्वक्षितिज में ग्रह उदय होता है । पश्चिम क्षितिज में ग्रहबिम्ब होने पर, पूर्वक्षितिज में क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश लगा हो वह अस्तलग्न है वह सषड्भ पूर्वक्षितिज में लग्न होता है । उससे, इष्टलग्न न्यून में और उदयलग्न से अधिक में बिम्ब क्षितिज के ऊपर होता है । यों चन्द्रदर्शन में छायासाधन उचित ही है ॥ १० ॥

इदानीं छायार्थं ग्रहस्य द्युगतमाह ।

ज्ञातुं यदा भाभिमता ग्रहस्य
तत्कालखेटोदयलग्नलग्ने ।
साध्ये तयोरन्तरनाडिका या-
स्ताः सावनाः स्युर्द्युगता ग्रहस्य ॥ ११ ॥
ता एव खेटद्युतिसाधनार्थं
क्षेत्रात्मकत्वात् सुधिया नियोज्याः ।
ऊनस्य भोग्योऽधिकभुक्तयुक्तो
मध्योदयाढ्योऽन्तरकाल एवम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् काले ग्रहस्य छाया ज्ञातव्या तात्कालिकस्य ग्रहस्योदयलग्नमिष्टलग्नं च तयोरन्तरघटिकाः साध्या

ऊनस्य भोग्योऽधिकभुक्तयुक्त इत्यादिना । एवं ता ग्रहस्य सावनघटिका दिनगता भवन्ति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्रेष्टलग्नं किल क्षितिजे । इष्टकालिकस्य ग्रहस्य यदुदयलग्नं कृतं तदुदयलग्नमेव । ग्रहः स क्षितिजादुपरि यत्र कुत्रचित् स्थाने । तस्य भोग्यकाल इष्टलग्नस्य भुक्तकालेन मध्योदयैश्च युक्तस्तस्य ग्रहस्य दिनगतः कालो भवितुमर्हति । ता घटिकाः सावना भवन्तीति यदुक्तं तत् कुतः । यतस्ता घटिकाः क्षेत्रात्मिकाः । इदं गोलोपरि दर्शयेत् । गोल इष्टलग्नं क्षितिजे निवेश्य तात्कालिकग्रहस्योदयलग्नं मेषादेर्दत्वा तदग्रे ग्रहसंज्ञको बिन्दुः कार्यः । तत्र तस्याहोरात्रवृत्तं निवेश्यम् । तस्मिन् वृत्ते पूर्वक्षितिजसंपातादारभ्य ग्रहचिह्नपर्यन्तं यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तस्य ग्रहस्य द्युगता भवन्ति । ताश्च सावनाः । यतोऽहोरात्रवृत्ते विगणय्य गृहीताः । ग्रहस्याहोरात्रवृत्ते याः षष्टिघटिकास्ताः सावनाः । छायासाधनार्थं क्षेत्रात्मिका एव नाड्यो ग्रहीतुं युज्यन्ते । छायासाधनं हि क्षेत्रव्यवहारः । अत उक्तं ता एव खेटद्युतिसाधनार्थमित्यादि ।

भाषाभाष्य ।

जब ग्रह की इष्टच्छाया जानना हो, तब तात्कालिक ग्रह का उदय लग्न और इष्टलग्न साधन करके, दोनों की अन्तर घटिका सिद्ध करना, वही ग्रह की दिनगत सावनघटिका होंगी । उन्हीं को ग्रहच्छायासाधनार्थ क्षेत्रात्मक मानना चाहिए । न्यूनग्रह के भोग्यकाल में अधिक का भुक्तकाल और मध्य के उदयमानों को जोड़ देने से, ग्रह का दिनगत काल होता है ।

उपपत्ति ।

इष्टलग्न को क्षितिज में मानकर, तात्कालिक ग्रह का उदयलग्नमान मेषादि से दान करके, वहां ग्रह कल्पना करके अहोरात्रवृत्त रखना। उसमें पूर्वक्षितिज से ग्रह बिन्दु तक जितनी घड़ी होंगी वे ग्रहकी दिनगत सावनघड़ी होंगी । शेष उपपत्ति स्पष्ट है ॥ १२ ॥

इदानीं क्रान्तेः स्फुटत्वं कृत्वा छायासाधनातिदेशं करोति स्म ।

स्पष्टा क्रान्तिः स्फुटशरयुतोनैकभिन्नाशभावे
तज्ज्या स्पष्टोऽपमगुण इतो द्युज्यकाद्यं ग्रहस्य ।
कृत्वा साध्या तदुदितघटीभिः प्रभा भानुभाव-
चन्द्रादीनां नलकसुषिरे दर्शनायापि भानाम् ॥ १३ ॥

ग्रहस्य क्रान्तिः स्फुटेन शरेण तुल्यदिक्त्वे युता भिन्नदिक्त्वे वियुता सती स्फुटा भवति । स्फुटक्रान्तेर्या ज्या सा स्फुटक्रान्तिज्या तया कुज्याद्युज्याचरज्यादि सर्वं प्रसाध्यम् । पूर्वानीताभिर्द्युगतघटिकाभिरुन्नतं ज्ञात्वाथोन्नतादूनयुतादित्यादिना भानुभावचन्द्रादीनां ग्रहाणां भानां वा छाया साध्या । यद्यपि ताराग्रहाणां भानां च छाया न दृश्यते तथापि नलकसुषिरे तद्दर्शनाय तदुपयोगिनी भविष्यतीति साध्या ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहकी क्रान्ति में स्पष्टशर एकदिशा में जोड़ने, भिन्न दिशा में घटाने से, स्पष्टक्रान्ति होती है । क्रान्ति से द्युज्या आदि साधन करके, उक्त दिन गत घटिकाओं से उन्नतकाल आदि जानकर, सूर्य की भांति चन्द्र, नक्षत्रों की भी छाया, नलिका द्वारा देखने के लिए साधन करना ।

स्पष्टक्रान्ति, द्युज्या आदि की उपपत्ति पूर्व प्रकारोंसे स्पष्टही है ॥ १३ ॥

इदानीमत्रापि विशेषमाह।

स्वभुक्तिलिथ्यंशविवर्जितो ना
महाँल्लघुः खाग्निकृतां ४३० शहीनः।
स्पष्टो भवेदस्फुटजातदृग्ज्या
संताडिताकैंः स्फुटशङ्कुभक्ता ॥ १४ ॥
प्रभा भवेन्ना तिथिभागतोऽल्पो
यावद्विधुस्तावदसावदृश्यः।
एवं किल स्यादितरग्रहाणां
स्वल्पान्तरत्वान्न कृतं तदाद्यैः ॥ १५ ॥

एवं त्रिप्रश्नोक्त्या ग्रहस्य शङ्कुं दृग्ज्यां च साधयेत्। ततः शङ्कोः स्फुटत्वं कार्यम्। ग्रहस्य भुक्तिपञ्चदशांशेन वर्जितः शङ्कुः स्फुटो भवति। अस्फुटशङ्कोर्या जाता दृग्ज्या सा द्वादशगुणा स्फुटशङ्कुना भक्ता छाया भवति। छायावर्गाद्द्वादशवर्गयुतान्मूलं कर्णः। बृहज्ज्याभिर्यदा शङ्कुः कृतस्तदैवम्। यदा लघुज्याभिर्लघुः शङ्कुः कृतस्तदा भुक्तेः खाग्निवेदांशेन ४३० वर्जितः स्फुटो भवति। यदा महाञ्छङ्कुः भुक्तिपञ्चदशांशात् स्वल्पो लघुः शङ्कुर्वा भुक्तेः खाग्निकृतांशात् स्वल्पस्तावद्विधुरदृश्यो ज्ञेयः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र यः शङ्कुरसौ दृङ्मण्डल उन्नतभागानां जीवा तस्य शङ्कोर्मूलादुपरि भुक्तिपञ्चदशांशतुल्याः कला भुवा छन्ना भूपृष्ठस्थो द्रष्टा न पश्यति। ता भूच्छन्नलिप्ताः पूर्वं प्रतिपादिता एव। तथा च गोले।

कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं
दृङ्मण्डलार्धं खचरस्य दृश्यम्।
कुच्छन्नलिप्ता नुरतो विशोध्याः

स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम् ।

यदि वसुगुणकृताग्नि ३४३८ तुल्ये व्यासार्धे भुक्तेः पञ्चदशांशः कुच्छन्नलिप्ता लभ्यन्ते तदा खार्क १२० मिते किमिति । एवमनुपातेन खाग्निकृतांशो लघुशङ्कुपक्षे कुच्छन्नलिप्ताः । एताभ्यो लिप्ताभ्यः शङ्कावूने चन्द्रस्त्वदृश्यः । एवं किल सर्वे ग्रहा अदृश्या भवन्ति । किं विधोर्निर्धारणं तदाद्याचार्याभिप्रायेण तैः स्वल्पान्तरत्वादन्येषां ग्रहाणां नोक्तम् ।

भाषाभाष्य ।

अब छायासाधन के लिए शङ्कु का स्पष्टीकरण करते हैं ।

ग्रह के बड़े शङ्कु में, उसका भुक्ति पञ्चदशांश घटादेने से, वह स्पष्ट होता है । और लघुशङ्कु में भुक्ति का ४३० अंश घटादेने से स्पष्ट होता है । अस्फुट शङ्कु की दृग्ज्या को द्वादश से गुणाकर, स्फुटशङ्कु का भाग देने से, छाया सिद्ध होती है । बड़ा शङ्कु भुक्ति पञ्चदशांश से न्यून और छोटा भुक्ति के ४३० अंश से न्यून जबतक रहेगा, तबतक चन्द्र देखने में न आवेगा । इसीतरह और ग्रहों की भी छाया सिद्ध होती है, पर पूर्वाचार्यों ने स्वल्पान्तर से नहीं कहा है ।

उपपत्ति ।

१—त्रिप्रश्न की विधि से जो शङ्कु सिद्ध होता है वह रवि चन्द्रगत दृङ्मण्डल में उन्नतांशज्या होती है । वह गर्भक्षितिज से बिम्बकेन्द्र तक होने से गर्भशङ्कु कहा जाता है । उसमें स्वगति पञ्चदशांशतुल्य कुच्छन्नकला घटाकर पृष्ठशङ्कु साधन किया है ।

लघुशङ्कु पक्ष में—

$$३४३८ : \frac{ग अं}{१५} : : १२० : ४३० = \text{कुच्छन्नकला}$$ । इन को घटादेने से पृष्ठशङ्कु होता है ।

२—मुनीश्वर ने अपने सिद्धान्तसार्वभौम में पृष्ठशङ्कु का साधन किया है, वह इस साधन के समान है। भूपृष्ठ से रविबिम्ब गत सूत्र कर्ण, दृग्ज्याभुज और पृष्ठशङ्कु कोटि यह क्षेत्र बनता है। पर पृष्ठशङ्कु बिम्ब के ऊर्ध्व प्रदेश का सिद्ध किया है और गर्भक्षितिज से बिम्बोर्ध्व प्रदेश तक त्रिज्या मानी है, जो बिम्बकेन्द्र तक होनी चाहिए। भास्कराचार्य का छायाक्षेत्र विजातीय होने से वास्तविक छाया अनुपात से नहीं आती। कमलाकर ने तत्त्वविवेक के छायाधिकार में, दोनों आचार्यों के मत का खण्डन किया है ॥ १४ । १५ ॥

इदानीं तेषां दूषणं निराकुर्वन्नाह ।

स्वल्पान्तरत्वाद्बहूपयोगात्
प्रसिद्धभावाच्च बहुप्रयासात् ।
ग्रन्थस्य तज्ज्ञैर्गुरुताभयेन
यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय ॥ १६ ॥

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणि-वासनाभाष्ये मिताक्षरे ग्रहच्छायाधिकारः ।

अयमध्यायस्त्रिप्रश्नस्याङ्गमतो नाधिकारेष्वस्य पृथग्गणना ग्रन्थसंख्या नवत्यधिकं शतम् १९० ॥

प्रभा ।

न विद्यते बहुर्भूरिः उपयोगो यस्य तस्मात् । प्रसिद्धभावात् प्रसिद्धत्वात् ।

भाषाभाष्य ।

विद्वान् लोग, स्वल्पान्तर से, अधिक प्रयोजनीय न होने से, प्रसिद्ध होने से, परिश्रम साध्य होने से और ग्रन्थ बढ़ने के भय से, जिस विषयों को नहीं लिखते, वह उनका दोष नहीं माना जाता ॥ १६ ॥

भाषाभाष्य में ग्रहच्छायाधिकार पूरा हुआ ।

अथ ग्रहोदयास्तमयाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादौ नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षणमाह ।

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयास्तलग्न—
मस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः ।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्
गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत् ॥ १ ॥
ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चे-
दस्तंगतो यास्यति चेति वेद्यम् ।

यस्मिन् दिने यस्मिन् काले यस्य ग्रहस्योदयोऽस्तो वा ज्ञातव्यस्तस्मिन् दिने तात्कालिकं स्फुटं ग्रहं कृत्वा तस्योदयास्तलग्ने साध्ये । अथ तत्काले यदिष्टलग्नं तच्च साध्यम् । तत्र यदुदयलग्नं तत् प्राग्दृग्ग्रहसंज्ञं वेदितव्यम् । यदस्तलग्नं तत् पश्चिमदृग्ग्रहसंज्ञं वेद्यम् । यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्टलग्नादल्पो भवति तदा ग्रह उदित इति वेदितव्यम् । यदाधिकस्तदोदयं यास्यतीति ज्ञेयम् । एवमुदयगतैष्यता ज्ञानम् । अथ पश्चिमदृग्ग्रह इष्टलग्नाद्यदाल्पस्तदा ग्रहोऽस्तं गत इति वेदितव्यम् । यदाधिकस्तदा यास्यतीति च ज्ञेयम् ।

अत्रोपपत्तिः । इष्टलग्नाद्दृग्ग्रह ऊनः क्षितिजादुपरि वर्ततेऽत उदितः । यदाधिकस्तदा क्षितिजादधोऽत उदेष्यतीति युक्तमुक्तम् । एवमिष्टलग्नाद् ग्रहस्यास्तलग्ने न्यूने ग्रहः प्रत्यक्क्षितिजादधो वर्ततेऽतोऽस्तं गतः । अधिके तु प्रत्यक्क्षितिजादुपरि वर्ततेऽतोऽस्तं यास्यतीति ।

भाषाभाष्य।

ग्रह के उदयलग्न की प्राग्दृग्ग्रह और अस्तलग्न की पश्चिमदृग्ग्रह संज्ञा है। इष्टलग्न से प्राग्दृग्ग्रह न्यून होने पर, ग्रह का उदय हो चुका और अधिक होने पर उदय होगा। और पश्चिमदृग्ग्रह, इष्टलग्न से न्यून होने पर ग्रह का अस्त होचुका और अधिक में होगा, ऐसा जानना चाहिये।

उपपत्ति।

जब ग्रह का उदयास्त जानना हो उस समय तात्कालिक स्पष्टग्रह और उदयास्त लग्न साधन करना। इष्टलग्न से न्यून दृग्ग्रह में क्षितिज के ऊपर ग्रह होने से, उदित और अधिक में क्षितिज के नीचे रहने से उदित होगा। इसीप्रकार, अस्तलग्न न्यून में, क्षितिज के नीचे रहने से अस्त, अधिक में क्षितिज के ऊपर रहने से अस्त होगा, यह स्पष्ट है॥ १॥

इदानीं तदन्तरघटिकाज्ञानमाह।

तदन्तरोत्था घटिका गतैष्या-
स्तच्चालितः स्यात् स निजोदयेऽस्ते॥ २॥
तल्लग्नयोरन्तरतोऽसकृद्वाः
कालात्मिकास्ता घटिकाः स्युरार्क्ष्यः।
अभीष्टकालद्युचरोदयान्त-
र्यद्वेष्टकालद्युचरास्तमध्ये॥ ३॥

इष्टलग्नात् प्राग्दृग्ग्रहो यदोनस्तदा तयोरन्तरघटिकाः प्राग्वत् साधिता गता भवन्ति। ताश्च सावनाः। अथ ताभिर्ग्रहस्य भुक्तिं संगुण्य षष्ट्या विभज्य फलकलाभिरूनितो दृग्ग्रहो निजोदयकालिको भवति। अथ तस्येष्टलग्नस्य चान्तरघटिकाः साध्याः। एवमसकृद्यावत्

स्थिरा भवन्ति । ताः कालात्मिकाः । ग्रहोदयेष्टकालयोर्मध्य एतावत्यो नाक्षत्रा गतघटिका इत्यर्थः । एवमेष्या अपि । एवमस्तेऽपि कालात्मिकानां घटिकानां गतागतानां साधनम् ।

अत्रोपपत्तिः । लग्नघटिकानां नाक्षत्राणां साधने प्रागुक्तैव । एवं ग्रहस्य प्रवहवशेन प्रतिदिनं यावुदयास्तौ तौ निरुक्तौ ।

प्रभा ।

तयोरिष्टलग्नप्राग्दृग्ग्रहयोरन्तरोत्था अन्तर्वर्तिन्यो घटिकाः । अभीष्टकालश्च द्युचरोदयश्च तयोरन्तस्तत्कालयोर्मध्य इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

इष्टलग्न से जब प्राग्दृग्ग्रह न्यून हो तब दोनों की अन्तर घटिकाओं का साधन करना । उनका दृग्ग्रह में चालन देने से अपने उदयकाल वा अस्तकाल का दृग्ग्रह होता है । उस चालित दृग्ग्रह और इष्टलग्न की अन्तर घटिकाओं का असकृत् कर्म से साधन करने से वे गतनाक्षत्र घटिका होंगी । इसीप्रकार अस्तकालिक घटिकाओं का भी साधन करना चाहिये ।

यहां उपपत्ति स्पष्ट है । साठ घड़ी म ग्रहगति तो अन्तर घटिका में क्या ? फल को दृग्ग्रह में घटाने से वह उदयकाल में होता है । ग्रहोदय काल और इष्टकाल के मध्य में नाक्षत्र गतघटिका होती हैं । उनको असकृत् कर्म से स्थिर करके, उदयास्त में घटिका ज्ञान करना चाहिये ॥ २–३ ॥

इदानीमर्कासन्नभावेन यावुदयास्तौ तदर्थमाह ।

निरुक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ता–
विनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये ।

रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति
प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः ॥ ४ ॥

यो ग्रहो रवेः सकाशादूनभुक्तिरसौ प्राच्यां दिश्युदेति प्रतीच्यामस्तमेति । यथा भौमो गुरुः शनिश्च । योऽधिकभुक्तिरसौ प्रतीच्यामुदेति प्राच्यां प्रतितिष्ठति । यथा चन्द्रः ।

अत्रोपपत्तिः । यो मन्दगतिर्ग्रहो दिनकरकरनिकटतयाऽदृश्यतां गतः । असावर्के शीघ्रतया पुरतो गच्छति सति ग्रहो मन्दगतित्वात् पृष्ठतो विलम्बितः प्राच्यां दिश्यर्कोदयात् पूर्वमेव दृश्यो भवति । अथ यो मन्दगतिर्ग्रहोऽर्कादधिक आसीदसौ शीघ्रतया रवेस्तदासन्नतां गच्छति तदा तत्करनिकरावगुण्ठितः प्रतीच्यामसावस्तमेति । अनयैव युक्त्याधिकभुक्तिः प्रतीच्यामुदेति प्राच्यां प्रतितिष्ठति ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार ग्रहों का उदयास्त कहागया है । जो सूर्य की समीपता से उदयास्त होता है, वह आगे कहेंगे । सूर्य से न्यून गति ग्रह, पूर्व में सूर्य से पहले उदित और पश्चिम में अस्त होता है । इसीप्रकार शीघ्रगति ग्रह, सूर्य से पीछे पूर्व में उदित, और पश्चिम में अस्त को प्राप्त होता है ।

जो मन्दगति ग्रह सूर्य प्रकाशवश अस्त होगया है वह शीघ्र गति सूर्य से पीछे लटका रहने से, पूर्वदिशा में सूर्योदय के पहले ही देखने में आता है । ऐसेही पश्चिम में अस्त होजाता है । यह सब उपपत्ति स्पष्ट है ॥ ४ ॥

इदानीं बुधशुक्रयोर्विशेषमाह।

झशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां
गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।
ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं
समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्॥ ५॥

बुधशुक्रौ तु यदा ऋजू तदाधिकभुक्तित्वात् प्रतीच्यामुद्गच्छतः। ततस्तत्रैव वक्रतां प्राप्यास्तं गच्छतः। ततस्तथैव वक्रतया प्राच्यामुद्गम्य ततोऽवक्रतां प्राप्याधिकभुक्तित्वात् प्राच्यामेवास्तं व्रजेताम्।

अत्रापि सैव वासना। किंच यत् प्राच्यां दिश्युद्गमनं प्रतीच्यामस्तमयस्तद्वक्रता वैपरीत्यम्।

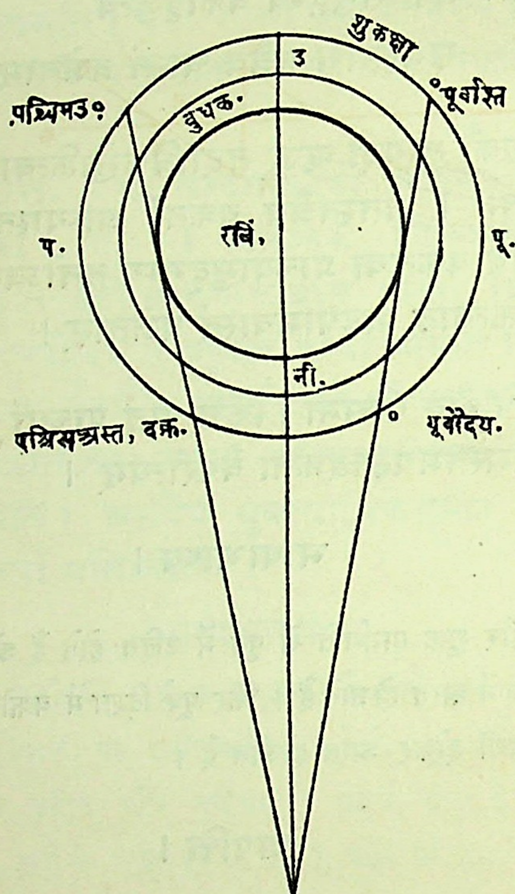
भाषाभाष्य।

बुध और शुक्र मार्गगति से पूर्व में उदित होते हैं और वक्री होकर उसी दिशा में अस्त होजाते हैं। फिर पूर्व दिशा में वक्री ही उदित होते हैं और मार्गी होकर अस्त होजाते हैं।

उपपत्ति।

बुध और शुक्र के उदयास्त का क्षेत्र नीचे लिखा है। रविबिम्बपरिधि को स्पर्श करके जो दृक्सूत्र बुध और शुक्र की कक्षा को गए हैं वे दोनों कक्षाओं के जितने प्रदेश को उच्च और नीच में काटते हैं उस प्रदेश के भीतर उच्च या, नीच में जब उक्त दोनों ग्रह आवेंगे तब उनका उदय, अस्त, वक्र आदि क्षेत्र में जिस प्रकार लिखा है वह

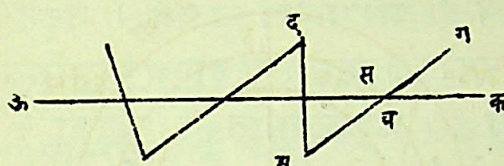
क्षेत्र ।



जानना चाहिए। क्योंकि, इस क्षेत्र स्थिति में दोनों दृक्सूत्र स्पर्श रेखारूप हैं, और रवि से परमान्तर का ज्ञान कराते हैं। परन्तु ग्रहों का अन्तर अस्थिर होने से कालांश की कल्पना स्थूल है।

सांप्रत में, सूक्ष्म यन्त्रों से प्रतिदिन ग्रहगति का वेध करने से उसका मार्ग तिरछा निश्चित हुआ है और वह क्रान्तिवृत्त धरातल को झुका हुआ है ।

क्षेत्र ।



अक क्रान्तिवृत्त है । गुरु की गति 'गव' भाग में मार्गी होकर, व बिन्दु में स्थिर रही । फिर 'वम' में वक्रा हुई । 'म' बिन्दु में स्थिर होकर, 'मद' तक मार्गी होगी । यों आगे भी । 'स' बिन्दु में क्रान्तिवृत्त और गतिकक्षा का संपात है ।

ऊपर के क्षेत्र में रवि को केन्द्र में स्थिर मानकर और बुधकक्षा को भूकक्षा मान कर उसमें भूमि को चल माने तो भूमि और ग्रह के सम्बन्ध से, ग्रहों का उदय आदि पाश्चात्य रीति से सिद्ध होता है । फल में कोई अन्तर नहीं होता ॥ ५ ॥

इदानीं कालांशानाह ।

दस्रेन्दवः १२ शैलभुवश्च १७ शक्रा १४
रुद्राः ११ खचन्द्रा १० स्तिथयः १५ क्रमेण ।
चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः ॥ ६ ॥

चन्द्रादीनामेते १२ । १७ । १४ । ११ । १० । १५ कालांशा ज्ञेयाः । बुधशुक्रयोस्तु वक्रगतयोर्द्विहीना द्विवर्जिता ज्ञेयाः ।

अत्रोपपत्तिः । कालांशा इति कालात्मका अंशाः कालांशाः । षड्भिरंशैरेका घटिका । एकस्यांशस्य दश-पानीयपलानि । अनेनैतदुक्तं भवति । चन्द्रस्य किल द्वादश १२ कालांशाः । अर्कस्यास्तमयादुदयाद्वा घटिका-द्वयाधिकेऽन्तरे चन्द्रो दृष्टियोग्यो भवति । तदूने तत्प्र-भाच्छादितत्वाददृश्यः । अतस्तस्य द्वादश कालांशाः । एवं भौमस्य सप्तदश १७ षडंशोनास्तिस्रो घटिका २ । ५० इत्यर्थः । एवमन्येषां यथा पठितास्तेषां बिम्बस्य स्थूल-सूक्ष्मतावशान्न्यूनाधिकता । अत एव बुधशुक्रयोर्वक्रग-तयोर्बिम्बस्य स्थूलत्वाद् द्विहीनाः ।

अत्रोपलब्धिरेव वासना ।

भाषाभाष्य ।

चन्द्र से लेकर छ ग्रहों के कालांश १२ । १७ । १४ । ११ । १० । १५ क्रम से होते हैं । वक्रगति बुध और शुक्र के कालांशों में दो घटा देने से वास्तविक होते हैं । इतने कालांशों में सूर्य की समीपता से, सब ग्रह अदृश्य होजाते हैं ।

उपपत्ति ।

कालात्मक अर्थात् समयात्मक अंश कालांश कहे जाते हैं । छ अंशों में एक घड़ी होती है । इसलिए अंशों में छ का भाग देने से घड़ी होती है । जैसे चन्द्र का कालांश १२÷६=२ घड़ी से अधिक सूर्य अन्तर में चन्द्र दृश्य होगा । ऐसे ही दूसरे ग्रहों का भी समझना चाहिए ।

तत्त्वविवेक में कमलाकर का मत है—ग्रहों के नीचोच्चवश रवि और ग्रहों का अन्तर सूत्र विलक्षण होने से, गोलयुक्ति से स्थिर कालांश की कल्पना असम्भव है ॥ ६ ॥

इदानीमितिकर्त्तव्यतामाह ।

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्य-
स्ताद्दिग्भवो दृक्खचरो रविश्च ।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित्
साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः ॥ ७ ॥

इह केन्द्रभागैर्ग्रहस्योदयोऽस्तमयो वा यस्मिन् दिन आयातस्तस्यासन्ने कस्मिंश्चिद्दिने तं ग्रहं रविं च स्फुटं कृत्वा यस्यां दिशि ग्रहोदयोऽस्तमयो वा तद्दिग्भवो दृग्ग्रहः कार्यः । यदि प्राच्यां तदौदयिकं ग्रहं कृत्वोदय-लग्नं साध्यम् । यदि च प्रतीच्यां तदास्तमयिकं ग्रहं कृत्वास्तलग्नं साध्यमित्यर्थः । यदा प्रतीच्यां तदा रविः सषड्भश्च कार्यः ।

भाषाभाष्य ।

जिस दिन ग्रह का उदय वा अस्तकाल जानना हो उसके आसन्न दिन में, किसी दिन, इष्टग्रह और सूर्य को स्पष्ट करके, जिस दिशा का उदय वा अस्त संभव हो उस दिशा का उदयलग्न साधन करना। जब पश्चिम में हो तब सषड्भ सूर्य करना।

यहां उपपत्ति 'ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चेत्—' इत्यादि विधि से स्पष्ट है ॥ ७ ॥

इदानीमिष्टकालांशानयनमाह ।

दृक्खेचरार्कान्तरजातनाड्यो
रसाहताः काललवाः स्युरिष्टाः ।

दृग्ग्रहार्कयोरन्तरघटिकाः साध्यास्ता रस ६ हता इष्टाः कालांशा भवन्ति ।

भाषाभाष्य ।

दृग्ग्रह और सूर्य के अन्तर घटिकाओं को छ से गुण देने से इष्टकालांश होते हैं ।

पूर्व रीति से, छ अंशों में एक घटिका होने से, अंशों में ६ का भाग देने से घड़ी और घड़ी को छ से गुण देने से अंश होते हैं, यह युक्ति सिद्ध है । यों घड़ियों से इष्टकालांश बनते हैं ।

अथ तैरुदयास्तयोर्गतैष्यतामाह ।

उक्तेभ्य ऊनाभ्यधिका यदीष्टाः
खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात् ॥ ८ ॥
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः
प्रोक्तेष्टकालांशवियोगलिप्ताः ।
खाभ्राष्टभू १८०० घ्ना द्युचरोदयासाः
खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च ॥ ९ ॥
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहृता अवाप्ता-
स्तदन्तराले दिवसा गतैष्याः ।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां
मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति ॥ १० ॥

एवं यः इष्टकालांशा आनीतास्ते प्रोक्तेभ्यो यदि स्वल्पा भवन्ति तदा ग्रहस्योदयो गम्यः । यद्यधिकास्तदा गत इति वेदितव्यम् । अतोऽन्यथास्तमय इति । उक्तेभ्यो यदीष्टाः स्वल्पास्तदा ग्रहस्यास्तमयो गतो यद्यधिकास्तदा गम्य इति । अथ प्रोक्तानामिष्टकालांशानां च या अन्तरे कलास्ता अष्टादशशतै १८०० र्गुण्या दृग्ग्रहाक्रान्तस्य राशेः स्वदेशोदयासुभिर्भाज्याः । फलकलानां ग्रहार्कभुक्त्यन्तरेण वक्रगे ग्रहे भुक्तियोगेन भागे

गृहीते यल्लब्धं ते गता एष्या वा दिवसा भवन्त्युदये वास्तमये वा । तैर्दिवसैस्तात्कालिकौ दृग्ग्रहार्कौ कृत्वैवमसकृत्कर्मणा सम्यक् तत्कालज्ञानं भवति ।

अत्रोपपत्तिः । इष्टकालांशसाधने लग्नवासनैव । प्रोक्तानां कालांशानामन्तर्वर्त्ती ग्रहोऽदृश्यो भवति । अतो यावदिष्टा न्यूनास्तावददृश्यः । उदये विलोक्यमान उदेष्यति । अस्ते विलोक्यमानेऽस्तं गत इत्यर्थाज्ज्ञायते । इष्टा यद्यधिकास्तदा प्रोक्तेभ्यो बहिर्भूतत्वाद् ग्रहो दृश्यः । उदये विलोक्यमान उदितः । अस्ते विलोक्यमानेऽस्तं यास्यतीत्यर्थाज्ज्ञायते । अथ तेषां प्रोक्तेष्टानां कालांशानां या अन्तरे कलास्तासां क्षेत्रलिप्तीकरणायानुपातः । यावत्यः कालकलास्तावन्त एवासवो भवन्ति । अथ यदि दृग्ग्रहोदयासुभिरष्टादशशतानि १८०० क्षेत्रलिप्ता लभ्यन्ते तदा तदन्तरकलासुभिः किमिति । फलं क्षेत्रलिप्ताः । ता ग्रहार्कभुक्त्यन्तरेण भाज्याः । भुक्त्यन्तरं हि क्षेत्रलिप्तान्तरात्मकमतः सजातीयकरणाय क्षेत्रलिप्तीकरणम् । भुक्त्यन्तरेणैको दिवसो लभ्यत इति युक्तमुक्तम् । वक्रे तु भुक्तियोग एव भुक्त्यन्तरम् । दूरान्तरे स्थूलकालो भवतीत्यसकृत्कर्म सूक्ष्मार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

जब इष्टकालांशों से उक्त कालांश न्यून वा अधिक हों तब ग्रह का उदय होगा और होगया है, यह जानना चाहिए इससे उलटी अस्त में स्थिति होती है । पाठ पठित और इष्टकालांशों की अन्तरकला को १८०० से गुणाकर, दृग्ग्रह के स्वदेशीय राश्युदय मान का भाग देने

से जो फल कला मिले, उसमें भुक्त्यन्तर का और वक्री ग्रह में भुक्ति योग का भाग देने से, फल उदय वा अस्त के दिन सिद्ध होते हैं। इन दिनों का तात्कालिक सूर्य और दृग्ग्रह में चालन देकर असकृत्कर्म से कालज्ञान होता है।

उपपत्ति।

स्थिरकालांश और इष्टकालांशों की अन्तर कला नाड़ीवृत्त में होती हैं। उनको क्रान्तिवृत्तीय करने के लिये अनुपात—

$$\text{दृग्ग्रासु} : १८०० :: \text{अंक} : \frac{१८०० \times \text{अंक}}{\text{दृग्ग्रहासु}} = \text{क्रान्तिवृत्तीय}$$

अन्तरकला। क्योंकि, कला और असु समान होते हैं। इन क्षेत्र-कलाओं से अनुपात करके, उदय किंवा, अस्त के गत—गम्य दिन सिद्ध किया।

$$\text{गअं} : १ :: \text{अंक} : \frac{\text{अंक}}{\text{गंअ}} = \text{इष्ट दिन}$$। वक्रीग्रह में गतियोग का भाग देना चाहिए। इसप्रकार, साधित दिनों से, रवि और दृग्ग्रह को तात्कालिक करके, असकृत्कर्म से कालज्ञान करना। तात्कालिक गति के भेद से फल में स्थूलता आती है, इस कारण असकृत्कर्म किया है॥ ८–१०॥

अथ विशेषमाह।

प्राग्दृग्ग्रहश्चेदधिको रवेः स्या-
दूनोऽथवा पश्चिमदृग्ग्रहश्च।
प्रोक्तेष्टकालांशयुतेः कलाभिः
साध्यास्तदानीं दिवसा गतैष्याः॥ ११॥
तथा यदीष्टकालांशाः प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिकास्तदा।
व्यत्ययश्च गतैष्यत्वे ज्ञेयोऽहां सुधिया खलु॥ १२॥

यदि प्राग्दृग्ग्रहो रवेरधिको भवति । अथवा पश्चिमदृग्ग्रहो न्यूनो भवति तदा य इष्टकालांशा आनीतास्तेषां प्रोक्तानां च योगकलाभिर्दिवसाः साध्याः । नान्तरकलाभिः । तथा प्राग्दृग्ग्रहेऽर्कादधिके सति पश्चाद् दृग्ग्रहे वा न्यूने य इष्टकालांशा आगतास्ते च यदि प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिका भवन्ति तदा प्रोक्तेष्टकालांशयुतैः कलाभिर्ये दिवसाः साधितास्तेषां दिवसानां गतैष्यत्वे विपर्ययो ज्ञेयः ।

अत्रोपपत्तिः । यो ग्रहः प्राच्यामुदेति प्रतितिष्ठति वा असौरवेरूनः सन् पश्चिमायामधिकः सन् प्राच्यां दिशि प्रोक्तकालांशैरूनः सन् प्रदृश्यतामेति । तावद्भिरेव पश्चिमायामधिकः सन् । अतो रवेः पृष्ठतः प्राच्यां प्रोक्तकालांशाः प्रतीच्यामग्रतः । प्राच्यामूने ग्रहे य इष्टकालांशाः साध्यन्ते ते रवेः पृष्ठतः । अतः पृष्ठगतैरेव प्रोक्तकालांशैस्तेषामन्तरं कर्त्तुं युज्यते । अथ प्राच्यां रवेरधिके दृग्ग्रहे य इष्टकालांशाः साध्यन्ते ते रवेरग्रतो भवन्ति । अतोऽग्रगतानां पृष्ठगतानां च कालांशानां योगे कृते सत्यन्तरं कृतं भवति । तथा उक्तेभ्य ऊनाभ्यधिका यदीष्टा इति यद्गतगम्यलक्षणमुक्तं तत् सजातीयानामेव । यदा पुनरेके पृष्ठगता एकेऽग्रगतास्तदा तद्गतगम्यलक्षणं व्यत्ययेन भवति । अत उक्तं व्यत्ययश्च गतैष्यत्व इत्यादि । अत्र सुधियेति विशेषणाद् बुद्धिमतेदमनुक्तमपि ज्ञायत इत्यर्थः ।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणिवा-

सनाभाष्ये मिताक्षरे ग्रहोदयास्ताधिकारः समाप्तः। अस्मिन्नधिकारे ग्रन्थसंख्या शतम् १०० ।

भाषाभाष्य ।

यदि सूर्य से प्राग्दृग्ग्रह अधिक हो अथवा, पश्चिमदृग्ग्रह न्यून हो, तब इष्टकालांश और पाठपठित कालांशों के योगकला से गत वा गम्य दिवसों का साधन करना चाहिए । और जब इष्टकालांश, उक्त कालांशों से अधिक हों तब गत और गम्य दिनों में विपर्यय जानना चाहिए ।

आचार्य ने उपपत्ति स्पष्ट लिखी है । विशेष कुछ नहीं है ॥ ११–१२ ॥

भाषाभाष्य में उदयास्ताधिकार पूर्ण हुआ ।

इदानीं शृङ्गोन्नतिर्व्याख्यायते । तत्रादौ चन्द्रशंकर्थमाह ।

मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दोः
शृङ्गोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या ।
तदोदयेऽस्ते निशि वा प्रसाध्यः
शङ्कुर्विधोः स्वोदितनाडिकाद्यैः ॥ १ ॥

मासान्तपाद इति कृष्णाष्टम्या उपरि प्रथमेऽथवा शुक्लाष्टम्याः प्रागेव यस्मिन्नभीष्टदिने शशिशृङ्गोन्नतिर्ज्ञातुमभीष्टा तस्मिन् दिने मासान्तपाद औदयिकौ चन्द्रार्कौ स्पष्टौ कार्यौ । प्रथमचरणे त्वस्तकालिकौ । ततः शृङ्गोन्नतिर्ज्ञेया । निशि वा । एतदुक्तं भवति । मासान्तपाद उदयकाले शशिशृङ्गोन्नतिः साध्या । प्रथमचरणे त्वस्तकाले । अथवा किमुदयास्तनियमेन । यत्रोदये तत्रोदयात् प्रागिष्टघटीकाले वा यत्रास्ते तत्रास्तादुपरिष्टासु घटीषु वा शृङ्गोन्नतिः साध्या । तत्र तात्कालिकौ चन्द्रार्कौ कृत्वा चन्द्रस्य स्फुटक्रान्त्युदयास्तलग्नोन्नतघटिकादिभिस्तदुपकरणैः शङ्कुः साध्यः ।

अत्रोपपत्तिः । चन्द्रस्यार्धादूने शुक्ले तत्कोटी शृङ्गाकारे भवतः । तत्रेष्टकाले कतरशृङ्गोन्नतिर्भविष्यतीति ज्ञातव्यम् । तत्र शुक्लस्य शृङ्गाकारतार्धादूने शुक्ले । तच्चार्धादूनत्वं मासान्तपादे प्रथमे च संभवति । द्वितीयतृतीययोरपि चरणयोर्ब्रह्मगुप्तादिभिः कृष्णशृङ्गोन्नतिरानीता सा मम न संमता । नहि नरैः कृष्णशृङ्गोन्नतिः स्पष्टोपलक्ष्यते । प्रसिद्धा तु शुक्लशृङ्गोन्नतिः । अत उक्तं मासान्तपादे प्रथमेऽथवेति ।

भाषाभाष्य।

जिस समय चन्द्र शृङ्गोन्नति जानना हो, तब, मास के अन्तिम चरण में, या, शुक्लाष्टमी के पहले, उदयकाल में, सूर्य, चन्द्र और पात स्पष्ट साधन करके, उनसे स्पष्टक्रान्ति, लग्न, उन्नत घटिका आदि सिद्ध करके चन्द्रशंकु का साधन करना।

तात्पर्य यह है कि उदयकाल में वा, अस्तकाल में जब चन्द्रशृङ्गोन्नति साधन करना हो तब उदय के इष्टघटी तुल्य पूर्व और अस्त से इष्टघटी के बाद स्पष्ट सूर्य, चन्द्र, लग्न आदि से चन्द्र शंकु साधन करना चाहिए।

शुक्लशृङ्गोन्नति बिम्बार्ध से न्यून शुक्ल में होती है। वह प्रतिमास के अन्तिम या मास के आदि चतुर्थांश में होता है। और मास के दूसरे वा, तीसरे चरण में बिम्बार्ध से अल्प कृष्ण होता है, इसलिए आचार्य ब्रह्मगुप्त ने कृष्णशृङ्गोन्नति का भी साधन किया है। परन्तु वह देखने में न आने से व्यर्थ है। इसकारण यहां आचार्य को संमत नहीं है ॥१॥

अथार्कशङ्क्वर्थं शङ्कुतलार्थं चाह।

निशावशेषैरसुभिर्गतैर्वा
यथाक्रमं गोलविपर्ययेण।
रवेरधःशङ्कुरथाक्षभाघ्नो
नरोऽर्क १२ हृच्छङ्कुतलं यमाशम् ॥ २ ॥

शृङ्गोन्नतिकाले विधोः किल शङ्कुः साधितः। अथ रवेः साध्यः। तत्र यद्युदयेऽस्तमये वा तदा रवेः शङ्कुः पूर्णं सिद्ध एव। यदा तूदयात् प्रागस्तानन्तरं तदा क्षितिजादधःस्थस्य रवेः कथं शङ्कुः साध्यस्तदर्थमाह। निशावशेषैरसुभिरित्यादि। उदयात् प्राग्यावतीभिर्घटिकाभिः शृङ्गोन्नतिस्तावत्यो निशावशेषाः। अस्ताद-

नन्तरं याभिर्घटीभिस्ताराऽत्रिगताः । तासामसुभी रविं गोलविपर्ययस्थं प्रकल्प्याथोन्नतादूनयुतादित्यादिना यः शङ्कुः साध्यतेऽसौ रवेरधः शङ्कुर्भवति । अथ चन्द्रस्य शङ्कू रवेर्वा शङ्कुरन्यस्य कस्य चिद्वाक्षभया गुण्यते द्वादशभिर्भाज्यते फलं शङ्कुतलं भवति । तच्च याम्याम् । अधोमुखनरस्य सौम्यं शङ्कुतलं वेदितव्यम् ।

अत्रोपपत्तिः । निशावशेषा गता वा येऽसवस्तेऽधःस्थलोकाभिप्रायेण । तैरसुभिर्यः शङ्कुः साध्यतेऽसौ रवेरधोमुखः शङ्कुर्भवति । स च गोलविपर्ययेण साध्यः । यतो यस्मिन् गोलेऽस्माकं क्षितिजादुपर्यन्मण्डलं तच्च तेषां क्षितिजादधः यत्रास्मद्देशे क्षितिजादधस्तत्र तद्देशे क्षितिजोपरि । शङ्कुसाधने वासना पूर्वोक्तैव । अथ शङ्कुतलवासनोच्यते । क्षितिजे समवृत्ताहोरात्रवृत्तयोरन्तरभागानां जीवाग्रा । सा च प्राच्यां पश्चिमतश्च । अग्राग्रयोर्निबद्धं सूत्रमुदयास्तसूत्रम् । अहोरात्रवृत्तं क्षितिजादुपर्यक्षवशाद्दक्षिणतो नतं भवति । क्षितिजादधस्तद्वशादेवोत्तरतो नतं भवति । तत्रस्थग्रहात् क्षितिजगामी लम्बः शङ्कुः । उपरिस्थशङ्कोस्तल्लम्बनिपातस्थानमुदयास्तसूत्राद्दक्षिणतो भवति । अधःशङ्कोस्तु तत्तलमुत्तरतो भवति । तत्र शङ्कुतलं भुजः शङ्कुः कोटिरिष्टहृतिः कर्णः । एतदक्षक्षेत्रम् । अतोऽक्षक्षेत्रेणानुपातः । यदि द्वादशाङ्गुलशङ्कोः पलभा भुजस्तदा कलात्मकस्यास्य महाशङ्कोः क इति लब्धं कलात्मकं शङ्कुतलम् ।

भाषाभाष्य ।

रविशङ्कु और शङ्कुतल का साधन प्रकार ।

उदयकाल से पहले जितनी घड़ियों पर शृङ्गोन्नति इष्ट हो वह निशावशेष है और अस्तकाल के बाद गत हैं । इनके असुओं से, त्रिप्रश्नोक्त रीति से जो शङ्कु हो वह रवि का अधः शङ्कु होता है । रवि वा, चन्द्रशङ्कु को पलभा से गुणाकर, द्वादश का भाग देने से, फल याम्य शङ्कुतल होता है ।

उपपत्ति ।

रात्रिशेष वा, रात्रिगत घटिका सम्बन्धी जो असु हैं वे अधोलोक के हैं इसलिए शङ्कु भी वहीं का सिद्ध होता है * । वह शङ्कु उत्तरगोल में दक्षिण का और दक्षिणगोल में उत्तर का होता है । क्योंकि भूलोक और अधोलोक का क्षितिज आपस में विपरीत ऊंचा, नीचा होता है ।

अहोरात्र गत ग्रह स्थान से क्षितिजगामी लम्ब उदयास्तसूत्र से दक्षिण और अधः शङ्कु का उत्तर होता है । शङ्कुतल भुज, शङ्कुकोटि, इष्टहृति कर्ण यह क्षेत्र प्रसिद्ध है । इस अक्षक्षेत्र से शङ्कुतल के लिए अनुपात—

$$\text{द्वा} : \text{पभा} :: \text{इशं} : \frac{\text{पभा} \times \text{इशं}}{\text{द्वा}} = \text{शङ्कुतल शेष स्पष्ट है २॥}$$

अथ भुजज्ञानार्थमाह ।

सौम्यं त्वधोमुखनरस्य तलं प्रदिष्टं
स्वाग्रास्वशङ्कुतलयोः समभिन्नदिक्त्वे ।

---

* रवि-चन्द्र पर जो दृङ्मण्डल होंगे उनमें बिम्बकेन्द्र से गर्भक्षितिज तक शङ्कुचापकला, गणितागत होंगी । उसमें कुच्छन्नकला घटाकर ज्या करने से स्पष्टशङ्कु होता है ।

योगोऽन्तरं भवति दोरिनचन्द्रदोष्णो—
स्तुल्याशयोर्विवरमन्यदिशोस्तुयोगः ॥ ३ ॥
स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजाश इन्दोः
शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्कः ।

प्रथमचरणो व्याख्यात एव । रवेर्याग्रा यच्च शङ्कुतलं तयोः समदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमसौ रविभुजः । एवं चन्द्रस्याग्राशङ्कुतलयोर्योगान्तरे चन्द्रभुजः स्यात् । अथ चन्द्रार्कभुजयोः समदिशोरन्तरं भिन्नदिशोर्योगः शृङ्गोन्नतौ स्फुटो भुजो भवति । भिन्नाशयोश्चन्द्रार्कभुजयोर्यदा योगस्तदा दक्षिण उत्तरो वा स्फुटो भुजो भवतीत्येतदर्थमाह । चन्द्रभुजाश इति । या चन्द्रभुजस्य दिक् सैव स्फुटभुजस्य कल्प्येत्यर्थः । एवं तुल्यदिशोरन्तरेऽपि चन्द्रभुजाशो ज्ञेयः । परं यदि चन्द्रभुजाच्छुद्धः । यदा तु रविभुजाचन्द्रभुजः शुद्धस्तदा विपरीत दिक्कः । यदि चन्द्रभुज उत्तर आसीत् तदा स्फुटभुजो दक्षिणो भवति । यदि दक्षिणस्तदोत्तर इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र किल भुजो ज्ञेयः । भुजो नाम पूर्वापरसूत्रस्य च यद्दक्षिणोत्तरमन्तरम् । पूर्वापरसूत्रोदयास्तसूत्रयोरन्तरं तावदग्रा । सा च यदा किलोत्तरा तदोदयास्तसूत्रशङ्कोर्यदन्तरं शङ्कुतलं तेन दक्षिणेनाग्रा यावदूना क्रियते तच्छेषमग्राखण्ड उत्तरो भुजो भवति। प्राच्यपरसूत्रादुत्तरतस्तावत्यन्तरे शङ्कुर्वर्तत इत्यर्थः । यद्यन्तरे क्रियमाणे शङ्कुतलादग्राविशुद्धा तदा याम्यो भुजो भवति । एवं सममण्डलप्रवेशादनन्तरं भवति । अथ यदा दक्षिणाग्रा तदा शङ्कुतलमपि दक्षिणम् । तयो-

योगे कृते समसूत्रशङ्कोरन्तरालं भुजो भवति। एवमधोमुखशङ्कोरुत्तरगोलेऽग्राशङ्कुतलयोर्योगे भवति। यतस्तत्रोत्तरं शङ्कुतलम्। दक्षिणगोले त्वन्तरे कृते। एवं चन्द्रार्कयोर्भुजौ। अथ ताभ्यां स्फुटो भुजः। स्फुटो भुजो नाम चन्द्रार्कयोर्याम्योत्तरमन्तरम्। तच्च तयोर्भुजयोरेकदिशोरन्तरे भिन्नदिशोर्योगे कृते भवति। तद्यथा। चन्द्रस्योत्तरो भुजः किल चत्वारिंशदधिकं शतम् १४०। रवेस्तु नवतिः ६० कला उत्तरः। शशिभुजाद्रविभुजे तुल्यदिक्त्वाच्छोधिते पञ्चाशत्कला ५० उत्तरो भुजोऽवशिष्यते। एवं दक्षिणयोर्भुजयोः शशिभुजशेषं दक्षिणो भुजः। यदा तु रविभुजाच्छशिभुजः शुद्ध उत्तरदिक्त्वे तदा प्राच्यपरसूत्रादुत्तरतश्चन्द्रशङ्कुः किल पञ्चाशत्कलान्तरे ५०। रविशङ्कुस्तु नवति ६० कलान्तरे। तदा रविशङ्कोः कलाश्चत्वारिंशत् ४०। दक्षिणतश्चन्द्रशङ्कुरित्यर्थाद्गम्यते। एवं भुजो जातः।

भाषाभाष्य।

अधोमुख शङ्कु का तल उत्तर होता है। अग्रा और शङ्कुतल का, एक दिशा में योग भिन्नदिशा में अन्तर करने से, भुज होता है। सूर्य और चन्द्र के भुजों का एक दिशा में अन्तर, भिन्न दिशा में योग करने से, स्पष्टभुज होता है। चन्द्रभुज में घटने से चन्द्रदिशा का और रविभुज में घटने से विपरीत दिशा का स्पष्टभुज होता है।

उपपत्ति।

शङ्कुमूल और पूर्वापर सूत्र का दक्षिणोत्तर अन्तर भुज कहलाता है। गोलक्रम से अग्रा और शङ्कुतल के योग, वियोग से भुज बनता

है, यह त्रिप्रश्न की रीति से स्पष्ट है। सूर्य और चन्द्र का याम्योत्तर अन्तर स्पष्टभुज होता है। सूर्य और चन्द्र के भुज अलग सिद्ध करके दोनों के योग-वियोग से स्पष्टभुज बनता है ॥ ३ ॥

इदानीं कोटिमाह ।

योऽधो नरो दिनकृतः स विधोरुदग्र-
शङ्क्वन्वितो मम मता खलु सैव कोटिः ॥ ४ ॥

यो रवेऽरधः शङ्कुरसौ विधोरूर्ध्वशङ्कुना युतः सैव कोटिर्मम मता। मम मतेति साकाङ्क्षत्वाद् ब्रह्मगुप्तेनेत उपरि बहुनायासेनान्या कोटिरानीता सा मम न संमतेति सूचितम् ।

अत्रोपपत्तिः । इहार्केन्द्वोर्याम्योत्तरभावेन यदन्तरं स भुजः । ऊर्ध्वाधरभावेन यदन्तरं सा कोटिः । स चैवं भवति । उदयेऽस्ते वा यदि शृङ्गोन्नतिस्तदा रविशङ्कोरभावाच्छशिशङ्कुरेव कोटिः । यदा निशि रवेरधः शङ्कुस्तदा स शङ्कुर्विधोरुदग्रशङ्कुना युतो यावांस्तावत् तयोर्यत्रतत्रस्थयोरूर्ध्वाधरमन्तरं सैव कोटिरुचिता । यतो द्रष्ट्रा पुरुषेणात्मनोऽवस्थानवशेन शशिनः शृङ्गमुन्नतमवलोक्यम् । अतः स्वावस्थानसमसूत्रादूर्ध्वरूपिण्या कोट्या भवितव्यम् । भुजकोटिकर्णकृतं त्र्यस्रं दृष्टेरग्रत आदर्शवत् संमुखं यथा भवति तथा कल्प्यम् । तत् क्षेत्रं ब्रह्मगुप्तेन रवीन्द्वोरन्तरार्धज्यां द्विगुणां कर्णं प्रकल्प्य तद्भुजवर्गान्तरपदं कोटिरिति यत् त्र्यस्रं प्रकल्पितं तत् तिरश्चीनं जातम् । नहि द्रष्टुर्दृष्टिसंमुखमादर्शवत् । न तेन सम्यक् शृङ्गोन्नतिरिति मम मतम् ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य का जो अधोमुख शङ्कु होता है वह चन्द्र के शङ्कु में जोड़ देने से, फल कोटि होती है ।

उपपत्ति ।

सूर्य और चन्द्र का याम्योत्तर भाव से अन्तर भुज और ऊर्ध्वाधर भाव से अन्तर कोटि । चन्द्र के उदय किंवा अस्तकाल में शृङ्गोन्नति होने पर, रविशङ्कु के अभाव से चन्द्रशङ्कु ही कोटि होती है । रात्रि काल में चन्द्रशङ्कु को अधोमुख सूर्यशङ्कु में जोड़ देने से दोनों का अन्तर ऊर्ध्वाधर कोटिरूप होता है ।

इस प्रकार यह क्षेत्र द्रष्टा के संमुख सममण्डलीय धरातल में होता है । ब्रह्मगुप्त ने जो क्षेत्र कल्पना किया है, वह जिस धरातल में है वह धरातल क्षितिज धरातल पर समप्रोतधरातल के समान, लम्बरूप न होकर तिरछा होता है । इस लिए द्रष्टा के संमुख न होने से ठीक नहीं है । यह क्षेत्र कल्पना, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, श्लो० ७–६ उपपत्ति में है ॥ ४ ॥

अथ दिग्वलनार्थमाह ।

दोः कोटिवर्गैक्य पदं श्रुतिः स्या-
द्भुजो रस ६ घ्नः श्रवणेन भक्तः ।
प्रजायते दिग्वलनं हिमांशोः
शृङ्गोन्नतौ तत् स्फुटबाहुदिक्कम् ॥ ५ ॥

भुजकोट्योर्वर्गयोगपदं कर्णः । अथ भुजः षड्गुणः कर्णेन भक्तः फलं वलनम् । स्फुटबाहोर्या दिक् सा तस्य वलनस्य ज्ञेया ।

अत्रोपपत्तिः । कर्णानयने गणितोक्तैव । भुजकोटि कर्णैः शृङ्गोन्नतेस्तावत् परिलेखः क्रियते । इह तु चन्द्र

बिम्बव्यासार्धं षडङ्गुलं कर्णं प्रकल्प्य तत्परिणतस्य च भुजस्य वलनसंज्ञा कृता । अथ तत्परिणामायानुपातः । यद्यनन्तरानीतेन कर्णेन भुजो लभ्यते तदा षडङ्गुलेन किमिति । फलं चन्द्रबिम्बे वलनमित्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

भुज और कोटि का वर्गयोग मूल कर्ण होता है । भुज को छ से गुणा कर कर्ण का भाग देने से फल दिग्वलन संज्ञक होता है । वह शृङ्गोन्नति में स्फुटभुज की दिशा का होता है ।

उपपत्ति ।

चन्द्रबिम्ब व्यासार्ध को ६ अङ्गुल का मानकर उसमें साधित भुज का परिणामन करने से वह वलन संज्ञक हुआ । अनुपात—साधित कर्ण में साधित भुज, छ अङ्गुल कर्ण में क्या ? फल चन्द्रबिम्ब में परिणत हुआ ॥ ५ ॥

अथ चन्द्रस्य परिलेखसूत्रानयनयोग्यतां कर्तुं संस्कार विशेषमाह ।

चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन निघ्नो
व्यर्केन्दुदोर्गुण इनश्रवणेन भक्तः ।
तत्कार्मुकेण सहितः खलु शुक्लपक्षे
कृष्णेऽमुना विरहितः शशभृद्विधेयः ॥ ६ ॥

शृङ्गोन्नतिकालिकं चन्द्रं रविणा रहितं कृत्वा तस्य दोर्ज्या चन्द्रस्य योजनकर्णेन गुण्या रवियोजनकर्णेन भाज्या यत् फलं तस्य धनुषा शुक्लपक्षे शशीयुक्तः कार्यः कृष्णे रहितः । एवं परिलेखसूत्रसाधनयोग्यश्चन्द्रो भवति ।

अत्रोपपत्तिः। परिलेखसूत्रं हि शुक्लवशेन। शुक्लस्योपचयो व्यर्केन्दोरुपचयवशेन। तद्यथा। बिम्बार्धं षडङ्गुलं प्रकल्प्योच्यते। यदा व्यर्केन्दुः पञ्चदशभागास्तदाङ्गुलं शुक्लम्। यदा त्रिंशत् ३० तदाङ्गुलद्वयम्। एवं यदा नवति ९० र्भागास्तदाङ्गुलषट्कं ६ शुक्लम्। एवं बहुभिराचार्यैः शुक्लमानीतम्। तदसदिव प्रतिभाति। यदा तु पादोनषट्काष्ठ ८५। ४५ लवा व्यर्केन्दुस्तदैव बिम्बार्धं शुक्लं भवितुमर्हति। यथोक्तं गोले वासनाभाष्ये।

कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्र-
कर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्।
पादोनषट्काष्टलवान्तरेऽतो
दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम्॥

चन्द्रार्कयोर्योजनकर्णौ केनचिदिष्टेनापवर्त्तेनापवर्त्य भित्तेरुत्तरपार्श्वे भूसंज्ञं बिन्दुं कृत्वा ततः स्वस्वकर्णेन कर्कटकेन तयोः कक्षे विलिख्य भगणांशाङ्किते च कृत्वा तयोर्मध्ये तिर्यग्रेखामूर्ध्वरेखां च कुर्यात्। कक्षारेखासंपातयोरन्तरे नवतिर्नवतिर्भागा भवन्ति। अथ भूबिन्दोरुपरि चन्द्रकक्षोर्ध्वरेखासंपाते चन्द्रबिम्बं विलिख्य तन्मध्येऽन्या तिर्यग्रेखा कार्या। तस्याश्चन्द्ररेखाया रविकक्षायाश्च यौ संपातौ तावद्यस्तिर्यग्रेखाया उपरि सपादभागचतुष्टये भवतः। यदा तत्रस्थो रविस्तदा चन्द्रात् तिर्यग्भवति। तत्र यदा पश्चिमसंपातस्थस्तदा गोलकाकारस्य चन्द्रस्योर्ध्वरेखायाः पश्चिमं चन्द्रस्यार्धं शुक्लं भवति। अतो मनुष्यदृश्यस्याधोदलस्य दलं शुक्लं भवितुमर्हतीति। अथ तद्भागचतुष्टयं सपादं नवतेर्याव-

द्विशोध्यते तावत् पादोनषट्काष्ठलवा अवशिष्यन्ते । तावांस्तदा व्यर्केन्दुः । तावति व्यर्केन्दौ पूर्वानयनेनाङ्गुल-षट्कं ६ नायाति । अतस्तत्र चन्द्रे भागचतुष्टयं सपादं ४ । १५ क्षेप्यम् । अवान्तरे तद्वशादनुपातेन यद्भवति तत् क्षिप्यते । अथानुपातः कथ्यते । रवियोजनकर्णस्य त्रिज्यामिताः कला भवन्ति तदा चन्द्राधःस्थस्य चन्द्र-योजनमितस्य रविकर्णखण्डस्य कियत्य इति । एवं या लभ्यन्ते कलास्ता ज्यारूपाः । अथ द्वितीयोऽनुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यया व्यर्केन्दुदोर्ज्ययैताः कला लभ्यन्ते तदाभीष्टया किमिति । अत्र पूर्वानुपाते त्रिज्या गुण इदानीं हरोऽतस्तयोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते चन्द्रकर्णो गुणो रविकर्णो हर इत्युपपन्नमत उक्तं चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन निघ्न इत्यादि । अथ तासां कलानां धनुषा शुक्लपक्षे चन्द्रो युक्तः सन् कृष्णे रहितः सन् शुक्लसाधनयोग्यो भवति । तच्च धनुः परमं भागचतुष्टयं सपादं भवति । अवान्तरे तदनुसारेण ।

भाषाभाष्य ।

सूर्य और चन्द्र के अन्तरांशज्या को चन्द्र योजनकर्ण से गुणाकर, और सूर्य योजन कर्ण का भाग देकर फल को, शुक्लपक्षीय चन्द्र में जोड़ने और कृष्णपक्षीय में घटाने से, परिलेख योग्य चन्द्र सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

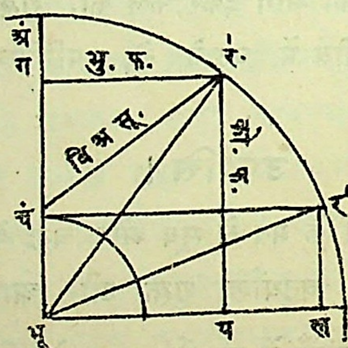
१—प्राचीन आचार्यों के मत से सूर्य और चन्द्र के ९०° अंश अन्तर में चन्द्रबिम्ब का चतुर्थांश शुक्ल और आचार्य के मत से ८५° । ४५′ इतने अन्तरांशों में चतुर्थांश शुक्ल होता है । यों दोनों मत

से चतुर्थांश शुक्ल होने पर भी अन्तरांशों में मतभेद है। इसलिए प्राचीनों के साथ एक वाक्यता के लिए आचार्य ने चन्द्र में संस्कार करके अपने मत में भी ९०° अंश सिद्ध करने के लिए उपाय किया है। नीचे क्षेत्र के अनुसार, चन्द्रकर्ण भुज, रविकर्ण कर्ण, दोनों का वर्गान्तरमूल कोटि है। यों 'भूरच' जात्य उत्पन्न हुआ। अनुपात—सूर्यकर्ण में संमुख कोणज्या त्रिज्या, तो चन्द्रकर्ण में क्या ? फल चरभू कोणज्या=रभूल कोणज्या । पुनः अनुपात—त्रिज्यातुल्य संस्कृत अन्तरज्या में यह फल तो इष्टान्तरज्या में क्या ?

$$\frac{\text{त्रि}\times\text{चंक}\times\text{अंज्या}}{\text{त्रि}\times\text{रक}}=\frac{\text{चंक}\times\text{अंज्या}}{\text{रक}}$$; 'चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन—' इत्यादि उपपन्न होता है।

फल के चाप को शुक्लपक्षीय चन्द्र में जोड़ना क्योंकि सूर्य से चन्द्र आगे रहता है और कृष्ण में घटाना । यों संस्कृत चन्द्र और सूर्य के अन्तरांश सिद्ध किये जायँ तो पूर्वान्तर से अधिक अन्तर होता है। ऐसे अन्तरांश में १५ का भाग देने से, पूर्वाचार्यों की अपेक्षा सूक्ष्म शुक्ल सिद्ध होता है यही आचार्य का मत है।

क्षेत्र,



२–यह आचार्य साधित संस्कार स्थूल है । अनुपात में त्रिज्या तुल्य अन्तरज्या संस्कारयुक्त मानी है और इष्टान्तरज्या संस्कार के न जानने से संस्कृत नहीं है । और चन्द्रविम्ब से रविविम्ब छोटा होने से, उक्त अन्तरांशों में अर्धाधिक दृश्यविम्ब शुक्ल होजाता है, * पर माना अर्धविम्ब ही है । अर्धाधिक शुक्ल क्षेत्रमिति के नियमानुसार सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

---

* यही मत कमलाकर ने तत्त्वविवेक के शृंगोन्नति में लिखा है और भास्कराचार्य के सितसाधन का खण्डन किया है । और, सूर्य चन्द्र का सितवृत्तीय अन्तरांश और सितांश जानकर, 'तदन्तरज्या रविकर्णनिघ्नी—' इत्यादि प्रकार से शुक्लसाधन किया है । पर सब आचार्यों का साधनप्रकार स्थूल है । श्रीबापूदेव शास्त्रीजी ने कमलाकरके अनुसार सितांश साधकर, नवीन रीति से शुक्लांगुल का साधन, गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय में स्वनिर्मित 'मासस्य प्रथमे पादे तुर्ये वा हिमदीधितेः—' इत्यादि प्रश्न के उत्तर में किया है । वह 'भानोर्यदेन्दुश्चरणोनषट्काद्याल्पांशकैरन्तरितस्तदानीम् । तदंशदोः कोटिगुणौ खरांशुश्रुत्यानिहत्य त्रिगुणेन भक्तौ ।' इत्यादि है । संक्षेप से, उपपत्ति इस प्रकार है—

त्रिज्यावृत्तीयअन्तरांशज्या का, रविकर्णव्यासार्धे में परिणामन किया—

$$\text{त्रि} : \text{अंज्या} :: \text{रक} : \frac{\text{अंज्या}\times\text{रक}}{\text{त्रि}} = \text{चर}$$, कोटिज्या=रप (ऊपर के क्षेत्र में) दोनों फल संज्ञक हैं । कोटिफल–चंक=चग; $\sqrt{\text{भुजफल}^2 + \text{चग}^2}$=गर=विम्बान्तर सूत्र । अनुपात—

$$\text{विम्बांत} : \text{संमुखकोणज्या–त्रिज्या} :: \text{भुजफ} : \frac{\text{त्रि}\times\text{भुफ}}{\text{विम्बान्त}} = \text{सितांशज्या};$$

इसकी उत्क्रमज्या से अनुपात–त्रिज्यातुल्य उत्क्रमज्या में ६ अंगुल शुक्ल तो सितांशोत्क्रमज्या में क्या ? = $\frac{६\times\text{सिउज्या}}{\text{त्रि}}$=स्पष्ट सितांगुल । यों उक्तप्रकार खंडशः उपपन्न होता है ।

अथ परिलेखसूत्रमाह।

व्यर्केन्दुकोट्यंशशरेन्दु १५ भागो
हारोऽमुना षट्कृति ३६ तो यदाप्तम्।
छिष्टं च हारोनयुतं तदर्धे
स्यातां क्रमादत्र विभास्वभाख्ये॥ ७॥

परिलेखसूत्रस्वरूपं तावदुच्यते। व्यर्केन्दुभुजभागाः पञ्चदश १५ भक्ताः शुक्लाङ्गुलानि भवन्ति। चन्द्रं भूमौ विलिख्य तत्र यथोक्तं वलनं दत्त्वा वलनसूत्रं चोच्छ्राद्य शुक्लपक्षे पश्चाद्भागाद्वलनसूत्रेण शुक्लं दत्त्वा तदग्रे चिह्नं कार्यम्। तथा वलनसूत्रात् तिर्यग्रेखां च कृत्वा तद्वृत्त-संपातयोश्चान्यच्चिह्नद्वयं कार्यम्। तच्चिह्नत्रयं यथा स्पृशति तथा यद्वृत्तमुत्पद्यते तत् परिलेखवृत्तम्। तद्येन व्यासार्धेनोत्पद्यते तत्परिलेखसूत्रमुच्यते। परिलेख-वृत्तस्य मध्यं हि वलनसूत्र एव भवति। वलनरेखायां च तत्र बिन्दुः कार्यः। तस्माद्बिन्दोस्तच्चिह्नगामिनी रेखा कार्या स कर्णः। चन्द्रवृत्तमध्यात् तच्चिह्नगामिनी तिर्य-ग्रेखा भुजः। चन्द्रमध्यपरिलेखवृत्तमध्यबिन्दोरन्तरं कोटिः। चन्द्रमध्यशुक्लचिह्नयोरन्तरं कोटिकर्णान्तरम्। भुजाद्वर्गितात् कोटिकर्णान्तराप्तमित्यादि। एवं कोटि-कर्णौ साधितौ। तौ चैवम्। व्यर्केन्दुभुजभागाः पञ्चदश-हृताः शुक्लाङ्गुलानि किल भवन्ति। कोटिभागेभ्य एव शुक्लोनितं चन्द्रबिम्बार्धं भवति। तदेव कोटिकर्णान्तरम्। चन्द्रव्यासार्धमङ्गुलषट्कं भुजः। भुजोवर्गितो जाता षट्कृतिः ३६। इयं कोटिकर्णान्तरेण भाज्या। अत उक्तं व्यर्केन्दुकोट्यंशशरेन्दुभागो हारोऽमुना षट्कृतितो यदा-

समिति। अत्र यदाऽसमसौ कोटिकर्णयोगः। द्विष्ठं च हारोनयुतमिति संक्रमगणितेन ज्ञातौ कोटिकर्णौ। तत्र कोटेर्विभा संज्ञाकृता कर्णस्य स्वभासंज्ञा। कर्ण एव परिलेखसूत्रमित्युपपन्नम्।

प्रभा।

विगतोऽर्को यस्मादसौ व्यर्कः सचासाविन्दुर्व्यर्केन्दुस्तस्य ये कोट्यंशास्तेषां शरेन्दुभागः पञ्चदशांशो हारसंज्ञकः।

भाषाभाष्य।

रवि और चन्द्र के अन्तर कोट्यंश का १५ पंदरहवां भाग हार संज्ञक है। हार का छत्तीस में भाग देकर फलको दो स्थान में रखकर हार को घटाना और जोड़ना, फिर आधा करने से फल, विभा और स्वभा संज्ञक होता है।

उपपत्ति।

शुक्ल की वृद्धि रविचन्द्र के अन्तरांशों की वृद्धि से होती है। वह पूर्वाचार्यों के मत से १५° अंश में १ अङ्गुल के मान से बढ़ता है। इसलिए अन्तरांशों में १५ का भाग देने से शुक्लाङ्गुल का मान होता है। छ अङ्गुल के व्यासार्ध से चन्द्रविम्ब बना है। और जिस वृत्त से वह खण्डाकृति होता है उसका व्यासार्ध ही परिलेखसूत्र संज्ञक है। चन्द्रबिम्ब में वलन रेखा करके तदनुसार शुक्लाङ्गुल देकर उसके आगे विन्दु करो। अर्थात् वलन के अग्रसे जानेवाली रेखा के अनुसार यथोक्त शुक्ल का दान करके उसका अग्र ठहराओ। बाद वलनाग्रगत रेखा के अग्रसे तिरछी रेखा करो इसका और चन्द्रविम्वपरिधि का दो संपातबिन्दु निश्चित करो और उक्त तीनों बिन्दुओं को स्पर्श करने वाला वृत्त बनाओ। इसी वृत्त का व्यासार्ध परिलेख सूत्र है, जिसका मध्यविन्दु वलनसूत्राश्रित है। मध्यविन्दु से परिधिस्थ निर्दिष्टबिन्दु तक

रेखा करो। यही कर्णरेखा स्वभा कहाती है। चन्द्रबिम्बकेन्द्र से परिधिस्थबिन्दु तक तिरछी रेखा भुज है। चन्द्रबिम्बकेन्द्र से परिलेखसूत्र के मध्यबिन्दु तक जो अन्तराल है वही कोटिरेखा विभा कहलाती है। और चन्द्रबिम्बकेन्द्र तथा शुक्लचिह्न, कोटिकर्ण का अन्तर है। यही अन्तर, शुक्लाङ्गुलोनचन्द्रबिम्बार्ध है। इस प्रकार कोटिकर्णों का अन्तर और षडङ्गुल चन्द्रबिम्बव्यासार्ध भुज जानकर 'भुजाद्वर्गितात्—' इस पाटीसूत्र के अनुसार कोटि कर्ण को अलगाया है ॥ ७ ॥

अथ परिलेखमाह।

सूत्रेण बिम्बमुडुपस्य षडङ्गुलेन
कृत्वा दिगङ्कमिह तद्वलनं ज्यकावत्।
मासस्य तुर्यचरणे वरुणेशदेशात्
प्राग्भागतः प्रथमके सुधिया प्रदेयम् ॥ ८ ॥

केन्द्राद्विभां तद्वलनाग्रसूत्रे
कृत्वा विभाग्रे स्वभया च वृत्तम्।
ज्ञेयेन्दुखण्डाकृतिरेवमत्र
स्यात्तुङ्गशृङ्गं वलनान्यदिक्स्थम् ॥ ९ ॥

समायां भूमौ षडङ्गुलेन सूत्रेण वृत्तमालिख्य दिग्भिरङ्कितं च कृत्वा तं चन्द्रं परिकल्प्य तत्र वृत्ते प्रागानीतवलनं ज्यावद्यथाशं देयम्। मासान्तपादे पश्चिमदिक्चिह्नतः। प्रथमचरणे तु पूर्वदिग्भागात्। ततः केन्द्राद्वलनोपरि वृत्ताद्बहिरपि खटिकया सूत्रमुच्छ्राद्यम्। अथ केन्द्रात् सूत्रे विभा च देया। ततो विभाग्रचिह्ने स्वभामितेन सूत्रेण वृत्तमालिख्य तेन वृत्तेन खण्डितस्य चन्द्रस्य शेषखण्डाकृतिरेवमत्र ज्ञातव्या। ननून्नतिनती ऊर्ध्वाधरभावौ। समायां भूमौ चन्द्रबिम्बखण्डे लिखिते

दृष्टे शृङ्गमुन्नतमिति कथं ज्ञायत इत्याशङ्क्याह । स्यात्तुङ्गशृङ्गं वलनान्यदिक्स्थमिति । यदि दक्षिणं वलनं तदोत्तरं शृङ्गमुन्नतं ज्ञातव्यं यद्युत्तरं तदा दक्षिणमिति ।

अत्रोपपत्तिः । जलमयस्य गोलकाकारस्य शशिनः शुक्लत्वकारणं तदुपचयापचयकारणं तद्दिग्वलनकारणं च तावदुच्यते । यथोक्तं गोले ।

तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो
दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्री—
र्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः ॥

अत्र हरिहरविरञ्चिवरलाभश्रवणसहर्षपुत्रकामात्रिनेत्रविगलितजलबिन्दुरयमिन्दुः पितामहेन ग्रहत्व आकाशे निवेशित इति श्रूयते स्मृतिषु पुराणेषु । अत आगमप्रामाण्येनास्य जलमयत्वम् । तदुपरि दूरतो रविर्भ्रमति । अतोऽस्य यस्यां दिशि दिनकरस्तत्करनिकरसङ्गमजनितचारुचन्द्रिका निचयेन तस्यां दिशि चन्द्रश्चकास्ति दीप्तिमान् भवति । तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीः । कुन्तलो वर्तुलः केशबन्धविशेषः । तदुपचारतः कैश्चित् केशेष्वपि प्रयुज्यते । बालाकुन्तलस्येव श्यामला कृष्णा श्रीः शोभा यस्येति विग्रहः । कया तत्र श्यामलः । निजमूर्तिच्छायया । क इव । आतपस्थो घट इव । आतपस्थस्य घटस्य दिनकरदिशि यद्दलं तदुज्ज्वलमितरच्छ्यामलं दृश्यते तथा चन्द्रस्येत्यर्थः । अत एकराशौ दर्शे सूर्यादधःस्थस्य विधोरूर्ध्वमर्धं शुक्लम् । अधस्तनं मनुष्यदृश्यं कृष्णम् । अथ भार्धान्तरितस्य

परिवर्तनेन पौर्णमास्यामूर्ध्वमर्धं कृष्णमधस्तनं शुक्लम्। एवं पादोनषट्काष्ठलवान्तरितस्य रवेस्तिर्यक्स्थितत्वादूर्ध्वाधोदलयोर्दले सितासिते भवतः। एवमर्केन्द्वोर्दक्षिणोत्तरवलनाद्दिग्वलनम्। तज्ज्ञानाय भुजकोटिसाधनम्। तदुपपत्तिर्गोलेऽप्यभिहिता।

यद्याम्योदक्तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् स कर्णः।
दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्च कोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगतया दीयते तेन शौक्ल्यम्॥

रवीन्द्वोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं भुजः। रवेर्यतः शशी सा तस्य दिक्। यदूर्ध्वाधरमन्तरं सा कोटिः। यत् तिर्यक् स कर्णः। चन्द्रबिम्बार्धमङ्गुलषट्कं कर्णं परिकल्प्य तत्परिणतस्य भुजस्य वलनसंज्ञा कृता। मासस्य प्रथमचरणे किल शृङ्गोन्नतिः। वलनं च याम्यमङ्गुलत्रितयम् ३। तत्र पूर्वभागाभिमुखे चन्द्रशृङ्गे भवतः। अतश्चन्द्रमध्यात् पूर्वाभिमुखी विभा देया। यतस्तदग्रात् खण्डितस्य चण्डीशचूडामणेस्तथाविधे शृङ्गे भवतः। अतः प्राग्भागतो वलनं दक्षिणं दत्तम्। मासान्तपादे तु पश्चिमभागाभिमुखे शृङ्गे भवतः। अतस्तत्र पश्चिमभागाद्वलनं देयम्। अत उक्तं मासस्य तुर्यचरणे वरुणेशदेशादिति। अतश्चन्द्रकेन्द्राद्वलनाग्रानुगते सूत्रे या विभा दत्ता सा पूर्वप्रतिपादितत्र्यस्रकोटिः। स्वभा तु कर्णः। अतस्तया विभाग्राद् वृत्ते कृते चन्द्रशुक्लखण्डस्य सम्यगाकृतिर्ज्ञायते। यस्यां दिशि चन्द्राद्रविर्भवति तद्दिक् शृङ्गमुन्नतं भवति। यत् पूर्वं वलनमानीतं तच्चन्द्रदिक्। चन्द्रादर्को

व्यस्तदिग् भवति । अत उक्तं स्यात्तुङ्गशृङ्गं वलनान्यदिक्स्थमिति सर्वमुपपन्नम् ।

उपपत्तौ हि क्वचिदमूर्त्तं प्रमेयं परब्रह्मवत् तज्ज्ञानमेव स्वसंवेद्यम् ।

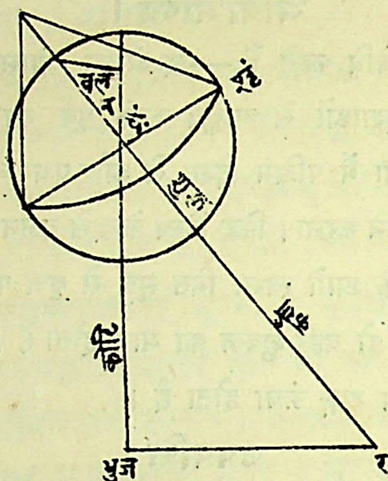
भाषाभाष्य ।

अब परिलेख विधि कहते हैं:—छ अंगुल व्यासार्ध से चन्द्रविम्ब लिखकर, उसको दिशाओं से अङ्कित करके पूर्व साधित वलन का, मास के चतुर्थ चरण में पश्चिम दिशा से और प्रथमचरण में पूर्व दिशा से, ज्याके समान दान करना। फिर विम्ब केन्द्र से वलन नाम सूत्र में विभा का दान करके उसके आगे स्वभा मित सूत्र से वृत्त करने पर जितना चन्द्रविम्ब खण्डित हो वही शुक्ल का मान होता है । और वलनदिशा से भिन्न दिशा वाला शृङ्ग ऊंचा होता है ।

उपपत्ति ।

कल्पना करो कि मास के पहले चौथाई में चन्द्रशृङ्गोन्नति दिखलानी है । और षडंगुल चन्द्रविम्बार्ध में परिणामित भुज, जिसकी वलन संज्ञा रक्खी है, वह तीन अंगुल दक्षिण दिशा का है । इस समय सूर्य से चन्द्र पूर्व की तरफ होगा और चन्द्र के शृङ्ग पूर्वाभिमुख दीखेंगे । इस कारण चन्द्रबिम्ब केन्द्र से विभा (कोटि) का पूर्वाभिमुख दान किया है । और विभा के अग्र को केन्द्र मानकर स्वभा (कर्ण) तुल्य व्यासार्ध से वृत्त करने से चन्द्रबिम्ब खण्डित हो उस के शृङ्ग पूर्व भाग में होते हैं इसलिये पूर्वविन्दु से उक्त दक्षिण वलन का दान किया है । और मास के अन्त पाद में सूर्य से चन्द्र पश्चिम (पृष्ठ) भाग में होता है और उसके शृङ्ग पश्चिमाभिमुख होते हैं इसी लिये पश्चिम भाग से वलन का दान किया जाता है । जो पहले वलन सिद्ध किया गया है वह चन्द्र दिशा का है और चन्द्र से सूर्य व्यस्त

दिशा का होता है इसलिये चन्द्र से सूर्य दिशावाला शृङ्ग ऊंचा होता है। शेष वासना उक्तप्राय है।



अतोऽत्र मन्दावबोधनेन स्वमतं दृढयितुं परमतनिराकरणाय सुगणकानभ्यर्थ्य दृष्टान्तमाह।

यौ ब्रह्मगुप्तकथितौ किल कोटिकर्णौ
ताभ्यां कृते तु परिलेखविधौ यथोक्ते।
नास्तीव भाति मम दृग्गणितैक्यमत्र
शृङ्गोन्नतौ सुगणकैर्निपुणं विलोक्यम् ॥ १० ॥

यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवाः क्षितिजवत् तत्रापवृत्ते स्थिते
मेषादावुदयं प्रयाति तपने नक्रादिगेन्दोर्दलम्।
याम्योदग्वलयेन खण्डितमिव प्राच्यां सितं स्यात्तदा
नैतद्ब्रह्ममतेऽस्य हि त्रिभगुणो बाहुश्च कोटिस्तदा ११

शृङ्गे समे स्तो यदि बाहुभाव
ऊर्ध्वाधरे ते यदि कोट्यभावः ।
त्रिज्यासमौ तस्य च कोटिबाहू
किंवा समानेन समो महद्भ्यः ॥ १२ ॥

यत्र देशे षट्षष्टिः ६६ पलांशास्तत्र मेषादिर्यदा प्राक्क्षितिजस्थो भवति तदा सर्वेऽपि राशयः क्षितिजस्था भवन्ति । अपमण्डलमेव क्षितिजम् । यदा वृषभान्तःस्थः किल सूर्यो मेषान्तस्थश्चन्द्रस्तदा चन्द्रस्योत्तरे भागे द्व्यङ्गुलं शुक्लमूर्ध्वरूपं च शृङ्गं भवति । उत्तरस्थितत्वादर्कस्य । यदा मेषान्तस्थो रविर्मेषादिस्थश्चन्द्रस्तदाप्येवमेव । यदा मेषादिस्थो रविः कुम्भार्धस्थो विधुस्तदा त्र्यङ्गुलं शुक्लमुत्तरत ऊर्ध्वाधरमेव शृङ्गम् । एवं यदा मकरादिस्थश्चन्द्रस्तदा मेषादिस्थोरविरिति । यदुक्तं तत तिर्यक्स्थत्वोपलक्षणार्थम् । तेन मेषादेः प्राक् सपादे भागचतुष्टये यदि रविस्तस्य मकरादिस्थस्य विधोश्च पादोनषट्काष्ट ८५ । ४५ लवा अन्तरं भवति । एतदुक्तं भवति । रविकक्षायां प्राक्स्वस्तिकाद्दक्षिणतश्चन्द्रयोजनकर्णतुल्येऽन्तरे रविर्वर्तते । दिङ्मध्यचिह्नाद्दक्षिणतस्तावद्भिरेव योजनैः स्वकक्षायां चन्द्रोऽपि मकरादिस्थो वर्तते । अतो रवेः सम्यक् तिर्यक् स्थितत्वाद्धिमकरस्य मकरादिस्थस्य प्राच्यामर्धं याम्योत्तरमण्डलेन खण्डितमिव शुक्लं भवति । तत्राप्यूर्ध्वरूपं शृङ्गमित्यर्थः । ननु युक्तियुक्तमिदमुक्तं प्रतीतिजनकत्वात् प्रत्यक्षमिव कयापि युक्त्या निराकर्तुं न शक्यते तत् किमर्थमिदं निरूपणमित्याशङ्क्याह । शृङ्गे समे स्तो यदि बाहुभाव इत्यादि ।

अत्र बहुभिर्ग्रन्थकारैर्बाहुः स एवानीतः कोटिकर्णावपि तदनुसारिणौ। ब्रह्मगुप्तेन तु कोटिकर्णावन्यौ साधितौ। परिलेखस्तु सर्वैरेक एव। तस्य परिलेखस्यायं परिणामः। शृङ्गे समे स्तो यदि बाह्वभाव इति। यतो बाहुदिशि शृङ्गं नमति। अतो बाहोरभावाच्छृङ्गे समे स्तः। यदा कोटेरभावस्तदोर्ध्वाधरे शृङ्गे भवतः। उपरि शृङ्गाग्राल्लम्बनिपातोऽधः शृङ्गाग्रे भवति। अयं परिलेखपरिणामः। अथ च हिमकरे मकरादिगते त्रिज्यामितो बाहुः। ब्रह्मगुप्तपक्षे त्रिज्या तुल्या च कोटिः। अतः परिलेखे क्रियमाणे कथं शृङ्गयोरूर्ध्वाधरत्वम्। अत्र सौरार्यभटादिशास्त्रेषु कोटेरभाव एव। हिमकरे मकरादिगत इत्युपलक्षणम्। यदापममण्डलं क्षितिजवद्भवति तदा मासान्तपादे प्रथमे। अथवा यत्र तत्रस्थस्यापि क्षिधोरूर्ध्वाधरे एव शृङ्गे भवतः। जिष्णुजकोटिकर्णाभ्यां न क्वाप्यूर्ध्वाधरे भवतः। अथवा किं ममानेन नमो महद्भ्यः। महतामभिप्रायं महान्त एव विदन्ति।

वेत्ति विश्वम्भरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयमिति।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणि वासनाभाष्ये मिताक्षरे शृङ्गोन्नत्यधिकारः।

अत्र ग्रन्थसंख्या १८०।

भाषाभाष्य।

ब्रह्मगुप्त ने जो कोटि, कर्ण का साधन किया है उनसे शृङ्गोन्नति का परिलेख करने पर दृग्गणितैक्य ठीक नहीं होता, इसका विचार सुज्ञ गणक अच्छी तरह से करें।

जिस देश में ६६ अक्षांश हैं वहां क्षितिजाकार क्रान्तिवृत्त में, मेष में

सूर्य और मकर में चन्द्र का उदय होने पर चन्द्र का दृश्य बिम्बार्ध याम्योत्तर मण्डल से पूर्व में खण्डितसा देखने में आता है। परन्तु यह स्थिति ब्रह्मगुप्त के मत से नहीं होती। क्योंकि वहां भुज, कोटि त्रिज्यातुल्य होते हैं।

शृङ्ग की समता में भुज का अभाव और ऊर्ध्वाधर शृङ्ग में कोटि का अभाव, यों त्रिज्यातुल्य भुजकोटि होते हैं। वे एक अवस्था में बाधित हैं। अथवा, इससे मेरे को क्या? महात्माओं को नमस्कार है।

जिस देश में ६६° अक्षांश हैं वहां जब मेषादि पूर्वक्षितिज में आता है उस समय सब राशि क्षितिज में होते हैं। कल्पना किया कि वृष के अन्त में सूर्य और मेष के अन्त में चन्द्र है, तब चन्द्र से सूर्य के उत्तर होने के कारण चन्द्र के उत्तर भाग में दो अङ्गुल शुक्ल होगा और शृङ्ग ऊर्ध्वाधर होंगे। जब मेषान्त में सूर्य और मेषादि में चन्द्र होगा, तब भी उक्त ही स्थिति होगी। जब मेषादि में सूर्य और कुम्भार्ध में चन्द्र है, तब भी उक्त कारण से चन्द्र के उत्तर भाग में तीन अङ्गुल शुक्ल होगा और शृङ्गऊर्ध्वाधर होंगे। और जो 'मेषादावुदयं प्रयाति तपने नक्रादिगेन्दोर्दलं, इस प्रकार सूर्य चन्द्र को तीन राशि के अन्तर से कल्पना किया है वह उनकी सुप्रसिद्ध तिर्यक् स्थिति दिखलाने के लिये। वास्तव में जब मेषादि से ४°। १५′ सवाचार अंश पहले सूर्य होगा तभी उसका और मकरादिस्थ चन्द्र का ८५°।४५ पादोनषट्काष्टलव अन्तर होने से वे ठीक तिर्यक् स्थित होंगे। और उसी काल में 'याम्योदग्वलयेन खण्डितमिव प्राच्यां सितं स्यात्' यह स्थिति प्रत्यक्ष बुद्धि में आरूढ होती है। परन्तु ब्रह्मगुप्त के मत से शृङ्गों की ऊर्ध्वाधरता नहीं होती यह प्रत्यक्ष दूषण है। यही आपत्ति 'शृङ्गे समे स्तः—' इस श्लोकद्वारा दिखाई है। शेष वासना स्पष्ट है॥ १०–१२॥

शृङ्गोन्नत्यधिकार पूरा हुआ।

अथ ग्रहयुतिर्व्याख्यायते । तत्रादौ ग्रहाणां मध्यमबिम्बान्याह ।

त्र्यङ्घ्रीषवः ४ । ४५ सचरणा ऋतव ६ । १५ त्रिभागयुक्ताद्रयो ७ । २० नव ९ च सत्रिलवेषव ५ । २० श्च ।
स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां
त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्न्यः ॥ १ ॥

भौमस्य मध्यमं बिम्बं पादोनाः पञ्चकलाः । बुधस्य सपादाः षट् । गुरोः सत्र्यंशाः सप्त । शुक्रस्य नव कलाः । शनेः सत्र्यंशाः पञ्च । त्रिज्याशुकर्णविवरेणेत्यग्रे सम्बन्धः ।

भाषाभाष्य ।

भौमादि ग्रहों के मध्यम कलात्मक बिम्ब का मान क्रम से इस प्रकार है:—

भौम ४′ । ४५″ बुध ६′ । १५″ गुरु ७′ । २०″ शुक्र ९′ शनि ५′ । २०″ ॥ १ ॥

अथासां स्फुटीकरणमाह ।

त्रिघ्न्या निजान्त्यफलमौर्विकया विभक्ता
　　लब्धेन युक्तरहिताः क्रमशः पृथक्स्थाः ।
ऊनाधिके त्रिभगुणाच्छ्रवणे स्फुटाः स्युः
　　कल्प्यं खलु त्रिकलमङ्गुलमत्रबिम्बे ॥ २ ॥

ता मध्यमास्तनुकलाः पृथक्स्थास्त्रिज्याशुकर्णयोरन्तरेण पृथग्गुण्या ग्रहस्य चलान्त्यफलज्यया त्रिगुणया भाज्याः । लब्धेन पृथक्स्था युताः कार्याः । यदि त्रिज्यातोऽल्पः शीघ्रकर्णः । यद्यधिकस्तदा रहिताः कार्याः ।

एवं बिम्बकलाः स्पष्टा भवन्ति । तत्र त्रिकलमङ्गुलं कल्प्यम् । कलास्त्रिभक्ता अङ्गुलानि भवन्तीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिरुपलब्धिरेव । यदा त्रिज्यातुल्यः शीघ्रकर्णस्तदा यावदुपलभ्यते तावन्मध्यमं बिम्बम् । त्रिज्यातोऽल्पे कर्णे भूमेरासन्नत्वात् तदुपचीयते । त्रिज्याधिके तु कर्णे ग्रहस्य भूमेर्दूरस्थितत्वाद्बिम्बस्यापचयः । तस्य बिम्बस्य त्रिभागः परम उपचयः । तथा परमापचयः । अवान्तरेऽनुपातेन । परमोपचयेऽपचयेऽप्युपलब्धिरेव वासना । सा चोपलब्धिर्यष्टिद्वयाग्रवेधेन प्रागुक्तैव । तथैवं यदा त्रिज्यातुल्यश्चलकर्णस्तदा यष्टिद्वयाग्रवेधेन यावद्बिम्बमुपलभ्यते तावन्मध्यमम् । अन्त्यफलज्योनत्रिज्यातुल्ये कर्णे यदुपलभ्यते तत् परमं स्थूलम् । अन्त्यफलज्याधिकत्रिज्यातुल्ये कर्णे यदुपलभ्यते तत् परमं सूक्ष्मम् । एवं मध्यमपरमसूक्ष्मयोर्मध्यमपरमस्थूलयोश्चान्तरे मध्यमबिम्बस्य त्रिभाग एवोपलभ्यते । अतोऽवान्तरे तेनानुपातः यद्यन्त्यफलज्यातुल्येन त्रिज्याशुकर्णविवरेण बिम्बत्रिभाग उपलभ्यते तदाभीष्टेन किमिति । त्रिज्यातोऽल्पे कर्णे फलेन मध्यमं बिम्बं युक्तमधिके तु रहितं स्फुटं बिम्बं भवतीत्युपपन्नम् ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहों के मध्यम कलात्मक बिम्बों को, त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणाकर, त्रिज्यागुणित अन्त्यफलज्या का भाग देकर फल को, त्रिज्या से न्यून शीघ्रकर्ण में मध्यमबिम्ब में जोड़ने, और अधिक में घटाने से ग्रहों की स्पष्टबिम्ब कला होती है ।

उपपत्ति ।

अन्त्यफलज्याधिकत्रिज्यातुल्य शीघ्रकर्ण और अन्त्यफलज्यान्यून-त्रिज्यातुल्य शीघ्रकर्ण में विम्ब का क्रम से परमोपचय और परमापचय विम्ब तृतीयांश के समान वेध से उपलब्ध हुआ है। उससे अनुपात किया—अन्त्यफलज्यातुल्य त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर में विम्ब त्रिभाग मिलता है तो इष्टान्तर में क्या ? लब्ध फल को त्रिज्या से अधिक और न्यून शीघ्रकर्ण में, मध्यम विम्ब में घटाना और जोड़ना चाहिये।

इस प्रकार—

$$\text{स्फुटबिम्बकला} = \text{मबिं} - \frac{\text{मबिं}}{३} \cdot \frac{(\text{शीक} - \text{त्रि})}{\text{अंफज्या}}$$

$$= \frac{\text{मबिं}}{३\ \text{अंफज्या}} (३\ \text{अंफज्या} + \text{त्रि} - \text{शीक})$$

$$\text{अथवा, स्फुटबिम्बकला} = \text{मबिं} + \frac{\text{मबिं}\ (\text{त्रि} - \text{शीक})}{३\ \ \text{अंफज्या}}$$

$$= \frac{\text{मबिं}}{३\ \text{अंफज्या}} (३\ \text{अंफज्या} + \text{त्रि} - \text{शीक})\ ।$$

इस प्रकार, सब उपपन्न हुआ ॥ २ ॥

इदानीं युतिकालज्ञानार्थमाह ।

दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्—
गत्योर्वियोगेन हृताद्यदैक्ः ।
वक्री जवैक्येन दिनैरवाप्तै—
र्याता तयोः संयुतिरल्पभुक्तौ ॥ ३ ॥

सांप्रत में युरोपीय वेध सिद्ध बिम्बकला—भौ ४.″६८ । बु ३.″३४ गु ६४.२३ । शु ८.″४० । श ८०.″ ८२ । यहां आचार्य ने जो उच्च-नीचवश, त्रिभ... का उपचयापचय माना है वह स्थूल है। इसीलिए कमलाकर ने तत्त्वविवेक में ... बिम्बसाधन का खण्डन किया है।

वक्रेऽथवा न्यूनतरेऽन्यथैष्या–
द्वयोरनृज्वोर्विपरीतमस्मात् ।

अभीष्टदिने ग्रहयोरन्तरकलास्तयोर्भुक्त्यन्तरेण भाज्याः । यद्येको वक्री तदा भुक्तियोगेन । लब्धैर्दिवसैर्युतिर्याता ज्ञेया । यद्यल्पभुक्तिरूनः । द्वयोर्यो वक्री स यद्यूनस्तदापि याता युतिः । इतोऽन्यथैष्या । यदि द्वावपि वक्रौ तदाल्पभुक्तिर्यद्यूनस्तदैष्या । यद्यधिकस्तदा याता युतिरिति वेदितव्यम् ।

अत्रोपपत्तिः । द्वयोरेकदिशं गच्छतोर्भुक्त्यन्तरमेव प्रत्यहमन्तरं भवति । यद्येकोऽग्रतः प्राचीं गच्छत्यन्यः पृष्ठतः प्रतीचीं तदा तयोर्गतियोगः प्रत्यहमन्तरं भवति । अतस्तेनानुपातः । यद्येतावता ग्रहान्तरेणैकं दिनं लभ्यते तदा ग्रहान्तरकलाभिः किमिति । लब्धदिनैर्युतिर्याता । लघुगतौ वक्रे ग्रहे वा न्यूने यतस्तमतिक्रम्येतरो ग्रहोऽग्रतो गतः । द्वयोर्वक्रिणोरितोऽन्यथेति तदपि युक्तम् ।

प्रभा ।

दिवौकसो ग्रहाः ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट दिन में, ग्रहों की अन्तरकला में, उनके भुक्त्यन्तर का, एक वक्री हो तब भुक्तियोग का, भाग देने से जो दिनादि फल मिलें उतने दिन पूर्व, युतिकाल गत होता है । जब अल्पभुक्ति ग्रह ऊन हो । दोनों में जो ग्रह वक्री हो वह यदि ऊनभुक्ति हो तो गत युति, नहीं तो एष्य युति होती है । और यदि दोनों ग्रह वक्री हों तब अल्पभुक्ति न्यून होने पर एष्य, अधिक में यात युति होती है ।

उपपत्ति ।

अनुपात किया—गत्यन्तर में गतिकला तो ग्रहान्तरकला में क्या ? फल को गत युति में, ग्रहों में घटाना और एष्य में जोड़ना । दोनों ग्रह वक्री हों तो गतयुति में ग्रहों में जोड़ना, एष्य में घटाना, क्योंकि वक्रग्रह क्रम से न्यून होता है । एक वक्र होने पर दोनों का अन्तर प्रतिदिन गतियोग तुल्य बढ़ता है, इसलिए उक्त अनुपात में गतियोग रूप हर का भाग देने से, लब्ध फल को, गत युति म मार्गी ग्रह में घटाना, क्योंकि वह पूर्व न्यून रहता है और वक्री में जोड़ना, क्योंकि वह पूर्व अधिक रहता है ।

गतियोग वा, गत्यन्तर में एक दिन तो ग्रहान्तरकला में क्या ? इस प्रकार गत वा एष्य दिनादि का ज्ञान करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथैवं स्थूलकालमानीय सूक्ष्मार्थमाह ।

दृक्कर्म कृत्वायनमेव भूयः
साध्येति तात्कालिकयोर्युतिर्यत् ॥ ४ ॥
एवंकृते द्विचरौ ध्रुवसूत्रसंस्थौ
स्यातां तदा वियति सैव युतिर्निरुक्ता ।
दृक्कर्मणायनभवेन न संस्कृतौ चेत्
सूत्रे तदा त्वपमवृत्तजयाम्यसौम्ये ॥ ५ ॥

एवं स्थूलैर्दिनैर्यस्मिन् दिने युतिरायाता तस्मिन् दिने पुनस्तौ मध्यमौ स्फुटौ च कृत्वा तयोः शरावानीयायनं दृक्कर्म च कृत्वा द्विौकसोरन्तरलिप्तिकौघादित्यादिना पुनर्युतिकालः साध्यः । स स्फुटो भवति । एवंकृते सति ग्रहौ युतिकाले ध्रुवसूत्रसंस्थौ भवतः । ध्रुवाद् ग्रहोपरि नीयमानं सूत्रमितरग्रहस्योपरि गच्छतीत्यर्थः । सैव तदा युतिः । आयनदृक्कर्मणा ध्रुवसूत्रगतो ग्रहः

क्रियत इत्यस्य वासना प्रागुक्तैव । यद्यकृते दृक्कर्मणि युतिः साध्यते सापि भवति । तदा तौ ग्रहौ क्रान्तिवृत्तात् तिर्यक् सूत्रे । तदा कदम्बोपरि नीयमानं सूत्रं ग्रहद्वयोपरि गतं भवतीत्यर्थः । कदम्बप्रसिद्धतारयोरभावाद्द्रष्टुः प्रतीतिर्नोत्पद्यत इति ध्रुवसूत्रे युतिः कथिता । युतिर्नाम यदाकाशे द्वयोरल्पमन्तरं तत् प्रायः कदम्बसूत्रस्थयोरेव भवति ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार जिस दिन युति सिद्ध हो उस दिन इष्ट ग्रहों को तात्कालिक साधकर उसमें आयन दृक्कर्म का संस्कार करके असकृत् युति काल स्पष्ट करना । यों युतिकाल में ग्रह आकाश में ध्रुवप्रोत वृत्तगत देखे जाते हैं उसी को युति कहते हैं । यदि ग्रहों में आयन दृक्कर्म का संस्कार न किया जाय तो कदम्बवृत्तगत युति सिद्ध होती है ।

दो ग्रहों का आकाश में जो बहुत कम अन्तर देखा जाता है वही युति है । ध्रुव तारा के प्रसिद्ध होने से ध्रुववृत्तीय धरातल में साधनार्थ आयनदृक्कर्म का संस्कार किया है शेष स्पष्ट है* ॥ ४—५ ॥

अथ दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानार्थमाह ।

एवं लब्धैर्ग्रहयुतिदिनैश्चालितौ तौ समौ स्त-
स्ताभ्यां सूर्यग्रहणवदिषू संस्कृतौ स्वस्वनत्या ।
तौ च स्पष्टौ तदनु विशिखौ पूर्ववत् संविधेयौ
दिक्साम्ये या वियुतिरनयोः संयुतिर्भिन्नदिक्त्वे ॥ ६ ॥

---

* आर्यभट्टादि आचार्यों ने कदम्बप्रोतवृत्तीय युति साधन किया है । ब्रह्मगुप्त ने समसूत्र में साधन किया है । और आर्यभट्टीय युति का खण्डन किया है । ब्रा.स्फु.सि. ग्रहयुत्यधिकार, श्लो. १२—१३ ।

याम्योदक्स्थद्युचरविवरं ज्ञेयमत्रेषुदिक्स्थौ
खेटौ यः स्याल्लघुतरशरः सोऽन्यदिक् तुल्यदिक्त्वे ।

एवं ये स्फुटा युतिदिवसा आगतास्ते गता एष्या वा तैश्चालिताविति तात्कालिकौ कृतौ ग्रहौ ग्रहांशकलादिभिः समौ भवतः । ततस्ताभ्यां शरौ सूर्यग्रहवत् स्वस्वनत्या संस्कृतौ कृत्वा ततो यष्ट्या द्युचरविशिखस्ताडित इत्यादिना स्फुटौ कार्यौ । ततस्तयोः शरयोर्दिक्साम्येऽन्तरं भिन्नदिक्त्वे योगस्तयोर्ग्रहयोर्याम्योत्तरमन्तरं भवति । तौ च ग्रहौ स्वस्वदिशि ज्ञातव्यौ । एकदिक्त्वे तु यस्याल्पः शरः सोऽन्यदिशीतरग्रहात् ।

अत्रोपपत्तिः प्रागुक्तैव ।

भाषाभाष्य ।

इस तरह गत वा एष्य जो स्पष्ट युति दिन आवें उनसे चालित ग्रह राश्यादि अवयवों से समान होते हैं । उनको सूर्यग्रहण की रीति से शर और नति के संस्कार से स्पष्ट करके, दोनों के योग-वियोग से उन का याम्योत्तर अन्तर सिद्ध करना ।

ग्रह अपने शर की दिशा में होते हैं और जो ग्रह लघुशर हैं वे दूसरे ग्रह से विपरीत दिशा में होते हैं ।

यहां उपपत्ति भाष्य से ही स्पष्ट है ॥ ६ ॥

इदानीं भेदयोगलम्बनज्ञानार्थमाह ।

मानैक्यार्धाद्द्युचरविवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः
कार्यं सूर्यग्रहवदखिलं लम्बनाद्यं स्फुटार्थम् ॥ ७ ॥
कल्प्योऽधः स्थः सुधांशुस्तदुपरिग इनो लम्बनादिप्रसिद्ध्यै
किं त्वर्कादेव लग्नं ग्रहयुतिसमये कल्पितार्कान्न साध्यम् ।
प्राग्वत् तल्लम्बनेन ग्रहयुतिसमयः संस्कृतः प्रस्फुटः स्यात्
खेटौ तौ दृष्टियोग्यौ यदि युतिसमये कार्यमेवं तदैव ॥ ८ ॥

यास्योदक्स्थद्युचरविवरं भेदयोगे स बाणो
ज्ञेयः सूर्याद्भवति स यतः शीतगुः सा शराशा ।
मन्दाक्रान्तोऽनृजुरपि यदाधःस्थितः स्यात्तदैन्द्र्यां
स्पर्शो मोक्षोऽपरदिशि तदा पारिलेख्येऽवगम्यः ॥ ६ ॥

तद्याम्योत्तरमन्तरं ग्रहयोर्मानैक्यार्धाद्यदाल्पं भवति तदा भेदयुतिर्ज्ञेया । यदा भेदयुतिस्तदा सूर्यग्रहवल्लम्बनाद्यं साध्यं स्पष्टार्थम् । तत्र तयोर्ग्रहयोर्मध्ये योऽधःस्थः स सुधांशुः कल्प्य ऊर्ध्वस्थो रविः । किमर्थं तथा कल्प्यौ । लम्बनादिसाधनाय । किन्तु यल्लग्नं वित्रिभलग्नार्थं साध्यं तदर्कादेव । न कल्पितार्कात् । अर्काल्लग्नसाधने कः कालः । ग्रहयुति समये । एतदुक्तं भवति । यस्मिन् दिने यावतीषु रात्रिघटिकासु गतासु ग्रहयुतिरायाता ताभिर्घटीभिः सषड्भ ६ मर्कं कृत्वा लग्नं साध्यम् । तद्वित्रिभं कृत्वा तस्योक्तवच्छङ्कुं कृत्वा तस्य वित्रिभस्य कल्पितार्कस्य चान्तरज्या कृता ४ हता व्यासदलेन भाजितेत्यादिना प्राग्वल्लम्बनं साध्यं नतिश्च तत्र लम्बनेन ग्रहयुतिकालः संस्कार्यः । एवं लम्बनादिकं तदैव कार्यं यदा तौ खेटौ दृष्टियोग्यौ । तस्मिन् भेदयोगे यद्याम्योत्तरमन्तरं स बाणः । कल्पितार्कात् कल्पितः । शशी यस्यां दिशि वर्तते सा दिक् तस्य बाणस्य ज्ञेया । तथा पारिलेख्ये कर्मणि विशेष उच्यते । योऽधःस्थो ग्रहः शशी कल्पितः स चेदल्पभुक्तिर्भवति वक्रो वा तदा प्राच्यां दिशि स्पर्शः पश्चिमायां दिशि मोक्ष इति वेदितव्यम् । इतोऽन्यथा चेत् तदा प्रतीच्यां स्पर्शः प्राङ्मोक्ष इति । अत्र भेदयोगे वासनया ये ये भेदा उत्पद्यन्ते ते

तेऽत्राभिहिताः। नान्यः कश्चित् कर्मविशेषः। अतोऽत्र वासना विमला सुगमा च।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणि-वासनाभाष्ये मिताक्षरे ग्रहयुत्यधिकारः समाप्तः।

अत्र ग्रन्थसंख्या ८५।

भाषाभाष्य।

अब भेदयोग और लम्बन का साधन कहते हैं—ग्रहों का साधित याम्योत्तर अन्तर मानैक्यार्ध से न्यून होने पर भेदयुति होती है। तब सूर्यग्रहण के समान ग्रहों का लम्बन आदि साधन करना। नीचे के ग्रह को चन्द्रमा और ऊपर का सूर्य मानना। वित्रिभलग्न के लिए जो लग्न साधन करना वह वास्तव सूर्य से करना कल्पित से नहीं। यों लम्बन-संस्कृत युतिकाल स्पष्ट होता है जब कि ग्रह दृष्टि योग्य होते हैं। कल्पित सूर्य से कल्पित चन्द्र जिधर हो वही शर की दिशा है। नीचे का ग्रह यदि मन्दगति या वक्रगति हो तब परिलेख में पूर्व दिशा में स्पर्श और पश्चिम में मोक्ष जानना चाहिए।

यहां उपपत्तिविषय वासनाभाष्य में स्पष्ट है। केवल कल्पना का वैचित्र्य है॥ ७–९॥

भाषाभाष्य में ग्रहयुत्यधिकार समाप्त।

अथ भग्रहयुत्यधिकारो व्याख्यायते । तत्रादौ भध्रुवकानाह ।

अष्टौ नखा गजगुणाः खशरास्त्रिषट्काः
सप्तर्त्तवस्त्रिनवचाङ्गदिशोऽष्टकाष्ठाः ।
गोऽर्कास्तथाद्रिमनवः शरबाणचन्द्राः
खात्यष्टयस्त्रिधृतयो नवनन्दचन्द्राः ॥ १ ॥
अर्काश्विनो जिनयमा नवबाहुदस्राः
कव्ध्यश्विनो जलधितत्त्वमिताश्च भागाः ।
षष्टयश्विनश्च पवनोत्कृतयोऽष्टभानि
खाङ्काश्विनो नखगुणा रसदन्तसंख्याः ॥ २ ॥
सप्तामराः खमिति भध्रुवका निरुक्ता
दृक्कर्मणायनभवेन सहाश्विधिष्ण्यात् ।
ब्रह्माग्निभध्रुवलवा रदलिप्तिकोना
मैत्रेन्द्रयोर्दृयधिपभस्य च सेषुलिप्ताः ॥ ३ ॥

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आ.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
०	०	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६
८	२०	७	१९	३	७	३	१६	१८	९	२७	५	२०	३
०	०	२८	२८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	अ.	अ.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
६	२	७	७	८	८	८	८	९	९	१०	१०	११	०
१९	७	१४	१९	१	१४	२०	२५	८	२०	२०	२६	७	०
०	५	५	५	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अष्टौ नखा इत्यादयोऽश्विन्यादीनां साभिजितां ध्रुवभागा वेदितव्याः । तत्रापि विशेषमाह । ब्रह्माग्निभध्रुवलवा इत्यादि । कृत्तिकारोहिणीनक्षत्रयोर्द्वात्रिंश-

त्कलोनाः । विशाखानुराधाज्येष्ठानां कलापञ्चकेनाधिका ध्रुवकभागा वेदितव्याः ।

भाषाभाष्य ।

इन श्लोकों में अश्विनी आदि नक्षत्रों के ध्रुवक पढ़े हैं । इनमें कृत्तिका—रोहिणी नक्षत्रों के ध्रुवकों में ३२′ कला घटाना चाहिए । और विशाखा—अनुराधा—ज्येष्ठा के ध्रुवकों में ५′ जोड़ना चाहिए ॥ १–३ ॥

अथ भानां शरांशानाह ।

द्विशोऽर्काश्च सार्धाब्धयः सार्धवेदा
दशेशा रसाः खं स्वराः खं च सूर्याः ।
त्रिचन्द्राः कुचन्द्रा विपादौ च दस्रौ
तुरङ्गाग्नयः सत्रिभागं च रूपम् ॥ ४ ॥
विपादं द्वयं सार्धरामाश्च सार्धा
गजाः सत्रिभागेषवो मार्गणाश्च ।
द्विषष्टिः खरामाश्च षड्वर्गसंख्या-
स्त्रिभागो जिना उत्कृतिः खं च भानाम् ॥ ५ ॥
निरुक्ताः स्फुटा योगताराशरांशा-
स्त्वयं ब्रह्मधिष्ण्याद्विशाखादिषट्कम् ।
करो वारुणं त्वाष्ट्रभं सार्पमेषां
शरा दक्षिणा उत्तराः शेषभानाम् ॥ ६ ॥

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आ.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
१०	१२	४	४	१०	११	६	०	७	०	१२	१३	११	१
		३०	३०										४५
उ	उ	उ	द	द	द	उ	उ	द	उ	उ	उ	द	द

स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	अ.	अ.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
३७	१	१	३	८	५	५	६२	३०	३६	०	२४	२६	०
	२०	४५	३०	३०	२०					२०			
उ	द	द	द	द	द	द	उ	उ	उ	द	उ	उ	उ

दिशोऽर्का इत्यादयस्तेषां भानां शरांशा ज्ञेयाः । शेषं स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । तत्र भवेधार्थं गोलबन्धोक्तविधिना विपुलं गोलयन्त्रं कार्यम् । तत्र खगोलस्यान्तर्भगोल-आधारवृत्तद्वयस्योपरि विषुवद्वृत्तम् । तत्र च यथोक्तं क्रान्तिवृत्तं भगणांशा ३६० ङ्कितं च कार्यम् । ततस्तद्गोल-यन्त्रं सम्यग्ध्रुवाभिमुखयष्टिकं जलसमक्षितिजवलयं यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलमध्यगचिह्नग-तया दृष्ट्या रेवतीतारां विलोक्य क्रान्तिवृत्ते यो मीना-न्तस्तं रेवतीतारायां निवेश्य मध्यगतयैव दृष्ट्याश्विन्यादे-र्नक्षत्रस्य योगतारां विलोक्य तस्योपरि वेधवलयं निवे-श्यम् । एवं कृते सति वेधवलयस्य क्रान्तिवृत्तस्य च यः संपातः स मीनान्तादग्रतो यावद्भिरंशैस्तावन्तस्तस्य धि-ष्ण्यस्य ध्रुवांशा ज्ञेयाः । अथ वेधवलये तस्यैव संपातस्य योगतारायाश्च यावन्तोऽन्तरेंशास्तावन्तस्तस्य शरांशा उ-त्तरा दक्षिणा वा वेदितव्याः । अथ ये ध्रुवभागाः पठितास्ते कृतदृक्कर्मका एव । ये तु शरांशाः पठितास्ते स्फुटा एव । यतो ध्रुवद्वयकीलयोः प्रोतं वेधवलयम् । तस्मिन् वेधव-लये यो ज्ञातः शरः स ध्रुवाभिमुखः । यो हि ध्रुवाभि-मुखः शरः स स्फुटः । अस्फुटस्तु कदम्बाभिमुखः । अत एव पूर्वं भगणोपपत्तिकथने ग्रहवेधवलयं कदम्बकीलयोः

प्रोतं कर्तव्यमित्युक्तम् । अत एव कारणात् कृतदृक्कर्मका एव भ्रुवाः । यतो भ्रुवाद् ग्रहोपरि नीयमानं सूत्रं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तत्र कृतायनदृक्कर्मको ग्रह इति दृक्कर्मवासनायां पूर्वं कथितमेव ।

भाषाभाष्य ।

गोल रचना की रीति से एक बड़ा गोलयन्त्र बनाकर, उसको यथानियम स्थापित करना । रात्रि में गोलमध्यगत दृष्टि से रेवती योग तारा को देखकर, क्रान्तिवृत्त का मीनान्त चिह्न उस पर रखना । गोलगत दृष्टि से नक्षत्र को वेधकर उस पर कदम्बप्रोतवृत्त अथवा ध्रुवप्रोतवृत्त करना । वह वृत्त क्रान्तिवृत्त में, जहां संपात करे उस बिन्दु तक, नाडीवृत्त क्रान्तिवृत्तसंपात से जितने अंश हों वे सायन ध्रुवक होते हैं । कदम्बप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त के संपात का और नक्षत्रबिम्ब का जो दक्षिण या उत्तर अन्तर है वह कदम्बप्रोतवृत्त में शर है । इस प्रकार, नाडीवृत्त क्रान्तिवृत्त संपात से, क्रान्तिवृत्त में ध्रुवप्रोतवृत्त तक, आयनदृक्कर्मसंस्कृत नक्षत्रध्रुवक सायन होते हैं । नक्षत्रबिम्ब और ध्रुवप्रोतक्रान्तिवृत्त सम्पात का ध्रुवप्रोत में जो अन्तर है वह उसका ध्रुवप्रोतवृत्तीय स्पष्टशर होता है । इस प्रकार वेधद्वारा, ध्रुवक और क्षेपक की परीक्षा करनी चाहिए ।

यहां आचार्य ने अयनांशाभावकाल में ध्रुवक और क्षेपक लिखे हैं । जैसा 'इत्यभावेऽयनांशानाम्—' इत्यादि लेख है । ध्रुवकदृक्कर्म संस्कृत हैं और क्षेपक स्पष्ट ध्रुवाभिमुख हैं । शेष उपपत्ति मूल में स्पष्ट है ॥ ४—६ ॥

अथागस्त्यलुब्धकयोराह ।

अगस्त्यध्रुवः सप्तनागास्तु भागा-
स्तुरङ्गाद्रयस्तस्य याम्याः शरांशाः ।

षडष्टौ लवा लुब्धकस्य ध्रुवोऽयं
नभोऽम्भोधिभागाः शरस्तस्य याम्यः ॥ ७ ॥

स्पष्टम् । अस्योपपत्तिः पूर्ववत् ।

भाषाभाष्य ।

अगस्त्य का ध्रुव ८७° अंश है और उसका याम्यशर ७७° है । और लुब्धक का ध्रुव ८६°, याम्यशर ४०° है ॥ ७ ॥

अथेष्टघटिका आह ।

अगस्त्यस्य नाडीद्वयं प्रोक्तमिष्टं
सषड्भागनाडीद्वयं लुब्धकस्य ।
त्रिभागाधिकं स्थूलभानामणूनां
ततश्चाधिकं तारतम्येन कल्प्यम् ॥ ८ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । अगस्त्यस्य नाडीद्वयं यदिष्टं तत् तस्य द्वादशकालांशा उत्पद्यन्ते । सषड्भागनाडीद्वयं लुब्धकस्येति । तत्र त्रयोदश १३ कालांशाः । त्रिभागाधिकं स्थूलभानामिति । यानि स्थूलानि नक्षत्राणि तेषां चतुर्दशकालांशाः । अणूनां ततश्चाधिकमिति केषांचित् पञ्चदश केषांचित् षोडशेति कल्प्यते । अत्र ग्रहाणां भानां वा ये कालांशास्ते स्थूलसूक्ष्मत्वतारतम्यपर्यालोचनया । याः स्थूलास्तारास्ता अर्कोदयादल्पेन कालेनान्तरिता दृश्या भवन्ति । याः सूक्ष्मास्ता अधिकेनेत्युपपन्नम् ।

प्रभा ।

अणूनां सूक्ष्मप्रकाशवतां नक्षत्राणाम् । तारतम्येन, तरतमभावेनेत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

अगस्त्य का कालांश १२° वा २ घटिका और लुब्धक का १३° है । स्थूल नक्षत्रों का १४° और सूक्ष्म का कुछ अधिक अंदाज से कल्पना कर लेना चाहिए ।

जो स्थूल ग्रह नक्षत्र हैं वे सूर्योदय से थोड़े काल के अन्तर से अदृश्य होते हैं और सूक्ष्म अधिक काल में अदृश्य होते हैं ॥ ८ ॥

भग्रहयुतौ पूर्वकर्तव्यतामाह ।

विधेयमायनं ग्रहे स्वदृष्टिकर्म पूर्ववत् ।
स्फुटश्च खेटसायको ग्रहर्क्षयोगसिद्धये ॥ ९ ॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः । यतो भानां ध्रुवाः कृतदृक्कर्मकाः शराश्च स्फुटाः अतो भग्रहयुतिसाधनाय ग्रह आयनदृक्कर्म स्फुटं च सायकं कृत्वा युतिसाधनं कर्तुं युज्यते ।

भाषाभाष्य ।

प्रथम नक्षत्रग्रहयुति साधन में ग्रहों में आयनदृक्कर्म का संस्कार करना और स्पष्टशर सिद्ध करना चाहिए ।

क्योंकि नक्षत्रों के ध्रुवक आयनदृक्कर्म संस्कृत पठित हैं, इसलिए ग्रह में भी आयनदृक्कर्म का संस्कार करना आवश्यक है । भग्रहयुति ध्रुवप्रोत-वृत्त में साधन की है ॥ ९ ॥

अथ युतिकालज्ञानार्थमाह ।

ग्रहध्रुवान्तरे कला नभोगभुक्तिभाजिताः ।
गतागतासवासरैर्युतिर्ग्रहेऽधिकोनके ॥ १० ॥
विलोमगे नभश्चरे गतैष्यताविपर्ययः ।
ग्रहर्क्षदक्षिणोत्तरान्तरं नभोगयोगवत् ॥ ११ ॥

येन नक्षत्रेण सह ग्रहस्य युतिरन्विष्यते तस्य ध्रुवस्य ग्रहस्य चान्तरकला ग्रहभुक्त्या विभज्य लब्धदिनैर्युतिर्गता ज्ञेया। यदि ध्रुवाद्ग्रहोऽधिकः । अथ यद्यूनस्तदैष्या। यदि वक्री ग्रहस्तदा गतैष्यताविपर्ययः। अथ ग्रहर्क्षयोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं तद् ग्रहयुतिवत् ।

अत्रोपपत्तिर्ग्रहयुतिवदेव। भध्रुवस्य गतिं शून्यं प्रकल्प्य दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्गत्योर्वियोगेनेत्यादिना यथा कालः साधितस्तथात्रापि। अतः सर्वा ग्रहयुतिवद्वासना ।

भाषाभाष्य ।

युतिकाल ज्ञानार्थ उपकरण कहते हैं—जिस नक्षत्र के साथ ग्रहकी युति जानना हो, उसके ध्रुवक और ग्रह की अन्तर कला में ग्रहगति का भाग देने से जितने दिन मिलें उतने दिन गत-युतिकाल के होते हैं, यदि ध्रुव से ग्रह का मान अधिक हो, यदि न्यून हो तो एष्य जानना चाहिए। वक्री ग्रह होने पर, गत किंवा एष्य काल इससे उलटा होता है। ग्रह और नक्षत्र का दक्षिणोत्तर अन्तर ग्रहयुति के समान होता है।

ग्रहयुति के समान भग्रहयुति की उपपत्ति भी जाननी चाहिए ॥ १०–११ ॥

अथ युतिप्रसङ्गेन भानामुदयास्तकालमाह ।

दृक्कर्मणा पलभवेन तु केवलेन
भानां मुनेर्मृगरिपोरुदयास्तलग्ने ।
कृत्वा तयोरुदयलग्नमिनं प्रकल्प्य
लग्नं ततो निजनिजे पठितेष्टकाले ॥ १२ ॥

यत् स्यादसावुदयभानुरथास्तलग्नाद्

व्यस्तं विभार्धमपि लग्नकमस्तसूर्यः ।
इष्टोनषष्टि ६० घटिकास्वथ वास्तलग्ना-
ल्लग्नं क्रमेण भदलोनितमस्तसूर्यः ॥ १३ ॥
स्यादुद्गमो निजनिजोदयभानुतुल्ये
सूर्येऽस्तभास्करसमेऽस्तमयश्च भानाम् ।
अत्राधिकोनकलिका रविभुक्तिभक्ता
यातैष्यवासरमितिश्च तदन्तरे स्यात् ॥ १४ ॥

भानामगस्त्यस्य लुब्धकस्य च पूर्ववदुदयास्तलग्ने साध्ये । परंतु केवलेन पलभवेन दृक्कर्मणा । ध्रुवस्य कृतायनदृक्कर्मकत्वात् पुनरायनं दृक्कर्म न कर्तव्यमित्यर्थः । तत्रोदयलग्नमर्कं प्रकल्प्य लग्नं साध्यम् । तच्च स्वकीये पठितेष्टकाले । एवं यल्लग्नं सिध्यति स उदयार्को ज्ञातव्यः । अथ यदस्तलग्नमानीतं तच्चार्कं प्रकल्प्य निजनिजेष्टकाले विलोमं लग्नं साध्यम् । तद्राशिषट्कोनमस्तसूर्यसंज्ञं भवति । अथवेष्टघटकोनाभिः षष्टिघटिकाभिरस्तलग्नात्क्रमेण लग्नं साधितं तद् भदलोनितमस्तसूर्यो भवति । यदोदयभानुसमो भानुर्भवति तदा तस्य नक्षत्रस्योदयो भवति । यदास्तसूर्यसमस्तदास्तमयः । यदागस्त्योदयः किलाभीष्टदिनात् । कियद्भिर्दिनैरिति विज्ञातुमिष्यते तदेष्टदिनार्कस्यागस्त्योदयार्कस्य चान्तरकला रविभुक्त्या भाज्याः । लब्धदिनैरगस्त्यस्योदय एष्यः । यद्युदयार्को महान् । यद्यूनस्तदा गतः । एवमस्तसूर्यादस्तमयोऽपि । एवं भानामपि ।

अत्रोपपत्तिः । उदयास्तलग्नसाधने तु पूर्वं कथितैव । उदयलग्नोदये किल भस्योदयः यदोदयलग्नसमो रवि-

भवति तदा रविणा सह तन्नक्षत्रमुदेति । तस्मादुदयात् प्राक्पठितेष्टघटिकातुल्यं कालं यावत् तन्नक्षत्रं रविप्रभाभिर्हतं क्षितिजादुपरिस्थमपि न दृश्यते । अथ पठितेष्टकाले यत्क्रमलग्नं तत्स्थानस्थितो रविरुदयार्कतुल्यो भवति तथा व्यस्तमयादनन्तरं नक्षत्रास्तमयात् पूर्वं प्रत्यक् क्षितिजादुपरिस्थमपि नक्षत्रं पठितेष्टकालं यावन्न दृश्यते । अथ नक्षत्रस्य क्षितिजादुपरिस्थितत्वात् प्रत्यक्क्षितिजस्थेनार्केण न्यूनेन भवितव्यम् । अतोऽस्तलग्नात् पठितेष्टकाले व्यस्तं कार्यम् तल्लग्नं प्राक्क्षितिजस्थं भवति । अतः षड्भोनितं प्रत्यक्क्षितिजेऽस्तसूर्यो भवतीत्युपपन्नम् । इष्टोनषष्टि ६० घटिकास्वित्यादौ वासना सुगमैव ।

प्रभा ।

मुनेरगस्त्यस्य, मृगरिपोर्व्याधस्य लुब्धकस्य वा । विभार्धं षड्राश्यूनं । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व रीति के अनुसार अगस्त्य और लुब्धक का उदय और अस्त लग्न केवल आक्षदृक्कर्म से साधन करना । उसमें उदयलग्न को रवि मानकर, इष्टकाल में जो लग्न होगा उसके उदयार्क संज्ञक और अस्तलग्न को रवि मानकर इष्टकाल में विलोम लग्न साधन करके उसमें छ राशि घटाकर, अस्तार्कसंज्ञक जानना । अथवा साठ घड़ी में इष्ट घटिका को घटाकर, अस्त लग्न से क्रम लग्न साधन करके उसमें छ राशि घटा देने से अस्तार्क सिद्ध होता है । अपने अपने उदयार्क के समान सूर्य में नक्षत्र का उदय और अस्तार्क के समान में अस्त होता है । यदि इष्ट दिन के बाद कितने दिनों में नक्षत्रोदय होगा, यह जानना

हो तो, इष्ट दिन के सूर्य का और उस नक्षत्र के उदयार्क की अन्तर कला में रविगति का भाग देना, लब्ध दिन तुल्य दिन में उस नक्षत्र का उदय, उदयार्क के न्यून और अधिक के क्रम से एष्य वा गत जानना चाहिए।

यहां आचार्य ने उपपत्ति स्पष्ट लिखी है, विशेष आगे की उपपत्ति में लिखा है ॥ १२–१४ ॥

अथ विशेषमाह।

यस्योदयार्कादधिकोऽस्तभानुः
प्रजायते सौम्यशरातिदैर्घ्यात्।
तिग्मांशुसान्निध्यवशेन नास्ति
धिष्ण्यस्य तस्यास्तमयः कथंचित् ॥ १५ ॥

यस्य नक्षत्रस्योदयार्कादस्तार्कोऽधिको भवति तस्य नक्षत्रस्यार्कसान्निध्यवशादस्तो नास्तीति वेदितव्यम्। इदं कुत इति सौम्यशरातिदैर्घ्यात्। यस्य भस्य सौम्यः शरो दीर्घो भवति तस्य पलोद्भवासवो बहवो भवन्ति। तैर्विलोमलग्ने क्रियमाण उदयलग्नमूनं भवति। अस्तलग्नं क्रियमाणमधिकं भवति। ताभ्यां ह्युदयार्कौ साध्यौ। तत्रास्तार्केण किल न्यूनेन भवितव्यम्। अस्तार्कसमे रवौ किलादृश्यतारम्भस्ततः कियन्ति च दिनान्यदृश्यं भूत्वोदयार्कसमे रवौ तद्धिष्ण्यमुदेति। अत उदयार्केणाधिकेन भवितव्यम्। यतोऽर्कसन्निधिवशेनैतावुदयास्तौ। यथा यथा सौम्यशरस्य दीर्घत्वं यथा यथाक्षवशेन गोलस्य दक्षिणतो नामनं तथोदयास्तार्कयोरल्पमन्तरं भवति। अल्पान्तरेऽल्पान्येव दिनानि तन्नक्षत्रमदृश्यं भवति। एवं यस्मिन् देशे उदयास्तार्कौ तुल्यौ भवत-

स्ततःपरं तस्मिन् देशे तस्य नक्षत्रस्यार्कासन्नभावेनादृश्यत्वाभाव इति युक्तितः सिद्धम् ।

भाषाभाष्य ।

जिस नक्षत्र के उदयार्क से अस्तार्क अधिक हो, उस नक्षत्र का उत्तर शर बहुत बड़ा होने से सूर्य की समीपता से अस्त कभी नहीं होता ।

उपपत्ति ।

१—यहां आचार्य ने जो उपपत्ति लिखी है उसका अभिप्राय इस प्रकार है—याम्यशर के बड़े वा छोटे होने पर, नक्षत्रों का सदा उदय संभव नहीं होता । मान लिया, कुछ याम्यशर है, नक्षत्र का भोगस्थान पूर्वक्षितिज में है और याम्यशर होने से बिम्ब क्षितिज के नीचे है । अब, क्षितिज में बिम्ब आने पर उसका स्थान पश्चिम में लटका रहेगा, क्योंकि बिम्ब से स्थान सदा पीछे ही रहता है । इसलिए भध्रुव से उदयलग्न, उदयलग्न से उदयार्क, पूर्वक्षितिज में अधिक होता है । पश्चिमक्षितिज में, नक्षत्र का भोग स्थान होने पर, याम्यशरवश, बिम्ब क्षितिज के नीचे रहता है और जब क्षितिज में आया तब उसका स्थान आगे रहता है । और अस्तार्क बिम्ब से पीछे रहता है । इसलिए पश्चिम क्षितिज में याम्यशर होने पर, भध्रुव से अस्तलग्न न्यून और अस्तलग्न से अस्तार्क न्यून होता है । यों भध्रुव से उदयार्क अधिक अस्तार्क न्यून सिद्ध भया । कभी उदयार्क से अस्तार्क अधिक न होगा, तब याम्यशर के बड़े होने पर भी सदोदित नक्षत्र न होगा । पठित इष्टकाल से पलोद्भवासुओं के अधिक होने पर, शर का बड़ा होना माना गया है ।

२—सौम्यशर में, कल्पना किया । पलोद्भवासु पठित नक्षत्र के इष्टकाल से न्यून हैं । पूर्वक्षितिज में नक्षत्रभोगस्थान होने पर, बिम्ब क्षितिज के ऊपर सौम्यशर होने से रहेगा । क्षितिज में लाने से उदयलग्न

से भध्रुव, भध्रुव से उदयार्क अधिक ही होगा। क्योंकि पलोद्भवासु पठितेष्टकाल से न्यून हैं। इसप्रकार अस्तलग्न से भध्रुव और भध्रुव से अस्तार्क, पूर्वक्षितिज में न्यून होगा। अब, यदि पलोद्भवासु पठितेष्ट-काल के समान कल्पना करें उस स्थिति में पूर्वक्षितिज में नक्षत्रभोगस्थान होने से, बिम्ब ऊपर रहेगा, वह क्षितिज में आने से उदयलग्न से उदयार्क अधिक होगा। भध्रुव उदयार्क के तुल्य ही है। ग्रहबिम्ब— उदयलग्न है, उससे पलासु के तुल्य अन्तर में भध्रुव और वहीं उदयार्क होता है। इसलिए दोनों तुल्य हैं। पूर्वक्षितिज में, शराग्रगत बिम्ब क्षितिज में जाने से नक्षत्र का भोगस्थान-भध्रुवसंज्ञक, बिम्ब से पीछे क्षितिज के नीचे रहता है। इसलिए अस्तलग्न से भध्रुवक न्यून रहता है। अस्तार्क बिम्ब से पीछे पठित इष्टकाल तुल्य अन्तर में इष्टकाल तुल्य ही पलासु माना गया है। इसलिए बिम्ब से पीछे समान अन्तर में भध्रुवक और अस्तार्क हैं, दोनों तुल्य हैं।

इस प्रकार, भध्रु=उदर्क,

∵ भध्रु=अस्तार्क, ∴ उदयार्क=अस्तार्क।

३—भध्रुवक, सब देश में, सदा समान होने से उदयार्क और अस्तार्क समान होते हैं, यह सिद्ध हुआ। अस्तार्क तुल्य सूर्य में नक्षत्र का अस्त और उदयार्क के समान में उदय यह स्थिति है। पलोद्भवासु, पठितेष्टकाल से अधिक होने पर सदा उदयार्क से अस्तार्क अधिक होगा। तब वह नक्षत्र सदा उदित रहेगा। उदयार्क से कालांश के तुल्य अन्तर में पीछे वह नक्षत्र रहेगा। उस स्थान से जैसे जैसे सूर्य आगे चलेगा तैसे तैसे नक्षत्र और रवि के अन्तरांश बढ़ेंगे। अस्तार्क के उदयार्क से आगे होने से, उस स्थान में सूर्य होने से, अस्त असंभव होगा और वह नक्षत्र सदा उदित रहेगा।

यह विशेष सूक्ष्म है। इसके विचार में बहुतों को भ्रम हुआ है।

इसीलिए श्रीसुधाकरद्विवेदी ने 'यद्गूढतां दूरत एव बुद्ध्वा बुधाः पलायन्त अहो नवीनाः । इत्यादि श्लोक से हँसी उड़ाई है ॥ १५ ॥

अथान्यं विशेषमाह ।

यस्य स्फुटा क्रान्तिरुदक् च यत्र
लम्बाधिका तत्र सदोदितं तत् ।
न दृश्यते तत्खलु यस्य याम्या
भं लुब्धकः कुम्भभवो ग्रहो वा ॥ १६ ॥

यस्य स्फुटा क्रान्तिरुत्तरा यस्मिन् देशे लम्बाधिका भवति तस्मिन् देशे तद्भं ग्रहो वा सदोदित एव । यस्य याम्या तद्भं लुब्धकोऽगस्त्यो ग्रहो वा सदा न दृश्यते यस्मिन् देशे सप्तत्रिंशदधिकाः पलांशास्तत्रागस्त्यो न दृश्यते । यत्र द्विपञ्चाशदधिकाः पलांशास्तत्राभिजित् सदोदितमेव ।

अस्य वासना । लम्बांशैर्विषुवन्मण्डलं दक्षिणक्षितिजादुपरि भवति तैरेव भागैरुत्तरक्षितिजादधः । अतो लम्बाधिकामुत्तरां क्रान्तिं विषुवन्मण्डलाद्दत्त्वा तदग्रे यदहोरात्रवृत्तं निबध्यते तदुत्तरक्षितिजादुपर्येव भवति । अथ तामेव दक्षिणां क्रान्तिं दत्त्वा तदग्रे यदहोरात्रवृत्तं निबध्यते तद्दक्षिणक्षितिजादध एव भवति । अतस्तस्मिन् क्षितिजादधस्थेऽहोरात्रवृत्ते परिभ्रमत् तद्भं सततमदृश्यम् । एवं क्षितिजादुपरिस्थे तु सततं दृश्यम् ।

प्रभा ।

कुम्भभवोऽगस्त्यमुनिस्तन्नाम्ना प्रसिद्धं नक्षत्रम् । अगस्त्यो हि कुम्भसंभव इत्यादौ पौराणिकी कथा ।

भाषाभाष्य ।

जिस देश में जिस ग्रह की स्पष्टक्रान्ति जब तक लम्बांश से अधिक रहेगी वह ग्रह किंवा नक्षत्र सदा उदित रहेगा। और जिस की दक्षिण स्पष्टकान्ति लम्बांश से अधिक रहेगी वह ग्रह वा नक्षत्र सदा उदित न रहेगा! जैसे लुब्धक, अगस्त्य, अभिजित्।

यहां वासना स्पष्ट है। गोलस्थिति विचार करने से सहज ही समझ में आ जाती है ॥ १९ ॥

अथ देशान्तरवशेन विशेषमभिधायेदानीं कालान्तरवशेन विशेषमाह ।

इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मका ध्रुवाः
कथितास्ते स्फुटा बाणाः सुखार्थं पूर्वसूरिभिः ॥ १७ ॥
अयनांशवशादेषामन्यादृक्त्वं च जायते ।
शरज्या अस्फुटाः कार्याः स्फुटीकृतिविपर्ययात् ॥ १८ ॥
ताभिरायनदृक्कर्म मुहुर्कर्यस्तं ध्रुवेष्वथ ।
अयनांशवशात् कार्यं तदूदृक्कर्म यथोदितम् ॥ १९ ॥
एवं स्युर्ध्रुवका स्पष्टाः शरज्याश्च ततः स्फुटाः ।
यथोक्तविधिना कार्यास्तच्चापानि स्फुटाः शराः ॥ २० ॥
ततो भग्रहयोगादिस्फुटं ज्ञेयं विजानता ।
इत्याधिक्येऽयनांशानामल्पत्वे त्वल्पमन्तरम् ॥ २१ ॥

ये भध्रुवकास्ते स्थिरत्वात् पूर्वाचार्यैः कृतदृक्कर्मका एव सुखार्थं पठिताः। परमेतेऽयनांशाभाव एव भवन्ति। यदा तैः पठितास्तदा प्रायस्तेषामयनांशानामभावः संभाव्यते। अन्यथा त्वयनांशवशादेषां किंचिदन्यादृक्त्वं च भवति। अतस्तेषां सम्यक् स्फुटीकरणायाह। शरज्या अस्फुटा इत्यादि। ये स्फुटाः शरांशाः पठितास्तेऽस्फुटास्ता वत् कार्यास्ते च धनूरूपाः सन्त्यतो ज्यास्तेषां कृत्वा

यष्ट्या द्युचरविशिखस्ताडित इत्यादिना व्यस्तेन कर्मणा ऽस्फुटाः कार्याः । एतदुक्तं भवति । भध्रुवं ग्रहं प्रकल्प्या-यनांशाभाव आयनं वलनं यष्टिं चानीय पठितशरस्य ज्या त्रिज्यया गुण्या यष्ट्या भाज्या । फलमस्फुटशरस्य ज्या भवति । ताभिरायनदृक्कर्म कार्यं व्यस्तमसकृत् । तद्यथा । साऽस्फुटशरज्यायनवलनेन गुण्या द्युज्यया भाज्या । फलचापासुभिः शरवलनयोरेकदिशोर्भध्रुवक-मर्कं प्रकल्प्य निरक्षोदयैः क्रमलग्नं कार्यम् । भिन्नदि-शोरुत्क्रमलग्नम् । एवमसकृद्कृतायनदृक्कर्मको ध्रुवो भवति । ततस्तस्य ध्रुवस्यायनांशवशादनुलोममायनं दृक्कर्म कार्यम् । तद्यथा । अकृतदृक्कर्मकस्य ध्रुवस्यायनांशान् दत्त्वा वलनं यष्टिश्च साध्या । तद्वलनमस्फुटशरज्यया गुण्यं ध्रुवस्य द्युज्यया भाज्यं फलचापासुभिरकृतदृक्कर्मकं भध्रुवं रविं प्रकल्प्य शरवलनयोरेकदिशोरुत्क्रमलग्नं भिन्नदिशोः क्रमलग्नं यद्भवति स स्फुटो भध्रुवः । यः पाठपठितोऽसा-वयनांशाभाव एव । तथा याऽस्फुटा शरज्या सा यष्ट्या गुण्या त्रिज्यया भाज्या । फलस्य चापांशास्ते स्फुटाः शरांशाः । ये पाठपठितास्ते स्थूलाः । एवं स्फुटेन ध्रुवेण स्फुटशरेण च भग्रहयोगादिकं साध्यं विजानता गणकेन । अत्रायनांशानामल्पत्वेऽल्पमन्तरं कृतेऽपि तस्मिन् कर्मणि भवति । बहुत्वे तु बहु । अतो यदा बहवोऽय-नांशास्तदेदं कर्मावश्यं कर्तव्यमित्यर्थः ।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरो-मणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे भग्रहयुत्य-धिकारः । ग्रन्थसंख्या १३० ।

भाषाभाष्य ।

ये जो आयनदृक्कर्मसंस्कृत भध्रुवक और स्पष्टशर पढ़े हैं वे सब अयनांशाभावकाल के हैं। पूर्वाचार्यों ने सुखार्थ इनको पढ़ दिया है। अयनांशवश इनमें अन्तर पड़ता है, इसलिए अयनांश काल में उनको स्पष्ट करना चाहिए। स्पष्ट शरांशों को स्पष्टीकरण की विलोम विधि से, अस्फुटशर साधन करना। अस्फुटशरज्या से आयनदृक्कर्म संस्कार विलोम असकृत् ध्रुवक में करना, यों आयनदृक्कर्म संस्कृत ध्रुवक होगा। फिर अयनांश संस्कार करके, अनुलोम आयनदृक्कर्म संस्कार करना। संस्कृत भध्रुवक को रविमानकर, शर और वलन की एक दिशा में उत्क्रम अन्यथा क्रमलग्न करने से वही स्पष्ट भध्रुवक होता है। और अस्फुट शरज्या को 'यष्ट्या द्युचरत्रिशिख:—' के क्रम से स्पष्ट करना। इस प्रकार स्पष्ट ध्रुवक और शरके भग्रहयुति का साधन करना चाहिए। जब अयनांश न्यून उपलब्ध हों तब न्यून और अधिक उपलब्ध हों तो अधिक अन्तर पड़ा करता है।

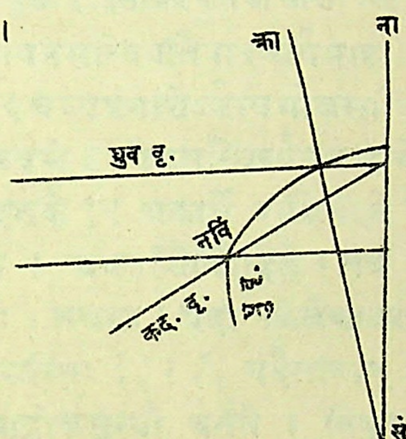
उपपत्ति ।

१—जिस समय अयनांश उपलब्ध हों उस समय ध्रुवक और क्षेपकों को स्पष्ट करना आवश्यक है। स्पष्टीकरण की विधि वासनाभाष्य में विलोमविधि से लिखी है। शरका स्पष्टसाधन ग्रहच्छायाधिकार में 'यष्ट्याद्युचरत्रिशिखस्ताडितास्त्रिज्ययाप्त:—' इत्यादि विधि से किया है। भध्रुव को ग्रह मानकर, आयनवलन और यष्टि लाकर, पठितशरज्या को त्रिज्या से गुणाकर यष्टिका भाग देना। फल मध्यमशरज्या होगा। फिर मध्यमशरज्या को आयनवलन से गुणाकर, द्युज्या का भाग देना। फलासुओं से, नक्षत्र ध्रुवक को सूर्य मानकर, निरक्षोदयों से, क्रमलग्न साधना और शर एवं वलन की भिन्नदिशा

में उत्क्रमलग्न साधन करना । एवं असकृत्कर्म से आयनदृक्कर्म संस्कृत ध्रुवक होता है । इत्यादि विवरण वासनाभाष्य में स्पष्ट लिखा है ।

२—ग्रहच्छायाधिकार में 'त्रिज्यावर्गादयनवलनज्याकृतिं प्रोह्य मूलम्—' इत्यादि स्पष्टशर का साधन किया है। वहां कदम्बप्रोतवृत्तीय कर्णरूप मध्यमशर से, ध्रुववृत्तीय कोटिरूप का साधन किया है (देखो, ग्रहच्छायाधिकार में साधनक्षेत्र) वह कोटिरूपफल कर्ण से न्यून होता है । यहां आचार्य ने स्पष्टनक्षत्रशर से विलोमविधि से, कदम्ववृत्तीयशर का साधन किया है, वह स्थूल है । नक्षत्रविम्व से क्रान्तिवृत्त तक कदम्ब-वृत्त में शर कोटिरूप है । और उसी विम्ब से क्रान्तिवृत्त तक ध्रुववृत्त में नक्षत्र का स्पष्टशर कर्णरूप है ।

क्षेत्र ।

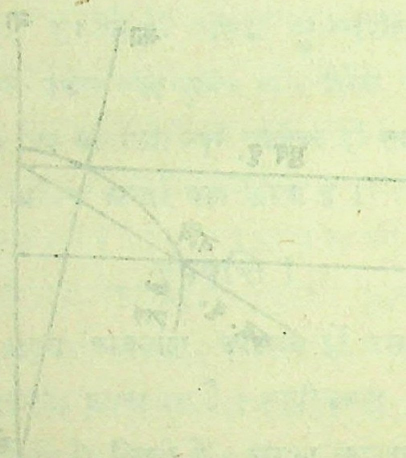


यहां नक्षत्र स्पष्टशर कदम्बवृत्तीयशर से अधिक है । परन्तु विलोम-विधि से यही नक्षत्रस्पष्टशर से भी अधिक होजायगा, यह स्पष्ट प्रतीत होता है,

वास्तव में वेधसिद्ध दृक्कर्मसंस्कृत-ध्रुव से आयनवलनकोटिज्या लाकर उसको नक्षत्रस्फुटशरज्या से गुणाकर, त्रिज्या का भाग देना । फल

कदम्बवृत्तीयशरज्या, चापक्षेत्रयुक्ति से सिद्ध होती है। तदनन्तर, चापीय कर्ण-कोटि से आयनदृक्कर्मकलारूप भुज का ज्ञान त्रिकोणमिति से सुगम है। इस प्रकार, सकृत्कर्म से ही सब उपपत्ति सिद्ध होजाती है ॥ १७—२१ ॥

भाषाभाष्य में भग्रहयुति समाप्त हुई।



अथ पाताध्यायो व्याख्यायते । तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

भावाभावे गतैष्यत्वे पातस्य विदुषां भ्रमः ।
पूर्वेषां यत्र वक्ष्येऽहं तत्साधनमपि स्फुटम् ॥ १ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

भावश्चाभावश्च तस्मिन् भावाभावे संभवासंभवे । पूर्वेषां विदुषां लल्लश्रीपत्यादीनामपि भ्रमः । अतस्तत्साधनं स्फुटमव्यभिचरितं वक्ष्ये ।

भाषाभाष्य ।

पात के संभव और असंभव गत किंवा भावी ज्ञान के विषय में, पूर्वाचार्यों को भी भ्रम हुआ है, इसलिए पात का साधन स्पष्ट कहताहूं ॥ १ ॥

अथार्कस्य गोलायनसन्धिप्रतिपादनार्थमाह ।

चक्रे १२ चक्रार्धे ६ च व्ययनांशेऽर्कस्य गोलसन्धिः स्यात् ।
एवं त्रिभे ३ च नवभे ९ ऽयनसन्धिर्व्ययनभागेऽस्य ॥ २ ॥

चक्रे राशिद्वादशके १२ चक्रार्धे राशिषट्के ६ । किंविशिष्टे । व्ययनांशे । अयनांशैर्विरहिते । तत्र किम् । अर्कस्य गोलसन्धिः । तद्यथा । यदा किलैकादश ११ अयनांशास्तदा गोलसन्धिः ११/१६ । ५/१९ यदैतावान् रविर्भवति तदा क्रान्तेरभावाद्गोलसन्धौ वर्तते । विषुवन्मण्डलस्थ इत्यर्थः । एवं त्रिभे राशित्रये नवभे राशिनवके । अयनांशैरूनिते । तत्र किम् । अर्कस्यायनसन्धिः २/१९ । ८/१९ । यदैतावान् रविस्तदायनसन्धौ वर्तते ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र किल क्रान्तिमण्डलस्य मेषादेः पश्चिमतोऽयनांशतुल्येऽन्तरे विषुवन्मण्डलेन सह संपातः । अमुमर्थं गोले वक्ष्ये । तत्रस्थो रविर्गोलसंधौ । विषुवन्मण्डले हि याम्योत्तरगोलविभागयोः सन्धिः ।

एवं तस्मात् संपातादग्रतस्त्रिभेऽन्तर उत्तरा परमा क्रान्तिः। तत्रस्थो रविरयनसन्धौ वर्तते। ततो हि दक्षिणगमने प्रवृत्तिः। एवं पृष्ठतोऽपि त्रिभेऽन्तरे परमा याम्या क्रान्तिः। ततश्चोत्तरगमनप्रवृत्तिरित्युपपन्नमत्रायनसन्धित्वम्।

अथ समायां भूमावभीष्टकर्कटकेन वृत्तमालिख्य तच्चक्रकलाङ्कितं ध्रुवावलोकनादिना सम्यग् दिगङ्कितं च कृत्वा दिङ्मध्य ऋजुः सूक्ष्मः कीलकश्च निवेश्यः। प्रातः पश्चिमभागस्थो द्रष्टा करकलितावलम्बकसूत्रेण तेन च कीलकेन प्रत्यहमर्धोदितमादित्यं विद्ध्वा त्रिज्यावृत्तस्य प्राग्विभागे तत्र तत्र चिह्नानि कुर्यात्। एवं विध्यता यस्मिन् दिने सम्यक् प्राच्यां रविरुदितो दृष्टस्तद्विषुवद्दिनम्। तस्मिन् दिने गणितेन स्फुटो रविः कार्यः। तस्य रवेर्मेषादेश्च यदन्तरं तेऽयनांशा ज्ञेयाः। एवमुत्तरगमने सति। दक्षिणे तु तस्यार्कस्य तुलादेश्चान्तरमयनांशाः। एवं प्रतिदिनवेधेनोत्तरां परमां काष्ठां प्राप्य यस्मिन् दिने दक्षिणत उच्चलन् दृष्टस्तदयनं दिनम्। ततः प्रभृति दक्षिणगमनम्। तस्मिंश्च दिने गणितेन रविः स्फुटः कार्यः तस्य त्रिभेण सहान्तरेऽपि तावन्त एवायनांशा भवन्ति। एवं दक्षिणां परमां काष्ठां प्राप्य निवृत्तो दृष्टस्तदुत्तरायणं दिनम्। ततः प्रभृत्युत्तरगमनमित्यर्थः। एवं चन्द्रस्यापि गोलायनसन्धयो वेधेन वेद्याः।

भाषाभाष्य।

यहां प्रथम रवि की गोलसन्धि और अयनसन्धि का निर्वचन करते हैं—निरयण सूर्य जब बारहवीं और छठीं राशि में हो तब अपनी

गोलसन्धि में रहता है। इसीप्रकार जब तीसरी और नवीं राशि में हो तब अपनी अयनसंधि में रहता है।

उपपत्ति।

क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त का संपात निरयण मेषादि से पश्चिम अयनांशतुल्य अन्तर पर है। उस विन्दु पर जब सूर्य आता है तब अपनी गोलसन्धि में रहता है। क्योंकि विषुवद्वृत्त से ही उत्तर और दक्षिण गोल का विभाग होता है। संपात बिन्दु से तीन राशि के अन्तर पर परम-उत्तर क्रान्ति होती है, वहां सूर्य अयनसन्धि में होता है। वहां से दक्षिणायन की प्रवृत्ति होती है। उससे तीन राशि के अन्तर में पीछे परम दक्षिणक्रान्ति होती है। वहां भी अयनसन्धि होती है। इस प्रकार, जब निरयण सूर्य कन्या और मीन राशि में हो तब गोलसन्धि और मिथुन और धनुराशि में हो, तब अयनसन्धि में रहता है। यह स्थिति गोल पर स्पष्ट है। वेध से अयनांश और अयनदिन का ज्ञान वासनाभाष्य में लिखा ही है ॥ १ ॥

अथ चन्द्रस्य विशेषमार्याचतुष्टयेनाह।

अयनांशोनितपाताद्दोःकोटिज्ये लघुज्यकोत्थे ये।
ते गुणसूर्यैः १२३ रश्वै ७ र्गुणिते भक्ते कृतैः ४ सूर्यैः १२॥३॥
अयनांशोनितपाते मृगकर्क्यादिस्थिते द्विषड्भैः ३६२।
कोटिफलयुतविहीनैर्बाहुफलं भक्तमाप्तांशैः ॥ ४ ॥
मेषादिस्थे गोलायनसन्धी भास्करस्योनौ।
तौ चन्द्रस्य स्यातां तुलादिषड्भस्थिते तु संयुक्तौ ॥ ५ ॥
गोलायनसन्ध्यन्तं पदं विधोरत्र धीमता ज्ञेयम्।
रविगोलवदस्पष्टा स्पष्टाक्रान्तिः स्वगोलदिक्शशिनः॥६॥

यस्मिन् काले क्रान्तिसाम्यमन्वेष्यं तदा कस्मिंश्चित् तदासन्नतमदिने स्फुटौ चन्द्राकौं पातश्च कार्यः। एवं

कृते सति सूत्रावतारः । तस्य पातस्यायनांशैर्विवर्जितस्य लघुज्यकाभी रूपाश्विनो विंशतिरङ्कचन्द्रा इत्यादिना दोर्ज्या कोटिज्या च कार्या । तत्र दोर्ज्या गुणसूर्यैस्त्रयोविंशतियुतशतेन गुण्या कोटिज्या तु सप्तभिर्गुण्या। ततो दोर्ज्या चतुर्भिर्भाज्या । कोटिज्या तु द्वादशभिः । एवं भुजफलकोटिफले भवतः । ततो द्विषड्भागैः कोटिफलयुतविहीनैः । कथमित्याह । अयनांशान्वितपाते मृगकर्क्यादिस्थिते । यदायनांशोनितपातो मृगादौ वर्तते तदा कोटिफलयुतैः कर्क्यादौ तु कोटिफलविहीनैस्तैर्बाहुफलं भाज्यम् । फलमंशाद्यं ग्राह्यम् । तस्मिन्नयनांशोनितपाते मेषादिषट्के वर्तमाने तैरग्रभागैरादिस्तस्य गोलायनसन्धी ऊनीकृतौ चन्द्रस्य भवतः । तुलादिषट्के तु तैर्भागैर्युतौ सन्तौ भवतः । यदाद्यगोलसन्धेः सकाशादयनसन्धिं यावत् त्रिगृहं तत् प्रथमं पदमुच्यते । ततोऽन्यत् त्रिभं द्वितीयगोलसन्ध्यन्तं द्वितीयपदम् । एवं तृतीयचतुर्थे । तथा यदेन्दोः क्रान्तिः साध्यते तदा किल रविवत् । तथा सिद्धायाः क्रान्ते रविगोलवशेन दिक्कल्पना । न स्वगोलवशेन । ततः शरेण संस्कृता सती स्वगोलदिग्भविष्यतीति बालोऽपि जानाति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्रार्कगोलायनसन्धिभ्यामन्यौ चन्द्रस्य यत् कथितौ तत्र कारणमुच्यते । रवेः किलापममण्डलविषुवन्मण्डलसंपाते गोलसन्धिः । विधोस्तु विषुवन्मण्डलविमण्डलसंपाते । यतोऽसौ विमण्डले भ्रमति । तत्संपातस्थ एव प्राच्यामुदेति । तत्रस्थस्य विधोः क्रान्तिः स्फुटेन शरेण संस्कृता सती शून्यं भवतीत्यर्थः ।

तदग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभेऽन्तरे स्फुटा परमा क्रान्तिः । तत्रस्थो हि शशी यथासंख्यमुत्तरां याम्यां च परमां काष्ठां प्राप्य निवर्तते । अतस्तावेवायनसन्धी चन्द्रस्येत्युपपन्नम् ।

तत्रादौ तावदुदाहरणमुक्त्वा गोलोपरि प्रदर्श्यते । तत्रोदाहरणं प्रश्नाध्याये । तद्यथा ।

युक्तायनांशोऽशशतं १०० शशी चे-
दशीति ८० रर्को द्विशती २०० विपातः ।
चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु
धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि ॥

यदा किलैकादशा ११ यनांशास्तदा किल नवभागाधिकं राशिद्वयं रविः । भागोनं त्रिभं शशी । एकविंशति भागाधिकं त्रिभं पातः । रविः २ । ९ चं. २ । २९ । पातः ३ । २१ । एवं युक्तायनांशोऽशशतं शशी । अशीतिरर्कः । अंशद्विशती सपातः । तत्र पातः ३ । २१ । चं. २ । २९ । अतोंऽशद्विशती सपातचन्द्रो २०० भवति । रविः २ । २० चन्द्रः ३ । १० सपातः ६ । २० प्रश्ने विपात चन्द्रः इति यदुक्तं तद्धी वृद्धिदाभिप्रायेण । तत्र हि चक्राच्छोधितः पातः । अतस्तत्र विपातोऽत्र सपाततुल्य एव भवति । अत्रायनांशोनितपातः ३ । १० । अस्य दोः कोटिजीवे लघुज्यकोत्थे ११८ । २१ अत्र दोर्ज्या गुणसूर्यै १२३ र्गुणिता कृतै ४ र्भक्ता जातं दोः फलम् ३६२८ । ३० कोटिज्या त्वश्वै ७ र्गुणिता सूर्यै १२ र्भक्ता जातं कोटिफलम् १२ । १५ अनेन कोटिफलेन वर्जिता द्विषड्भा जाताः

३४६ । ४५ । यस्मादयनांशोनितपातोऽयम् ३ । १० । कर्क्यादौ वर्ततेऽतः कोटिफलोनैस्तैर्बाहुफले भक्ते लब्धांशाः १० । २२ । २८ एभिरादित्यस्य गोलायनसन्धी ऊनीकृतौ । यतोऽयनांशोनितपातो मेषादौ वर्तते । एवं जातौ चन्द्रस्य गोलायनसन्धी ११ । ८ । ३७ । ३२ ॥ २ । ८ । ३७ । ३२ । तथान्यौ ५ । ८ । ३७ । ३२ ॥ ८ । ८ । ३७ । ३२ । अत्र स्वगोलसन्धिस्थस्य विधोः स्फुटेन शरेण स्फुटीकृता क्रान्तिः पूर्णं भवतीति प्रतीतिः ।

अत्र यथोक्ते बद्धे गोले क्रान्तिवृत्ते मेषादेः सकाशाद्विलोमं चन्द्रपातस्य राशिभागादिकं गणयित्वाग्रे चिह्नं कार्यम् । एवं विमण्डलेऽपि । तयोर्मण्डलयोस्तत्र संपातं कृत्वा तस्मात् पूर्वतस्त्रिभेऽन्तरे सार्धैश्चतुर्भि ४० । ३० र्भागैः क्रान्तिमण्डलादुत्तरतस्तथा पश्चिमे त्रिभेऽन्तरे तैरेव भागैर्दक्षिणतो विमण्डलं विन्यस्य स्थिरं कार्यम् । तथा कृते सति विमण्डले विषुवन्मण्डलेन सह यत्र संपातस्तत्र चन्द्रस्य गोलसन्धिः । स तु रविगोलसन्धेः कियतान्तरेण वर्तते इति न ज्ञायते । किन्तु रविगोलसन्धौ यावान् विक्षेपस्तावान् विज्ञायते । स च कथं तदुच्यते । रविगोलसन्धिरयनांशोनितं चक्रम् ११ । १६ । तत्रस्थस्य चन्द्रस्य शरसाधनार्थं चन्द्रस्य पातो यावत् संयोज्यते तावदयनांशोनितपातः संपद्यते । तस्य दोर्ज्या परमशर २७० गुणा त्रिज्यया १२० भाज्या । एवं सति गुणकभाजकौ त्रिंशतापवर्तितौ । गुणकस्थाने नव ९ । भागहारस्थाने चत्वारः ४ । फलं तत्र स्थाने चन्द्रस्य शरः । तावत्येव तत्र तस्य स्फुटा क्रान्तिः ।

अस्फुटक्रान्तेरभावात् । एतावती स्फुटा क्रान्तिः कियद्भिर्भागैः संपद्यत इति ज्ञातुमशक्यम् । अत्र किल क्रान्तिसाधने छात्राणां सुखार्थं स्थूलान्यपि पञ्चदशभागलभ्यानि क्रान्तिखण्डानि ब्रह्मगुप्ताद्यैः पठितानि । तद्यथा ।
क्रान्तिकला द्विरसगुणाम्निखसुनयो द्विखदिशो वसुत्र्यर्काः ।
वसुवसुविश्वे च खकृतमनवश्च क्षेपयुतवियुताः । इति ।
३६२ । ७०३ । १००२ । १२३८ । १३८८ । १४४० ।
तथा शरखण्डकान्यपि मया करणे कथितानि ।
खाश्वा बाणर्तवोऽङ्गाब्धास्त्र्यब्धयो भानि खेचराः । इति ।
७० । ६५ । ५६ । ४३ । २७ । ९

अत्र प्रदेशे क्रान्तेः प्रथमखण्डेनैवोपचयो गोलसन्धित्वात् । ततस्तस्मिन्नेव प्रदेशे यच्छरखण्डकं तेनाधिकेन क्रान्तिखण्डेन स्फुटक्रान्तेरुपचयः । यदि परमा क्रान्तिश्चतुर्विंशतिभागाधिका । यद्यूना तदा शरखण्डकोनेन क्रान्तिखण्डेनोपचयः । अतस्ते द्विरसगुणाः ३६२ तत्स्थानीयशरखण्डकेन संस्कृता यावन्तो भवन्ति तत्प्रमाणं स्फुटक्रान्तेः खण्डं भवितुमर्हतीत्यर्थः । तत्स्थानीयशरखण्डकं कथं ज्ञायते तदर्थमुपायः । सर्वत्र भुजज्या करणे स्फुटं भोग्यखण्डकं कोटिज्यया त्रैराशिकेन ज्ञायते । तद्यथा । यदि त्रिज्यातुल्यया १२० कोटिज्यया प्रथमं शरखण्डं सप्ततितुल्यं लभ्यते तदायनांशोनितपातस्य कोटिज्यया किमिति । अत्र गुणकभाजकौ दशभिरपवर्तितौ । एवं कृते कोटिज्यायाः सप्त गुणो द्वादश भागहारः फलं तत्स्थाने शरखण्डं भवति । तेन खण्डकेन द्विरसगुणा ३६२ युक्ताः कार्याः । यद्यय-

नांशोनितपातो मकरादिषट्के वर्तते। यतस्तत्र वर्तमाने सति राशित्रयाधिकस्य चन्द्रस्य स्फुटा परमा क्रान्तिश्चतुर्विंशतिभागाधिकैव भवति। कर्क्यादिषट्कस्थिते ऊनैव। तदेवं स्फुटखण्डं जातम्। तेनानुपातः। यद्येतावता खण्डेन पञ्चदश १५ धनुर्भागा विमण्डलगताः क्रान्तिमण्डलगता वा लभ्यन्ते तदा प्रागानीतशरतुल्येन किमिति। पूर्वं शरसाधने दोर्ज्याया नव ९ गुणश्चत्वारो भागहार इति स्थितम्। इदानीं पञ्चदश गुणकारः। कोटिफलोनयुतद्विषड्भामा हरः। एवं च गुणयोर्घाते कृते पञ्चत्रिंशदधिकं शतं १३५ गुणः। अथ च शरः स्फुटः कर्तव्यः। तत्र सत्रिराशिग्रहद्युज्या निघ्नास्त्रिज्योद्धृतः शरः स्फुटो भवतीति। तत्रस्थश्चन्द्रः सायनांशः पूर्णं भवति। तस्य राशित्रययुतस्य द्युज्या परमद्युज्या। अतः पञ्चत्रिंशदधिकं शतं यावत् परमद्युज्यया गुण्यते त्रिज्यया ह्रियते तावदुत्पन्ना गुणाः सूर्याः १२३। एवमयनांशोनितपाताद्दोर्ज्या गुणसूर्यैर्गुणिता कृतैर्भक्ता। तद्भुजफलं कोटिफलोनयुतद्विरसगुणै ३६२ र्भक्तम्। लब्धैरंशैरर्कगोलसन्धिरयनांशोनितपाते मेषादिस्थेऽत्र ऊनीक्रियते यतः पातो विलोमगस्तत्स्थानं विषुवन्मण्डलाद्दक्षिणतः क्रान्तिवृत्ते भवति। तत्र विन्यस्तस्य विमण्डलस्य पूर्वार्धं यावदुत्तरतः परमविक्षेपांशैर्नीयते तावद्भिरंशै रविगोलसन्धेः पश्चिमत एव तस्य विषुवन्मण्डलेन सह संपातो भवति। अतस्तुलादिस्थे तु विपरीतमिति। एतद्यथास्थिते गोले यथोक्तं विषुवन्मण्डलं विन्यस्य दर्शयेत्। इति सर्वं निरवद्यम्।

भाषाभाष्य ।

चन्द्र की गोलायनसन्धि का निरूपण करते हैं:—

जिस समय क्रान्तिसाम्य जानना हो उसके आसन्न समय में किसी दिन रवि, चन्द्र और पात को स्पष्ट करके उस पात में अयनांश घटा कर, लघुज्याखण्डों से भुजज्या और कोटिज्या सिद्ध करना । उसमें भुजज्या को १२३ से और कोटिज्या को ७ से गुण कर, क्रम से ४ और १२ का दोनों में भाग देना । इसप्रकार भुजफल और कोटिफल सिद्ध होंगे । फिर, अयनांशरहित—पात को मकरादि में कोटिफ़ल में ३६२ जोड़कर और कर्क्यादि में घटाकर उसका भुजफल में भाग देना । अंशादि फल को, अयनांशरहित—पात मेषादि छः राशि में होने पर, रवि की गोल और अयनसन्धि में घटाने से चन्द्र की गोलायनसन्धि होती है । इसी प्रकार तुलादि छः राशि में, रवि की गोलायनसन्धि में जोड़ने से, चन्द्र की गोलायनसन्धि होती है ।

प्रथम गोलसन्धि से अयनसन्धि तक, तीन राशि का चन्द्रमा का प्रथम पद कहलाता है । उसके आगे द्वितीय गोलसन्धि तक द्वितीय पद, ऐसे ही तृतीय, चतुर्थ पद भी होता है । चन्द्र की क्रान्ति का साधन सूर्यक्रान्ति के समान करना चाहिये । क्रान्ति की दिशा रवि-गोल के वश होती है, और शर संस्कार करने पर अपने गोल की होती है ।

उपपत्ति ।

१—चन्द्र विमण्डल में भ्रमण करता है इसलिए विषुवद्वृत्त और विमण्डल के संपात में चन्द्र की गोलसन्धि होती है । वहां स्पष्टक्रान्ति का अभाव होता है । उससे तीन राशि के अन्तर पर विक्षेपवृत्त में चन्द्र की अयनसन्धि होती है । वहीं परम स्पष्टक्रान्ति होती है । मध्य में उपचय और अपचय होता है । इसलिये चन्द्र की मध्यमक्रान्ति

भिन्नदिशा के शर से अल्प होने पर शर में क्रान्ति घटाने से स्पष्ट क्रान्ति होगी। क्योंकि विषुवद्वृत्त से ग्रहबिम्ब तक स्पष्टक्रान्ति होती है। इस स्थिति में जो चन्द्र के मध्यमक्रान्तिवश से पद साधन किया है उससे स्पष्टक्रान्ति का पद भिन्न होगा। पदकी कल्पना क्रान्ति के उपचय और अपचय ज्ञान के लिए हैं। क्योंकि विषमपद में क्रान्ति की वृद्धि और समपद में ह्रास होता है। इससे गत-गम्य पात का निश्चय होगा।

२–यहां आचार्य ने रविगोलसंधि में, चन्द्रस्पष्टक्रान्ति के साधनार्थ प्रपञ्च किया है। उसका तत्त्व इस प्रकार है—

रवि की गोलसंधि में मध्यमक्रान्ति शून्य होती है, इसलिए वहां शरज्या ही स्पष्टक्रान्ति होती है। चन्द्रग्रहणाधिकार के 'सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या–' इत्यादि विधि से उसका साधन किया।

चन्द्र=पात–अय।

$$\therefore \text{शर} = \frac{(\text{पात–अय}) \times २७०}{१२०} = \frac{(\text{पात–अय}) \times ९}{४} =$$

स्पष्ट चन्द्रक्रान्ति।

अब, यह जानना है कि यह स्पष्टक्रान्ति कितने भुजांशों में सिद्ध हुई है। यहां क्रान्तिखण्ड और शरखण्ड लिखे हैं। क्रान्ति के प्रथमखण्ड और तत्संबन्धी शरखण्ड के संस्कार से १५ अंश की स्पष्टक्रान्ति होती है। उसी अनुपात की रीति से, रविगोलसंधिगत स्पष्टक्रान्ति के भुजांश भी ज्ञात होजायँगे। उसके लिए अनुपात—

त्रि=को : प्रथमशरखण्ड ७० : : (पा–अय) को,

$$= \frac{\text{कोज्या (पा–अय)} \times ७०}{१२०} = \frac{\text{कोज्या (पा–अय)} \times ७}{१२}$$

=शरखण्ड।

यह रविगोलसंधि में हुआ, यह शरखण्ड=कोटिफल, के है।

रविगोलसंधि में प्रथमखण्ड से ही क्रान्ति का उपचय होता है, इसलिये कोटिफल में ३६२ खण्ड को युक्त करना, जब अयनांशोनितपात मकरादि में हो और कर्कादि में हो तब घटाना, इसप्रकार १५ अंश की स्पष्टक्रान्ति होगी ।

$$३६२ \pm को फ: १५ :: \frac{(पा-अ) \times ६}{४},$$

$$= \frac{(पा-अ) \times ६ \times १५}{(३६२ \pm को फ) \times ४} = स्पष्टक्रान्ति\text{-}भुजांश ।$$

अब रविगोलसंधिस्थ शरका 'सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नः—' इत्यादि विधि से स्पष्टीकरण किया ।

$$\frac{ज्या\ (पा-अ) \times ६ \times १५ \times पद्युज्या}{(३६२ \pm कोफ) \times ४ \times १२०}$$ । रविगोलसंधि

सायनांश चन्द्र शून्य होता है, इसकारण, सत्रिभ की द्युज्या परमाल्पद्युज्या होती है ।

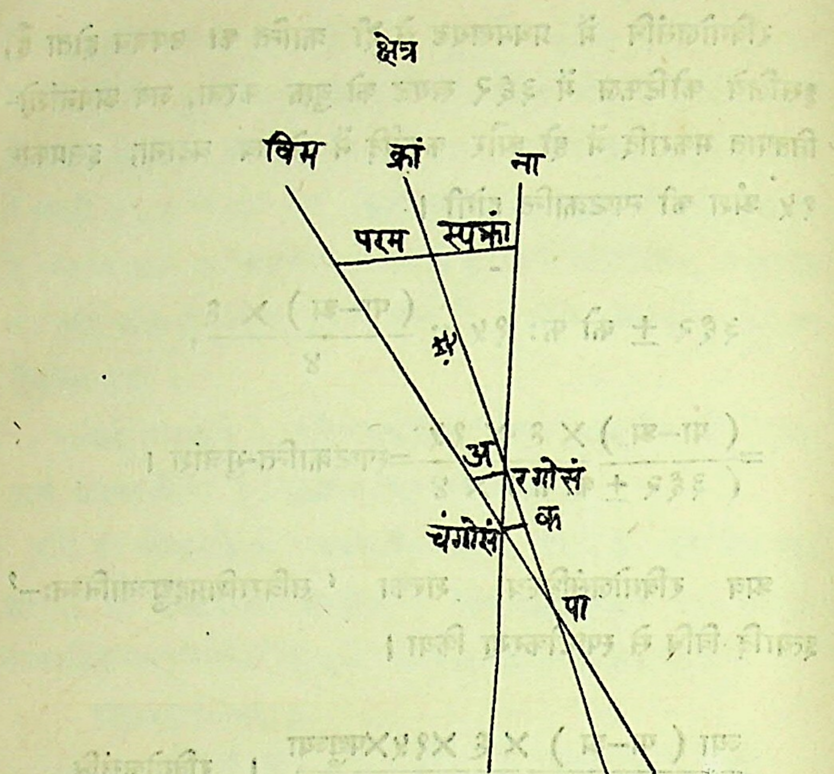
$$\frac{६ \times १५ \times पद्युज्या}{१२०} = १२३ ।$$

$$\therefore \frac{ज्या\ (पा-अ) \times १२३}{(३६२ \pm को फ) \times ४}$$ । और, $$\frac{ज्या\ (पा-अ) \times १३२}{४}$$

=भुजफल ।

$$\therefore \frac{भुजफल}{३६२ \pm को फ} = रविगोलसंधि\ में\ चन्द्रस्पष्टक्रान्तिके\ भुजांश ।$$

क्षेत्र



इस प्रकार जो स्पष्टक्रान्ति के भुजांश सिद्ध होते हैं वे क्रान्तिवृत्त में ' अक ' रूप सिद्ध होते हैं।

आचार्य ने वासनाभाष्य में, जो विस्तृतरूप से व्याख्यान किया है उसका सारांश ऊपर लिखा गया है। पूर्वापर की संगति विचारने से ' अयनांशोनितपातात्—' इत्यादि प्रकार स्पष्ट उपपन्न होता है।

३—अब चन्द्रगोलायन संधि का साधन, सिद्धान्ततत्त्वविवेक के अनुसार, त्रिकोणमिति की रीति से दिखलाया जाता है।

नीचे लिखे क्षेत्र में, कल्पना किया—

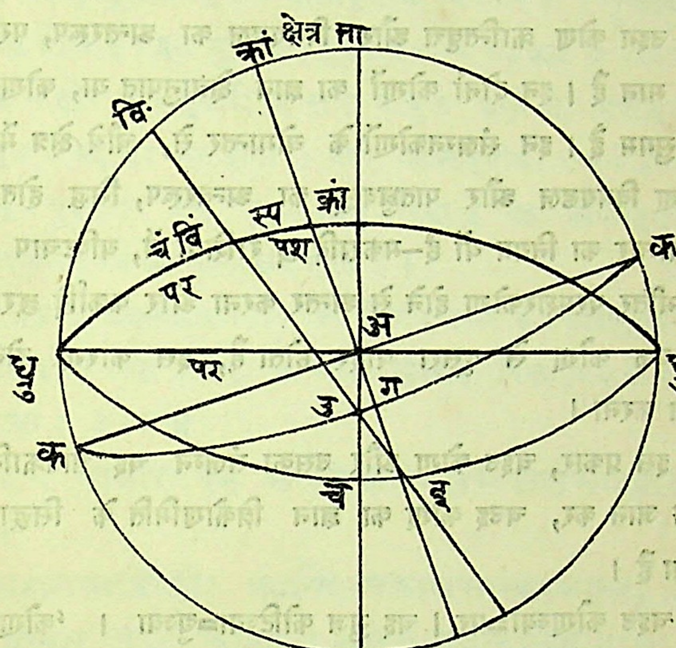
क्रान्तिवृत्त में—अइ = एक भुज।

नाडीवृत्त में—अउ = दूसरा भुज।

विमण्डल में—उइ = तीसरा भुज। यह विषमत्रिभुज हुआ।

नाड़ीवृत्त और विमण्डल संपात में कदम्बवृत्त किया, वह क्रान्तिवृत्त पर लम्ब होगा। इसलिए अइउ विषमत्रिभुज में अइ भुजपर उग लम्ब सिद्ध हुआ। यों जात्यत्रिभुज उत्पन्न हुए।

(१) अउ = कर्ण.	(२) उइ = कर्ण.
उग = एक भुज.	उग = एक भुज.
गअ = दूसरा भुज.	गइ = दूसरा भुज.



क्रान्तिवृत्त—विमण्डल संपात इ चिह्न, शर साधन के लिए चन्द्रपात कल्पना किया, अर्थात् विक्षेपकेन्द्र। उ चन्द्रगोलसंधि और अ रविगोलसंधि का स्थान कल्पना किया। इ चिह्न पर ध्रुव सूत्र करने से—

(३) ध्रुवसूत्र में — चइ = पातक्रान्ति, एक भुज।

क्रान्तिवृत्त में — अइ = पातांश, कर्ण।

नाडीवृत्त में — अच = पात विषुवांश, दूसरा भुज। यह तीसरा जात्य हुआ।

(४) ध्रुवसूत्र में — चइ = पाताक्रान्ति, एक भुज ।

विमण्डल में — इउ = कर्ण ।

नाड़ीवृत्त में — उच = दूसरा भुज । यह चौथा जात्य हुआ ।

तीसरे चअइ क्षेत्र में चइअ कोण, पातध्रुव सूत्र और क्रान्तिवृत्त का अन्तरमान है इसकी यष्टिचाप संज्ञा है । और दूसरे उइग क्षेत्र में, उइग कोण क्रान्तिवृत्त और विमण्डल का अन्तररूप, परम शर का मान है । इन दोनों कोणों का ज्ञान क्षेत्रानुपात या, कोणानुपात से सुगम है । इन संलग्नकोणों के योगान्तर से, चौथे क्षेत्र में चइउ कोण विमण्डल और पातध्रुवसूत्र का अन्तररूप, सिद्ध होता है । योगान्तर का नियम यों है—मकरादि छ राशियों में, यष्टिचाप कोण के भीतर परमशरकोण होने से अन्तर करना और कर्कादि छराशियों में, एक कोण से दूसरा बाहर होता है, इस कारण दोनों का योग करना ।

इस प्रकार, चइउ कोण और उसका संलग्न चइ पातक्रान्तिरूप भुज जान कर, चउइ कोण का ज्ञान त्रिकोणमिति के सिद्धान्त से होता है ।

चइउ कोणज्या=पर । चइ भुज कोटिज्या=द्युज्या । 'कोणज्यका कोणलग्नदोर्जकोटिज्यया हता । ' इत्यादि विधि से—

$$\frac{\text{पर} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{कोज्या चउइ} \,।\, \sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोज्या चइउ}^2} =$$

कोणज्या चउइ = हर ।

अर्थात् फलवर्ग और त्रिज्यावर्ग का अन्तर मूल हरसंज्ञक हुआ ।

पुनः कोण अनुपात किया—

हर : चइ क्रांज्या : : पर : चउ भुजज्या ।

हर : चइ क्रांज्या : : त्रि : इउ कर्णज्या ।

इनके चापों की भुज और कर्णसंज्ञा हुई । पूर्वसाधित चौथे क्षेत्र का चउ भुज और दूसरे क्षेत्र का चग्र भुज का अन्तर, नाडीवृत्त में क्रान्तिवृत्त—विमण्डल का अन्तर उग्र प्रथम क्षेत्र का कर्ण होता है। इस प्रकार, प्रथम क्षेत्र के कर्ण और भुज उग्र, उग से 'कर्णकोटिज्यका-त्रिज्याघात—' इत्यादि त्रिकोणमिति सिद्धान्त से, गग्र भुज का ज्ञान करना। यह भुज, क्रान्तिवृत्त में नाडीवृत्त से कदम्बवृत्त (पूर्वक्रत) तक सिद्ध होता है। इस भुज को, सूर्यगोलसन्धि में, क्रम से मेषादि छ राशि में हीन और तुलादि छ राशि में युक्त करने से, मेषादि से क्रान्तिवृत्त में ग्रह का मान होगा । वही क्रान्तिवृत्तीय चन्द्रगोलायन सन्धि है। पूर्व जो ' गग्र ' भुज सिद्ध किया है वह क्रान्तिवृत्तीय रवि-चन्द्रगोलसन्धि का अन्तररूप होता है।

इस प्रकार, चन्द्रगोलायनसन्धि का विचार स्पष्ट है। गोलयुक्ति से दूसरे प्रकार भी सिद्ध होते हैं, पर उनका विवरण विस्तारभय से नहीं किया गया ॥ ३—६ ॥

अथ साधारण्येन क्रान्तिसाम्यसंभवासंभवज्ञान-माह ।

स्वायनसन्ध्याविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः ।
ऊना यावत् तावत् क्रान्त्योः साम्यं तयोर्नास्ति ॥ ७ ॥

यत्र कुत्रचिद्दिने यावतीसु घटिकासु स्वायनसन्धि-तुल्यः स्फुटश्चन्द्रो भवति तस्य स्फुटा क्रान्तिः साध्यते । तत्र काले यावान् रविस्तस्य क्रान्तिः साध्यते । तस्या रविक्रान्तेः सकाशाद्यद्यूना स्फुटा शशिक्रान्तिस्तदा क्रान्त्योः साम्यं नास्तीत्यवगन्तव्यम् ।

अत्रेयं प्रकटैव वासना । स्वायनसन्धिस्थस्यविधोर्या क्रान्तिःसा तस्य स्फुटा परमा । तस्मात् स्थानादग्रतः

पृष्ठतो वा यावच्छशी चाल्यते तावत् तस्य क्रान्तिर्न्यूनैव भवति। अतोऽधिकया रविक्रान्त्या सह साम्यं नास्ति। अतोऽन्यथास्तीत्युपपन्नम्।

अत्र यावदूना तावत्क्रान्त्योः साम्यं नास्तीत्यस्याभिप्रायो व्याख्यायते। यदा किल व्ययनांशो राशिषट्कं पातः। रवेरयनसन्धितुल्यः शशी २।१६ रविश्च तावान् २।१६ तदार्कचन्द्रयोरयनसन्धिस्तुल्य एव भवति २।१६ तत्र स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिः ११७०। तत्र रवेश्च क्रान्तिः १४४०। अत्र विधोः क्रान्तेरूनत्वात् क्रान्तिसाम्याभावः। तस्मात् कालादग्रतो वित्र्यंशैश्चतुर्दशभिर्दिनैः १३।४० रविचन्द्रपाता मध्यगत्यैव किल चालिता एतावन्तो भवन्ति। र. ३।२।२८।१२ चं. ८।१६।४।२६ पा. ६।११।४३।२८ अत्र विधोरयनसन्धिर्द्वितीयः ८।१६।६।३५ अत्र स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिः ११६९। तत्र तत्कालभास्करक्रान्तिः १३६८ अत्रापि विधुक्रान्तेरूनत्वात् क्रान्तिसाम्याभावः। एवमस्मादपि कालादग्रतस्तावत्येव दिनान्तरे क्रान्तिसाम्याभाव एव भविष्यतीति। एवं प्रथमकालात् पृष्ठतश्चालनद्वये कृतेऽपि क्रान्तिसाम्याभाव एव। एवं मासद्वये क्रान्तिसाम्याभाव एव संभूतः। यदा गोलसन्धिसमीपस्थः पातो भवति तदा रवेर्दक्षिणायनादुत्तरायणाचोभयतः कियन्ति च दिनानि क्रान्तिसाम्याभाव एवेत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

अत्र पात का संभव असंभव कहते हैं। अपनी अयनसन्धि में

वर्तमान चन्द्र-स्पष्टक्रान्ति, यदि तात्कालिक-सूर्यक्रान्ति से न्यून हो तो, उस स्थान से आगे वा पीछे जबतक न्यून रहेगी, क्रान्तिसाम्य वा पात का अभाव रहेगा।

अयनसन्धि में परमस्पष्टक्रान्ति होती है। उसके आगे वा पीछे न्यून ही रहती है। इसलिए अधिक रविक्रान्ति के साथ उसका साम्य कैसे होगा। समक्रान्तिकालही पातकाल कहलाता है। वासनाभाष्य में उदाहरण से संभव और असंभव का काल स्पष्टरूप से दिखलाया है।

अथ व्यतिपातवैधृतयोर्लक्षणमाह।

व्यतिपातोऽयनभेदे गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः।
साम्ये वैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रमसमत्वे॥ ८॥

पूर्वं किल साधारण्येन क्रान्तिसाम्यस्य भावाभावलक्षणमुक्तम्। तच्च क्रान्तिसाम्यस्य लक्षणविशेषेण व्यतिपातवैधृतनामयोगौ भवतः। इदं हि किल लक्षणम्। यदार्कचन्द्रौ भिन्नायनसंस्थावेकगोलौ च भवतस्तदा यदि तयोः क्रान्तिसाम्यं भवति तदा व्यतिपातनामा योग उच्यते। यदैकायनस्थयोर्भिन्नगोलस्थयोश्च क्रान्तिसाम्यं भवति तदा वैधृतनामा योग उच्यते। तत् तादृशं लक्षणं कदा चेति न ज्ञायते।

प्रभा।

अर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः साम्ये तथा अयनभेदे गोलैकत्वे च सति व्यतिपातनामा योगो भवति। एवमेकायने गोलभेदे च वैधृतयोगः।

भाषाभाष्य।

जब सूर्य और चन्द्र की क्रान्ति समान हो, और सूर्य चन्द्र एक गोल में हों, दोनों का भिन्न अयन हो, तब व्यतिपात नामक पात

होता है। इसी प्रकार एकायन में, और भिन्नगोल होने पर क्रान्ति-साम्य हो तब वैधृतनामक पात होता है।

भुजों की समता से सूर्य चन्द्र की स्थानीय-क्रान्ति समान होती है इसकारण वहां व्यतिपात का सम्भव होता है॥ ८॥

अतस्तज्ज्ञानार्थं संभवमाह।

सायनरविशशियोगो भार्धं ६ चक्रं १२ यदा तदासन्नः।
तत्सम्भवस्तदूनाधिकलिप्ता भुक्तियोगहृताः॥ ९॥
लब्धदिनैरेष्यगतैस्तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्यौ।

कस्मिंश्चिद्दिने स्फुटौ रविचन्द्रौ पातश्च कार्यः। तयो रविचन्द्रयोः पृथक् पृथक् सायनांशयोर्योगो यदा भार्धं भवति तदा तस्य कालस्यासन्नोऽग्रतः पृष्ठतो वा व्यतिपातस्य संभवोऽस्तीति ज्ञेयम्। यदा तु तयोर्योगश्चक्रं १२ भवति तदासन्नो वैधृतस्य संभवो ज्ञेयः। यदा योगो भार्धं चक्रं वा न पूर्यते तदा यावतीभिः कलाभिः पूर्यते ता ऊनाः कलाः। यदा तु भार्धादधिको योगस्तदा योगाद्भार्धे शोधिते याः शेषस्य कलास्ता अधिककला उच्यन्ते। एवं चक्रादप्यूनाधिकलिप्ताः। ताः कलाश्चन्द्रार्कयोः स्फुटगतियोगेन भाज्याः। फलं दिनादिकं ग्राह्यम्। तैर्दिनैरेष्यगतैरिति। यथासंख्येन। यद्यूना लिप्ता भक्तास्तदैष्यदिवसा लब्धाः। यदाधिकाः कलास्तदा गतदिवसाः। तैर्दिवसैरेष्यैर्गुणिता भुक्तिकलाः पृथक्स्थाप्याः। ततो दिवसावयवघटीभिः पुनर्गुणिता भुक्तिः षष्ट्या हृता लब्धकलाभिर्मिश्रिताः पूर्वकला ग्रहे योज्याः। यदि गतदिनैर्गुणिता भुक्तिस्तदा शोध्याः। एवं रवेर्विधोः पातस्य च तात्कालिकीकरणम्। तात्कालिक-

योश्चन्द्रार्कयोः सायनांशयोर्योगे भार्धं चक्रं वा भवतीत्यर्थः । ततस्तयोस्तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्यौ ।

अत्र वासना प्रकटैव । सा यथा । यदा रविशशियोगो भार्धं चक्रं वा तदासन्नः क्रान्तिसाम्यस्य सम्भव इति यदुक्तं तस्यायमभिप्रायः । ययोर्योगे राशिषट्कं चक्रं वा भवति तयोरवश्यं भुजस्तुल्य एव स्यात् । भुजस्य तुल्यत्वादस्फुटशशिक्रान्ते रविक्रान्तेश्च तुल्यत्वमेव । किंतु स्फुटक्रान्तिस्तस्मिन् काले रविक्रान्तेः सकाशाच्छरेणोनाधिका वा भवतीत्यर्थः । तात्कालिकीकरणवासना सुगमैव ।

भाषाभाष्य ।

अब व्यतिपात और वैधृतयोग का सम्भव कहते हैं—इष्टदिन में रवि, चन्द्र और पात को स्पष्ट साधन करना । सायन सूर्य और सायन चन्द्र का योग यदि छ राशि हो तब व्यतिपात योग का, आगे वा पीछे किसी समय संभव होता है । और दोनों का योग बारह राशि होने पर वैधृत का संभव होता है । इन दोनों योगों की अवधि छ राशि और बारह राशि से न्यून या अधिक में, जब संभव हो तब जितना न्यूनाधिक हो उसकी कला को, रवि-चन्द्र के स्पष्टगति योग से भाग देकर, दिनादि फल लेना । न्यून कला में भाग देने से एष्य दिन और अधिक में गत दिन सिद्ध होंगे । फिर सूर्य, चन्द्र और पात को तात्कालिक सिद्ध करके स्पष्टक्रान्ति का साधन करना ।

उपपत्ति ।

व्यतिपात में सूर्य, चन्द्र का एक गोल और वैधृत में भिन्न गोल माना गया है ।

व्यतिपात = र + अय + च + अय = ६ रा ।

वैधृत = र + अय + च + अय = १२ रा । भुज की समता में क्रान्ति की समता होती है, इसलिए जिनका योग ६ वा १२ राशि होगा उनका भुज भी अवश्य समान होगा। परन्तु चन्द्र की मध्यम क्रान्ति और रविक्रान्ति ही समान होंगी। चन्द्र की स्पष्ट क्रान्ति शर के वश, रविक्रान्ति से न्यूनाधिक होती है। इसलिए तात्कालिकीकरण से दोनों के स्पष्टक्रान्तियों की एकता साधन आवश्यक है। तात्कालिक करने की विधि वासनाभाष्यमें स्पष्टही है ६॥

इदानीं तस्मात् कालात् क्रान्तिसाम्यस्य गतैष्यत्व-प्रतिपादनार्थमाह।

ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महती सूर्यापमाल्लघुः समजा ॥ १० ॥
यदि भवति तदा ज्ञेयो यातः पातस्तदन्यथा गम्यः।

ओजपदे विषमपदे वर्तमानस्येन्दोः स्फुटा क्रान्ति-र्यदा महती भवति। कस्मात्। सूर्यापमात्। तथा यदि समपदे शशी भवति। तस्य क्रान्तिर्यदा सूर्यापमाल्लघु-र्भवति तदा गतः पातः। यातं क्रान्तिसाम्यम्। अस्मा-ल्लक्षणादन्यथा तर्हि गम्यम्।

अत्रोपपत्तिः। रविस्तावत् स्थिरगतिश्चन्द्रोऽतीव चलस्तस्यैव क्रान्तेः प्रतिक्षणमन्यथात्वम्। अतश्चन्द्रम धिकृत्योच्यते। अत्रौजपदे वर्तमानस्य विधोः क्रान्ति-रुपचये वर्तते। यथा यथा ग्रहोऽग्रतो याति तथा तथा तस्य क्रान्तिर्विषमपद उपचीयते। प्रथमपदस्य तृतीय-पदस्य च गोलसन्धावादिः। तदग्रतस्त्रिभेऽन्तरे क्रान्तेः परमत्वम्। अतो विषमपदे वर्तमानो यथा यथाग्रतो याति तथा तथा क्रांतिरुपचीयते। ततस्त्रिभात्परतो द्वितीयगोलसन्धिं यावत् समपदम्। तत्र वर्तमानो यथा

यथाग्रतो याति तथातथा क्रान्तिरपचीयते । एवं तृतीयचतुर्थपदयोरपि । अत ओजपदे वर्तमानस्येन्दोः क्रान्तिर्यदा सूर्यापमान्महती तदाग्रे चालितस्येन्दोरातिशयेन महती भवति । यदि यथायथा पृष्ठतश्चाल्यते शशी तथा तथा क्रान्तिरूनैव भवति । अत ऊनया रविक्रान्त्या सह साम्यं गतमेवानुमितम् । अथ समपदे वर्तमानस्य विधोः क्रान्तिर्लघ्वी सूर्यापमाद्भवति तदापि पृष्ठतश्चालितस्येन्दोः क्रान्तिर्महती भवति । अतो महत्या सूर्यक्रान्त्या सह साम्यं गतमिति ज्ञातम् । अस्माल्लक्षणादन्यथात्वे क्रान्तिसाम्यमेष्यमित्यर्थाज्ज्ञायते । अतो गतगम्यत्वलक्षणं युक्तमुक्तम् ।

भाषाभाष्य ।

विषमपद में वर्तमान चन्द्र की स्पष्टक्रान्ति अर्थात् शरसंस्कृतक्रान्ति सूर्यक्रान्ति से अधिक हो और समपद गत चन्द्र की स्पष्टक्रान्ति सूर्यक्रान्ति से न्यून हो तो गतपात जानना चाहिये । अर्थात् क्रान्तिसाम्य होचुका है । और सूर्य की क्रान्ति से चन्द्रकी क्रान्ति न्यून हो तो गतपात, अधिक हो तो गम्यपात होता है, यह पूर्व से विपरीत स्थिति है ।

उपपत्ति ।

सूर्य मन्दगति है और चन्द्रमा वहुत शीघ्रगति है, इसलिये उसकी क्रान्ति भी प्रतिक्षण बदला करती है । विषमपद में चन्द्र की क्रान्ति बढ़ती है । वहां से तीन राशि के अन्तर पर परम होती है, सूर्य की क्रान्ति से विषमपद में स्थित चन्द्र की क्रान्ति अधिक हो तो आगे और भी अधिक होगी । क्योंकि सूर्य की क्रान्ति कम बढ़ती है । इस लिए न्यून रविक्रान्ति के साथ चन्द्र की क्रान्ति की समता पूर्वकाल में होचुकी । यदि विषमपदीय चन्द्र की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से न्यून

हो तो क्रान्तिसाम्य आगे होगा। क्योंकि प्रतिदिन बढ़ती हुई चन्द्र-क्रान्ति, सूर्यक्रान्ति के समान आगे होगी। और समपद में चन्द्र की क्रान्ति, सूर्यक्रान्ति से न्यून हो तो गतपात होता है। क्योंकि समपद में चन्द्र को पीछे चलाने से उसकी क्रान्ति बढ़ती है। और समपद में चन्द्र की क्रान्ति, सूर्यक्रान्ति से अधिक हो तो गम्यपात होगा। क्योंकि आगे चन्द्रक्रान्ति न्यून होगी। यही सब पात के गत-गम्य का विचार है ॥ १० ॥

अथ तस्मात् कालाद्गतगम्यस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य परिज्ञानमार्योत्तरार्धादारभ्य सार्धेनार्यात्रयेणाह।

तत्क्रान्त्योरेकदिशोरन्तरमैक्यं विभिन्नदिशोः ॥ ११ ॥
कार्यं व्यतिपाताख्ये तदन्यथा वैधृते प्रथम एवम्।
गतगम्येष्टघटीभी रवीन्दुपातान् प्रचाल्य साध्योऽन्यः ॥ १२॥
आद्यान्यकालयोरपि यदि गम्यं लक्षणं गतं यदि वा।
आद्यान्ययोस्तदान्तरमतोऽन्यथैक्यं च तेन हृताः ॥ १३॥
आद्यगुणा नाड्योऽसकृद्दिष्टाः स्पष्टाः स्युरेवमेतासु।
चक्रार्धचक्रकालाद्गतगम्यं पातमाद्यवशात् ॥ १४ ॥

इदं पूर्वोदाहरणस्योपरि प्रदर्श्यते। तच्चोदाहरणं युक्तायनांशोऽशशतं शशी चेत्यादि। तत्र नवभागाधिकं राशिद्वयं रविः २। ९। भागेनोनं त्रिभं शशी २। २९। एकविंशतिभागाधिकं त्रिभं पातः ३। २१। एते तात्कालिका एव कल्पिताः। यतोऽनयोरविचन्द्रयोः सायनांशयोर्योगे भार्धं भवति। रविः २। २०। चन्द्रः ३। १०। अत एव व्यतिपातेनात्र भवितव्यम्। अत्र रवेस्तावद्गोलायनसन्धी ११। १९ ॥ २। १९ ॥ तथा चन्द्रस्य साधितौ ११। ८। ३७। ३२ ॥ २। ८। ३७। ३२ ॥

अत्रोदाहरणे चन्द्रः २। २६। अस्यासन्नो योऽयनसन्धिः स गृह्यते। स्वायनसन्धाविंदोः क्रान्तिरिति सन्धितुल्यं विधुं प्रकल्प्य साधिता स्फुटा क्रान्तिः सप्तदशाधिकानि चतुर्दशशतानि १४१७। अथ तत्कालभास्करक्रान्तिरिति। यस्मिन् काले शशी स्वायनसन्धितुल्यो जातो भविष्यति तत्र काले यावान् रविः स तत्कालभास्करः। अत्रायनसन्धिश्चन्द्रादूनोऽतः प्रागेवायनसन्धिस्थो जातः। स च कियता कालेनेति। अत्र विधोः स्वायनसन्धेश्चान्तरकलाश्चन्द्रभुक्त्या भाज्याः। लब्धदिनैः स्वसन्धिस्थो जातो भविष्यति वेति वेदितव्यम्। अत्रोदाहरणे विधोः स्वसन्धेश्चान्तरे भागाः २०। २३। एषां कलाश्चन्द्रभुक्त्या भाज्याः। अत्र चन्द्रभुक्तिः सुखार्थं खवसुमुनिमिताः कलाः ७८० कल्पिताः। रवेश्च भुक्तिः षष्टिः ६०। अत्र चन्द्रभुक्त्या ताः कला भक्ता लब्धमेकं दिनं घटिकाश्चतुस्त्रिंशत् १। ३४। एतावता कालेन विधुः स्वायनसन्धिस्थः पूर्वमेव जातः। अतोऽनेन कालेन चालितो रविः। अयं तत्कालभास्करः २। ७। २६। अस्य क्रान्तिर्दशाधिकानि चतुर्दशशतानि १४१०। अस्याः सकाशात् स्वायनसन्धिक्रान्तिरियं १४१७ मधिकातोऽस्ति क्रान्तिसाम्यम्। अत्र धीवृद्धिदपक्षे सूर्यापमादोजपदोद्भवादित्यादिलक्षणेन * क्रान्तिसाम्याभावः। तथा ब्रह्मगुप्तपक्षेऽपि त्रिनवगृहेन्दुक्रान्ति-

---

* लल्लाचार्यः—

'सूर्यापमादोजपदोद्भवाच्चेयुग्मादिजश्चन्द्रमसो लघीयान्।
अपक्रमः स्यान्न तदास्ति पातस्तदन्यथात्वेऽपमयोः समत्वम्॥'

रित्यादिना लक्षणेन * तथा त्रिनवभवनजाताक्रान्ति-
रित्यादिना शेखरोक्तलक्षणेन † तथा—

रवेरोजपदक्रान्तेश्चन्द्रयुग्मपदोद्भवा ।
स्वल्पा चेन्न तयोः क्रान्त्योः साम्यं स्यादन्यथा भवेत् ॥

इति माधवोक्तसिद्धान्तचूडामणिलक्षणेनापि क्रान्तिसाम्याभावः । एवमन्येषां तदनुसारिणामपि पक्षे ।

अथ प्रसंगेनाप्युदाहरणं तदव्याप्तिदर्शनायोच्यते ।

तिग्मांशुचन्द्रौ किल सायनांशौ
चतुर्द्विराशी च विपातचन्द्रः ।
गृहाष्टकं तत्र वदाशु पातं
धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि ॥

अत्र तिग्मांशुपाताः । रविः ४ । चन्द्रः २ । पातः ६ । यदा किलायनांशाभावस्तदैते तात्कालिकाः कल्पिताः । अत्र सूर्यापमादोजपदोद्भवादित्यादिलक्षणेन क्रान्तिसाम्यमस्ति । यतः सूर्यो युग्मपदे वर्तते । यदा कदाचित् क्रान्तिसाम्याभावस्तदा विषमपदस्य एवादित्ये तत्पक्षे । अन्यथौजपदोद्भवादिति विशेषणं निरर्थकमेव स्यात् । अतोऽत्र तत्पक्षेऽस्ति पातः । स च अयुग्मजश्चन्द्रमसोऽपम इत्यादिना तदुक्तलक्षणेनैष्यो जातः । अथ तदुक्तेनैवासकृत्साधनप्रकारेणानीयमानं क्रान्तिसाम्यं वर्षशतेनापि

---

* ब्रह्मगुप्ताचार्यः—

'त्रिनवगृहेन्दुक्रान्तिर्मेषतुलादौ दिवाकरक्रान्तेः ।
ऊना यावदभावस्तावद्भावोऽन्यथा चेति ॥'

† श्रीपतिः—

'त्रिनवभवनजाता क्रान्तिरिन्दोर्यदाल्पा दिनकृदपमः स्यान्मेषजूकादिजातात् ।
न हि भवति तदा च क्रान्तिसाम्यं रवीन्द्वोर्नियतमितरथात्वे जायते संभवोऽस्य ॥'

नागच्छतीत्यत्र प्रत्यक्षं प्रमाणम् । अतः किंकुर्मः । क उपालम्भः । यत्रेदमसमञ्जसमिति । किं जगद्विरोधेन । अत्रास्मत्पक्षे क्रान्तिसाम्याभाव एव । एवमत्र भावाभावे भ्रमो दर्शितः । क्वचिद्गतैष्यत्वेऽपि स उदाहरणान्तरे दर्शितः ।

अथ प्रस्तुतमुच्यते । तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्याविति साधितौ तयोश्चन्द्रार्कयोरपक्रमौ । र २ । ६ । चं २ । २६ । पा ३ । २१ । १४१६ । १३२४ । ओजपदेन्दुक्रान्तिरिति पूर्वं साधारण्येनेदं व्याख्यातम् । अत्रेन्दुः समपदे वर्तते तस्य क्रान्तिर्लघ्वी । अतोऽत्र यातः पातः । स च कियता कालेनेति तदर्थं तत्क्रान्त्योरेकदिशोरन्तरमित्यादि सूत्रम् । अतस्तयोः क्रान्त्योरुत्तराशयोरन्तरं कृतम् । यदि भिन्नदिशौ भवतस्तदैक्यं कार्यम् । एवं व्यतिपाते । वैधृते त्वन्यथा । तदन्तरमैक्यं वा प्रथमसंज्ञं भवति । तच्चानष्टं स्थाप्यम् । तथात्र जातः प्रथमः ६२ । एवमनेन प्रकारेण तत्क्रान्त्योरेकदिशोरित्यादिनान्यः साध्यः । स च किं कृत्वा तदाह । गतगम्येष्टघटीभीरवीन्दुपातान् प्रचालयेति । एतदुक्तं भवति । कतिचिदिष्टघटिकाः कल्प्याः । ताश्च गते पाते गताः । गम्ये गम्याः । ताभिर्घटीभिर्यातैष्यनाडीगुणिता द्युभुक्तिरित्यादिनोक्तप्रकारेण रवीन्दुपातास्तात्कालिकाः कार्याः । तथात्र कल्पिता इष्टघटिकाः ६० । आभिः कृतास्तात्कालिकाः र २ । ८ । ० । ० । चं० २ । १६ । ० । ० । पातः ३ । २० । ५६ । ४६ । अतस्तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्यावित्यादिना गतगम्यावलोकनम् । पुनरत्रापि गतः

पातः। अथ तत्क्रान्त्योरेकदिशोः कृतमन्तरं जातोऽथ-मन्यः २। ३९। आद्यान्यकालयोरपि यदि गम्यं लक्षणं गतं वेत्ति तयोराद्यान्ययोःसाध्यमानयोर्द्वयोरपि यदि गम्यं लक्षणं भवति। अथवा द्वयोरपि गतं तदाद्यान्ययोरन्तरं कार्यम्। अन्यथा यदा तदैक्यम्। तेनान्तरेणैक्येन वा भाज्याः। का इष्टघटिकाः। किं विशिष्टाः। आद्येन गुणिताः। तत्र यल्लभ्यते तद्घटिकादिकं गृह्यते। ता इष्टघटिकाः प्रकल्प्य पुनरन्यः साध्यः। आद्यः पूर्व एव। तेन पूर्वानीतेनाद्येन पुनरानीतेनान्येन च पुनरिष्टघटिकाः साध्याः। एवमसकृद्यावत् स्थिरा भवन्ति। ता इष्टघटिकाः स्फुटाः। एवमेताभिश्चक्रार्धचक्रकालाद्गतगम्यं पात-मध्यमाद्यवशादिति। यस्मिन् काले चन्द्रार्कयोर्योगश्च-क्रार्धं ६ चक्रं १२ वा जातं तस्मात् कालात् प्रागेव ता-भिर्घटिकाभिः क्रान्तिसाम्यं गतं वेदितव्यम्। यदाद्यकाले गतं लक्षणं जातम्। यदि गम्यं तदा गम्यमिति वेदितव्यम्। यदैव क्रान्तिसाम्यं तदैव पातमध्यम्। एवमत्राद्यान्ययोरपि कालयोर्गते लक्षणे जाते कृतमाद्यान्ययोरन्तरम् ८१।२१। अनेनेष्टघटिकागुणे प्रथमे भक्ते जाता अन्याइष्टघटिकाः ६१। ४७एवं पुनरप्यसकृत्कर्मणा जाताः स्थिराःइष्टघटिकाः७०। आभिर्घटीभिश्चक्रार्धकालात् पातमध्यं गतमिति ज्ञातम्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र चक्रार्धकाले क्रान्तिसाम्यस्य ग-तत्वं किल ज्ञातम्। इदानीं तत्कालज्ञानार्थमाद्यैराचार्यै-रुपायः कल्पितः। तत्क्रान्त्योरन्तरं परमेकदिशोर्व्यति-पातयोगे च। यतो व्यतिपात एकगोलस्थयोरेव भवति। अतस्तत्क्रान्त्योरन्तरं कृतम्। यत्क्रान्त्योरन्तरं स यत्र-

तत्रस्थितयोरपि चन्द्रार्कयोर्याम्योत्तरभावः । तयोर्द्युरात्रवृत्तयोरन्तरमित्यर्थः । यदा पुनश्चन्द्रक्रान्तिशरेणान्यगोलं नीता तदा क्रान्त्योर्योगः कृतः । यतश्चन्द्रस्यान्यगोलेऽहोरात्रवृत्तमर्कस्यान्यगोले । एकस्य स्वक्रान्त्यग्र उत्तरतोऽन्यस्य स्वक्रान्त्यग्रे दक्षिणतोऽतस्तयोरहोरात्रवृत्तयोरन्तरं तत् क्रान्तियोगेनैव भवतीत्युपपन्नं तत्क्रान्त्योरेकदिशोरन्तरमैक्यं विभिन्नदिशोरिति । यदर्कस्याहोरात्रवृत्तं तदेव यदा चन्द्रस्याहोरात्रवृत्तं भवति तदा व्यतिपातः ।

अथ विषुवन्मण्डलादुत्तरतो दक्षिणतो वा यावतान्तरेण रवेरहोरात्रवृत्तं तावतैवान्तरेण विषुवद्वृत्तादन्यदिशि यदेन्दोरहोरात्रवृत्तं भवति तदा वैधृतनामा योगः। अथ किल दक्षिणगोले रविर्वर्तते । तस्य क्रान्त्यग्रे स्वाहोरात्रवृत्तं निवेश्यम् । ततो विषुवन्मण्डलादुत्तरतस्तावतैवान्तरेण निवेश्यम् । तस्मिन् मण्डले यदि चन्द्रो भवति तदा वैधृत इतिभावः । यदा पुनश्चक्रकालिकश्चन्द्र उत्तरगोले किल वर्तमानः स्वोत्तरक्रान्तेरल्पत्वात् तस्मादहोरात्रवृत्ताद्दक्षिणतोऽन्यस्मिन्नहोरात्रवृत्ते भ्रमति तदा तयोर्वृत्तयोरन्तरं कथं ज्ञायते । तदर्थं रवेर्दक्षिणक्रान्तितुल्येऽन्तरे विषुवन्मण्डलादुत्तरस्तद्वृत्तं निवेश्यम् । अथवेष्टकालिकस्य चन्द्रस्य यदन्यदहोरात्रवृत्तं तच्चन्द्रस्योत्तरक्रान्तेरग्रे । अतश्चन्द्रस्योत्तरक्रान्ते रवेर्दक्षिणक्रान्तेश्च यदन्तरं तत् तयोर्वृत्तयोरन्तरम् । अथ यदि विक्षेपेण दक्षिणगोलं नीतस्तदा चन्द्रस्य स्फुटा क्रान्तिर्दक्षिणा वर्तते। अत्रेष्टकालिकस्य चन्द्रस्य यदन्यदहोरात्रवृत्तं तदा तस्यो-

न्तरे निवेशितस्याहोरात्रवृत्तस्य चान्तरं तयोः क्रान्त्यो-र्योगे भवति। अत उक्तं तदन्यथा वैधृत इति। एवं तत्क्रान्त्योरन्तरं प्रथमसंज्ञं कल्पितम्। अस्य क्रान्त्य-न्तरस्यापचीयमानस्य यदाऽभावस्तदा क्रान्तिसाम्यम्। अथ च तदपचयस्यापयित्ता कर्तुं न शक्यते। अत इष्टकालघटिकाभिश्चालितयोश्चन्द्रार्कयोः क्रान्त्यन्तरमुक्त-प्रकारेण पुनः कृतम्। तस्यान्यसंज्ञा कृता। ततस्तयोरा-द्यान्ययोर्यदन्तरं स तावतीनां घटिकानां सम्बन्धी क्रान्त्य-न्तरस्यापचयः। अतस्तयोरन्तरं कृतम्। परं यद्याद्यान्य-कालयोर्गतं गम्यं वा लक्षणं तदैव। यदा किलाद्यकाले गतलक्षणमन्यकाले गम्यं तदा प्रथमक्रान्त्यन्तरमपचीय-मानमभावं प्राप्य पुनरुपचितम्। अतस्तत्राद्यान्ययोर्योगे कृते सत्यन्तरं कृतं भवति। अतोऽनुपातः। यद्येतावता क्रान्त्यन्तरापचयेनेष्टघटिका लभ्यन्ते तदा प्रथमतुल्येन कियत्य इत्यत इष्टघटिकागुणे प्रथम आद्यान्यान्तरभक्ते या घटिका लभ्यन्ते ताः स्फुटासन्ना भवन्ति। यतः प्रति-क्षणं क्रान्तिचलनं समं न भवति। अतस्ताभिर्घटिकाभि-रसकृत्कर्मणा स्फुटाः कर्तुं युज्यन्त इति सर्वमुपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

अब क्रान्तिसाम्य कालका साधन करते हैं—

प्रथम, सूर्य और चन्द्र की क्रान्तियों का एक दिशा में अन्तर और भिन्न दिशा में योग करना। अर्थात् व्यतिपात के साधन में यह कर्म करना। और वैधृत के साधन में, सूर्य चन्द्र की क्रान्तियों का, एक दिशा में योग और भिन्न दिशा में अन्तर करना। इस प्रकार जो योग वा, अन्तर से फल होगा उसकी 'प्रथम' संज्ञा जाननी।

फिर गत अथवा, गम्य पात में, इष्टघटिका कल्पना करके उनसे 'यातैष्यनाडी गुणिता द्युभुक्तिः–' इत्यादि विधि से; सूर्य, चन्द्र और पात को तात्कालिक सिद्ध करना। इन तात्कालिकों से जो क्रान्तियों का योग वा, अन्तर सिद्ध हो उसकी 'अन्य' संज्ञा रखनी।

इन आद्य (प्रथम) और अन्यों से, यदि गतपात का या, गम्यपात का लक्षण जाना जावे तो दोनों का अन्तर करना। और एक से गत और दूसरे से गम्य सिद्ध हो तो दोनों का योग करना। इस योग अथवा, अन्तर फल का, आद्य से गुणित इष्टघटिका में भाग देकर घटिकादि फल ग्रहण करना। इस फल को इष्टघटिका मान कर फिर अन्य का साधन करना। इस प्रकार आद्य और अन्य से असकृत्कर्म द्वारा स्थिर इष्टघटिका का साधन करना। इस स्थिर घटिका काल के समानकाल में, चक्रार्धकाल के पूर्व पातमध्य काल गत होजायगा।

उपपत्ति।

सूर्य-चन्द्र एक गोल में हों तब व्यतिपात योग होता है, इसलिए दोनों की क्रान्तियों का अन्तर किया है। शर के वश चन्द्रक्रान्ति भिन्न गोल में हो जाती है, इस कारण दोनों की क्रान्तियों का योग किया है। क्योंकि दोनों के अहोरात्रवृत्त भिन्न भिन्न गोल में होंगे। इस लिये क्रान्तियों के योग से ही अहोरात्रवृत्तों का अन्तर ज्ञात होगा। जब सूर्य और चन्द्र का अहोरात्रवृत्त एक हो जाता है तब व्यतिपात योग होता है।

घटती हुई क्रान्तिका जब अभाव हो तब क्रान्तिसाम्य होता है? परन्तु उस घटती का कोई नियम नहीं है इसलिए इष्टघटिका से सूर्य–चन्द्र को चालित करके पुनः क्रान्त्यन्तर का साधन किया है और उस की अन्यसंज्ञा की है। आद्य और अन्य का जो अन्तर किया है वह

इष्टघटिका सम्बन्धी क्रान्तियों की घटती का मान सिद्ध हुआ है। परन्तु यह अन्तर तब होता है जब आद्य और अन्य से गत किंवा गम्य पातकाल सिद्ध होता है। क्रान्ति का चलन प्रतिक्षण विलक्षण होता है इस लिए उक्त इष्टघटिकाओं से असकृत्कर्म किया गया है।

वास्तव में क्रान्तिसाम्य चार प्रकार का होता है—

(१) सायन सूर्य और सायन चन्द्र, एक गोल और भिन्न अयन।

(२) दोनों भिन्न गोल और एक अयन।

(३) दोनों एक गोल और एक अयन।

(४) दोनों भिन्न गोल और भिन्न अयन।

इनमें पहला और दूसरा क्रान्तिसाम्य महापात कहलाता है। इनमें पहला व्यतिपात दूसरा वैधृत है। ये दोनों शुभकर्मों में दूषित हैं इस लिए इन्हीं का साधन प्रकार लिखा गया है। तीसरा और चौथा क्रान्तिसाम्य उक्त दोनों से अलग है। उनकी गणना महापात में नहीं है। तीसरा अमान्त के पास होता है और चौथा पूर्णिमा के पास में हुआ करता है।

यहां व्यतिपात और वैधृत का विवरण आचार्य ने सविस्तार वासनाभाष्य में किया है। ११—१४॥

एवं पातमध्यमभिधायेदानीं पाताद्यन्तकालपरिज्ञानार्थमाह।

मानैक्यार्धं गुणितं स्पष्टघटीभिर्विभक्तमाद्येन।
लब्धघटीभिर्मध्यादादिः प्रागग्रतश्च पातान्तः॥ १५॥
तात्कालिकैः पृथक् पृथगाद्यं प्राग्वत् प्रसाध्य तेन भजेत्।
मानैक्यार्धेन हता असकृत्स्थित्यर्धनाडिकाः स्पष्टाः॥१६॥

एवं स्पष्टा या इष्टघटिका जातास्ताभिः पातमध्यं गतं गम्यं वा। अथ ताभिर्घटिकाभिश्चक्रार्धचक्रकालिकौ

चन्द्रार्कौ प्रचाल्य पातमध्यकालिकौ कृत्वा तथा तयो-श्चन्द्रग्रहणोक्त्या बिम्बे प्रसाध्ये ततो मानैक्यार्धं प्रागानीताभिः स्फुटाभिर्घटीभिर्गुण्यं तेनाद्यसंज्ञेन भाज्यम् । फलं घटिकादि ग्राह्यम् । ताभिर्लब्धघटिकाभिः पातमध्यकालात् पूर्वतः पातस्यादिर्ज्ञेयः । तथा ताभिरेव लब्धघटिकाभिः पातमध्यकालादग्रतः पातस्यान्तो ज्ञेयः । ताः स्थित्यर्धघटिका जाता इत्यर्थः । अथ पाताद्यन्तकालिकाः पृथक् पृथक् चन्द्रार्कपाताः कार्याः । स्थित्यर्धगुणा भुक्तिः षष्टिहृता यत् फलं तेन स्वस्वफलेन पातमध्यकालिका एकत्रोना अन्यत्राधिकाः कार्या इत्यर्थः । ततस्तयोस्तत्कालिकयोश्चन्द्रार्कयोः क्रान्ती कृत्वा प्राग्वत् तयोरन्तरमाद्यसंज्ञं कल्पितम् । तेनाद्येन भजेत् । काः । मानैक्यार्धेन गुणिताः स्थित्यर्धनाडिकाः । एवं स्पष्टा भवन्ति । ततस्ताभिर्घटिकाभिस्तात्कालिकीकरणादिनाऽसकृत्कर्मकार्यम् । यावत् स्थित्यर्धनाडिकाः स्थिरा भवन्ति । एवं पृथक् पृथगुत्पाद्य तदिष्टकालिकैः कृतं तद्द्वितीयं स्फुटं स्थित्यर्धमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अहो यदा क्रान्तिसाम्यं तदैव पातस्तस्मात् कालात् प्रागग्रतश्च कथमवस्थानं पातस्य । तत्र क्रान्तिसाम्याभावात् । क्रान्तिसाम्यं नाम पातः । तत्रोच्यते । यावती बिम्बमध्यस्य क्रान्तिर्भवति सा बिम्बार्धेनोनिता सती बिम्बप्रान्तस्य पाश्चात्यस्य तावती क्रान्तिर्भवति । बिम्बार्धेनाधिकाग्रतो बिम्बप्रान्तस्य भवति । एवं रवेश्चन्द्रस्य च । अत्र बिम्बे पृष्ठमग्रं च याम्योत्तरभावेनोच्यते । यावती रवेर्बिम्बपृष्ठप्रान्तक्रान्तिस्तावती यदा चन्द्रस्याग्र-

प्रान्तस्य क्रान्तिर्भवति तदा तयोर्बिम्बैकदेशेन क्रान्त्योः साम्यात् पातस्यादिरिति। तदा तयोर्बिम्बमध्ययोर्मानैक्यार्धतुल्यमन्तरं भवति। तदनन्तरं क्रमेण गच्छतोर्यदा बिम्बमध्ययोः क्रान्तिसाम्यं तदा पातमध्यम्। तदनन्तरं रवेरग्रप्रान्तस्य चन्द्रपृष्ठप्रान्तस्य च यदा क्रान्तिसाम्यं तदा पातान्तः। यतो यावन्मानैक्यार्धादूनं क्रान्त्यन्तरं तावत् पातोऽस्तीत्यत उक्ते स्थित्यर्धे। अथ तदानयनोपपत्तिः। पातमध्यसाधने यदाद्यसंज्ञं क्रान्त्यन्तरं याश्चासकृत्कर्मणा स्फुटीकृता इष्टघटिकास्तेन ताभिश्चानुपातः। यद्याद्यतुल्येन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यो घटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येनान्तरेण किमिति। एवं त्रैराशिकेन या लभ्यन्ते स्थित्यर्धघटिकास्ताः स्थूला जातास्तत्स्फुटीकरणार्थं तात्कालिकयोः पुनः क्रान्त्यन्तरं कृतम्। तन्मानैक्यार्धासन्नं जातम्। तेन पुनरनुपातः। यद्यनेन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यः स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येन किमिति। एवमसकृत् तासां घटीनां स्फुटत्वमित्युपपन्नम्।

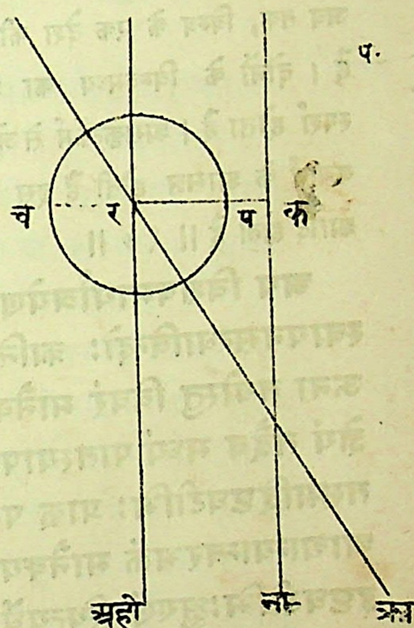
भाषाभाष्य।

अब पात के आदि और अन्तकाल का साधन करते हैं-पूर्वसाधित स्पष्ट इष्टघटिकाओं से मानैक्यार्ध को गुणा कर आद्यसंज्ञक का भाग देना। लब्ध घटिका के तुल्य, पातमध्यकाल के पूर्व पात का आदि होता है। और उसीके समान मध्यकाल के बाद पातका अन्त होता है। यही स्थित्यर्धघटिका कहलाती हैं। फिर पात के आदि और अन्त काल में रवि, चन्द्र, पात को स्पष्टसाधन करना। तात्कालिक रवि, चन्द्र की क्रान्ति साधन करके, दोनों के अन्तर का

आद्य संज्ञा रखना । स्थित्यर्धघटिका को मानैक्यार्ध से गुणाकर इस आद्य का भाग देना । इस प्रकार असकृत्कर्म द्वारा, स्पष्ट स्थित्यर्ध घटिका होती हैं ।

उपपत्ति ।

क्रान्तिसाम्य को ही पात कहते हैं । रवि किंवा चन्द्र के विम्वमध्य की क्रान्ति में विम्वार्ध को घटा देने से, विम्वप्रान्त की क्रान्ति अर्थात् विम्व के पृष्ठ प्रदेश की होती है । और विम्वमध्य की क्रान्ति में विम्वार्धक्रान्ति जोड़ देने से विम्व के अग्रभाग तक की होती है अर्थात् विम्वमध्यक्रान्ति में विम्वार्धक्रान्ति जोड़ने से विम्व के अग्रभाग-पूर्वप्रदेश की और घटा देने से पश्चिम प्रान्त की होती है । विम्व में अग्र और पृष्ठ की कल्पना याम्योत्तरभाव से कहा है ।



इस क्षेत्र में 'र' रविविम्व की कल्पना की है । 'रक' विम्बमध्य-क्रान्ति है और 'चक' विम्बाग्रभाग की क्रान्ति। है 'चर' विम्वार्धक्रान्ति है । 'कप' विम्ब पृष्ठ की क्रान्ति है । 'कप' के समान जव चन्द्रक्रान्ति होगी तब विम्वैकदेशीय क्रान्तियों के साम्य से पात का आदि होगा । उस समय सूर्य-चन्द्र विम्व-मध्यों का अन्तर मानैक्यार्ध के समान होगा । यों आगे चलकर, जब विम्वमध्यों की समक्रान्ति होगी तब पातका मध्य होगा । और सूर्य के अग्रप्रान्त का और चन्द्र के पृष्ठ प्रान्त का क्रान्तिसाम्य होने पर,

पात का अन्त होगा । इस क्षेत्र में, चन्द्रबिम्ब की कल्पना करने पर, सब विषय स्पष्ट होता है ।

स्थित्यर्धघटिका साधन वासनाभाष्य में स्पष्ट है । १५-१६ ॥

अथ स्थित्यर्धोपपत्तिरूपं श्लोकमाह ।

तावत् समत्वमेव क्रान्त्योर्विवरं भवेद्यावत् ।
मानैक्यार्धादूनं साम्याद् बिम्बैकदेशजक्रान्त्योः ॥ १७ ॥

अस्यार्थो व्याख्यात एव ।

भाषाभाष्य ।

जब तक क्रान्तियों का अर्थात् सूर्य-चन्द्र की क्रान्तियों का अन्तर, मानैक्यार्ध से न्यून रहेगा तब तक पातकाल की स्थिति रहेगी । क्योंकि, उस समय सूर्य-चन्द्र विम्ब के एकही प्रदेश की क्रान्ति समान होती है ।

सूर्य और चन्द्र के केन्द्राभिप्राय से क्रान्तिसाम्यकाल पातमध्यकाल है । जब तक, बिम्ब के एक देश की क्रान्ति समान है तब तक पात स्थिति है । दोनों के बिम्बमध्य का अन्तर मानैक्यार्ध के तुल्य होने पर स्पर्श होता है । असकृत्कर्म से जो स्थित्यर्धघटिका सिद्ध होती हैं वे मानैक्यार्ध के आसन्न होती हैं इस कारण, उससे न्यून में ही पात का आदि होता है ॥ १७ ॥

अथ विशेषमार्यात्रयेणाह ।

स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः ।
ऊना तयोस्तु विवरं मानैक्यार्धाद्यदाल्पकं भवति ॥१८॥
ज्ञेयं तदैव मध्यं पातस्यापक्रमान्तरं चाद्यः ।
तस्मादिष्टघटीभिः प्राक् पश्चाच्चापरौ साध्यौ ॥ १९ ॥
आद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम् ।
इष्टघटीभिःक्षुण्णं स्थित्यर्धे स्तः पृथक् पृथक् स्पष्टे॥२०॥

अत्र भावाभावलक्षणे यदुक्तं स्वायनसन्धाविन्दोः

क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेरूना तदा क्रान्तिसाम्यस्याभाव इत्यस्य विशेषोऽयम् । यदोना भवति तयोः क्रान्त्योर्विवरं यदि मानैक्यार्धादूनं स्यात् तदास्ति पात इत्यवगन्तव्यम् । तस्य पातस्य कदा मध्यमित्येतदर्थमाह । ज्ञेयं तदैव मध्यं पातस्येति । यस्मिन् काले चन्द्रः स्वायनसन्धिं प्राप्तस्तस्मिन्नेव काले पातमध्यं ज्ञेयम् । तथा तयोः क्रान्त्योर्यदन्तरं स आद्यः कल्प्यः । ततस्तस्मात् कालादग्रतः पृष्ठतश्चेष्टघटिकाभिश्चालितयोः पृथक् पृथक् क्रान्त्यन्तरे साध्ये । तावन्यसंज्ञौ भवतः । अतोऽनन्तरं चाद्यस्यान्यस्य चान्तरेण मानैक्यार्धाद्ययोरन्तरमिष्टघटीगुणं भाज्यम् । तदेकदा स्थित्यर्धम् । एवं द्वितीयमप्यपरेणान्येन । अत्राप्यसकृत्कर्मानुक्तमप्यर्थाज्ज्ञायते ।

अत्रोपपत्तिः । स्वायनसन्धौ वर्तमानस्येन्दोस्तत्कालभास्करस्य च क्रान्त्यन्तरं यदि मानैक्यार्धादूनं भवति तदा स्थित्यर्धोपपत्तिवद्भिन्नैकदेशजक्रान्त्योः साम्यात् पातः केन निवार्यते । अस्त्येव पातः । किं च यस्मिन्नेव काले ऽयनान्तं प्राप्तश्चन्द्रस्तस्मिन्नेव काले पातमध्यम् । यतस्तस्मात् कालादग्रतः पृष्ठतश्चक्रान्त्यन्तरमधिकमधिकं भवति । अथ तस्य पातस्याद्यन्तप्रतिपादनार्थं भूमौ बिम्बे विलिख्योच्यते । तद्यथा । चन्द्रार्कौ किल यदोत्तरगोलस्थौ तदा समायां भूमौ याम्योत्तरां रेखां कृत्वा तस्यां रेखायां बिन्दुं च कृत्वा स बिन्दुः किलोत्तरतश्चन्द्रस्यायनसन्धिः कल्पितः । अयनसन्धौ यावत् क्रान्त्यन्तरं तस्याद्यसंज्ञा पूर्वं कल्पिता । तस्याद्यस्य यावत्यः कलास्तन्मितैरङ्गुलैरयनान्तादुत्तरतोऽन्यं बिन्दुं

कृत्वा तत्र रविस्वाहोरात्रवृत्तं कल्प्यम् । तत्र च रवि-
बिम्बार्धकलामितैरङ्गुलैरविबिम्बं विलिख्य तस्माद्रवि-
बिम्बमध्याद्दक्षिणतो मानैक्यार्धकलामितैरङ्गुलैरन्यो
बिन्दुः कार्यः । तत्र किलेन्दोः स्वाहोरात्रवृत्तम् । तत्र
च चन्द्रबिम्बार्धकलामितैरङ्गुलैश्चन्द्रबिम्बं कार्यम् । तयो-
श्चन्द्रार्कबिम्बयोः प्रान्तौ संलग्नौ । एवं बिम्बप्रान्त-
क्रान्त्योः साम्यात् तत्र पातादिः । ततोऽनन्तरं यावता
कालेनायनान्तं प्राप्नोति तावदाद्यं स्थित्यर्धम् । ततोऽन-
न्तरमयनान्तादपसर्पन् यावता कालेन तदेवाहोरात्रवृत्तं
पुनः प्राप्नोति तावदन्त्यं स्थित्यर्धम् । स्थित्यर्धसाधन-
वासना त्रैराशिकेन । तत्रेष्टघटिकाभिश्चन्द्राकौं प्रचाल्य
क्रान्त्यन्तरमन्याख्यं कृतम् । तस्याद्याख्यस्य चान्यस्य
यदन्तरं तदिष्टघटिकानां सम्बन्धि क्रान्त्यन्तरं भवति ।
यद्यनेन क्रान्त्यन्तरेणेष्टघटिका लभ्यन्ते तदाद्योनितमानै-
क्यार्धतुल्येन कियत्य इति । यतश्चन्द्राहोरात्रवृत्तस्या-
यनान्तस्य चान्तरमाद्योनितं मानैक्यार्धं वर्ततेऽत उप-
पन्नमाद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम् ।
इष्टघटीभिः क्षुण्णमिति सर्वं निरवद्यम् ।

भाषाभाष्य ।

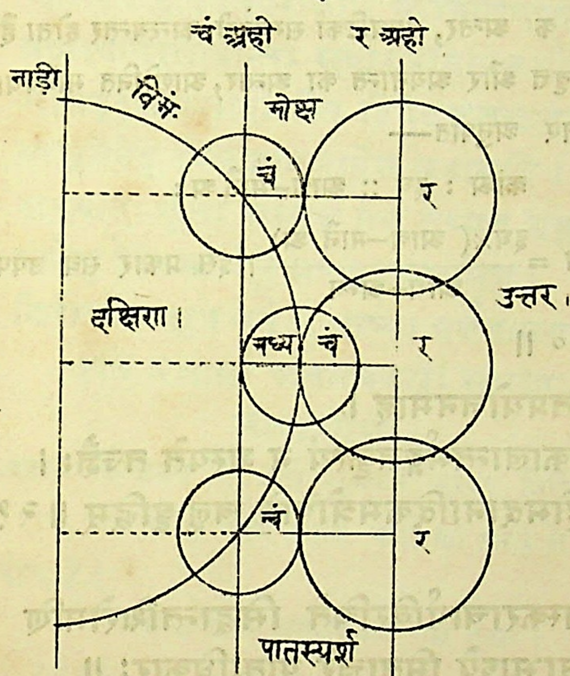
अपनी अयनसंधि में वर्तमान चन्द्र की क्रान्ति और तात्कालिक सूर्य की क्रान्ति से न्यून हो तो दोनों का अन्तर करना । यदि वह अन्तर मानैक्यार्ध से न्यून हो तब पात का मध्य जानना । और सूर्य चन्द्र की क्रान्तियों का अन्तर कर के आद्यसंज्ञा रखना । फिर उस मध्यकाल के आगे और पीछे, इष्टघटिका से सूर्य चन्द्र को चालित करके; अलग अलग क्रान्त्यन्तर साधन करना । उनका अन्य संज्ञा

रखना । उसके बाद, आद्य और अन्य के अन्तर का, मानैक्यार्ध और आद्य का अन्तर-इष्टघटी गुणित में भाग देना, फल अलग अलग स्पष्टस्थित्यर्ध सिद्ध होंगे। अर्थात् असकृत्कर्म से पातारम्भ और पातान्तस्थित्यर्ध सिद्ध होते हैं।

उपपत्ति।

जिस समय में चन्द्र अयनान्त में पहुँचता है तभी पात का मध्यकाल होता है। क्योंकि अयनान्तकाल के पूर्व किंवा पश्चात् क्रान्त्यन्तर का मान बढ़ता रहता है। पात का आद्यन्तकाल जानने के लिए नीचे क्षेत्र संस्था लिखी जाती है।

क्षेत्र।



अयनान्त से उत्तर, आद्यकला तुल्य अङ्गुल की दूरी पर चिह्न कर के, वहां रविका अहोरात्रवृत्त कल्पना किया और बिम्बार्धकलामान से

रविबिम्ब लिखा। रविबिम्बमध्य से दक्षिण, मानैक्यार्धकलातुल्य दूरी पर चन्द्राहोरात्रवृत्त मान कर, उस पर चन्द्रबिम्बकलातुल्य अङ्गुलों से चन्द्रबिम्ब लिखा। दोनों बिम्बों का नेमिस्पर्श होने से और बिम्बप्रान्त के क्रान्तिसाम्य से, वहां पात का आदि हुआ। उसके बाद, अयनान्त में पात का मध्यकाल है। वहां तक चन्द्र जितने काल में पहुँचता है, वह आद्यस्थित्यर्ध है। मध्यबिन्दु से चलकर, उसी अहोरात्रवृत्त में जब पहुँचा, उतना काल अन्त्यस्थित्यर्ध होता है। यह स्थिति क्षेत्र में स्पष्टप्रतीत होती है।

स्थित्यर्ध का साधन त्रैराशिक से करना। इष्टघटिका से रवि-चन्द्र को चालित कर के पूर्वरीति से क्रान्त्यन्तर और अन्य का साधन करना। आद्य और अन्य का अन्तर, इष्टघटिका सम्बन्धी क्रान्त्यन्तर होता है। और चन्द्राहोरात्रवृत्त और अयनान्त का अन्तर, आद्योनित मानैक्यार्ध होता है। इस लिए अनुपात—

क्रांअ : इघ :: आद्य—मानै अ :

$$\therefore \text{स्थित्यर्धघ} = \frac{\text{इघ} \times (\text{आद्य} - \text{मानै अ})}{\text{आद्य} - \text{अन्य}}$$ । इस प्रकार सब उपपन्न हुआ ॥ १८—२० ॥

इदानीं पातप्रयोजनमाह।

पातस्थितिकालान्तर्मङ्गलकृत्यं न शस्यते तज्ज्ञैः।
स्नानजपहोमदानादिकमत्रोपैति खलु वृद्धिम् ॥ २१ ॥

स्पष्टम्।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणि वासनाभाष्ये मिताक्षरे पाताधिकारः ॥

ग्रन्थसंख्या ३४०। एवमादितो ग्रन्थसंख्या ४३४५।

समाप्तोऽयं ग्रहगणिताध्यायः।

प्रभा।

पातस्थितिकालमध्ये तज्ज्ञैः पातकालवेदिभिर्मङ्गलकृत्यं शुभकर्म न शस्यते न आद्रियते। नन्वयं कालः सर्वदा निष्टजनकः केषु कर्मस्वपि न शुभ इत्याशङ्क्याह—स्नानजपदानादिकर्मानुष्ठानमत्र वृद्धिमुपैति। तत्संपादयतां जनानां विशेषफललाभाय भवतीत्यर्थः। इति शिवम्।

अथोपसंहारश्लोकाः।

अयोध्यापश्चिमप्रान्ते सरयूतमसान्तरे।
नानाद्रुमलतावंशप्रसूनोद्यानभूषिते ॥ १ ॥
कूजद्विहंगमक्रीडाकमनीयकलेवरे।
स्वार्जिते पण्डितपुरीग्रामे साम्बशिवालये ॥ २ ॥
ब्रह्मध्यानरतस्वान्तः सर्वागमनिषिक्तधीः।
श्रीमद्दुर्गाप्रसादोऽस्ति द्विवेदकुलचन्द्रमाः ॥ ३ ॥
तत्सुतेनेह गिरिजाप्रसादेन यथामति।
अनुवादः कृतः सम्यक् तेन तुष्यतु शङ्करः ॥ ४ ॥
यातेषु विक्रमाब्देषु नवाङ्गनवभूमिषु।
शिरोमणेः सुप्रभेयं सभाष्या पूर्णतामगात् ॥ ५ ॥

इति प्रभायां पाताधिकारः समाप्तः।

भाषाभाष्य।

पातकाल के समय में, कोई शुभकर्म करना निषिद्ध है। परन्तु स्नान, दान, जप और हवन आदि कर्मों को करने से उसका फल बहुत होता है।

भाषाभाष्य में पाताधिकार पूरा हुआ।

सं० १९६९ माघ शुक्ल १० रविवार। ता० १६ फरवरी, सन् १९१३ ईसवी।

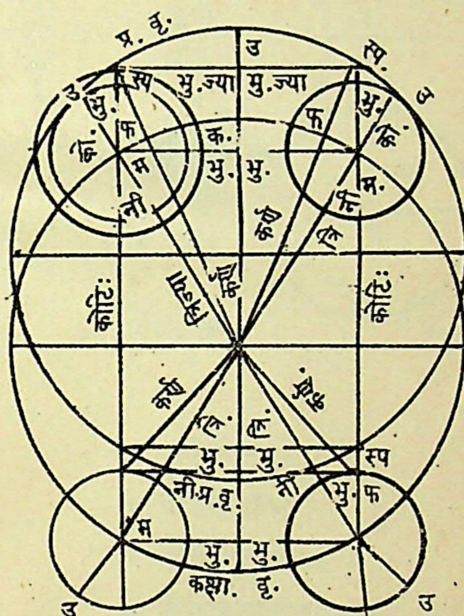
शुभं भवतु।

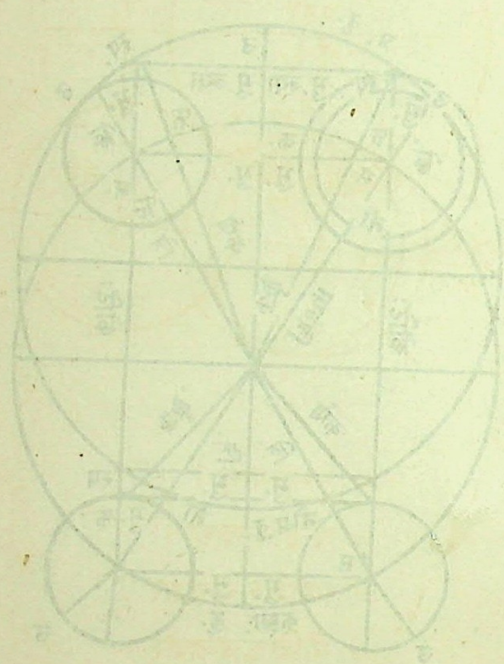
स्पष्टाधिकार—

मन्दप्रतिवृत्त-नीचोच्चवृत्त-शीघ्रप्रतिवृत्त-शीघ्रनीचोच्चवृत्त-भङ्गी ।

स्पष्टाधिकार—

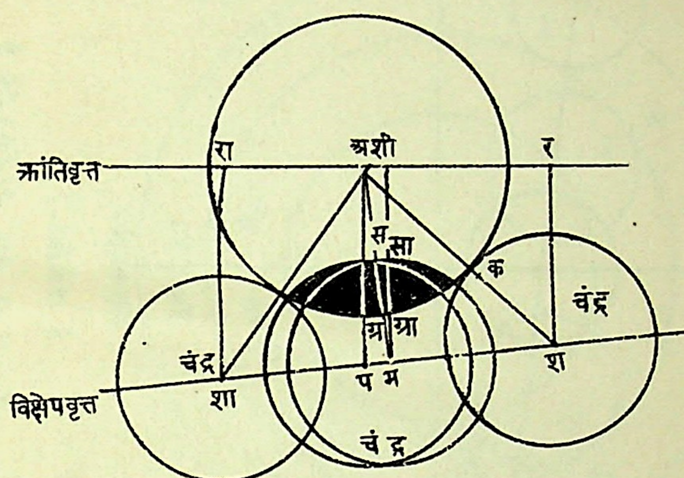
मिश्रभङ्गी ।





चन्द्रग्रहण–परिलेख ।

(दूसरा)

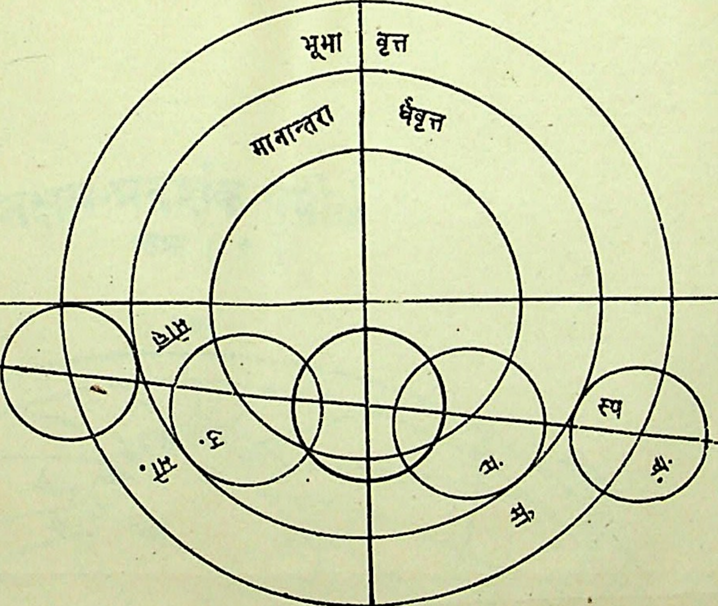


विवरण :—

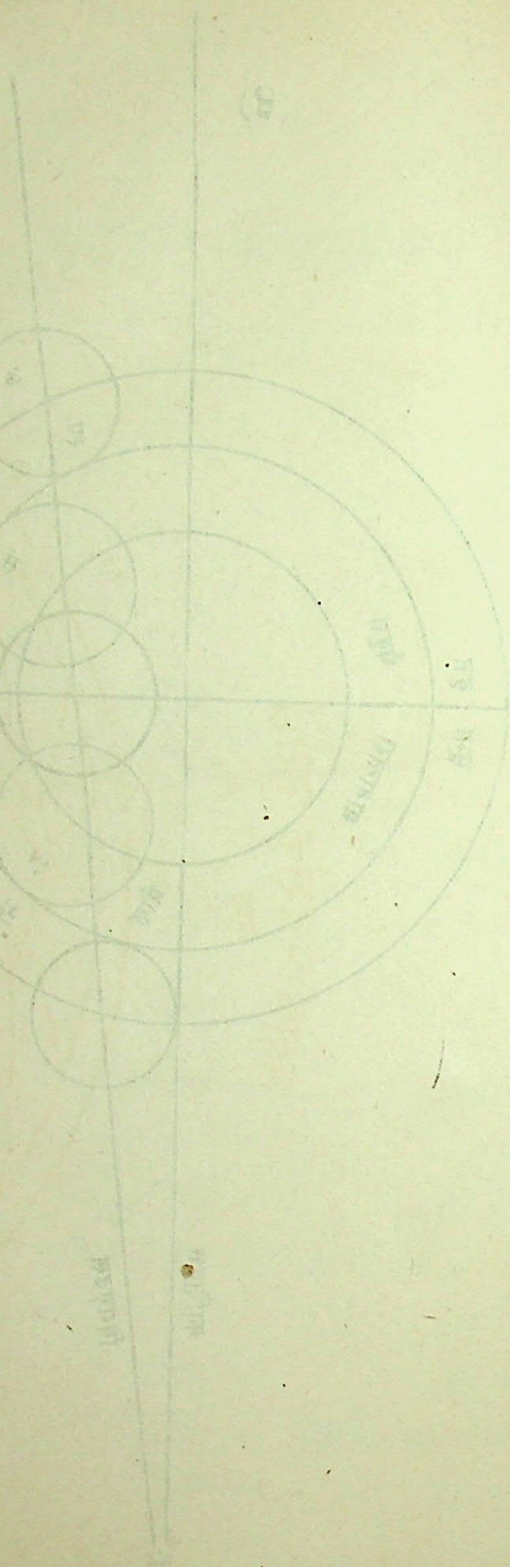
अ क	= भूभाव्यास ।
क श	= चन्द्रबिम्बार्ध ।
श र	= स्पार्शिकचन्द्रशर ।
शा रा	= मौक्षिकचन्द्रशर ।
∠ प अ म कोण	= विक्षेप वलन–
प म	= पर्वान्त या, ग्रहणमध्यकाल ।
प अ	= मध्यशर ।
मश या, मशा	= स्थित्यर्ध अर्थात् ‘ शशा ’ का अर्ध ।
ग्रास	= ग्रहण का भाग ।

चन्द्रग्रहण का परिलेख ।

(पहला)

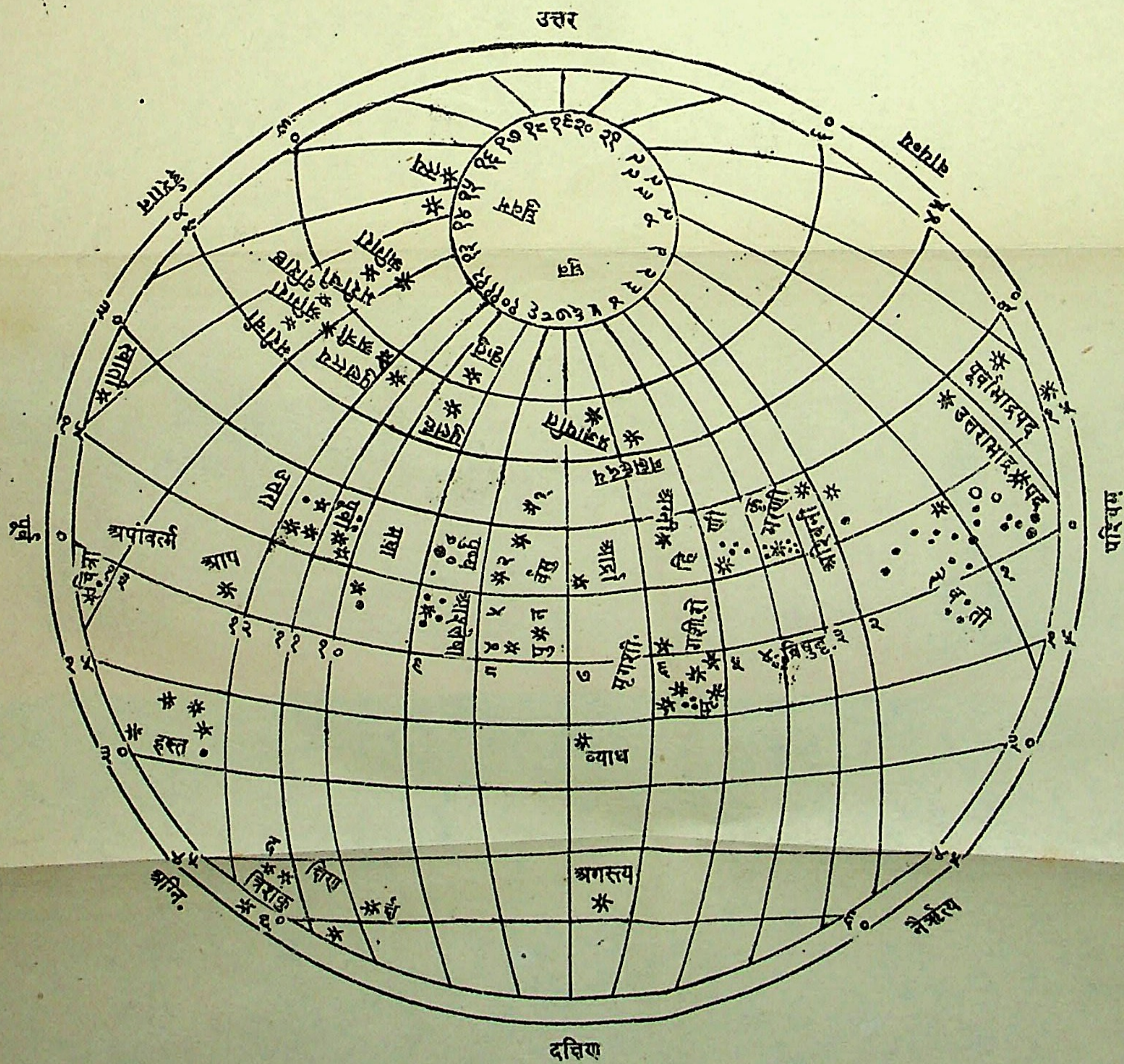


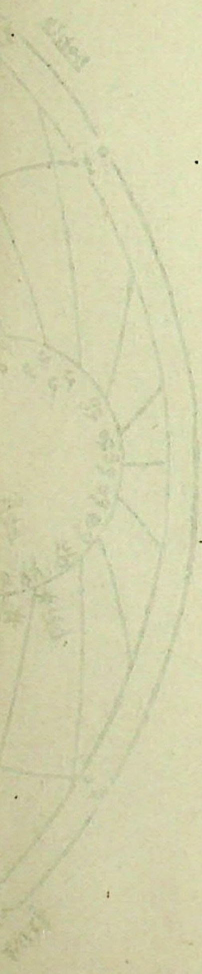
(८)

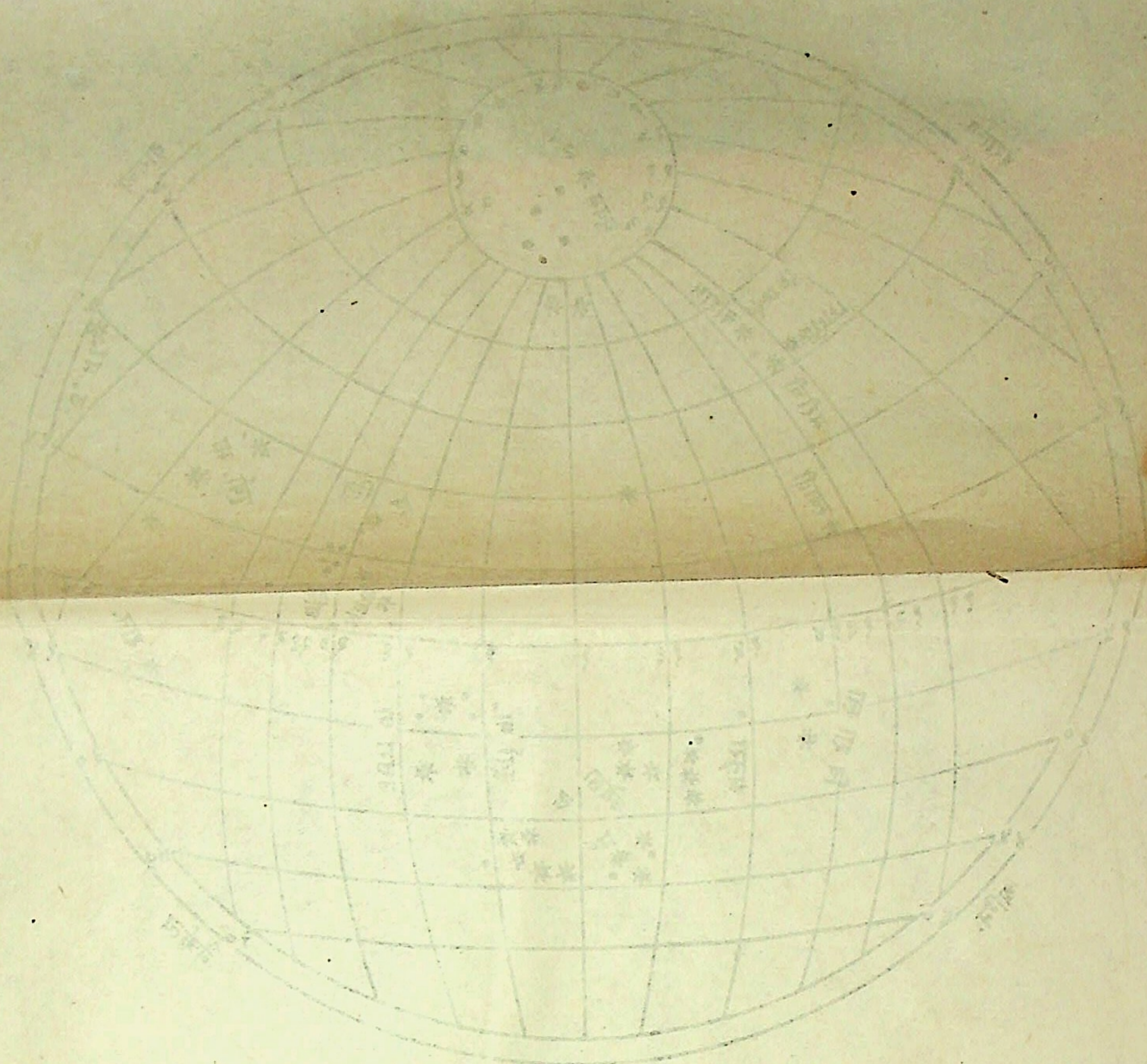


नक्षत्र-प्रदर्शक पूर्वार्ध

चक्र (१)







नक्षत्र-प्रदर्शक उत्तरार्ध

चक्र (२)

